हिन्दी के आधुनिक पौराणिक महाकाव्य

हिन्दी के आधुनिक पौराणिक महाकाव्य

A Critical Study of Modern Hindi Mahakavayas on Puranic Themes

[शोध-प्रबन्ध]

लेखक

डॉ देवीप्रसाद गुप्त

एम ए एल-एल ,बी पी-एच डी ,

प्राध्यापक-स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग

राजकीय स्नातकोत्तर डूंगर महाविद्यालय,

बीकानेर (राजस्थान)

प्रकाशक

उपमा प्रकाशन, उदयपुर

प्रकाशक
उपमा प्रकाशन
बापू बाजार,
उदयपुर

लेखक
डा देवीप्रसाद गुप्त

प्रथम संस्करण, १९७२

मूल्य पैंतीस रुपया मात्र

सौम्यमूर्ति-श्रद्धेय

प्रो० कृपाशंकर जी तिवारी

को

सादर समर्पित

आमुख

महाकाव्य-जातीय जीवन और सामाजिक चेतना के प्राकलन का सांस्कृतिक प्रयास होता है। इस दृष्टि से यदि महाकाव्य की महत्ता पर विचार किया जाय तो वह सर्वोपरि काव्य रूप सिद्ध होता है। वसे भी शिल्पगत वशिष्ट्य एव जीवन दशन सबधी उपलब्धियों के कारण महाकाव्य मे महार्घता का समाहार अनिवार्यत होता है। महाकाव्यों मे भी पौराणिक विषयो के महाकाव्य हमारी जातीय-जीवन चेतना के अभिन्न अग हैं। भारतीय महाका य परम्परा के आद्य ग्र थ 'रामायण' और 'महाभारत' तथा सस्कृत के श्रेष्ठ महाकाव्य-कुमारसभव, रघुवश, किराता जु नीय, शिशुपाल वध, और नषधचरित पौराणिक विषयो के ही हैं। हिन्दी के प्राचीन महाकाव्यों मे 'रामचरितमानस' और आधुनिक युग के महाकाव्यो मे 'कामायनी' जसे श्रेष्ठ ग्र थ पौराणिक महाकाव्य परम्परा की ही अमूल्य निधि हैं। इस प्रकार रामायण और महाभारत से लेकर अद्यावधि पौराणिक विषयों के महाकाव्यो की अक्षुण्ण परम्परा मिलती है।

इधर आधुनिकता के प्रभाव मे पौराणिक कथाओ को कपोल-कल्पित गाथाए (गप्प) कहकर उपेक्षा की जाती है। हिन्दी के आधुनिक कृतिकारों पर भी आधुनिकता (वज्ञानिकता) का प्रभूत प्रभाव पड़ा है। किन्तु इस सबके बावजूद भी हिन्दी म पौराणिक विषयो के प्रबन्ध-काव्यो की रचना विपुल परिमाण मे हुई और हो रही है। यह अवश्य है कि उनमे महाकाव्योचित गरिमा से सम्पन्न काव्य-ग्रन्थ उगलियो पर गिने जाने लायक हैं। विज्ञान और बौद्धिकता की प्रधानता के इस युग मे पौराणिक विषयो की महाकाव्य रचना देखकर मेरा यह विश्वास दृढ हुआ कि पौराणिक आख्यानो-उपाख्यानों मे केवल 'गप्पें' ही नही वरन् उनमें हमारी सास्कृतिक चेतना के समृद्ध स्वरूप की धरोहर भी रक्षित है। तभी तो उन्हें महाकाव्य जसे महत् काव्य रूप म इतिवृत्त विधान के लिये ग्रहण किया जाता है। मूलत इसी विचार बिन्दु न मुझे प्रस्तुत शोध-काय के लिये प्रेरित किया है। अस्तु,

पौराणिक विषयों के आधुनिक हिन्दी महाकाव्यो का यह अध्ययन जहा एक ओर महत्वाकांक्षा से विकसित होने वाली महाकाव्य-परम्परा के स्वरूप की

समृद्धि को रूपायित करता है वहाँ दूसरी ओर हमारे वर्तमान सामाजिक एवं जातीय जीवन की चेतना के सम्यक् आकलन का भी तत्र विशेष प्रयास है। इस दृष्टि से प्रस्तुत अनुसंधान का महत्व साहित्यिक भी है और सांस्कृतिक भी। जहाँ तक इस अध्ययन की मौलिकता का प्रश्न है, मेरा निवेदन है कि हिन्दी में पौराणिक विषयों के आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों की विशिष्ट परम्परा का अध्ययन इस अन्वेषण शोध प्रबन्ध के माध्यम से प्रथम बार प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में कुल ६ अध्याय हैं।

प्रथम अध्याय 'भूमिका' रूप में है जिसमें महाकाव्य की परिभाषा, स्वरूप, रूप-विधायक तत्वों एवं पौराणिक महाकाव्यों की परम्परा के विकास का विवेचन करते हुए हिन्दी के प्रकाशित प्रबन्ध काव्यों में से रूप विधायक तत्वों के आधार पर महाकाव्य सिद्ध होने वाले नौ ग्रन्थों का निर्धारण किया गया है। ये ग्रन्थ हैं- प्रियप्रवास, साकेत, कामायनी, कुरुक्षेत्र, साकेत-सन्त, दमयन्ती, रश्मिरथी, उर्मिला और एकलव्य।

द्वितीय अध्याय में उपर्युक्त महाकाव्यों की कथावस्तु का संक्षिप्त सारांश देकर, कथावस्तु के मूल पौराणिक स्रोतों एवं आधार ग्रन्थों का उल्लेख किया गया है। तदनन्तर प्रत्येक महाकाव्य की कथावस्तु में मार्मिक प्रसंग पुष्टि, मौलिक प्रसंगोद्भावनाओं, युगीन परिवेश के प्रतिफलन एवं शास्त्रीय गुणदोषों का विवेचन किया गया है।

तृतीय अध्याय में महाकाव्यों के चरित्र-तत्व के अध्ययन-क्रम में सर्व प्रथम प्रत्येक महाकाव्य की सम्पूर्ण पात्र सृष्टि को कोटियों में विभाजित किया गया है। प्रथम कोटि का शीर्षक है- प्रमुख पात्र' जिसके अन्तर्गत नायक-नायिका एवं दूसरे प्रमुख पात्र सम्मिलित किये गये हैं। द्वितीय कोटि में 'अप्रधान' शीर्षक के अन्तर्गत शेष पात्रों को समाविष्ट किया गया है। चरित्र विश्लेषण में सर्व प्रथम नायक नायिका के पुराण-प्रतिपादित स्वरूप का ऐतिहासिक क्रम-विकास बताते हुये उनकी चरित्रगत विशेषताओं का सोदाहरण निरूपण किया गया है। तदनन्तर अन्य पात्रों के चरित्र का मूल्यांकन किया गया है। चरित्र-निरूपण में महाकाव्यकारों की मानवतावादी एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि को विशेष महत्व दिया गया है। चरित्र-विश्लेषण में यह भी दर्शाया गया है कि किन अर्थों में आलोच्य महाकाव्यों के पात्र पौराणिक पात्रों से भिन्न अर्थात् नवीन और युगीन हैं। पात्रों की उन विशेषताओं को विशेष रूप से उभारा गया है जिनके कारण उनका चरित्र युग-जीवन के लिये प्रेरक और वरेण्य बना है।

चतुथ अध्याय म आलोच्य महाकाव्या की रसयोजना और शिल्प–तत्त्व का विवेचन है। शिल्प विधायक उपकरणो म प्रकृति–चित्रण–कौशल नामकरण, सगबद्धता, भाषा–शली अलकार योजना और छन्द विधान आदि के सन्दभ मे प्रत्येक महाकाव्य के शिल्प–तत्त्व का मूल्याकन प्रस्तुत किया गया है। इस मूल्याकन म आलोच्य महाकाव्यो की शिल्प–विधि का महाकाव्योचित गरिमा की दृष्टि स मह्त्वाकन करते हुये शिल्पगत उपलब्धिया के साथ साथ अभावो की भी विवेचना की गई है।

पचम अध्याय म आलोच्य महाकाव्या म प्रतिपादित जीवन–दशन अर्थात दाशनिक, आध्यात्मिक एव सास्कृतिक मा यताओ का विश्लेषण किया गया है। इस विश्लेषण म महाकाव्यकारो की जीवन–दृष्टि को प्रभावित करने वाली युगीन विचारधाराओ क प्रदान को भी स्वीकृति प्रदान की गई है। सब स अधिक बल इस बात पर दिया गया है कि आलोच्य महाकाव्यो के जीवन–दशन म चिरतन मानवीय मूल्या की प्रतिष्ठा क आग्रह की पूर्ति किस रूप म हुई है। साथ ही यह भी चिन्तनीय रहा है कि भारतीय सस्कृति के आधारभूत तत्वो एव भारतीय दशन की सावभौम मा यताओ के प्रतिपादन मे महाकाव्यकार कहा तक सफल हुए हैं।

षष्ठ अध्याय मे महाकाव्य–तत्त्व के विकास का अनुशीलन किया गया है। पूर्वोक्त अध्यायो म महाका य–रचना क तत्त्वगत आधारो पर प्रत्यक महाकाव्य का स्वतत्र मूल्याकन किया गया था। इस अध्याय म प्रत्यक महाकाव्य तत्त्व का उसक परम्परित स्वरूप स भिन्न जो रूप आलोच्य महाकाव्यो म समन्वित रूप म विकसित हुआ है, उसका विवचन किया गया है।

उपसहार म महाकाव्य–सृजन की वर्तमान युग मे उपयोगिता एव सभावनाओ पर विचार किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन मे मैं कहा तक सफल हुआ हूँ, यह मैं नही कह सकता। किन्तु मुझ इतना सन्तोष अवश्य है कि इस शोध प्रब ध के माध्यम स बीसवी शताब्दी के गत पाच दशको (१६१० से १९६०) म विकसित होने वाली पौराणिक विषयो की आधुनिक हिन्दी महाका य–परम्परा की उपलब्धिया और अभावो का यवस्थित मूल्याकन अवश्य हुआ है। मेरा विश्वास है कि इस शोध प्रबन्ध के द्वारा आधुनिक हिन्दी महाकाव्य की एक विशिष्ट एव समृद्ध परम्परा के स्वतत्र मूल्याकन के अभाव की पूर्ति हो सकेगी।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध साहित्य–मनीषी स्व० डॉ० माताप्रसाद जी गुप्त,

पू० निदेशक—क० मु० हिन्दी तथा भाषा–विज्ञान विद्यापीठ, आगरा के निर्देशन में लिखा गया और राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के द्वारा पी एच डी की उपाधि के लिए स्वीकृत किया गया। डॉ० गुप्त के सुयोग्य निर्देशन एवं स्नेहपूर्ण प्रोत्साहन के लिए मैं उनके प्रति श्रद्धावनत हूं। इस अध्ययन में जिन ग्रन्थों एवं पत्र–पत्रिकाओं आदि से मुझे सहायता मिली है, उनके लेखकों और सम्पादकों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हुआ अपनी शोध–साधना का यह सुमन माँ भारती को अर्पित करता हूँ।

गणतंत्र दिवस, १९७२
बीकानेर

देवीप्रसाद गुप्त

अनुक्रम

प्रथम अध्याय

भूमिका

महाकाव्य की परिभाषा भारतीय मत भामह, दण्डी, रुद्रट हेमचन्द्र, विश्वनाथ के मत, पाश्चात्य मत अरस्तु लौ-बस्सु, केम्स, हॉब्स, बावरा, एवरक्राम्बी, टिलीयाड, डिक्सन आचार्य आदि, महाकाव्य विषयक पौर्वात्य और पाश्चात्य काव्यादर्शों की तुलना, हिन्दी के विद्वानो मे रामचन्द्र शुक्ल, डा० श्यामसुन्दरदास डा० गुलाबराय, आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी डा०नगेन्द्र, डा० प्रतिपालसिंह, डा० शम्भूनाथसिंह, डा० गोविन्दराम शर्मा, डा० श्याम नन्दन किशोर तथा कवियों मे हरिऔध पंत, नीरज तथा रवीन्द्रनाथ टगौर की महाकाव्य विषयक मान्यताए, परम्परित और प्रगतिशील सन्दर्भों मे महाकाव्य की नवीन परिभाषा का निर्धारण। महाकाव्य के रूपविधायक तत्त्व, लोकप्रख्यात कथानक कथानक की विशेषताए—संगठन, व्यापकता संयोजन विधि, मार्मिक प्रसग-सृष्टि नवीन उद्भावनाए। उदात्त चरित्र सृष्टि—कोटिया, प्रमुख एव अन्य पात्र, नायकत्व चरित्र विश्लेषण पद्धतिया। विशिष्ट रचना-शिल्प बहिरग के उपकरण—वस्तुवर्णन, कल्पना गरिमापूर्ण भाषा शैली, अलंकार—योजना छद, विधान, नामकरण, सर्ग-योजना आदि। अन्तरग पक्ष—रसात्मकता—अगीरस, अन्यरस, प्रभावान्विति, भाव-चित्रण-कौशल। महत् उद्देश्य और जीवन दर्शन—मानवतावादी जीवन-मूल्यो की प्रतिष्ठा, युगान जीवनादर्शों की स्थापना, सास्कृतिक उन्नयन मे योगदान, उन्नत विचारदर्शन, सजीवनी शक्ति। महाकाव्य-रचना और पौराणिक कथानक। महाकाव्य का स्वरूप विकास, पौराणिक महाकाव्य-परम्परा, हिन्दी की पौराणिक महाकाव्य-परम्परा का विकास तथा महाकाव्योचित गरिमा से सम्पन्न पौराणिक विषयों के आधुनिक महाकाव्यों का निर्णय।

द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय

चरित्र-चित्रण समष्टि मूल्यांकन। कामायनी-प्रमुखपात्र-मनु श्रद्धा और इड़ा और अन्य पात्रों में किलात-आकुलि और कुमार का चरित्र-चित्रण तथा मूल्यांकन। कुरुक्षेत्र-नायकत्व की समस्या, कुरुक्षेत्र का युद्ध एक प्रतीक नायक, युधिष्ठिर और भीष्मपितामह के चरित्रों का विश्लेषण और मूल्यांकन। साकेत-सन्त-प्रमुख-पात्र भरत और माण्डवी, अन्य पात्र-राम, सीता कौशल्या, कैकयी आदि। दत्यवंश-बलि बाणासुर प्रद्युम्न तथा उषा का चरित्र-चित्रण, चरित्र-विश्लेषण पद्धति का मूल्यांकन। रश्मिरथी-प्रमुखपात्र-कर्ण और कुन्ती, अन्य पात्र परशुराम, अर्जुन, कृष्ण आदि। ऊर्म्मिला-नायकत्व का प्रश्न-प्रमुख पात्र ऊर्मिला, लक्ष्मण, राम और सीता तथा अन्य पात्र-जनक, और सुनयना, चरित्र-चित्रण की उपलब्धियों का मूल्यांकन। एकलव्य-प्रमुख पात्र-एकलव्य तथा द्रोणाचार्य, अन्य पात्रों में हिरण्यधनु एकलव्य जननी नागदन्त और अर्जुन का चरित्र विश्लेषण।

चतुर्थ अध्याय

रसयोजना तथा शिल्प तत्त्व

भूमिका महाकाव्य में रसयोजना का महत्त्व और अंगीरस, शिल्पगत वशिष्ट्य का स्वरूप। प्रियप्रवास-प्रकृति चित्रण, मनोवैज्ञानिक निरूपण रसपरिपाक और भावचित्रण सर्ग संयोजन, भाषा शैली, अलंकार विधान और छन्द योजना। साकेत-प्रकृति-वर्णन, विरह वर्णन रसपरिपाक तथा भाव-चित्रण, नामकरण सर्ग योजना भाषाशैली अलंकार विधान छन्द योजना। कामायनी-प्रकृति वर्णन सौंदर्य चित्रण मानवीय रूप सौंदर्य प्राकृतिक रूप सौन्दर्य भाव-सौन्दर्य मनोवैज्ञानिक निरूपण रसपरिपाक और भाव-चित्रण नामकरण सर्ग-संयोजन भाषा शैली अलंकार योजना छन्द विधान निरूपण। कुरुक्षेत्र प्रकृति चित्रण रसपरिपाक भाषा शैली अलंकार-योजना प्रतीक विधान छन्द विधान, नामकरण सर्गविधान। साकेत सन्त प्रकृति वर्णन रसपरिपाक और भावचित्रण कौशल, भाषा शैली अलंकार योजना छन्द, नामकरण सर्ग सयोजन। दत्यवंश-प्रकृति वर्णन रसपरिपाक और भाव-चित्रण नामकरण, सर्गविधान, भाषा शैली अलंकार-योजना, छन्द विधान। रश्मिरथी-प्रकृति चित्रण रसपरिपाक, नामकरण, सर्ग योजना भाषा-शैली अलंकार-योजना अलंकार विधान और छन्द योजना ऊर्म्मिला-प्रकृति-चित्रण, रसपरिपाक और भाव चित्रण

कौशल नामकरण, सर्गयोजना भाषा-शैली अलंकार योजना, छंद विधान। एकलव्य-प्रकृति-चित्रण, रसपरिपाक और भाव विधान, नामकरण सर्ग योजना, भाषाशैली, अलंकार योजना छन्द विधान, शिल्पगत मूल्यांकन।

पंचम् अध्याय

भूमिका--जीवन-दर्शन के स्वरूप की व्याख्या। प्रियप्रवास-महत् उद्देश्य और सृजन-प्रेरणा सांस्कृतिक निरूपण-भारतीय संस्कृति के आदर्श, मानवतावादी संस्कृति के आदर्शों का प्रतिष्ठा, दार्शनिक पृष्ठभूमि-ब्रह्म की परिकल्पना और कृष्ण जीव, जगत मोक्ष, भक्ति-साधना का विवेचन और विश्वबंधुत्व-भाव की स्थापना, निष्कर्ष। साकेत-सृजन-प्रेरणा और उद्देश्य, सन्देश सांस्कृतिक निरूपण—समन्वयवाद, पारिवारिक जीवन, आदर्श-समाज धार्मिकता। अन्य जीवनादर्श-नैतिक कर्मण्यवाद नारी की महत्ता और विश्वबन्धुत्व। दार्शनिक पृष्ठभूमि-सम्प्रदायगत विचार-भक्ति विषयक, ब्रह्म का स्वरूप और राम, जीव जगत आदि। जीवनदर्शन पर युगीन विचारधाराओं का प्रभाव-गांधीवाद साम्यवाद, राष्ट्रवाद मानवतावाद। कामायनी-सृजन प्रेरणा और संदेश, सांस्कृतिक निरूपण देव और मानव संस्कृति विशेषताएं प्राचीन भारतीय संस्कृति का कर्मकाण्डी स्वरूप, नवीन सांस्कृतिक आदर्शों की प्रतिष्ठा दार्शनिक पृष्ठभूमि-प्रत्यभिज्ञादर्शन-आत्मा, जीव, जगत और तीन पदार्थों का विवेचन, आनन्दवाद समरसता नियतिवाद, गांधीवाद साम्यवाद परमाणुवाद और मानवतावाद का विवेचन। कुरुक्षेत्र-युद्धवादी विचारदर्शन, मानवतावादी विचारदर्शन नवीन सामाजिक संरचना का महत्व, आध्यात्मिक निष्ठाओं में परिष्कार, मानवतावाद की प्रतिष्ठा निष्कर्ष। साकेत सन्त-सृजन-प्रेरणा, भारतीय संस्कृति के आदर्शों का प्रतिष्ठा, प्राचीन जीवन-मूल्यों की श्रेष्ठता का प्रतिपादन पाश्चात्य भौतिकतावादी जीवनदर्शनों का निषेध, भाग्यवाद नियति पुरुषार्थ का विवेचन युगीन समस्याओं का निरूपण और निदान, निष्कर्ष। उर्वशी—सृजन-प्रेरणा-जीवनदर्शन के दो स्तम्भ, परम्परित स्तम्भ-अवतारवाद, भाग्यवाद नूतन विचार तपश्चर्या दान यज्ञविधान आदि। प्रगतिशील सन्दर्भ--मानवतावादी,

दृष्टिकोण का विकास । रश्मिरथी—उद्देश्य और सन्देश, आध्यात्मिक मान्यताएं-ईश्वरविषयक धारणा और कृष्ण, नियति, भाग्य, धम आदि का विवेचन । चिरन्तन जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा-दान, तप, सत्य, मैत्री और श्रम की महत्ता, युद्ध की समस्या और समाधान उर्मिला सृजन प्रेरणा और उद्देश्य, आर्य संस्कृति के आदर्शों की प्रतिष्ठा-सत्य, तप, यज्ञ, नारी की महत्ता, संस्कारों का महत्व, वर्णाश्रम—व्यवस्था, भौतिकवाद का खंडन आत्मवाद में आस्था और विश्वबन्धुत्व भाव । युगीन चेतना के स्वर, वादात्मक प्रभाव—गांधीवाद रोमांसवाद, स्वच्छंदतावाद हालावाद आदि । एकलव्य—सृजन प्रेरणा और महत गुरुभक्ति का अन्यतम आदर्श, पुरुषार्थ—सिद्धि मानवतावादी जीवनादर्शों की प्रतिष्ठा ।

षष्ठ अध्याय

भूमिका—महाकाव्य-तत्वों के विकास का स्वरूप और मूल्यांकन । कथातत्वविकास का स्वरूप और विशेषताएं, आख्यान तत्व का ह्रास कथानक के प्रस्तुतीकरण एवं संयोजन—विधि की नवीनता मौलिक प्रसंगोद्भावनाएं, कथाप्रसंगों की अलौकिकता का परिष्कार कथानक की महाकाव्योचित गरिमा का प्रश्न और कथाविधान की उपलब्धियां । चरित्र तत्व—नायक संबंधी दृष्टिकोण में क्रांतिकारी परिवर्तन नायकत्व के लिए सद्वंशीय धीरोदात्त या पुरुषपात्र आवश्यक नहीं चरित्र—विश्लेषण—पद्धति के परिवर्तित आधारमान—पौराणिक पात्रों का युगानुरूप चित्रण, चित्रण—पद्धति में यथार्थवादी, मनोवैज्ञानिक एवं मानवतावादी दृष्टिकोण का विकास महत जीवनादर्शों से सम्पन्न चरित्रों की प्रतिष्ठा, उपेक्षित पात्रों का चरित्रोद्धार, नारी निरूपण की विशेष प्रवृत्ति, चरित्र तत्व के विकास का स्वरूप और उपलब्धियां । रसयोजना तथा शिल्प तत्व—अन्तरंग पक्ष की समृद्धि—रसात्मकता, अंगीरस विषयक

: १ :

भूमिका

महाकाव्य लक्षण, परिभाषा और विकास

महाकाव्य की परिभाषा

महाकाव्य की कोई सर्वमान्य परिभाषा देना कठिन है, क्योंकि विभिन्न युगों में उसका स्वरूप परिवर्तित होता रहा है। महाकाव्य युगीन जीवन चेतना का आत्मसात् करने के कारण व्यापक अर्थ में प्रगतिशील रचना है। महाकाव्य-सृजन एक सांस्कृतिक प्रयास है। जिस प्रकार 'संस्कृति' का मूल रूप अविच्छिन्न रहते हुए भी उसमें युगानुरूप परिवर्तन होते रहते हैं उसी प्रकार महाकाव्य की काव्यरूपात्मक प्रभुता के अखण्ड होते हुए भी उसकी प्रवृत्तियों और परम्पराओं में विकास क्रम निरन्तर गतिमान रहता है। महाकाव्य व्यष्टि जीवन की अभिव्यक्ति न होकर जातीय जीवन का चित्र होता है जिसमें सामाजिक-जीवन की सामयिक परिस्थितियों और विश्व जीवन की प्रचलित प्रवृत्तियों का प्रतिबिम्बन स्वतः ही हो जाता है। श्री दिनकर ने एक स्थान पर लिखा है " विश्व के महाकाव्य मनुष्यता के प्रगति के मार्ग में मील के पत्थरों के समान होते हैं। वे व्यक्त करते हैं कि मनुष्य किस युग में कहाँ तक प्रगति कर सका है।"[1] अस्तु महाकाव्य को प्रगतिशील रचनाओं की भाँति किसी रूढ़ परिभाषा में बाँधा नहीं जा सकता। किन्तु महाकाव्य के तात्विक विवेचन एवं विकास क्रम को समझने के लिए वैज्ञानिक विश्लेषण की आवश्यकता होती है। इस विश्लेषण के लिए प्रथम आवश्यकता है—परिभाषा। इसके अभाव में रचना का स्वरूप सम्बन्धी बोध नितान्त अनिश्चित प्राय रहता है।

पाश्चात्य एवं पौर्वात्य देशों के साहित्य-शास्त्रियों ने अद्यावधि महाकाव्य की जो परिभाषाएं निश्चित की हैं, उनका आदर्श, उनके समय से पूर्व रचित महाकाव्य

१ रामधारीसिंह दिनकर, अर्धनारीश्वर पृ० ४६

रहे हैं। जसे अरस्तु के लिए 'इलियड' और 'ओडेसी' तथा भारतीय काव्याचार्यों
लिए महाभारत' और 'रामायण'। किन्तु प्राचीन आचार्यों द्वारा निर्धारित परिमाए
आधुनिक युग के महाकाव्यो पर लागू नही होती हैं क्योंकि शली रूप, प्रवत्ति
परम्परा सभी दृष्टियों से महाकाव्य रचना परिवतनोन्मुखी रही है, जिसे विकास
सना देना अधिक युक्तिसगत होगा। इस सम्बन्ध म डा० शम्भूनाथसिंह का मत
कि—'कौन सा ग्रन्थ महाकाव्य है और कौन नही अब तक के मान्य महाकाव्य
लक्षणों के आधार पर इसका निर्णय करना कठिन है। इसका सबसे सुगम उपाय
यही है कि प्रत्येक देश या समाज मे जिस काव्य को परम्परा से महाकाव्य माना ज
है या वतमान काल के जो काव्य सामान्यत महाकाव्य मान लिए जाते है
सामने रखकर महाकाव्य की परिभाषा निर्धारित की जाय'[1] किन्तु डा० सि
स्वय अपने शोध प्रबन्ध म इस दृष्टिकोण का पूर्णत अनुपालन नहीं किया है। उ
वर्तमान युग के मान्य महाकाव्यो (जसे साकेत कृष्णायन पावती, प्रियप्रवास आ
को महाकाव्य नही माना है।[2] जबकि परम्परा से जिसे सामान्य काव्य की
प्राप्त है, उस आल्हखण्ड को उन्होने महाकाव्य माना है।[3] वास्तव में डा० सिंह
उपयुक्त मान्यता को महाकाव्य की कसौटी नही माना जा सकता। हा एक सु
के रूप में ठीक है। इसके अतिरिक्त परम्परा भी किसी काव्य ग्रन्थ को महाकाव्य
मान्यता उसके स्वरूप, आकार प्रकार प्रवत्ति, उद्देश्य लोक प्रसिद्धि आदि के आ
पर देती है। अत इस दृष्टि से भी किसी रचना को महाकाव्य की सज्ञा देने के
सामान्य काव्यशास्त्रीय लक्षणों का निर्वाह या निर्धारण करना अनिवाय हो
है। महाकाव्य की परिभाषा के निश्चय से पूव भारतीय एव पाश्चात्य विद्वा
एतद्विषयक मतों की विवेचना आवश्यक है।

भारतीय मत

सस्कृत काव्यशास्त्र म आचाय भामह के 'काव्यालकार' नामक ग्रन्थ म
काव्य की परिभाषा दी गयी है। उन्होने काव्य के पाच भेद—सगबन्ध, अभिने
आख्यायिका, कथा और अनिबन्ध—बताते हुए सगबन्ध रचना को ही महाकाव्य
है। आचाय भामह ने अपनी परिभाषा मे महाकाव्य के व्यापक रूप का समाहार
का प्रयत्न किया है। उनके अनुसार महाकाव्य सगबद्ध रचना है जिसका आका
हाना चाहिए। उसकी कथा का आधार महान् चरित्र होते हैं। अलकारयुक्त
(शिष्ट) भाषा का प्रयोग होता है। उसम राजदरबार दूत आक्रमण, सन्

१ डा० शम्भूनाथसिंह, हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ० ४३
२ वही , पृ० ६६८
३ वही , पृ० ३६७ ६८

आदि का विस्तृत वर्णन होना चाहिए। उसमें नाटक की पाँचों सन्धियों के साथ साथ अति व्याख्या नहीं होनी चाहिए। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि चतुर्वर्ग फल प्राप्ति का विधान होना चाहिए। उसमें नायक का अभ्युदय होता है किन्तु अन्य पात्रों का उत्कर्ष दिखाने के लिए नायक का वध नहीं किया जाता है।[1]

आचार्य दण्डी ने महाकाव्य का विवेचन करते समय भामह द्वारा कही गयी सभी बातों को अपनी परिभाषा में समेटा है किन्तु कुछ परिवर्तन भी किए हैं। उन्होंने महाकाव्य के बहिरंग सम्बन्धी नियमों पर भी बल दिया है, जैसे वर्णन वैविध्य, अलङ्कृत, चमत्कार आदि।[2] दण्डी की परिभाषा का परवर्ती काव्याचार्यों

---

१ सर्गबन्धो महाकाव्यं महतां च महच्च तत्।
अग्राम्यशब्दमर्थ्यं च सालंकारं सदाश्रयम्॥
मन्त्र-दूत प्रयाणाजि नायिकाभ्युदयैश्च यत्।
पञ्चभिः सन्धिभिर्युक्तं नातिव्याख्येयमृद्धिमत्॥
चतुर्वर्गाभिधानेऽपि भूयसार्थोपदेशकृत्।
युक्तं लोकस्वभावेन रसैश्च सकलैः पृथक्॥
नायकं प्रागुपन्यस्य वंश-वीर्य श्रुतादिभिः।
न तस्यैव वधं ब्रूयादन्योत्कर्षाभिधित्सया॥

—भामह काव्यालङ्कार, परि० १ १९–२२

२ सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम्।
आशीर्नमस्क्रिया-वस्तु निर्देशो वापि तन्मुखम्॥
इतिहास–कथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम्।
चतुर्वर्ग फलायत्तं चतुरोदात्त-नायकम्॥
नगरार्णव-शैलर्तु चन्द्रार्कोदय वर्णनैः।
उद्यान–सलिल–क्रीडामधुपान–रतोत्सवैः॥
विप्रलम्भैर्विवाहैश्च कुमारोदय–वर्णनैः।
मन्त्रदूत प्रयाणाजि नायकाभ्युदयैरपि॥
अलङ्कृतमसंक्षिप्तं रसभाव निरन्तरम्।
सर्गैरनतिविस्तीर्णैः, श्राव्यवृत्तैः सुसन्धिभिः॥
सर्वत्र भिन्न-वृत्तान्तैरुपेतं लोकरञ्जनम्।
काव्यं कल्पान्तरस्थायि जायते सदलङ्कृति॥
न्यूनमप्यत्र यैः कैश्चिदङ्गैः काव्यं न दुष्यति।
यद्युपात्तेषु सम्पत्तिराराधयति तद्विदः॥

—दण्डी, काव्यादर्श, परि० १,१८–२०

भी अनुसरण किया। उदाहरणार्थ रुद्रट[1] और हेमचन्द्र की परिभाषाओं में महाकाव्य के लक्षणों का विस्तृत विवेचन होते हुए भी कुछ बातों की पुनरावृत्ति है। रुद्रट ने महाकाव्य के विषय में महदुद्देश्य, महच्चरित्र, महती घटना और समग्र जीवन का रसात्मक चित्रण आदि चार प्रमुख लक्षणों का निर्देश करके अपने दृष्टिकोण की व्यापकता और मौलिकता का परिचय दिया है। हेमचन्द्र ने महाकाव्य

---

१ तत्रोत्पाद्ये पूर्व सन्नगरी वर्णनं महाकाव्ये ।
कुर्वीत तदनु तस्यां नायकवंश प्रशंसां च ॥
तत्र त्रिवर्गसक्तं समिद्धशक्तिं च सर्वगुणम् ।
रक्तसमस्त प्रकृतिं विजिगीषुं नायकं न्यस्येत् ॥
विधिवत्परिपालयतः सकलं राज्यं च राजवृत्तं च ।
तस्य कदाचिदुपेतं शरदादि वर्णयेत्समयम् ॥
स्वार्थं मित्रार्थं वा धर्मादि साधयिष्यतस्तस्य ।
कुल्यादिष्वन्यतमं प्रतिपक्षं वर्णयेद् गुणिनम् ॥
स्वचरात्तद् दूताद्वा कुतोऽपि वा शृण्वतोऽरि कार्याणि ।
कुर्वीत सदसि राज्ञां क्षोभं क्रोधेद्धचित्तगिराम् ॥
सम्मन्त्र्य सम सचिवैर्निश्चित्य च दण्डसाध्यतां शत्रोः ।
न दापयेत्प्रयाणं दूतं वा प्रेषयेन्मुखरम् ॥
अथ नायक प्रयाणे नागरिकाक्षोभजनपदाद्रिनदी ।
अटवी कानन सरसीमरु जलधि द्वीप भुवनानि ॥
स्कन्धावार निवेशं क्रीडां यूनां यथायथं तेषु ।
अस्तमयं सन्ध्यां सतमसमथोदयं शशिनः ॥
रजनीं च तत्र यूनां समाजसंगीतपान शृंगारान् ।
इति वर्णयेत्प्रसंगात्कथां च भूयो निबध्नीयात् ॥
प्रतिनायकमपि तन्तदभिमुखममृष्यमाणमायान्तम् ।
अभिदध्यात् कार्यवशान्नगरीरोधस्थितं वापि ॥
योद्धव्यं प्रातरिति प्रबन्धमधुपीति निशि कलत्रेभ्यः ।
स्ववधं विशङ्कमाना संदेशान्दापयत्सुभटान् ॥
सन्नह्य कृतव्यूहं सविस्मयं युध्यमानयोरुभयोः ।
कृच्छ्रेण साधु कुर्यादभ्युदयं नायकस्यान्ते ॥
सर्गाभिधानि चास्मिन्नवान्तरप्रकरणानि कुर्वीत ।
सन्धीनपि संश्लिष्टांस्तेषामन्योन्यसम्बन्धात् ॥

—रुद्रट काव्यालंकार, अध्याय १६ ७ १९

का विवेचन करते समय प्राकृत तथा अपभ्रंश के महाकाव्यो को अपने समक्ष रखा था।[1] कविराज विश्वनाथ ने महाकाव्य की बडी व्यापक और स्पष्ट परिभाषा दी है। उनका समय ईसा को १४ वी शताब्दी पूर्वार्द्ध था अत अपने साहित्य दपण' नामक ग्रन्थ मे उन्होंने पूववर्ती आचार्यों द्वारा निर्देशित समस्त लक्षणों का समाहार कर लिया है। उनकी महाकाव्य विषयक परिभाषा म निम्नांकित तथ्य द्रष्टव्य हैं–

१ कथानक की ऐतिहासिकता।

२ कथावस्तु का सर्गों म विभाजन।

३ नाटकीय सधियो का निर्वाह।

४ नायक का धीरोदात्त गुणो से युक्त एव उच्चकुलीन होना। एक वश के एकाधिक राजा भी नायक हो सकते हैं।

५ शृगार, वीर और शान्त रसों में से एक की प्रमुखता एव अन्य रसो का सहायक होना।

६ चतुवर्ग फल–प्राप्ति (धम अथ, काम मोक्ष)।

७ सग सख्या आठ से अधिक तथा सर्गांत मे छन्द परिवतन के नियम का अनुपालन।

८ काव्यारम्भ मे नमस्कार मगलाचरण, आशीवचन आदि।

९ सज्जन-स्तुति दुजन निंदा।

१० सध्या सूय, रजनी प्रदोष, प्रात मध्याह्न मृगया पवत, ऋतु, सागर सयोग विप्रलम्भ मुनि स्वग, पुर, यज्ञ यात्रा, विवाह, मन्त्रणा, पुत्रोत्पत्ति आदि का सांगोपाग वणन होना।

११ महाकाव्य का नामकरण कवि, कथा अथवा नायक पर आधारित होना। सर्गो का नाम कथा के आधार पर होना चाहिए।[2]

---

१ हेमचन्द्र काव्यानुशासन अध्याय ८,९

२ सगबन्धो महाकाव्य तत्रको नायक सुर।
सद्वश क्षत्रियो वापि धीरोदात्त गुणान्वित।
एकवशभवा भूपा कुलजा बहवोपि वा॥
शृगारवीर शान्तानामेकोऽङ्गी रसा इष्यते।
अगानि सर्वेऽपि रसा सर्वे नाटक-सधय॥
इतिहासोद्भव वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम्।
चत्वारस्तस्य वर्गा स्युस्तेष्वेक च फल भवत्॥

कविराज विश्वनाथ की उपयुक्त परिभाषा व्यापक अवश्य है किन्तु परिभाषा में मौलिकता की अपेक्षा सङ्कलन की प्रवृत्ति प्रधान है। उन्होंने रुद्रट की महाकाव्य विषयक मान्यताओं को ही समसामयिक महाकाव्यों की प्रचलित रूढ़ियों के आधार पर सुनियोजित करने का प्रयास किया है। आचार्य विश्वनाथ की परिभाषा का परवर्ती महाकाव्यकारों द्वारा बहुमान हुआ। कवियों ने 'महाकवि' बनने तथा अपने काव्य को महाकाव्य" की संज्ञा से सम्बोधित कराने के लिए विश्वनाथ द्वारा निर्दिष्ट लक्षणों का निर्वाह प्रारम्भ कर दिया। आज (बीसवीं शताब्दी) तक के महाकाव्यों में साहित्य-दर्पणकार द्वारा दिये गये लक्षणों का निर्वाह होता है। हिंदी महाकाव्य विषयक अधिकांश समालोचनाओं में इन लक्षणों को आधारमान के रूप में स्वीकार भी किया गया है। किन्तु यह सर्वथा उपयुक्त नहीं है, क्योंकि अधिकांश महत्वपूर्ण हिन्दी साहित्य के विकास का मूल स्रोत प्राकृत अपभ्रंश साहित्य था काव्य शास्त्र के क्षेत्र में हिंदी के आलोचकों ने संस्कृत साहित्य शास्त्र का अनुकरण किया है। इस सम्बन्ध में डा० शम्भूनाथसिंह का यह कथन उल्लेखनीय है कि 'यह हिन्दी-साहित्य का दुर्भाग्य रहा कि यद्यपि उसके अधिकांश मूल्यवान साहित्य का मूल स्रोत प्राय प्राकृत-अपभ्रंश का साहित्य था पर उसका साहित्य शास्त्र प्रारम्भ से ही संस्कृत साहित्य शास्त्र का अन्धानुकरण करता रहा है। इसका यह अर्थ नहीं कि हिन्दी-साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव पड़ा ही नहीं है बहुत अधिक पड़

आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तु निर्देश एव वा।
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुण कीर्तनम्॥
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह॥
नाना वृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्॥
सन्ध्या सूर्येन्दुरजनी प्रदोषध्वान्त वासराः।
प्रातर्मध्याह्न मृगया शैलर्तु वन सागराः॥
संभोग विप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः।
रण— प्रयाणोपयममन्त्र—पुत्रोदयादयः॥
वर्णनीया यथा योगं साङ्गोपाङ्गा अमी इह।
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा॥
नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्ग नाम तु।
अस्मिन्नार्षे पुनः सर्गा भवन्त्याख्यान संज्ञकाः॥

—विश्वनाथ साहित्य दर्पण परिच्छेद ६, ३१५ २५

है, पर उसका सहज विकास संस्कृत की ओर से नहीं प्राकृत-अपभ्रंश की ओर से हुआ है। अतः हिन्दी के काव्यरूपों का विवेचन प्राकृत-अपभ्रंश के आधार पर विशेष रूप से होना चाहिए केवल संस्कृत के अलंकार शास्त्रों के आधार पर नहीं। महाकाव्य की जो परिभाषा संस्कृत के आचार्यों ने दी है वह मूलतः संस्कृत के महाकाव्यों को देखकर बनायी गयी है। यह बात दूसरी है कि किसी-किसी ने प्राकृत-अपभ्रंश के महाकाव्यों की कुछ ऊपरी बातों की चर्चा कर दी है।"[1] निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि संस्कृत आचार्यों द्वारा दिये गये महाकाव्य विषयक लक्षणों का प्रमुख आधार उनके युग में प्रचलित महाकाव्य थे। संस्कृत आचार्यों की महाकाव्य सम्बन्धी परिभाषाओं से महाकाव्य के बाह्य रूप पर विशेष बल दिया गया है। यद्यपि उनके द्वारा परिभाषित लक्षणों का निर्वाह आज के महाकाव्यकार भी अपनी कृतियों में कर रहे हैं किन्तु अधिकांश उपेक्षित प्रायः हो गये हैं। उदाहरणार्थ; मंगलाचरण, उच्चकुलीन नायक की परिकल्पना, सर्ग-संख्या, सर्गान्त छन्द परिवर्तन आदि नियमों का अनुपालन आधुनिक युग के हिन्दी महाकाव्यों में नहीं हुआ है।

पाश्चात्य–मत

पाश्चात्य साहित्य-शास्त्र में महाकाव्य को एपिक (Epic) कहा गया है। "एपिक" शब्द 'एपोस '(Epos) से बना है जिसका अर्थ है "शब्द '। कालान्तर में 'एपोस' का प्रयोग "गीत ' के लिए होने लगा और यह शब्द "वीर काव्य" के लिए प्रयुक्त हुआ।

संसार के प्रायः सभी देशों के साहित्य का प्रारम्भिक युग 'वीर युग" रहा है। इस युग के साहित्य में वीर गाथाओं का सृजन हुआ है। इन वीर गाथाओं में वीरों के अदम्य साहस पराक्रम, शक्ति एवं शौर्य की प्रशंसा की गयी है। 'वीरयुग" संघर्ष और युद्ध का काल था जिसमें युद्धों का आयोजन उत्सवों की भांति होता था। इसी काल से महाकाव्य का बीज वपन प्रारम्भ होता है। इन्हीं वीर-गाथाओं का विकास वीर-स्तुतियों (प्रशस्तियों) में हुआ। इन्हीं से शैली के अनुरूप कलात्मक और विकसनशील (*Epic of Art & Epic of Growth*) महाकाव्यों का विकास हुआ। महाकाव्य के स्वरूप विकास के अध्ययन से भी यही बात सही प्रतीत होती है कि वीर काव्यों का विकास शैली के अनुरूप महाकाव्यों में हुआ। विश्व के सभी प्रारम्भिक महाकाव्यों में वीर-भावना का ही चित्रण मिलता है। डा० शम्भूनाथ सिंह ने यूरोपीय महाकाव्यों के विकास की चार अवस्थाओं का उल्लेख किया है।

---

१ हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ० ५६

उनके अनुसार — ' पहली अवस्था वीर भावना की दूसरी शास्त्रीय, धार्मिक और नैतिक भावना की तीसरी रोमांचक भावना की और चौथी स्वच्छन्दतावादी भावना की। पहली अवस्था का महाकवि होमर, दूसरी के वर्जिल दान्ते, कमास, मिल्टन, आदि तीसरी के स्पेन्सर, एरियास्टो, त्मो आदि, और चौथी के गेटे, टेनीसन ब्राउनिंग विक्टर ह्यूगो, हार्डी आदि।' [१] 'दी बुक आव एपिक' की भूमिका ' में तो महाकाव्य की परिभाषा ही इस तथ्य को लक्ष्यगत करके दी गयी है — "कविता प्रधान रूप से उस वीर — रस प्रधान कथात्मक काव्य का नाम है जिसमें श्रेष्ठ काव्यों के सभी गुण हों जैसे सुख दुःख और संयोग- वियोग का चित्रण तथा रीति तत्वों और कथा-तत्वों का मिश्रण आदि हो जिसमें स्वाभाविक जीवन के मनोहारी चित्र और घात-प्रतिघात वर्णित हों और जिसमें सार तत्वों का प्रकृत समन्वय इस कुशलता से किया गया हो कि वह रचना सदा के लिये अमर हो जाय। ' [२] अस्तु, स्पष्ट है कि पाश्चात्य साहित्य-शास्त्रियों ने महाकाव्य का स्वरूप निर्धारण करते समय वीर काव्यों को लक्ष्यीभूत किया था।

पाश्चात्य विद्वानों में अरस्तु ने महाकाव्य का विवेचन किया है। उनके विवेचन का आधार इलियड' और 'ओडेसी' नामक महाकाव्य हैं। पोइटिक्स' नामक ग्रन्थ में महाकाव्य का जो विवेचन किया गया है, यद्यपि उस विवेचन के आधार ग्रन्थ 'इलियड' और ओडेसी' जैसे विकसनशील महाकाव्य ही प्रतीत होते हैं, किन्तु वे लक्षण किसी सीमा तक अलंकृत महाकाव्यों पर भी लागू होते हैं। अरस्तु द्वारा निर्दिष्ट महाकाव्य के लक्षणों की व्यापकता का सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि पाश्चात्य महाकाव्यालोचकों को उनमें से अधिकांश लक्षण आज भी मान्य हैं। अरस्तु के महाकाव्य विषयक विवेचन का सारांश इस प्रकार है—

१ महाकाव्य भी नाट्य की भांति किसी पूर्ण, गम्भीर और उदात्त कार्य व्यापार की अनुकृति होती है।

२ महाकाव्य कथात्मक काव्य है जिसका कथानक ऐतिहासिक हो सकता है। महाकाव्य के कथानक में गुरु गम्भीर समोजना होती है। कथानक में

---

[१] हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ० ७०

[२] विदेशों के महाकाव्य अनुवादक गोपीकृष्ण गोपेश भूमिका पृ० १३

अतिप्राकृत तथा अलौकिक तत्वों [१] का मिश्रण तथा असम्भव बातों का वर्णन रहता है। [२] महाकाव्य का कथानक नाटक की भांति अन्वितिपूर्ण होना चाहिए यद्यपि नाटक से महाकाव्य के कथानक का आकार बड़ा होता है और बड़ा होना स्वाभाविक है। [३] कथानक में आदि, मध्य और अन्त होना चाहिए।

३ महाकाव्य मे प्रारम्भ से अन्त तक एक ही छन्द का प्रयोग होता है। यह छन्द षटपदी (Hexametre) है। वीरकाव्यों मे इस छन्द का व्यवहार उपयुक्त भी है।

४ त्रासदी (Tragedy) और महाकाव्य की तुलना करते हुए पात्रों के बारे मे अरस्तु ने लिखा है कि जहा तक शब्दों के माध्यम से महान् चरित्रों और उनके कार्यों के अनुकरण का सम्बन्ध है, महाकाव्य और त्रासदी मे समानता पायी जाती है। अर्थात् पात्र महान् होने चाहिए। [४]

५ महाकाव्य में जीवन की सम्पूर्णता का चित्रण होता है। अत महाकाव्य के कवि को अपनी सशक्त कल्पना द्वारा जीवन के विविध व्यापारों का वर्णन करना चाहिए।

'The surprising is necessary in tragedy but the epic poem goes further and admits even the improbable and incredible from which the highest senes of surprising results" Aristotle's Poetics, part III, The Epic poem, p 49, Edited by T A Moxon

२ 'The poet should prefer impossibilities which appear probable to such things, as though possible appear improbable Far from producing a plan made up of improbable incidents he should if possible, admit no one circumstance of that kind or, if he does it, it should be exterior to the action itself'

—Ibid p 50

३ But the epic imitation being narrative admits of many such simultaneous incidents properly related to the subject which swell the poem to a considerable size"

—Ibid, p 48

'Epic poetry agrees so far with tragic, as it is imitation of great characters and actions by means of words"

—Ibid., p 13

६ महाकाव्य की भाषा का चयन सुन्दर होना चाहिए। महाकाव्य चाहे सरस हो या जटिल किन्तु भावनाओं को साकार करने की शक्ति भाषा में अवश्य होनी चाहिए।

७ अरस्तु की मान्यता थी कि काव्य का लक्ष्य मुख्यतः अनुकृति द्वारा आनन्द की उपलब्धि कराना है। अतः महाकाव्य का भी यही लक्ष्य होना चाहिए।

अरस्तु के अतिरिक्त महाकाव्य के सम्बन्ध में अन्य पाश्चात्य विद्वानों ने भी विचार किया है। फ्रेंच विद्वान ली बस्सु (Le Bassu) के अनुसार—

'महाकाव्य प्राचीन घटनाओं का छन्दोबद्ध रूपक है।[1]

लार्ड केम्स के अनुसार—"महाकाव्य वीरतापूर्ण कार्यों का उदात्त शैली में किया गया वर्णन है।"[2]

हाब्स ने कथात्मक कविता को महाकाव्य कहा है।[3] इन सभी परिभाषाओं में महाकाव्य के बाह्य स्वरूप पर ही अधिक विचार किया गया है।

वर्तमान काल में भी अंग्रेजी के समालोचकों ने महाकाव्य का स्वरूप विवेचन किया है। सुप्रसिद्ध समालोचक बावरा ने महाकाव्य की परिभाषा इस प्रकार दी है—"सर्व सम्मति से महाकाव्य वह कथात्मक काव्य रूप है जिसका आकार बृहद होता है। जिसमें महत्वपूर्ण और गरिमायुक्त घटनाओं का वर्णन होता है और जिसमें कुछ चरित्रों की क्रियाशील जीवन-कथा होती है। उसके पढ़ने के बाद हमें विशेष प्रकार का आनन्द प्राप्त होता है क्योंकि उसकी घटनाएं

---

१ Le Bassu defined epic as a composition in verse intended to form the manners by instructions disguised under the allegories of an importent action "
-Quoted by M Dixon, English Epic and Heroic Poetry p 2

२ "As to the general taste there is a little reason to doubt that a work where heroic actions are related in an elevated style will, without further requisite be deemed an epic poem" — Ibid p 18

३ 'The heroic peom narrative is called an epic said Hobbes the heroic poem dramatic is tragedy" -Ibid, p 22

और पात्र हमारे भीतर मनुष्य की महानता, गौरव और उपलब्धियों के प्रति दृढ़ आस्था उत्पन्न करते हैं।"[1] इनकी परिभाषा मे महाकाव्य की आन्तरिक व्याख्या बडी स्पष्ट हुई है किन्तु बाह्याकार के सम्बन्ध में कोई स्पष्टीकरण नही है। एबरक्राम्बी की महाकाव्य विषयक परिभाषा इस प्रकार है—"बृहद आकार के कारण ही कोई काव्य महाकाव्य नही बन सकता है। महाकाव्य की शैली ही उसे महाकाव्य बना सकती है। और वह शैली कवि की कल्पना, विचारधारा तथा उसकी अभिव्यक्ति से जुड़ी रहती है। इस शैली के काव्य हमे ऐसे लोक मे पहुँचा देते हैं जहाँ कुछ भी महत्वहीन और असारगर्भित नही रह जाता है। महाकाव्य के भीतर एक पुष्ट, स्पष्ट और प्रतीकात्मक उद्देश्य होता है जो उसकी गति का आद्यंत सचालन करता है।"[2]

महाकाव्य के सम्बन्ध मे प्रो० टिलीयार्ड ने भी विस्तार से विचार किया है। उनका मत है कि हमारे पास मूल्यांकन का कोई निश्चित मानदण्ड नही है कि अमुक रचना महाकाव्यात्मक प्रभाव से युक्त है या नही।[3] महाकाव्य की कुछ अनिवार्य

---

१ 'An epic poem is by common consent a narrative of some length and deals with events which have a certain grandeur and importance and come from a life of action Especially of violent action such as war It gives a special pleasure because its events and persons enhance our belief in the worth of human achievement and in the dignity and nobility of man"

— C M Bowra, From Virgil to Milton p 1

२ 'What epic quality detached from epic proper do these poems possess them apart from the mere fact that they take up great many pages? It is a simple question of their style–the style of their conception and the style of their writings, the whole style of their imagination in fact They take us into a region in which nothing happens that is not deeply significant, a dominant, noticeable symbolic purpose presides out each poem moulds it greatly and informs it throughout"

–Lascelles Abercrombie The Epic pp 41–42

३ "We donot find any principle to guide us in deciding whether this or that work does or does not give the epic impression"
—E M W Tillyard The English Epic and its Background p 3 (London, 1954)

विशेषताए ही होनी है जिनके आधार पर उनका निर्णय किया जा सकता है। उन्होने महाकाव्य के लिए जिन आवश्यकताओ का उल्लेख किया है, वे सक्षेप मे इस प्रकार है—

१ महाकाव्य उत्तम गुणों से युक्त गम्भीर रचना है।[1]

२ महाकाव्य व्यापक, विविधो मुखी और सर्वांगीण जीवन का चित्रक होना चाहिए।[2]

३ महाकाव्य की तीसरी आवश्यकता व्यापक मानवीय विश्वासो और भावनाओं का सम्यता और सस्कृति के अनुरूप चित्रण होना चाहिए।[3]

४ महाकाव्य की चौथी आवश्यकता यह है कि उसमें समसामयिक जीवन तथा जन समूह की भावनाओ तथा उद्गारो को अभिव्यक्ति देने की अमोघ शक्ति होनी चाहिए।[4]

---

१ "The first Epic requirement is the simple one of high quality and of high seriousness" —Ibid p 5

२ 'The second Epic requirement can be roughed out by vague words like amplitude, breadth, inclusiveness and so on ' as (Aristotle directs us to greater amplitude in the epic, that ability to deal with more sides of life which differentiate it from tragic drama) —Ibid p 6

३ "The third Epic requirement has been hinted already though what I said about fortuitous concatenations" Ibid p 6

प्रो॰ टिलीयार्ड ने इस मन्तव्य को इस प्रकार स्पष्ट किया है

"This exercise of will and belief in it (Paradise Lost) which are a corollary of our third Epic requirement, help to associate epic poetry with the largest human movements and solidest human institutions In creating what we call civiliza tion the sheer human will has had a major part"

४ "The fourth Epic requirement can be called choric The Epic must express the feeling of a large group of people living in or near his own time The notion that Epic is Pri

५ सच्चे अर्थों म महाकाव्य कही जाने वाली रचना मे वीर भावना की प्रभावाभिव्यक्ति होनी चाहिए।[1]

६ जहा तक महाकाव्य विषय विधान का सम्बन्ध है, महाकाव्यकार को जीवन की सर्वांगीणता का व्यापक अनुभव और विस्तृत ज्ञान होना चाहिए।[2]

इस प्रकार प्रो॰ टिलीयाड ने अपने महाकाव्य विषयक विवेचन म महाकाव्य के बाह्य एव आभ्यंतरिक दोनो पक्षों पर बल दिया है। उनकी परिभाषा आज के महाकाव्यो पर भी पूर्णत लागू होती है। आज का महाकाव्यकार प्राचीन रूढ और काव्यशास्त्रीय लक्षणो का निर्वाह आग्रह पूर्वक नहीं करता है। प्रो॰ टिलीयाड के विवेचन मे काव्य के उदात्त गुणा और सर्वांगीण जीवन के चित्रण पर विशेष बल दिया गया है जो युगानुरूप है। समष्टि-रूप से विभिन्न पाश्चात्य आचार्यों ने महाकाव्य विषयक जो मत प्रकट किये हैं उनका साराश इस प्रकार है—

१ महाकाव्य वीरकाव्य (Heroic Poetry) है।

---

marily patriotic is an unduly narrowed version of this requirement We can simplify even further and say no more that the Epic must communicate the feeling what it was like to be alive at time But that feeling must include the condition that behind the Epic author is a big multitude of men whose most serious convictions and dear habits he is mouthpiece ' —Ibid, p 12

१ ' I want to insist that true Epic creates a Heroic impression " Ibid, p 10

२ 'As to contents the writer must seem to know everything before his mission to speak for a multitude can be ratified He must also span a corresponding width of emotions if possible one embracing the simplest sensualities at one end and a sense of the numinous at the other But while in the large area of the life, the Epic writer must be counted in normal, he must measure the crooked by the straight, he must exemplify the sanctity that has been claimed for true genius Only of this condition will the community trust him and allow him to speak for them" —E M W Tillyard, The Epic Strain in English Novel p 16

२ महाकाव्य का कथानक लोक विश्रुत और महत्वपूर्ण होना चाहिए ।

३ उसमें जातीय जीवन का व्यापक चित्रण होना चाहिए ।

४ महाकाव्य का नायक असाधारण प्रतिभा और व्यक्तित्व सम्पन्न व्यक्ति होता है । उसमें शौर्य, वीर्य और पराक्रम आदि गुणों का होना अनिवार्य है । अन्ततोगत्वा वह काव्य में विजयी चित्रित किया जाता है । उसके व्यक्तित्व में राष्ट्रीय जीवन का सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व होता है ।

५ महाकाव्य में घटना बाहुल्य और वर्णन वैविध्य होता है । अत वस्तु सकलन में शिथिलता आ जाती है । कथानक में समृद्धि तो होती है किन्तु नाटकों जैसी अन्विति का अभाव होता है ।

६ महाकाव्य की भाषा ओजपूर्ण होती है । उसमें जातीय जीवन के आदर्शों की व्यंजना की पूर्ण शक्ति और सामर्थ्य होनी चाहिए । शैली गरिमापूर्ण तथा एक ही छन्द का प्रयोग होना चाहिए ।

७ महाकाव्य का रचयिता महान् प्रतिभा सम्पन्न और मेधावी कलाकार होता है । उसमें विराट कल्पना शक्ति और विलक्षण काव्य कौशल होना चाहिए ।

८ महाकाव्य का लक्ष्य महान् होता है अर्थात् शाश्वत जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा । उदाहरण के लिए असत् पर सत् की विजय । महाकाव्य सम सामयिक जीवन की प्रेरणा का स्रोत होना चाहिए ।

पाश्चात्य और पौर्वात्य महाकाव्यादर्शों की तुलना

यह पहले कहा जा चुका है कि प्रत्येक देश के साहित्याचार्यों ने महाकाव्य के लक्षण निर्धारित करते समय पूर्व प्रचलित महाकाव्यों को ही लक्ष्य ग्रन्थों के रूप में स्वीकार किया था । इसके अतिरिक्त प्रारम्भिक काल के सभी देशों के महाकाव्यों में भी सामान्य प्रवृत्तियां पायी जाती है क्योंकि विश्व भर के महाकाव्यों के मूल स्रोतों को प्रौढ मानव जाति के प्रारम्भिक साहित्य के भीतर ढूँढ़ा जाता है।[1] यही कारण है कि महाकाव्य विषयक पाश्चात्य और पौर्वात्य आचार्यों की आधारभूत मान्यताओं के सम्बन्ध में विशेष अन्तर प्रतीत नहीं होता है । दोनों ही देशों के विचारक महाकाव्य को काव्य का महत्वपूर्ण रूप मानते हैं । दोनों ही मानते हैं कि महाकाव्य में महान् भाव और व्यापक विषय वस्तु होती है । महाकाव्य की कथा

[1] हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ० १

पौराणिक, ऐतिहासिक अथवा लोक विश्रुत होनी चाहिए। महाकाव्य की घटनाओं और कार्यों के सम्बन्ध मे भारतीय दृष्टि से कोई प्रतिबन्ध नहीं, इसीलिए भारतीय महाकाव्यों की घटनाए अनेक वर्षों की होती हैं जबकि पाश्चात्य देशो के महाकाव्यो मे काय की अवधि कुछ दिनों की भी होती है। जसे इलियड' और 'ओडेसी की कथा कुछ दिनो की ही है।

महाकाव्य के नायक के सम्बन्ध मे दोनो के दृष्टिकोण समान हैं। महाकाव्य का नायक उदात्त गुणो से सम्पन्न आदश और चरित्रवान् होना चाहिए। नायक के व्यक्तित्व म जातीय जीवन और सास्कृतिक आदर्शों के प्रतिनिधित्व की क्षमता होनी चाहिए। भारतीय महाकाव्यो मे आदश चरित्र की धारणा के मूल मे लक्ष्य की महानता अन्तभू त है। नायक के व्यक्तित्व मे वह शक्ति शील और शौय होना चाहिए जो असत् और अमानवीय प्रवत्तियो का शमन कर सके। नायक का कृतित्व जीवन के स्थायी मूल्यों (सत्व, शील, नय, शान्ति, व्यवस्था, आदि) का सस्थापक होना चाहिए। घोर सघष के बाद भी महाकाव्य म अन्तत नायक की विजय होनी चाहिए। पाश्चात्य देशो के महाकाव्यो मे हम नायक का चारित्रिक पतन और हनन भी पाते हैं, अत स्पष्ट है कि नायक की चारित्रिक उच्चता पर वहा इतना बल नहीं दिया जाता है।

महाकाव्य की भाषा सशक्त और शैली गरिमापूण होनी चाहिए। भाषा शैली मे काव्य के प्रतिपाद्य को व्यजित करने की शक्ति और क्षमता होनी चाहिए। वणनो की विविधता को दोनों ने ही माना है। छ दविधान के सम्बन्ध मे पाश्चात्य समीक्षकों ने महाकाव्य में आद्यान्त एक ही छन्द के प्रयोग पर बल दिया है जब कि भारतीय महाकाव्यों में एक सग में एक ही छन्द का प्रयोग उचित माना गया है। सस्कृत के कुछ आचार्यों ने सर्गान्त मे छन्द परिवर्तन का उल्लेख किया है।

अति प्राकृत तत्त्वों और अलौकिक शक्तियो का समावेश भी उचित माना गया है। दवी शक्तियो और नियति के बारे मे भी सहमति है। किन्तु पाश्चात्य देशों के महाकाव्यो मे जहा भूत, प्रेत, दत्य, दानव, देवता, आदि प्रत्यक्ष पात्रों के रूप मे कथा मे आये हैं, वहा भारतीय महाकाव्यों मे देवता अवतार ग्रहण करके [illegible] रूप से आये हैं।

पाश्चात्य महाकाव्यों में वीर भावना पर बल दिया गया है। युद्ध की घटनाओ और सघर्षों ने ही वहा के महाकाव्यों म प्रमुख स्थान पाया है। यही कारण है कि पाश्चात्य देशों में महाकाव्य (Epic poetry) वीर-काव्य (Heroic poetry) का पर्याय रहा है। अत प्रारम्भिक महाकाव्यो में युद्ध ही सवप्रधान तत्त्व रहा है। किन्तु भारतीय महाकाव्यों मे शृगार, वीर और शान्त तीनों म से एक रस की प्रधानता और अन्य सब रसो का वणन भी

कार किया गया है। पाश्चात्य महाकाव्यों में भौतिकतावादी संस्कृति की अनिवार्य विशेषताएं ही संघर्ष, द्वन्द्व और युद्ध की अवतारणा का मूल कारण हैं। भारतीय संस्कृति की त्याग और वैराग्य भावना ने महाकाव्यों में शील, सत्त्व और नीति तत्त्वों को प्रमुखता दी है। इसीलिए हमारे यहां के महाकाव्यों का उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष अर्थात् चतुर्वर्ग फल प्राप्ति माना गया है। रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों में युद्धों की रक्त रंजित गरिमा से विराटत्व की स्थापना हुई है किन्तु युद्ध नीति यहां नीति में ही अन्तर्गत बन्दी है। हमारे यहां युद्ध क्षेत्र (कुरु क्षेत्र) भी धर्म क्षेत्र ही रहा है। महाभारत का केन्द्र बिन्दु भारत-युद्ध न होकर गीता के सत्य ज्ञाने नानृत' उपदेश में सन्निहित है। रामायण में भी राम रावण का संघर्ष मानव की दानवीय और दैवीय प्रवृत्तियों का संघर्ष है और फिर संघर्ष प्रमुख नहीं, संघर्ष का परिणाम अर्थात् असत् पर सत् की, अनीति पर नीति की, अधर्म पर धर्म की विजय प्रमुख और महत्व है। पुनः हमारे महाकाव्यों में प्रतिपादित शाश्वत जीवन मूल्य भोग और कर्म हैं। कर्म, कर्त्तव्य भावना से युक्त योग और त्याग निष्ठा से युक्त भोग धर्माचरण में है। यही कारण है कि भारतीय महाकाव्यों में जीवन दर्शन का एक व्यवस्थित रूप मिलता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकाव्य की आधारभूत मान्यताओं में यथा—कथा संयोजन, चरित्र सृष्टि, वर्णन वैविध्य, छन्द–विधान, भाषा–शैली की गरिमा, जातीय जीवनादर्शों की प्रतिष्ठा, समग्र जीवन चित्रण एवं उद्देश्य की महानता आदि की दृष्टि से पाश्चात्य और पौर्वात्य दृष्टियों में समानता है। महाकाव्य के एक साहित्यालोचक डिक्सन ने महाकाव्यों की मौलिक समानताओं को देखकर ही कहा था कि — "महाकाव्य (वीरकाव्य) सर्वत्र एक ही प्रकार का होता है। वह चाहे पूर्व का हो अथवा पश्चिम का, उत्तर का हो अथवा दक्षिण का, उसका रक्त और प्रकृति समान होते हैं। सच्चा महाकाव्य कहीं भी लिखा जाय, वह एक कथात्मक काव्य होता है, उसमें महान् चरित्र और महान् कार्य होते हैं उसकी वाणी विषय की व्यापकता के अनुकूल होती है। जिसका प्रयास चरित्रों और कार्यों को आदर्श रूप में चित्रित करके घटनाओं और वर्णनों के द्वारा कथात्मक वैभव की अभिवृद्धि करना होता है।"[१]

---

१ "Yet Heroic Poetry is one, whether of East or west the North or South its blood and temp r are the same, and the true Epic wherever created will be a narrative poem organic in Structure dealing with great actions and great characters, in a style commensurate with lordiness of its theme, which tends to idealize these characters and actions and to sustain embellish its subject by means of episode and amplifications' —M Dixon English Epic and Heroic Poetry p 24

पाश्चात्य और भारतीय काव्याचार्यों द्वारा निर्दिष्ट महाकाव्य-लक्षणों के तुलनात्मक अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारतीय आचार्यों ने महाकाव्य के बहिरंग पक्ष पर अपने विवेचन में अधिक बल दिया है। उनकी दृष्टि में महाकाव्य में कलात्मक औदात्त अधिक महत्वपूर्ण रहा है अन्तरंग की दृष्टि से उन्होंने रस निष्पत्ति को पर्याप्त माना है। इस प्रसंग में डा० माताप्रसाद जी गुप्त का यह कथन उचित है कि — 'महाकाव्य की रूप रेखा को देखने से ज्ञात होगा कि हमारे यहा के साहित्य शास्त्रियों का ध्यान विशेषत उसके आकार-प्रकार के विषय में रहा है, उसकी अन्तरात्मा के विषय में नहीं।'[1] तुलनात्मक अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर भी पहुचते हैं कि महाकाव्य पर विचार करते समय आचार्यों ने पूववर्ती एव समकालीन महाकाव्यों को लक्ष्य बनाया था। यही कारण है कि प्राचीन काव्याचार्यों द्वारा निर्दिष्ट लक्षणों के निकष पर आज के महाकाव्य खरे नहीं उतरते और सम्भव है कि आधुनिक मान्य लक्षणों के आधार पर भविष्य के महाकाव्यों का स्वरूप-निर्णय न हो सके। महाकाव्य का स्वरूप कभी भी एकसा नहीं रहा है। युग जीवन और समाज की परिस्थितियो एव परम्पराओं के अनुसार महाकाव्य की परिभाषाए बनती और बदलती रही हैं। हिन्दी महाकाव्य के अध्ययन-अनुशीलन से पूर्व हिन्दी के विद्वानो के महाकाव्य विषयक विचार और परिभाषाओं को समझ लेना समीचीन होगा।

आधुनिक हिन्दी समीक्षकों मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने महाकाव्य के स्वरूप पर विभिन्न महाकाव्यों (यथा रामचरितमानस, पद्मावत आदि) की समीक्षा करते हुए सविस्तार विचार किया है उन्होंने महाकाव्य के केवल चार तत्वों को महत्त्व दिया है —इतिवृत्त, वस्तु व्यापार-वर्णन, भाव-व्यजना तथा सवाद। उनके अनुसार महाकाव्य का इतिवृत्त व्यापक और सुसगठित होना चाहिए। उसमें ऐसी वस्तुओं और व्यापारों का चित्रण होना चाहिए जो हमे आन्दोलित कर दें। भाव-व्यजना इतनी विशद, प्राजल एव पुष्ट हो जो रसानुभूति म सहायक एव पूर्ण समर्थ हो। सवाद रोचक, नाटकीय और औचित्यपूर्ण होने चाहिए। शुक्ल जी ने परोक्ष रूप से सन्देश की महानता एव शैली की प्रौढता को भी महाकाव्य का प्रमुख लक्षण माना है। किन्तु शुक्ल जी द्वारा निर्धारित महाकाव्य के लक्षण अनेक नवीन महाकाव्यों पर लागू नहीं होते हैं।[2] शुक्ल जी ने महाकाव्य के बाह्य आकार पर इतना अधिक बल दिया है कि वचारिक गाम्भीर्य एव भाव-सुषमा से परिपूर्ण 'कुरुक्षेत्र' और 'कामायनी' जसे नवीन महाकाव्यों पर भी ये लक्षण लागू नहीं होते हैं।

---

१ तुलसीदास, पृ० ३६६, तृतीय सस्करण १९५३

२ साहित्यिक निबन्ध (स० १९६१) पृ० ६००।

डा० श्यामसुन्दर दास ने महाकाव्य का विवेचन करते समय उसमे महत् उद्देश्य, उदात्त आशय, संस्कृति के चित्रण, आदि का उल्लेख किया है। उन्हीं के शब्दो मे — "महाकाव्य मे एक महत् उद्देश्य का होना आवश्यक है। संस्कृत के साहित्य शास्त्रो मे महाकाव्य के आकार प्रकार और वर्णन विषय के सम्बन्ध मे बड़ी जटिल और दुरूह व्याख्याए की गयी हैं जिनका आधार लेकर लिखने से बहुत से महाकाव्यो के शरीर अब संघटित हो गये हैं, पर उनम से बहुत थोडे से ऐसे हैं जो आत्मा के किसी उदात्त आशय, सभ्यता के किसी युग प्रवर्त्तक संघर्ष अथवा समाज की किसी उद्वेगजनक स्थिति को लेकर किसी प्रकाण्ड विचारक या कवि द्वारा लिखे गये हैं, जिन्हे जातीय इतिहास मे अनिवार्य स्थान सुलभ हो सके। रामायण' 'महाभारत 'रामचरितमानस' आदि की कोटि के सच्चे महाकाव्य शताब्दियों मे दो एक लिखे जाते है।" [१] डा० श्यामसुन्दरदास जी की परिभाषा का सबसे महत्वपूर्ण अंश वह है जिसमे उन्होंने महाकाव्य का विषय-आत्मा का उदात्त आशय सभ्यता या संस्कृति के संघर्ष तथा समाज की उद्वेगजनक स्थिति की अवतारणा माना है। आज के महाकाव्यों की कसौटी का एक आवश्यक अंग उपयुक्त विवेचन ही होना चाहिए क्योंकि युग जीवन के संघर्ष की व्यंजना ही वास्तव मे महाकाव्य का उच्चतम आशय है।

डा० गुलाबराय जी के मतानुसार—"महाकाव्य व॰ विषय-प्रधान काव्य है जिसमे अपेक्षाकृत बडे आकार मे जाति मे प्रतिष्ठित और लोकप्रिय नायक के उदात्त कार्यों द्वारा जातीय भावनाओं, आदर्शों और आकांक्षाओं का उद्घाटन किया जाता जाता है।" [२] बाबूजी की इस परिभाषा में जातीय जीवन के चित्रण तथा नायक के कार्यों की महानता पर बल दिया गया है।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी जी ने 'साकेत' के महाकाव्यत्व पर विचार करते हुए महाकाव्य के लक्षणो का उल्लेख इस प्रकार किया है—' महाकाव्य के तीन प्रमुख लक्षण माने जा सकते हैं प्रथम, रचना का प्रबन्धात्मक या सम्बद्ध होना। द्वितीय उसकी शैली का गाम्भीर्य और तृतीय, उसमें वर्णित विषय की व्यापकता और महत्व। इनके अतिरिक्त भी अन्य उपनियम हो सकते हैं किन्तु मैं उनका समावेश इन्हो तीन लक्षणो में करना चाहूंगा।' [३] इस विवेचन में वाजपेयी जी ने सामान्यत महाकाव्य के सर्वप्रमुख अन्तर्वाह्य लक्षणो का ही उल्लेख किया है।

---

१ साहित्यालोचन (१२ वां संस्करण सं० २०१४) पृ० ६४–६५

२ काव्य के रूप (चतुर्थ संस्करण) पृ० ८६

३ आधुनिक साहित्य (द्वितीय संस्करण) पृ० १०६ १०७

डा० नगेन्द्र ने 'कामायनी के महाकाव्यत्व पर विचार करते हुए महाकाव्य-रचना के आधारभूत तत्त्वों का विवेचन इस प्रकार किया है— 'मैं महाकाव्य के उन्हीं मूल तत्वो को लेकर चलूंगा जो देशकाल सापेक्ष नहीं हैं, जिनके अभाव में किसी भी देश अथवा युग की कोई रचना महाकाव्य नहीं बन सकती और जिनके सद्भाव मे परम्परागत शास्त्रीय लक्षणों की बाधा होने पर भी किसी कृति को महाकाव्य के गौरव से वंचित नही किया जा सकता। ये मूल तत्व हैं—(१) उदात्त कथानक (२) उदात्त कार्य अथवा उद्देश्य (३) उदात्त चरित्र (४) उदात्त भाव और उदात्त शैली अर्थात् औदात्त ही महाकाव्य का प्राण है।"[1] डा० नगेन्द्र द्वारा उल्लिखित तत्त्व महाकाव्य रचना के अनिवार्य और अपरिहार्य तत्त्व हैं। इनके अभाव में महाकाव्य की रचना पूर्ण और सार्थक नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त डा० नगेन्द्र द्वारा निर्देशित लक्षण महाकाव्यालोचन के स्थायी मानदण्ड भी स्वीकार किये जा सकते हैं। अस्तु, इन तत्वों का महाकाव्य के सृजन और समालोचन दोनों ही दृष्टियों से महत्व है।

हिन्दी महाकाव्य के स्वरूप विकास एवं प्रवृत्तियों आदि पर शोध करने वाले कतिपय विद्वानों ने भी महाकाव्य की परिभाषाएं दी हैं। डा० प्रतिपालसिंह के शब्दों में—'महाकाव्य विषय प्रधान रुचिर रचना है जिसमे जातीय संस्कृति के किसी महाप्रवाह सभ्यता के उद्गम-संगम युग प्रवर्तक संघर्ष, महच्चरित्र के विराट उत्कर्ष समाज की उद्वेगजनक स्थिति आत्मा के किसी उदात्त आशय अथवा रहस्य का उद्घाटन किया जावे।"[2] डा० प्रतिपालसिंह की परिभाषा में डा० श्याम सुन्दरदास की परिभाषा की ही सामान्यत पुनरावृत्ति हुई है।

डा० शम्भूनाथसिंह के अनुसार— 'महाकाव्य वह छन्दोबद्ध कथात्मक काव्य रूप है जिसमें क्षिप्र कथा प्रवाह या अलंकृत वर्णन अथवा मनोवैज्ञानिक चित्रण से युक्त ऐसा सुनियोजित सांगोपांग और जीवन्त लम्बा कथानक होता है जो रसात्मकता या प्रभावान्विति उत्पन्न करने मे पूर्ण समर्थ होता है जिसमें यथार्थ कल्पना या सम्भावना पर आधारित ऐसे चरित्रों के महत्वपूर्ण जीवन वृत्त का पूर्ण या आंशिक चित्रण होता है जो किसी युग के सामाजिक जीवन का किसी-न किसी रूप मे प्रतिनिधित्व करते हैं और जिसमे किसी महत्प्रेरणा से परिचालित होकर किसी महदुद्देश्य की सिद्धि के लिए किसी महत्वपूर्ण, गम्भीर अथवा आश्चर्योत्पादक और रहस्यमय घटना या घटनाओं का आश्रय लेकर सश्लिष्ट और समन्वित रूप से जाति विशेष और युग विशेष के समग्र जीवन के विविध रूपों, पक्षों, मानसिक अवस्थाओं

---

१ डा० नगेन्द्र के सर्वश्रेष्ठ निबन्ध सम्पादक-भारतभूषण अग्रवाल, पृ० १२५

२ बीसवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध के महाकाव्य पृ० १६

अथवा नाना रूपात्मक कार्यों का वर्णन और उद्घाटन किया गया है और जिसकी शैली इतनी उदात्त गरिमामय होती है कि युग युगान्तर में उस महाकाव्य को जीवित रहने की शक्ति प्रदान करती है।"[1] डा० शम्भूनाथसिंह की परिभाषा यद्यपि बहुत विस्तारपूर्ण है किन्तु उसमें महाकाव्य के सभी तत्वों के समाहार की चेष्टा की गयी है। डा० गोविन्दराम शर्मा के अनुसार—'महाकाव्य एक ऐसी छन्दोबद्ध प्रबन्धात्मक रचना होती है, जिसमें विषय की व्यापकता और नायक की महानता के साथ साथ कथावस्तु की एक सूत्रता, छलकता हुआ रसप्रवाह वर्णन की विशदता, उदात्त भाषा-शैली, जीवन का यथासाध्य सर्वांगीण चित्रण और जातीय भावनाओं तथा संस्कृति की सुन्दर अभिव्यक्ति हो।"[2] प्रस्तुत परिभाषा में भी महाकाव्य के तत्वों पर ही विशेष बल दिया गया है। हिन्दी महाकाव्य के एक अन्य समीक्षक डा० श्यामनन्दन किशोर ने लिखा है कि—'महाकाव्य मर्मस्पर्शी घटनाओं पर आधारित एक कवि की ऐसी छन्दोबद्ध कृति है जिसमें मानव-जीवन की किसी ज्वलन्त समस्या का व्यापक प्रतिपादन, किसी महान् उद्देश्य की पूर्ति या जातीय संस्कृति के महाप्रवाह उद्भावन, उदात्त वर्णन शैली, व्यंजक भाषा पूर्ण रसात्मकता और उच्चकोटि के शिल्प विधान द्वारा किया जाता है और जिसका नायक किसी भी लिंग, जाति या वंश का होकर भी अपने गुणों से कवि के आदर्शों को मूर्तिमान करने वाला होता है।"[3]

हिन्दी महाकाव्य के शोध-कर्ताओं के अतिरिक्त हिन्दी के काव्य कर्ताओं (कवियों) ने भी हिन्दी महाकाव्य की परिभाषा निबद्ध करने का प्रयास किया है। कवि सम्राट हरिऔध जी ने पुरोहित प्रताप नारायण के 'नलनरेश' महाकाव्य की भूमिका में लिखा है कि— महाकाव्य की उचित परिभाषा यह हैं कि जिसमें वास्तव में महाकवित्व पाया जाय और जिसका एक ऐसा महदुद्देश्य हो जो देश जाति और समाज के भावों का दर्पण हो, जिसमें ऐसे विचारों और महान् कल्पनाओं का चित्रण हो, जो किसी लोक समूह के लिए कल्पद्रुम का काम दे सकें। हां उसके सर्ग अथवा अध्यायों की संख्या आठ या दस से अधिक अवश्य हो जिसमें वर्णित विषयों का उचित परिपाक ग्रन्थ में हो सके। किन्तु स्मरण रखना चाहिए कि कोई पच्चीस तीस सर्ग का ग्रन्थ ही क्यों न लिखे, यदि उसमें महाकाव्यत्व नहीं कवि कर्म नहीं तो इतना बड़ा ग्रन्थ होने पर भी वह महाकाव्य कहलाने योग्य न होगा। और, थोड़े ही सर्गों का ग्रन्थ क्यों न हो यदि उसमें व्यंजना के प्रधानता है, भावुकता उसमें छलकती मिलती है, महाकवि का कर्म देखा जाता हैं तो वह अवश्य ही महाकाव्य कहा जा सकेगा क्योंकि ग्रन्थ का महत्व ही उसकी महत्ता का कारण हो सकता है।

---

१ हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ० १०८

२ हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य पृ० ४३

३ आधुनिक हिन्दी महाकाव्य का शिल्प विधान प० ६०

श्री हरिऔध ने महाकाव्य मे सग सख्या से अधिक महत्वपूर्ण भाव औदात्त और कवि कम माना है।[1]

तारकवध' महाकाव्य की 'भूमिका' मे कविवर सुमित्रानन्दन पन्त ने लिखा है कि—"सक्षेप म महाकाव्य मानव सभ्यता के सघप तथा सांस्कृतिक विकास का जीवन्त पवताकार दपण होता है जिसमे अपने मुख को देखकर मानवता अपने को पहचानने में समर्थ होती है।"[2] पन्त जी की परिभाषा मे महाकाव्य के सांस्कृतिक महत्व की ही चर्चा विशेष है। श्री रामधारीसिंह दिनकर न महाकाव्य की रचना के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है— 'महाकाव्य की रचना मनुष्य को विकल करने वाली अनेक भावधाराओं के बीच सामजस्य लाने का प्रयास है। महाकाव्य की रचना समय के परस्पर विरोधी प्रश्नो के समाधान की चेष्टा है। जब परम्परा से आने वाल महान् प्रश्नो और भावो की अनुभूति म परिवतन होने लगता है तथा इस परिवर्तित सस्कार को चित्रित करने के लिए ही महाकाव्य लिखे जाते हैं। विश्व के महाकाव्य मनुष्यता की प्रगति के माग म मील के पत्थरों के समान होते हैं, व व्यजित करते हैं कि मनुष्य किस युग म कहा तक प्रगति कर सका है।"[3] श्री तारादत्त हारीत कृत दमयन्ती' महाकाव्य की प्रस्तावना लिखते हुए महाकाव्य की उद्भावना के सम्बन्ध में कवि श्री गोपालदास नीरज ने लिखा है कि—"जब कवि का मानस चपक भाव के रस से इतना भर जाता है कि वह आसव उसमे से छलक छलक पडता है, तब गीत का जन्म होता है। लेकिन जब कवि की दृष्टि रूप से ऊपर उठकर लोकमानस की भूमि पर 'पर' से तादात्म्य करने का प्रयास करती है तब महाकाव्य का जन्म होता है। एक म अपनी रचना का लक्ष्य व्यक्ति स्वय होता है और दूसरी में उसका लक्ष्य समाज और ससार होता है। इसलिए जहा गीत मे तीव्र सवेदनशीलता होती है वहा प्रबन्धकाव्य म एक विशद व्यापकता के दशन हम होते हैं। महाकाव्य की महान् योजना के लिए एक स्पष्ट जीवन-दशन सूक्ष्म ज्ञान-दृष्टि अनभूतियो की एकतानता भावना, बुद्धि और कल्पना का समीचीन सन्तुलन आवश्यक होता है।'[4] श्री नीरज की ने उपयुक्त विवेचन मे गीतिकाव्य और महाकाव्य के तात्विक अन्तर को स्पष्ट करते हुए महाकाव्य-रचना के अनिवाय उपकरणों पर विचार किया है। यहाँ स्मरणीय है कि गीति तत्व आधुनिक महाकाव्य-रचना का एक अनिवाय अग बन गया है। आधुनिक युग के सामान्यत सभी महाकाव्यो मे गीता की सुन्दर योजना की गयी है। हिन्दी क इन कवियो के अतिरिक्त महाकाव्य की परिभाषा बडे सुन्दर शब्दों में महाकवि श्री रवीन्द्रनाथ टगोर ने भी दी है। वे

१ मलनरेश, प्रन्तदशन पृ० १
२ तारकवध, प्राक्कथन, पृ० १
३ दिनकर, अर्धनारीश्वर, प० ४६
४) प्रस्तावना प० १५७

लिखते हैं—' मन में जब एक महत् व्यक्ति का उदय होता है, सहसा जब एक महापुरुष कवि के कल्पना राज्य पर अधिकार आ जमाता है, मनुष्य चरित्र का उदार महत्त्व मनश्चक्षुओं के सामने अधिष्ठित होता है, तब उसके उन्नत भावों से उद्दीप्त होकर उस परम पुरुष की प्रतिमा प्रतिष्ठित करने के लिए कवि भाषा का मन्दिर निर्माण करते हैं। उस मन्दिर की भित्ति पृथ्वी के गम्भीर अन्तर्देश में रहती है और उसका शिखर मेघों को भेद कर आकाश में उठता है। उस मन्दिर में जो प्रतिमा प्रतिष्ठित होती है, उसके देवभाव से मुग्ध और पुण्य किरणों से अभिभूत होकर नाना दिग्देशों से आ आकर लोग उसे प्रणाम करते हैं। इसी को कहते हैं महाकाव्य।'[१] इस विवेचना से विदित होता है कि श्री टगोर ने महाकाव्य के लिए विराट चरित्र-कल्पना को प्रमुख अंग माना है।

इन अनेक विद्वानों एवं सुप्रसिद्ध कवियों की इन विभिन्न परिभाषाओं को देखने से प्रतीत होता है कि उन्होंने अपने अपने मतानुसार एक या एकाधिक महाकाव्य रचना के तत्त्वों को प्रमुखता दी है। इन सभी परिभाषाओं को दृष्टिगत करके महाकाव्य की एक व्यापक परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की जा सकती है "महाकाव्य वह महत् काव्य रूप है, जिसमें व्यापक कथानक विराट चरित्र कल्पना, गम्भीर अभिव्यंजना शैली विशिष्ट शिल्प विधि और मानवतावादी जीवन दृष्टि से उसका रचयिता युग जीवन के उन्नत बोध को सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर प्रतिफलित करता है। संक्षेप में श्रेष्ठ महाकाव्य की रचना मानवता के मंगलमय आख्यान और लोक मानस की चेतना के आकलन का सांस्कृतिक प्रयास होती है।'

सच तो यह है कि महाकाव्य की कोई सार्वकालीन एवं सर्वथापूर्ण परिभाषा नहीं दी जा सकती है क्योंकि युग जीवन की परिस्थितियों और सामाजिक परम्पराओं के अनुसार ही महाकाव्य के स्वरूप, लक्षण, तत्त्व और मान्यताओं में परिवर्तन होता रहा है। फिर भी, उपर्युक्त परिभाषा में महाकाव्य के स्वरूप को व्यापकतम परिवेश में प्रतिष्ठित करने का एक विनम्र प्रयास अवश्य किया गया है। इस परिभाषा में प्रमुख रूप से दो दृष्टियाँ अपनाई गयी हैं—परम्परा और प्रगति। जब तक प्राचीन महाकाव्यदर्शों का अनुसरण करते हुए भी, हम अपने युग के महाकाव्यों की प्रवृत्तियों को दृष्टिगत करके लक्षण निर्धारित नहीं करेंगे तब तक सिद्धान्त विवेचन की दृष्टि से पूर्ण न्याय नहीं हो सकेगा। दूसरे, इस तथ्य को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि वर्तमान महाकाव्य का विकास प्राचीन महाकाव्यों की परम्परा से ही हुआ है। इसी लिए इस परिभाषा में प्राचीन और नवीन दोनों ही महाकाव्यों के आदर्शों के समन्वय का प्रयत्न किया गया है।

१ मेघनादवध-महाकाव्य भूमिका पृ० १५७–५८

महाकाव्य के रूपविधायक तत्व

महाकाव्य के रूप विधायक तत्वो से अभिप्राय उसके रचनात्मक उपकरणो से है। महाकाव्य की परिभाषाओ म पाश्चात्य और पौर्वात्य तथा प्राचीन और नवीन आचार्यों ने रचना के विभिन्न उपकरणों का उल्लेख किया है। इनमे भी कौन से तत्व अनिवार्य है, कौन से अप्रमुख, इस सम्बन्ध मे भी पूर्ण मतक्य नही। कुछ आचार्यों ने कथा तत्व और चरित्र योजना को महत्व दिया तो कतिपय ने रचना शिल्प और उद्देश्य की महत्ता स्वीकार की है। कहने का अभिप्राय यह है कि महाकाव्य की रूप रचना का प्रश्न हिन्दी साहित्य जगत मे बडा विवादास्पद बना हुआ है। रूपविधायक तत्वो की अनिश्चितता के कारण यह कहना बडा कठिन रहा है कि कौन सी काव्यकृति महाकाव्य है, कौन सी नहीं। उदाहरणार्थ, डा० शम्भूनाथसिंह ने अपने शोध प्रबन्ध 'हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास' म 'पृथ्वीराज रासो' 'पदमावत', 'आल्हखण्ड', रामचरितमानस' और कामायनी' पाच ही ग्रथो को महाकाव्य माना है। डा० गोविन्दराम शर्मा ने 'हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य नामक शोध प्रबन्ध में इन पाचो के अतिरिक्त प्रियप्रवास, 'साकेत' 'कृष्णायन', वैदेहीवनवास' और 'साकेत सन्त' को भी महाकाव्य की सज्ञा प्रदान की है। हिन्दी महाकाव्य पर शोध करने वाले अन्य विद्वानों मे डा० प्रतिपालसिंह[1] डा० श्यामनन्दन किशोर,[2] डा० श्यामसुन्दर व्यास[3] आदि ने 'कुरुक्षेत्र', 'रावण' दत्यवश, 'एकलव्य', 'तारक वध', नूरजहाँ, विक्रमादित्य', सिद्धार्थ' 'वद्ध मान,' 'अगराज, 'पावती' शीर्षक काव्य ग्रन्थों को भी महाकाव्य स्वीकार किया है। इस प्रकार इन मान्यताओं म मतक्य के अभाव का कारण महाकाव्यालोचन के प्रतिमानो का अनिश्चित होना ही है। अस्तु, महाकाव्य की आलोचना और रचना दोनो ही दृष्टियों से महाकाव्य के रूपविधायक तत्वो का निश्चित किया जाना अपेक्षित है।

आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट समस्त लक्षणो का समाहार निम्नांकित चार शीर्षकों के अन्तगत किया जा सकता है, जिन्हे महाकाव्य रचना के रूपविधायक तत्व अभिधान भी दिया जा सकता है—

१ लोक प्रख्यात कथानक
२ उदात्त चरित्र सृष्टि
३ विशिष्ट रचना शिल्प
४ महत् उद्देश्य और जीवन दशन

---

१ बीसवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध के महाकाव्य
२ आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्प विधान
३ हिन्दी महाकाव्यों में नारी चित्रण।

१ लोक प्रख्यात कथानक

महाकाव्य रचना का सवप्रमुख और अनिवार्य तत्व कथानक है। कथातत्व के अभाव में महाकाव्य सजन की कल्पना भी नही की जा सकती। महाकाव्य के कथानक म दो विशेषताए अनिवायत होनी चाहिए। एक तो उसकी ख्याति और दूसरी सुसगठन। इसके अतिरिक्त एक सामान्य विशेषता विषय-वस्तु का व्यापक होना भी है। कथावस्तु के प्रमुख स्रोत होते हैं—इतिहास पुराण, समसामयिक घटना-चक्र और कवि कल्पना। महाकाव्यों के लिए प्रथम दो स्रोत ही उपयुक्त है। समसामयिक घटना चक्र पर आधृत कथावस्तु आवश्यक नही विख्यात भी हो और कवि-कल्पना का समावेश तो प्रत्येक प्रकार की कथा वस्तु म होना ही है।

अधिकाश महाकाव्यों की कथावस्तु का चयन इतिहास-पुराण से ही किया गया है क्योंकि इतिहास-पुराण के कथानक इतने लोक प्रख्यात है कि पाठक सहज ही हृदयगम कर लेता है। कथानक के स्रोत की दृष्टि से भी पुराणो का अन्यतम स्थान है। पुराणों मे भारतीय जीवन-चेतना और सस्कृति के अपूर्व तत्त्व विद्यमान है। पुराणो की कथाओ मे जीवन को प्रेरणा प्रदान करने वाली असख्य घटनाए भरी हुई है। यही कारण है कि हिन्दी के महाकाव्यकारो ने पुराण-ग्रन्थो को महाकाव्य-वस्तु का अक्षय भण्डार माना है। हमारे युग के अधिकाश महाकाव्या की विषय-वस्तु का सकलन पुराणो से ही किया गया है।[1] अस्तु, पुराणो की इस दृष्टि से महत्ता स्पष्ट ही है। हिन्दी म ही नहीं, विश्व के सुप्रसिद्ध प्राचीन महाकाव्यो मे भी पौराणिक और निजधरी आख्यानो (Myths & Legends) को ही कथानक के रूप मे ग्रहण किया गया है। वास्तव मे महाकाव्यकार की कल्पना शक्ति इतनी प्रबल और विराट होनी चाहिये कि वह पुराणा को जीर्ण-शीर्ण कथाओं को प्राणवान बना सके तथा उन्ह युग जीवन के साच म ढालकर प्रस्तुत कर सके। पौराणिक कथाओ के पुनराख्यान का कोई सामथ्य या महत्त्व नहीं, यदि वे समसामयिक जीवन चतना का प्रभावित करने की क्षमता से शून्य हो।

---

१ प्रियप्रवास, साकेत कामायनी वदेही वनवास, कृष्णायन साकेतसन्त दत्यवश, नलनरेश, अगराज, जय भारत, पावती, रश्मिरथी एकलव्य, तारकवध, सेनापति-कण कुरुक्षेत्र दमयन्ती, उवशी, सारथी, अनग रामराज्य प्रिय मिलन, कैकेयी श्रीराम चन्द्रोदय रामचरित चिन्तामणि, कृष्णचरितमानस आदि।

महाकाव्य-वस्तु का सुसगठित होना भी अनिवार्य है। इसके अभाव में महाकाव्य के प्रबन्धत्व में बाधा पडती है। महाकाव्य-वस्तु के सगठित स्वरूप के लिए आचार्यों ने सर्गों का विधान किया है। साथ ही नाटकीय सन्धियों के निवाह का भी उल्लेख किया है। सधियो की योजना से विषय-वस्तु का विकास व्यवस्थित ढग से होता है। सन्धियों के अतिरिक्त महाकाव्य–वस्तु में घटनाओं की अन्विति और कार्य-व्यापारों की सुसम्बद्धता भी होनी चाहिए।

महाकाव्य के कथानक का व्यापक होना भी आवश्यक है। महाकाव्य में सम्पूर्ण जीवन की अभिव्यक्ति होती है। यह तभी सम्भव है जब कथानक व्यापक एव पूर्ण हो। उसमे समग्र जीवन को व्यजित करने की भी क्षमता होनी चाहिए। महाकाव्य का कथानक जातीय जीवन और समूह चेतना को स कार करने की शक्ति और क्षमता को सधारण कर सके इसी मे महाकाव्यकार के कथा-सयोजन–कौशल को देखा जा सकता है। सक्षेप में लोकप्रसिद्ध, सुसगठन और व्यापकता महाकाव्य की कथावस्तु की प्रमुख विशेषताए कही जा सकती हैं।

२ उदात्त चरित्र सृष्टि

महाकाव्य रचना का दूसरा प्रमुख तत्व चरित्र सृष्टि है। किसी भी कथा मे अच्छे-बुरे सभी प्रकार के पात्र होते हैं। महाकाव्यकार का दायित्व है कि वह असद् पात्रों पर सद्पात्रों की विजय का प्रदर्शन करे। किन्तु इस प्रदर्शन के लिए उसे असद् प्रवृत्तियों वाले पात्रों की सदैव हत्या या वध ही नहीं करवाना चाहिए वरन् सद्पात्रों के उच्च व्यावहारिक आदर्शों की प्रेरणा असद् कोटि के पात्रों को ग्रहण करानी चाहिए। इस प्रक्रिया में पात्रों का चरित्राकन मनोवैज्ञानिक एव स्वाभाविक ढग से ही होना चाहिए। पात्रो के चरित्र–विश्लेषण में महाकाव्यकार की दृष्टि निरपेक्ष अर्थात् पूर्वाग्रह मुक्त होनी चाहिए। उसे पात्रों के कार्यों एव चारित्रिक विशेषताओं के आधार पर उनके कृतित्व एव व्यक्तित्व का मूल्याकन करना चाहिए। विशेषकर नायक के सम्बन्ध में महाकाव्य के रचयिता का दृष्टिकोण निस्पृह होना चाहिए।

महाकाव्य की मुख्य कथा (आधिकारिक वस्तु) से सम्बन्धित पात्रों में प्रमुख पात्र नायक होता है। काव्य का कार्य-व्यापार नायक द्वारा ही प्रचालित होता है। अत नायक के व्यक्तित्व और कृतित्व में जातीय जीवन के आदर्शों की प्रत्यापना के लिए सघपरत रहने की क्षमता और शक्ति होनी चाहिए। किन्तु इस कार्य के लिए आवश्यक नहीं कि वह उच्चकुलीन, सद्वशीय धीरोदात्त और दैवीय गुणों से सम्पन्न हो। वर्तमान युग की काव्यधारा का मूल स्वर मानवतावादी जीवनादर्शों की

स्वीकृति और स्थापना है। अत मानवोचित चारित्रिक दुर्बलताए नायक में भी हो सकती है और इनके कारण ही किसी पात्र को नायकत्व के पद से वंचित नही किया जा सकता है। सबसे बड़ी बात नायक का प्रयास महान् होना चाहिए। कार्यों से ही महानता अर्जित की जाती है। आज के अधिकांश महाकाव्य नायिका प्रधान भी हैं, अत पुरुष पात्र ही नायकत्व के एकाधिकारी नहीं हैं। अस्तु, महाकाव्य के नायक के लिए निम्नांकित बातें आवश्यक हैं–

(अ) मानवीय चरित्र।

(आ) स्त्री और पुरुष दोनों ही नायक पद पर समासीन हो सकते हैं।

(इ) महान् लक्ष्य की सिद्धि के लिए प्रयत्नशील।

(ई) जातीय जीवनादर्शों का प्रतिष्ठाता।

समष्टि रूप में चरित्र विश्लेषण करते समय महाकाव्यकार की दृष्टि मानव-जीवन के समग्र मूल्यांकन की ओर होनी चाहिए। मानवीय व्यक्तित्व के महान् से महान् स्वरूप की परिकल्पना नायक के चरित्र मे साकार की जानी चाहिए।

३ विशिष्ट रचना शिल्प

यों तो प्रत्येक साहित्यिक रचना का निश्चित शिल्प होता है जिसके आधार पर उसे आकार प्रकार प्रदान किया जाता है। किन्तु महाकाव्य सदृश्य सर्वोपरि काव्य रूप के शिल्प म विशिष्टता लाने के लिए उसके रचयिता को कुछ नियमो का अनुपालन करना ही चाहिए। नियमो के अनुपालन स अभिप्राय यह है कि महाकाव्य कार को महाकाव्य के स्वरूप विधायक उपकरणों का सयोजन विशष विधि से करना चाहिए। रचना शिल्प के दो पक्ष हैं अन्तरग और बहिरग।

महाकाव्य के अन्तरग का निर्माण रसात्मकता द्वारा होता है। बहिरग के निर्माण म भाषा शली छन्द, वणन एव चित्रण आदि योगदान करते हैं।

बहिरग के उपकरण

(अ) वस्तु-वणन–महाकाव्य म वस्तु-वणन वविध्यपूण होना चाहिए। महाकाव्य में युग जीवन का समग्र चित्र अकित रहता है अत जीवन की अनेकरूपता की व्यजना विविध वणनों द्वारा ही सम्पन्न हो सकती है। प्रकृति के विविध रूपों का कलात्मक वणन और नाना भावों की मनोरम झाँकियों की अभिव्यक्ति ही महाकाव्यकार क वणन कौशल को व्यक्त करते हैं। काव्याचार्यों ने महाकाव्य में

में वस्तु-वर्णन-व्यापारों की लम्बी सूचियों का उल्लेख इसी दृष्टि से किया है। प्रकृति और मानव का अनादि सम्बन्ध रहा है। परिस्थितियों के अनुरूप दोनों के सम्बन्धों में भी परिवर्तन का क्रम गतिमान रहा है। इसीलिए महाकाव्य में मानव और प्रकृति के मिलन और संघर्ष तथा परिणाम और उपलब्धियों का वर्णन रहता है। इसके अतिरिक्त विषय वस्तु के इतिवृत्तात्मक स्थलों की रुक्षता को दूर करने के लिए भी भावपूर्ण, मनोरम एवं मार्मिक प्रकृति दृश्यों की योजना अपेक्षित होती है।

(आ) कल्पना शक्ति—महाकाव्य के कथा स्रोतों का उल्लेख करते हुए कहा जा चुका है कि कथानक के प्रमुख स्रोत इतिहास-पुराण हैं। महाकाव्यकार का कर्त्तव्य और कौशल इस बात में निहित है कि वह इतिहास पुराण के पुराख्यानों और जीर्ण शीर्ण कथा-स्रोतों को कल्पना शक्ति के प्रयोग द्वारा दीप्तिमान करके युग, जीवन और समाज के तात्कालिक परिसन्दर्भों में प्रस्तुत करे। कथानक के अतिरिक्त चरित्र-योजना, शिल्प विधान और उद्देश्य सिद्धि में भी कल्पना शक्ति का योगदान कम महत्त्वपूर्ण नहीं होता। सत्य तो यह है कि प्रौढ कवि-कल्पना ही महाकाव्य को जन्म दे सकती है।

मार्मिक प्रसंगों की सृष्टि—महाकाव्य-वस्तु के विशाल कलेवर में मार्मिक प्रसंगों की अवतारणा पाठक को सरसता प्रदान करती है। इनकी सृष्टि द्वारा ही महाकाव्य एक प्रभावपूर्ण रचना बनती है। महाकाव्यकार को घटनाओं के चयन में ऐसे स्थलों को महत्त्व देना चाहिए जो अपनी प्रभाव क्षमता के कारण रागात्मक वृत्तियों को जाग्रत एवं उद्दीप्त कर सकें।

(ई) गरिमापूर्ण भाषा-शैली—महाकाव्य की शैली का स्वरूप अन्य काव्यरूपों की अपेक्षा विशिष्ट और गरिमापूर्ण होता है। गुण रीति, अलंकार शब्द शक्तियां, ध्वनि आदि शैली विधान के उपकरण हैं, किन्तु इनका सम्बन्ध शैली के बाह्यरूप से है। शैली की व्यापकता और गम्भीरता (प्रौढता) उसकी अन्तरात्मा में निहित है। काव्य चेतना की प्रबलता का प्रमाण सरल भाषा और सामान्य अलंकृति एवं गम्भीर व्यंजना द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है। शैली के माध्यम से कवि के व्यक्तित्व की भी अभिव्यक्ति होती है इस गुण को साकार करने के लिए भाषा-शैली में यत्नसाध्य अलंकरण जटिल शब्द समूह और कृत्रिमता अपेक्षित नहीं वरन् थोड़े में बहुत कहने की सरल शब्दावलि में गम्भीर व्यंजना की तथा चेतना प्रभाव को व्यक्त करने की क्षमता होनी चाहिए। महाकवियों की शैली में यह सामर्थ्य हुआ करती है। महाकाव्य का सबसे बड़ा गुण सम्प्रेषणीयता (Communicability) तथा प्रसंग-गमत्व होना चाहिए। महाकाव्यकार की शैली के स्वरूप का निर्माण श्रमसाध्य या प्रयत्नपूर्ण न होकर उसकी सुदीर्घ काव्य-साधना का परिणाम होता है।

(उ) छन्द विधान—छन्दबद्धता महाकाव्य के लिए अनिवार्य है। काव्यात्मक औदात्त के लिए भी छन्द विधान अपेक्षित है। संस्कृत के आचार्यों ने तो सर्गांत मे छन्द-परिवर्तन के नियम का विधान भी किया है। यद्यपि इस नियम का कोई विशेष महत्व नहीं और न ही आधुनिक महाकाव्यों म इस नियम का अनुपालन ही किया जाता है। तो भी छन्द-वैविध्य से पाठक की मनोवृत्ति का रमण तथा कवि कौशल का परिचय अवश्य मिलता है।

(ऊ) सर्ग योजना—प्रबन्धत्व के सफल निर्वाह के लिए सर्ग-योजना अनिवार्य है। कथावस्तु के सम्यक संयोजन और विभाजन के लिए भी सर्ग योजना अपेक्षित है। कथानक का विभाजन हर स्थिति मे आवश्यक है। यद्यपि यह आवश्यक नही कि 'सर्ग' ही नाम दिया जाय। कथावस्तु का विभाजन समयो, काण्डों, पर्वों प्रकाशों या अन्य शीर्षकों से भी हो सकता है। सर्गों की संख्या के सम्बन्ध में भी कोई निश्चित मत नहीं है। प्राचीन आचार्यों ने महाकाव्य में आठ की संख्या कम। मान्यता दी है, किन्तु आज के महाकाव्यो मे सर्गों की संख्या ६, ७ २५ इत्यादि भी मिलती है।

अन्तरंग पक्ष

रसात्मकता—भारतीय साहित्यशास्त्र मे रस को काव्य की आत्मा माना गया है। रस की स्थिति प्रत्येक काव्य को सत्ता पाने वाली रचना में अनिवार्यत होती है। महाकाव्य के विशाल कलेवर म रस का वेगवान अमित प्रवाह होना चाहिए। रसात्मकता महाकाव्य के अन्तरंग का निर्माण करती है। प्राचीन काव्याचार्यों ने महाकाव्य में वीर शृङ्गार और शान्त रसों म से किसी एक की प्रधानता एवं अन्य रसों की सम्यक योजना का उल्लेख किया है किन्तु आज यह आवश्यक नहीं माना जाता। कोई भी रस प्रधान हो सकता है। वर्तमान युग म करुण रस प्रधान अनेक महाकाव्य मिलते हैं।

रसानुभूति महाकाव्य के पाठक के हृदय म भावोत्कर्ष या महत् प्रभाव की जनक होती है। मानव मात्र में मूल मनोभाव और संवेदनाएं एक सी हैं। उन भावों को उच्च और उदार बनाने के लिए उन्हें जीवन की विस्तृत भूमिका म अवतरित कराना महाकाव्यकार की प्रतिभा का द्योतक होता है। इसके अतिरिक्त पात्रों के क्रिया व्यापारों और घटना प्रवाहों से अनुभूति का तादात्म्य रस की भूमिका पर ही हो सकता है। इतिवृत्तात्मक विरसता भी रस प्रवाह से ही दूर होता है। भाव चित्रण भी रसात्मकता द्वारा ही सम्भव है।

४ महत् उद्देश्य और जीवन-दर्शन

महाकाव्य महत् उद्देश्य और जीवन-दर्शन से अनुप्राणित रचना होती है। भारतीय काव्याचार्यों ने महाकाव्य का उद्देश्य चतुर्वर्ग फलप्राप्ति अर्थात् धर्म, अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि तथा रसात्मकता माना है। किन्तु वर्तमान युग-जीवन के सन्दर्भ में मात्र इन्हें ही महाकाव्य का लक्ष्य स्वीकार नहीं किया जा सकता है। महत् उद्देश्य से अभिप्राय महाकाव्य सृजन के लिए रचयिता की अन्तरात्मा में किसी महान् प्रेरणा का आविर्भाव भी है। प्रेरणा का स्रोत जीवन की कोई भी घटना, परिस्थिति अथवा वस्तु हो सकती है किन्तु कवि का कौशल उस प्रेरणा प्रभाव को विश्व व्यापी परिप्रेक्ष्य में रूपायित करने में है। आज की प्रत्येक काव्य रचना सोद्देश्य है। आज यह मान्यता बलवती है कि काव्य रचना लेखक के लिए आत्म-तोषी या स्वांतः सुखाय न होकर जाति समाज और विश्व-जीवन की मन तुष्टि के लिए होनी चाहिए। डा० माता प्रसाद गुप्त का यह कथन प्रस्तुत सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि—'मानवता को अशक्ति से शक्ति, अशान्ति से शान्ति और नीचे से ऊंचे ले जाना ही वस्तुतः महाकाव्य के अन्य लक्षणों की अपेक्षा सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्षण माना जा सकता है। इसी में उसकी वास्तविक महानता होनी चाहिए।"[1] अस्तु !

महाकाव्य के उद्देश्य की महानता और उसकी सिद्धि के लिए आवश्यक है कि महाकाव्य कही जाने वाली प्रत्येक रचना में—

(अ) मानवतावादी जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा हो,
(ब) युगीन जीवनादर्शों की स्थापना हो,
(स) रचना का सांस्कृतिक उन्नयन में योगदान हो,
(द) उन्नत विचार दर्शन (जीवन-दर्शन) हो,
(य) संजीवनी शक्ति प्रदान करने की क्षमता हो।

(अ) मानवतावादी जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा—प्रत्येक युग और काल के काव्य-सृजन का साफल्य मानवता के मंगल विधान में निहित है। मानव-जीवन के चिरंतन मूल्यों और शाश्वत सत्यों की व्यंजना महाकाव्य-रचना की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। विश्व भर के महाकाव्यों में सदैव से ही किसी न किसी रूप में मानवता-वादी जीवन-दृष्टि की प्रस्थापना का आग्रह रहा है। मानव-जीवन के स्थायी मूल्य प्रेम, करुणा, क्षमा, शील श्रद्धा सत्व, नय सत्य, अहिंसा आदि रहे हैं। इन्हें आध्यात्मिकता की संकुचित सीमा में नहीं बांधा जा सकता है। मानव-जीवन के

१ तुलसीदास तृतीय संस्करण, पृ० ३७०

भविष्य को चित्रित करते समय भी इन मूल्यों की प्रतिष्ठा महाकाव्यकार का लक्ष्य होना चाहिए। क्योंकि व्यक्ति, जीवन के विराट संघर्ष में इन मूल्यों को भूल ही नहीं जाता वरन् परिस्थिति-द्वन्द्व में इनकी उपेक्षा भी करता है। इनकी उपेक्षा का परिणाम मानव जाति और समाज की अवनति और अन्तत विनाश होता है। महाकाव्यकार का दृष्टिकोण इन जीवन-मूल्यों की सत्ता सिद्ध करना है। तभी महाकाव्य विश्व जनीन और सार्वभौम हो सकते है। मानव मात्र की धरोहर बनने के लिए महाकाव्यो को जाति समाज और राष्ट्र की सीमाओ का भी अतिक्रमण करना पड़ता है अर्थात् मानवतावाद की प्रतिष्ठा के लिए जातीय हितों की बलि भी देनी पड़ती है।

(ब) युगीन जीवनादर्शों की स्थापना—महाकाव्य युगों की देन होते है। उनमे कवियो की साधना, जातीय जीवन की विशेषताए और मानवता की की प्रगति व्यजित होती है। प्रत्येक युग मे जीवन के आदर्श स्थापित होते हैं। कभी वीरपूजा का युग होता है तो कभी भक्ति-साधना जीवन का सर्वस्व बनती है। कभी राष्ट्र सेवा, परमार्थ, समाज-कल्याण, प्रेममय-जीवन, समानता और सद्‌व्यवहार जीवन के आदर्श स्वीकृत किये जाते हैं। महाकाव्यों में इन जीवनादर्शों की प्रतिष्ठा होनी चाहिए। इनके साथ ही कुछ शाश्वत सत्य एव चिरन्तन मूल्य होते हैं जो प्रत्येक युग मे मानव-जीवन को परिचालित करते हैं। अत महाकाव्यकार को चिरतन जीवन मूल्यो के परिपार्श्व म ही युगीन जीवनादर्शो की प्रतिष्ठा करने चाहिए। हमारे युग की प्रगति अतीत के प्रयत्नो का परिणाम तथा अनागत के प्रति आस्था का प्रतीक होनी चाहिए। महाकाव्य को विश्व वाङमय की अमूल्य निधि हम तभी कह सकते हैं जब उनमें जातीय ही नही वरन् विश्व जीवन के आदर्शों को साकार करने की क्षमता हो। आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों मे इस प्रवृति का समुचित विकास हुआ है।

(स) सास्कृतिक उन्नयन मे योगदान—'विज्ञान युग मे काव्य-लेखन एक सास्कृतिक प्रयास है।' इस कथन की सत्यता महाकाव्यवत् काव्य रूप की रचना द्वारा ही सिद्ध होती है। महाकाव्यों में जाति, समाज, राष्ट्र और विश्व के सास्कृतिक उत्कर्ष अपकर्ष की एक विराट भूमिका उपस्थित की जाती है। महाकाव्य एक सीमा तक देश का सास्कृतिक इतिहास भी प्रस्तुत करते हैं। क्योकि महाकाव्यों में समग्र जीवन का चित्रण करते समय समाज व्यवस्था का निरूपण, सभ्यता के विकास का वर्णन, राष्ट्रीय मर्यादाओ का स्वरूपाकन तथा पर्वो और परम्पराओं का आख्यान एक प्रकार से देश की सास्कृतिक धरोहर ही हैं। महाकाव्य के पात्रो के सस्कार जातीय एव राष्ट्रीय आचरण का प्रतिनिधित्व करते हैं। अस्तु स्पष्ट है कि महाकाव्य की रचना द्वारा जातीय एव देशीय जीवन के सास्कृतिक उन्नयन में महत्वपूर्ण योगदान होता है।

(द) उन्नत विचार-दर्शन—विचार-दर्शन से अभिप्राय जीवन-दर्शन है। जीवन-दर्शन का सम्बन्ध कवि के उस दृष्टिकोण से है जिसके आधार पर वह जीवनगत प्रश्नों और समस्याओं पर विचार करता है। जीवन दर्शन का निर्माण करने वाले तत्त्व है अनुभव, चिन्तन और साधना। महाकाव्य म जिस जीवन-दर्शन की प्रस्थापना होती है वह मूलतः कवि की वैयक्तिक अनुभूति चिन्तन और साधना की सामाजिक परिणति है। महाकाव्यकार को 'समय के परस्पर विरोधी प्रश्नों का समाधान' प्रस्तुत करने के लिए जीवन-दृष्टि निर्धारित करनी ही पड़ती है। इस जीवन-दृष्टि को ही जीवन दर्शन अभिधान दिया गया है। इस दृष्टि के दो रूप हैं—एक परम्परागत और दूसरा प्रगतिशील। महाकाव्य मे दोनो ही अपेक्षित हैं।

परम्परागत जीवन-दृष्टि का आधार लेकर महाकाव्यकार कृति म दार्शनिक प्रवृत्तियों और मान्यताओं के परम्परागत स्वरूप को प्रस्तुत करता है जसे ईश्वर, माया जीव, मोक्ष, नियति, काल, भक्ति, वैराग्य, ज्ञान धर्म आदि।

प्रगतिशील जीवन-दृष्टि का आधार ग्रहण कर वह परम्परागत दार्शनिक मान्यताओं की युग सापेक्ष व्याख्या और युगधर्म का निरूपण सामयिक सन्दर्भों मे प्रस्तुत करता है। जसे समानता, स्वतन्त्रता, बन्धुत्वभाव, कर्तव्यपरायणता, परमार्थ, आस्था, विश्वास, सहयोग, मानव के मंगल हेतु साधना के महत्व का निरूपण आदि।

आज के युग (विज्ञान युग) की काव्य रचना में बुद्धि तत्व की प्रधानता होती है। आज का काव्यकार मात्र भावप्रवण प्राणी न होकर बुद्धिजीवी कलाकार होता है। उसका लक्ष्य रसानुभूति ही नही वरन् वैचारिक उपलब्धि भी है। अस्तु महाकाव्य में इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक उन्नत विचारदर्शन की आयोजना होती है।

(प) सञ्जीवनी शक्ति प्रदान करने की क्षमता—महाकाव्य की रचना का कोई महत्व नहीं यदि उसमें जीवन को अदम्य उत्साह और आशाप्रद सन्देश प्रसारण की सञ्जीवनी शक्ति न हो। जीवन की परिस्थिति, द्वन्द्व सामाजिक परिवर्तनो, राष्ट्रीय जीवन के सम विषम प्रभावों एव विश्व जीवन की विभिन्न प्रतिक्रियाओं को व्यक्त करने की सामर्थ्य महाकाव्य मे होनी चाहिए। महाकाव्यो मे जिस शक्ति, स्फूर्ति उत्साह और प्रेरणा को हम पाते हैं वह तत्वतः व्यक्ति समाज और राष्ट्र की सामूहिक चेतना का प्रतिनिधि रूप है। इसीलिए महाकाव्य व्यक्ति की सम्पत्ति न होकर राष्ट्रीय धरोहर और विश्वनिधि होते हैं। तुलसी का रामचरितमानस' स्वान्तः सुखाय होते हुए भी जातीय गौरव और राष्ट्रीय गरिमा का काव्य है। उसमे वह सञ्जीवनी शक्ति है जिसके कारण शताब्दियों से वह महाकाव्य भारतीय जनता का

क ठहार हो रहा है। अनेक स्वदेशी विदेशी भाषाओं में अनूदित हो जाने पर उसका क्षेत्र और महत्व व्यापक होता जा रहा है। महाकाव्यों की यही सजीवनी शक्ति उन्हें युगों तक जीवित रखती है। वे समय की घूर्णन गति से काल कवलित तो क्या धूल-धूसरित भी नहीं होते। महाकाव्यों की इसी अमोघ शक्ति को सजीवनी शक्ति कहते हैं।

इस प्रकार लोक प्रख्यात कथानक, उदात्त चरित्र सृष्टि विशिष्ट रचना शिल्प और महत् उद्देश्य एवं जीवन दर्शन महाकाव्य रचना के स्थायी एवं अनिवार्य तत्त्व हैं। इन्हीं तत्त्वों के आधार पर किसी भी महाकाव्य कही जाने वाली कृति की समालोचना भी की जा सकती है। अस्तु इन्हें हम महाकाव्य सृजन के प्रतिमान और महाकाव्यालोचन के मानदण्ड दोनों ही कह सकते हैं।

महाकाव्य रचना और पौराणिक कथानक

भारतीय वाङमय में वेदों को शीर्ष स्थान प्राप्त है। वेदों के उपरान्त पुराण ही लोकप्रिय एवं उपादेय सामग्री से सम्पन्न ज्ञान राशि है। भारतीय संस्कृति और साहित्य की पुराण ग्रंथ चिरन्तन निधि हैं। भारतीय मनीषा के विविधोन्मुखी चिन्तन और चेतना की जितनी सुन्दर सुव्यवस्थित, सम्पूर्ण और सवग्राह्य अभिव्यक्ति पुराण साहित्य में प्राप्य है, उतनी अन्यत्र दुर्लभ है। इस देश के जन जीवन के सांस्कृतिक अभ्युदय का जितना भव्य विराट् और विशद् चित्र अंकित करने में पुराण लेखक सफल हुए हैं उतना भारतीय वाङमय के किसी रूप का कोई लेखक नहीं। पुराण ग्रंथ ज्ञान राशि के अनन्त स्रोत हैं सब तो क्या, एक एक पुराण की विद्वानों ने विश्व कोष से तुलना की है। पं० बल्देव उपाध्याय के शब्दों में—'अग्नि पुराण को यदि समस्त भारतीय विद्याओं का विश्व कोष कहें तो किसी प्रकार की अत्युक्ति न होगी।'[1] पुराणकार ने मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष को विवेच्य विषय बनाया है। पुराणों में ईश्वरीय गुणगान राजकुल यशोगान प्रकृति विज्ञान और अलौकिक आख्यान के होते हुए भी, उनका मूल स्वर मानवतावादी है क्योंकि सभी का लक्ष्य मानव की मगल कामना है। मानव जीवन के ही व्यापक विकास की मूल गाथा समस्त पुराणों में अन्तर्व्याप्त है। श्री रामप्रसाद त्रिपाठी के शब्दों में" मानव जीवन को हर पहलू से सवारने में पुराणों ने बहुत बडा योगदान दिया है। राष्ट्रीय, सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना के प्रतीक पुराण मुमर्ष समाज को प्रेरणा शक्ति शिथिल एवं असंयत राष्ट्र को जागृति प्रदान करने वाले सतत प्रीति शिखावाही स्रोत है। इनमें हमारे जाति जीवन का उद त उत्साह निहित है।'[2]

---

१ पं० बल्देव उपाध्याय, प्राच्य संस्कृति के मूलाधार, पृ० १९६।

२ रामप्रसाद त्रिपाठी वायु पुराण, आमुख पृ० ५, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग।

हि॰ी के साहित्य स्रष्टाओ ने आरम्भ से ही इस अमूल्य ज्ञान सामग्री का समुचित प्रयोग किया है । हिन्दी साहित्य की सभी प्रमुख विधाओ (यथा कहानी, उपन्यास नाटक, एकाकी का॰य आदि) मे पुराणो के कथानको विचार-परम्पराओ और शैलियों का प्रयोग हुआ है । काव्य के विभिन्न रूपो म महाका॰य का प्रमुख स्थान है । गुरुत्व और गम्भीय की दृष्टि से तो शीप । महाका य मे युग जीवन की चेतना का विराट चित्र और उच्च उद्घोष होता है । महाकाव्यकार महती काव्य प्रतिभा से सम्पन्न कलाकार होता है । उसके शब्दनाद मे समाज के सास्कृतिक सृजन और समुन्नयन के गीत की स्वर लहरी होती है वह काव्य का महान् प्रणेता होता है । उसकी रचना महा की सज्ञा से सबोधित की जाती है । प्रस्तुत प्रसग म इस का॰य रूप (महाका॰य) के सृजन म पौराणिक इतिवृत्त के अनुदान पर विचार अभीप्सित है ।

हम इस तथ्य का लक्ष्यीभूत करके चल रहे हैं कि महाकाव्य का विधायक अपने का॰य की सामग्री का सकलन ज्ञानराशि के अथाह सागर की जीवन्त और चेतना स्पदित उर्मियो से करता है । महाका॰य प्रबन्धकाव्य का वह भेद है जिस मे अनिवायत कथाक्रम होता है । कथानक महाकाव्य का अपरिहाय अ ग या प्रमुख उपकरण है । महाका॰यो के कथानकों की प्राप्ति के अक्षय भण्डार पुराण-ग्र॰थ रहे हैं । हि॰दी ही नही अपितु भारतीय और विश्व महाका॰य का इस दृष्टि से अध्ययन करने पर यह मानने को बाध्य होना पडता है कि उनका वृहद् अ श पौराणिक कथानक और निजरी आख्यानों (Myths & Legends) पर अवलम्बित है सभी साहित्यों के आदि और प्राचीन महाकाव्यो पर तो यह बात और भी अधिक लागू होती है । यदि हम अपने अध्ययन क्रम की परिधि समिति करके भी विचार करें अर्थात् सस्कृत प्राकत अपभ्र श आदि भाषाओ के महाकाव्यो का ही कथानक की दृष्टि से पर्यालोचन करें तो भी हम पौराणिक प्रभाव स्वीकार करना पडेगा । इसका एक कारण यह भी है कि पुराणों की कथाए महाका य वस्तु के लिए निर्दिष्ट सभी गुणो से सम्पन्न हैं । सस्कृत का॰यचार्यों द्वारा दिये गए महाकाव्य वस्तु विषयक सभी निर्देशो का इन पर सफल निर्वाह भी हो जाता है ।

हि॰दी के महाकाव्यकारो ने पुराणो के अखण्ड कथा भण्डार से सामग्री का संकलन किया हैं । पौराणिक कथा-वस्तु से सपृक्त महाकाव्यों मे कतिपय के नाम इस प्रकार है—रामचरितमानस, रामचन्द्रिका, रामचरित चिन्तामणि, प्रियप्रवास साकेत, कामायनी वदहीवनवास कृष्णायन, साकेत सत, दैत्यवश, रावण, पावती, रश्मिरथी, एकलव्य, कुरुक्षेत्र, अ गराज, उर्मिला, तारक वध, सेनापति कर्ण, नल नरेश उवशी आदि ।

इन महाकाव्यो में पौराणिक वस्तु को कही तो मूल रूप म, कही स्रोत रूप में और कही तन्तु रूप मे ग्रहण किया गया है। पौराणिक कथाओ की कुछ आध्यात्मक विशेषताए भी हैं। उदाहरण के लिए भ्रम-वमिथ्य, भय वचित्र्य आदि। पौराणिक कथाओ का साहित्यिक परीक्षण करने पर हम इन कथाओं के आध्यात्मिक भौतिक और ऐतिहासिक अर्थो के अतिरिक्त सांकेतिक प्रतीक, परम्परित और लोक विश्रुत अर्थ भी मिलते हैं। पौराणिक कथाओ को प्राय कपोल कल्पित, असगत और अतिरञ्जित कहकर तिरस्कृत किया जाता है किन्तु यह अल्पज्ञता का प्रमाण है। पौराणिक कथाओ के गम्भीर अध्ययन से उनके तात्विक अर्थ प्राप्त हुए है जो ज्ञाना र्जन और साहित्य सृजन दोनो दृष्टियो से महत्वपूर्ण हैं। प० रामप्रसाद त्रिपाठी ने वायु पुराण की भूमिका मे बताया है कि वायु पुराण क अन्तगत नहुष, ययाति तुवश, आदि राजाओ के वणन दोनो पक्ष मे अपना रहस्यपूर्ण स्थान रखते है। जब हम इन कथाओ पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करते हुए वदिक वर्णनों स तुलना करते है तो हमे यह राजा के बजाय आकाशीय पदाथ ही जान पडत हैं। वायु पुराण में नहुष के लडके का नाम ययाति था। उसकी रानी शत्र की कन्या थी। दूसरी रानी का नाम वषपर्वा था वैदिक आख्यान से सगति मिलाते हुए जब हम पौराणिक आख्यान का वज्ञानिक विश्लेषण करते है तो ययाति, शक्र की कन्या और वषपव भी आकाशीय पदाथ ही सिद्ध होते हैं।' [१] इसके अतिरिक्त पौराणिक कथाओं के सूक्ष्म अध्ययन पर इन कथाओ मे हम सत्य और कल्पना, यथाथ और आदश आदि साहित्यक कथा-तत्व भी पात हैं कथाओ मे प्राकृत और अप्राकृतचक्र तथा काय व्यापार सभी सप्रयोजन है। उदाहरण के लिए श्री त्रिपाठी ने समुद्रमथन की कथा का विश्लेषण करते हुए बताया है कि रूपी महासागर से ही निकने है। किसी उत्तम वस्तु की प्राप्ति म या आविष्कार मे शक्ति (असुर) और ज्ञान (सुर या सत्व) और रज या तम (असुर) के परस्पर सहयोग की आवश्यकता होती है। परन्तु उपयोग के समय सत्व और ज्ञान की ही आवश्यकता है अ यथा आसुरी शक्ति प्रबल होकर विश्व सहार कर देगी।' [२]

हिन्दी के महाका य लेखकों ने पुराणों से वस्तु ग्रहण करके उसम युगीन परिस्थितियो, समसामयिक वातावरण और तत्कालीन जीवनादर्शों के अनुरूप परिवतन तथा परिवद्ध न किया है। राम के ही कथानक को लीजिए—रामचरित मानस, रामचन्द्रिका, साकेतसन्त वदेहीवनवास रावण उर्मिला आदि काव्यो म एक ही कथा म तात्विक भिन्नता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने तो मानस के प्रारम्भ मे ही स्पष्टत कहा है नाना पुराण निगमागम सम्मत————'यही स्थिति

१ प० रामप्रसाद त्रिपाठी—वायुपुराण, भूमिका पृ० ६
२ वही, पृष्ठ १६

कृष्ण कथा के विकास के सम्बन्ध मे है। प्रियप्रवासकार के राधा-कृष्ण मूलरूप में पुराण ग्राह्य होते हुए भी समस्त पौराणिक कृष्ण कथाओं से भिन्न कवि की जीवन्त कल्पना शक्ति के ज्वलन्त (ज्वलत) प्रमाण हैं। अकेले कर्ण के चरित्र को लेकर आधुनिक युग के तीन काव्यों (रश्मिरथी, अगराज, सेनापति कर्ण) मे कथातत्त्व का भिन्नस्वरूप है। किन्तु 'महाभारत' के मूल कथानक को किसी भी कवि ने छुआ नहीं किया है। वास्तव मे इसी म कवि कर्म और कौशल निहित है।

सत्य तो यह है कि हिन्दी के महाकाव्य लेखकों ने पौराणिक कथानकों के जीर्ण शीर्ण ढाचों मे अपनी काव्य शक्ति से प्राणदान दिया है। उन कथानकों के अलौकिक और अनिरजित तत्त्वों का परिष्कार युग की आवश्यकताओं और परिस्थितियो के परिपार्श्व में किया है। यहा एक बात और कहनी है कि हमारे कवियो की दृष्टि प्राय प्रचलित कथानको पर ही अधिक अटकी रही है। राम-सीता और राधा कृष्ण आदि दैवी कथानको पर अत्यधिक लिखा जा चुका है। अभी पुराणों में असख्य अमूल्य कथा रत्न वतमान है जिनमें वतमान जीवन सघर्ष के लिए निश्चित निर्देशों का अनुसधान किया जा सकता है। इस दिशा मे कविवर दिनकर के प्रयास प्रशसनीय हैं। उनकी काव्यकृतियों मे रश्मिरथी, कुरुक्षेत्र उर्वशी आदि उपलब्धिया निश्चय ही हिन्दी की चिरन्तन निधि बन गयी है। उनमे गूढ जीवन सन्देश वतमान की सास्कृतिक परिस्थिति के अनुकूल है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हमारे मनस्वी साहित्य स्रष्टा और महाकाव्यकार पौराणिक कथाओं का अनुशीलन कर हिन्दी काव्य को नवीन उपलब्धिया प्रदान करायें। डा० देवराज के शब्दों मे— "काव्य सृजन एक सास्कृतिक प्रश्न है।' इस कथन की सत्यता का स्वरूप महाकाव्यों मे ही देखा जा सकता है। महाकाव्य के रचयिता से सास्कृतिक अभ्युत्थान की माग की जा सकती है। मेरी दृष्टि में पुराण भारतीय-सास्कृतिक वाङ्मय के अग हैं। उनके कथात्मक, वैचारिक और शिल्प सम्बन्धी विकास से हम हिन्दी महाकाव्य को सास्कृतिक साहित्य शृखला में जोडने का प्रयास मानेंगे।

स्वरूप विकास

हिन्दी महाकाव्य के उद्भव और विकास की आख्यायिका का सम्बन्ध भारतीय महाकाव्य परम्परा से है। भारतीय महाकाव्य का स्वरूप विकास विभिन्न युगों की साधना और सजीवनी शक्ति का परिणाम है। यद्यपि भारतीय महाकाव्य का प्राचीनतम लिखित रूप हम रामायण और महाभारत में मिलता है तथापि उस रूप के निर्मित होने में उससे पूर्व भी कुछ समय लगा होगा। वास्तव म महाकाव्यों का उदय मानव-सभ्यता की अल्प या मद विकसित अवस्था में हुआ है। इसलिए

महाकाव्य के स्वरूप विकास का सम्यक अध्ययन करने के लिए मानव सभ्यता के विकसनशील युगों के ऐतिहासिक संदर्भ ग्रहण करना नितांत अनिवार्य है। मनुष्य ने जब बर्बरता की अवस्था को पार करके संगठित रूप में रहना सीखा (रक्षा की दृष्टि से अन्य कारणों से) तो सर्वप्रथम कबीले बने। इन कबीलों का आधार जातियाँ थीं। इन कबीलों के सभी कार्य सामूहिक ढंग से हुआ करते थे। इन कबीलों समाजों की धार्मिक चेतना विभिन्न अवसरों पर नृत्यों और गीतों के रूप में अभिव्यक्त हुआ करती थी। आज भी पिछड़ी हुई जातियों में नृत्यगीत और गीतनृत्य की प्राचीन परम्पराएं प्रचलित हैं। इन्हीं नृत्यगीतों में आदिम काव्य के रूप का संधान किया जा सकता है। कबीला युग की अपनी विशेषताएं थीं जैसे इस युग में वीरों की पूजा होती थी क्योंकि शौर्य, साहस और पराक्रम ही तत्कालीन जीवनादर्श थे। यह कबीलों समाज शक्ति पूजक था। शक्तिशाली व्यक्ति ही इस कबीला जनसमाज के नायक होते थे। साहित्येतिहासों में इसे वीर युग (Heroic Age) अभिधान दिया गया है। इस प्रकार का युग संसार के प्रायः सभी देशों के इतिहास में मिलता है। प्रत्येक देश के आदिम काव्यों में वीरभावनाओं का ही उत्कर्ष दिखाई भी देता है। प्रारम्भिक महाकाव्यों की रचना का आधार भी वीरगाथाएं ही हैं। कालांतर से इन गाथाओं ने गाथा चक्रों (Cycles of Ballads) का रूप ग्रहण किया जिनसे महाकाव्य का प्रारम्भिक रूप निर्मित हुआ।

वीरगाथाओं में वीरों की प्रशंसा के गीत हुआ करते थे। विद्वानों का मत है कि प्राचीनकाल से ही भारतवर्ष में वीरों की स्तुतियां प्रचलित थीं। ऋग्वेदादि ग्रंथों में भी इन्द्र एवं अन्य शक्तिशाली देवों (वीरों) के कार्यों की प्रशंसा के गीत पाये जाते हैं जिनमें भारतीय महाकाव्य के मूल प्रतिपाद्य विषय की झलक देखी जा सकती है।[1] और यह सच है कि बहुत प्राचीनकाल से ही इस देश में महाकाव्यों की रचना हुआ करती थी। मैक्समूलर का मत है कि वीरों और देवताओं की प्रशंसा में गाये जाने वाले गीत भारत और अन्य प्रायः राष्ट्रों में बहुत प्राचीनकाल से ही प्रसिद्ध थे। इसलिए महाकाव्य के रूपानुसंधान के लिए वीरगीतों की खोज रामायण और महाभारत में ही नहीं अपितु वेदों में करनी चाहिए। अनेक वैदिक गीतों को महा

---

1 "Songs in celebrations of great heroes were current in India from very oldest time The deeds of Indra and other Gods and heroes were narrated and lauded in Rigveda in which we may trace the fore shadowings of Indian Epic poetry' Kokileshwar shastri A Brief History of Sanskrit Literature (Veidc and Classical), p 22

काव्य कहा जा सकता है[१] प्राचीनतम लिखित वाङ्मय का रूप आज वैदिक मानराशि के रूप म उपलब्ध है और वेदों मे महाकाव्य के प्रारम्भिक मूल रूप की उपलब्धि उसकी प्राचीनता की ही द्योतक है। भारतीय महाकाव्य की प्राचीनता का द्योतक वेद के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थ हो भी कौन सकता है ? मानव जाति न अपनी आदि अवस्था मे काव्य रचना किस प्रकार की, इसका लिखित प्रमाण आज उपलब्ध भी नही है। किन्तु जैसा प्रारम्भ म कहा गया है कि आज भी अविकसित (अद्ध-सभ्य या असभ्य) जातियो की रीतियो और परम्परओं के अध्ययन द्वारा तत्कालीन समाज की मनोवृत्तियो के बारे मे अनुमानाधारित तथ्यो को जाना जा सकता है, और इसी क्रम से वैज्ञानिक अध्ययन भी। आदिवासी जातियों की विभिन्न परम्परओं को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज म अन्धविश्वास बहुत होंगे। मनुष्य प्राकृतिक शक्तियो से भयभीत होकर उनकी उपासना करता होगा। इस उपासना में बलिदान की प्रथा मुख्य रही होगी। बलिदान के अवसर पर कबीलों के लोग एकत्रित होकर गीत गाकर और नृत्य करके अपने मनोभावों को अभिव्यक्ति देते होंगे। जादू, मन्त्र तन्त्र और टोने म इन लोगा का अधिक विश्वास रहा होगा। इस प्रकार मानव जाति के आदिम समाज के हृष उल्लास, आमोद प्रमोद की भावाभिव्यक्ति सामूहिक रूप मे नृत्य और गीत के रूप मे होती थी। डा॰ शम्भूनाथसिह ने महाकाव्य के विकास की प्रारम्भिक सामूहिक गीतो से लेकर अलकृत महाकाव्य तक छ स्थितिया बतलायी हैं। वे इस प्रकार है—

(१) सामहिक गीत नृत्य (Coral Music and Dance)
(२) आख्यान नृत्य गीत (Ballad Dance)
(३) आख्यान और गाथा (Lays and Ballad)
(४) गाथा चक्र (Cycles of Ballads)

---

१ 'This is not meant denial that the real epic poetry that is to say a mass of popular songs celebrating the power of exploits of Gods and heroes existed in very early periods in India, as well as among the other Aryan nations, but it shows that if it is existing, it is not in the Mahabharata and Ramayana, we have to look for these old songs but rather in veda itself In the collection of the vedic hymns there are some which may be called epic and may be compared with the shortest hymns ascribed to Homer -Max Muller, A History of Ancient Sanskrit Literature P 19

(५) प्रारम्भिक महाकाव्य (Epic of Growth)
(६) अलंकृत महाकाव्य (Epic of Art) ?

वैदिक साहित्य में धार्मिक मन्त्रों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी उपलब्ध हैं, जिनमें आख्यान का स्वरूप निहित है। इन्हें आख्यान सूक्त भी कहा जाता है। इन सूक्तों का रूप संवादात्मक और नाटकीय है। ऋग्वेद में 'इन्द्र सूक्त' के अन्तर्गत जो वर्णन मिलता है उसमें महाकाव्य के प्रारम्भिक लक्षण स्पष्ट रूप से मिल जाते हैं। ऐसे संवाद और आख्यान जब किसी प्रतिभाशाली कवि द्वारा एक साथ संग्रहीत कर दिये गये तो महाकाव्य को जन्म मिल गया। आगे चलकर महाभारत में संवाद के भीतर संवाद की जो शैली दिखायी देती है वह सम्भवतः इन्हीं वैदिक आख्यानों की प्रेरणा से विकसित हुई होगी।[2] इसके अतिरिक्त वेदों में कुछ ऐसी प्रशंसाएं भी मिलती हैं जिन्हें दानस्तुति, गाथा, नाराशंसी और कुन्तापसूक्त कहा जाता है, इन प्रशंसाओं में राजाओं की वीरता का वर्णन है। विन्टरनित्स आदि विद्वानों का मत है कि इन प्रशंसात्मक सूक्तों से ही महाकाव्य के रूप का भी प्रादुर्भाव हुआ।[3]

वेदों के अनन्तर पौराणिक काल में आकर आख्यानों ने कथाओं का रूप धारण किया। यद्यपि इन पौराणिक कथाओं की रचना में मूल रूप से निजधरी आख्यानों एवं परम्परागत अनुश्रुतियों आदि का भी योगदान रहा है, तो भी पौराणिक कथाओं में ऐतिहासिक तथ्य भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। पुराणों में भारतीय जीवन और समाज का बहुत व्यापक रूप से चित्रण किया गया है। वेदों के पश्चात् पुराण ही लोकप्रिय एवं उपादेय सामग्री से सम्पन्न ज्ञानराशि के ग्रन्थ हैं। पुराणों में भारतीय संस्कृति और साहित्य की चिरन्तन निधि सुरक्षित है। भारतीय मनीषा के व्यापक विस्तार और चेतना के सम्यक विकास का समृद्ध रूप पुराणों में ही प्राप्य है, जन जीवन की सांस्कृतिक चेतना के अभ्युदय और विकास का जितना भव्य विराट और महान् चित्र अंकित करने में पुराणकार सफल हुए हैं उतना भारतीय वाङ्मय के किसी रूप का कोई भी लेखक नहीं। पुराणों की महत्ता का मूल कारण उनका लोकग्राह्य होना है। पुराण सच्चे अर्थों में जनवादी साहित्य है क्योंकि उनकी भाषा, भाव, विचार-परम्परा, जीवन दर्शन, आदर्श एवं प्रतिपाद्य सभी का आधार तत्कालीन

---

१ हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ० ४।
२ डा० शकुन्तला दुबे काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास पृ० ४५।
३ "These songs in praise of man probably soon developed into epic poems of considerable length, i e heroic songs and into entire cycles of epicsongs entering around one hero '
M Winternitz A History of Indian Literature Vol p 314,

बनवादी प्रवृत्तियां और लोकप्रचलित परम्पराए हैं। पुराणों मे असख्य आख्यान हैं जो साहित्य सृष्टाओ को सृजनात्मक उपकरण प्रदान करते रहे हैं। पुराणों मे विषयों की व्यापकता इतनी अधिक है कि उसमे अन्विति का अभाव है। पुराणों की कथाए अव्यवस्थित रूप मे बिखरी हुई हैं और काव्य तत्व का भी उनमे अभाव है। समय समय पर बहुत से नये नये आख्यान भी उनमे जुडते रहे हैं, जिनके कारण उनकी ऐतिहासिकता और प्रामाणिकता भी सदिग्ध बनी रही है। अस्तु पुराणों मे महाकाव्य का कोई निश्चित रूप उपलब्ध नहीं होता है। हा, पुराण ग्रन्थों ने महाकाव्य की रचना के लिए विषय सामग्री (कथानक) प्रदान करने में निश्चय ही महत्वपूर्ण योग दिया है।

महाकाव्यो की सुव्यवस्थित परम्परा का [illegible] रामायण और महाभारत से होता है। भारतीय वाङमय के इन दोनों ग्रन्थ [illegible] पाश्चात्य और पौर्वात्य विद्वानों ने एक मत से महाकाव्य स्वीकार किया है। [illegible]दी महाकाव्य की सम्पूर्ण परम्परा का विकास रामायण और महाभारत के कथा प्रसगो आख्यानों एव उपाख्यानों को लेकर हुआ है। इसीलिए इन दोनो काव्यों को आप ग्रन्थ अभिधान दिया जाता है। इन ग्रन्थों का हमारे जीवन समाज और सस्कृति से गहन सम्बन्ध है। सस्कृत साहित्य में रामायण और महाभारत से बडा कोई महाकाव्य नही लिखा गया है। भाषा, भाव, कला, शिल्प शैली चरित्र चित्रण, कथा-सयोजन आदि सभी दृष्टियो से इन महाकाव्यों को परवर्ती कवियो ने आदर्श रूप में स्वीकार किया है। रामायण और महाभारत दोनों ही सकलनात्मक महाकाव्य है। सस्कृत महाकाव्य की सुदीर्घ परम्परा का विकास इन्हीं महाकाव्यों को आदर्श मान कर हुआ। प्राचीन काव्याचार्यों ने महाकाव्य के जिन लक्षणो का निरूपण किया हैं उनमे भी इन महाकाव्यों का योगदान है। वास्तव मे परवर्ती महाकाव्यकारों ने महाभारत से कथानत्व ग्रहण किया, शैली और शिल्प विधान की प्रेरणा का स्रोत रामायण बनी। इस प्रकार रामायण और महाभारत लिपिबद्ध (लिखित) महाकाव्य परम्परा के दो आदि ग्रन्थ कहे जा सकते हैं।

पौराणिक महाकाव्य परम्परा

भारतीय महाकाव्य परम्परा के आदि ग्रन्थ रामायण और महाभारत पौराणिक विषयो के ही महाकाव्य है। पौराणिक विषयों के महाकाव्यो की एक सुदीर्घ परम्परा सस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के साहित्य मे भी मिलती है। कालिदास कृत 'कुमारसम्भव' और रघुवश' भारवि रचित 'किरातार्जुनीय, माघ कृत शिशुपालवध' और श्री हर्ष कृत 'नैषध चरित' सस्कृत के पाचो सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य पौराणिक विषयो के ही है। इनके अतिरिक्त सस्कृत मे भट्टि कृत 'रावणवध', कुमारदास कृत जानकीहरण रत्नाकर विरचित 'हरिविजय' और

कविराज कृत राघव पाडवीय' नामक महाकाव्य भी इसी परम्परा के हैं। इसी क्रम मे प्राकृत भाषा मे प्रवरसेन कृत 'सेतुबध' श्री कृष्ण लीला शुक कृत 'श्री चिह्न काव्य' (सिरिचिंधकव्व) वाक्पतिराज कृत 'गौडवहो' और रामपाणिवाद कृत 'उषानिरुद्ध' तथा अपभ्रंश म स्वयभू कृत 'पउमचरिउ' के नाम उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी की पौराणिक महाकाव्य परम्परा

हि दी की पौराणिक महाकाव्य परम्परा का प्रारम्भ महाकवि तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' से होता है। इसकी रचना का आधार नाना पुराण निगमागम हैं। रामचरितमानस हि दी का सवश्रेष्ठ महाकाव्य है। उसकी गणना विश्व के श्रष्ठ महाकाव्यो म नि सकोच की जा सकती है। 'मानस' म काव्य की महाधता का चरम निदर्शन है। वस्तुत मानस महाकाव्यादर्शों की सर्वोत्कृष्ट परिकल्पना का मूर्तिमान प्रतीक है।

मानस के अनन्तर रीतिकाल मे मुक्तक रचना की प्रधानता होते हुए भी पौराणिक विषयो के अनेक प्रबध काव्य लिखे गये हैं। जसे—पद्माकर कृत रामाश्वमेध गोवि दसिह कृत चडीचरित्र' गुमान मिश्र कृत 'व्रजविलास और कृष्णचन्द्रिका' म चित कृत कृष्णायन और आचाय केशवदास कृत 'रामचन्द्रिका', ये सभी ग्र थ वणनात्मक का य हैं जिनम महाका य की शास्त्रीय रूढियों का निवाह अवश्य किया गया है कि तु महाका योचित गरिमा से ये शू य है। इन सब ग्रन्थों म अपेक्षाकृत केशव रचित रामचन्द्रिका अवश्य ही महाकाव्यालोचको द्वारा चर्चा का विषय रही है। कि तु शिल्पविधि विषयक एकाध तत्त्व को छोडकर, रामचन्द्रिका को कथा, चरित्र या उद्देश्य किसी भी दृष्टि से महाकाव्य नहीं कहा जा सकता। रीतिकाल महाकाव्य रचना की दृष्टि से महत्वहीन है।

आधुनिक काल म हरिऔध जी के प्रियप्रवास' से पौराणिक विषयो के महाकाव्यो की अविच्छिन्न परम्परा मिलती है जिसकी कालक्रमानुसार सूची निम्नांकित प्रकार है —

१	प्रियप्रवास	— अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध	— सन् १६१४
२	साकेत	— मैथिलीशरण गुप्त	— सन् १६२६
३	कामायनी	— जयशकर प्रसाद	— सन् १६३४
४	नलनरेश	— पुरोहित प्रतापनारायण	— सन् १६३४
५	श्री रामचन्द्रोदय	— रामनाथ ज्योतिषी	— सन् १६३७
६	वैदेही वनवास	— हरिऔध	— सन् १६३६
७	कृष्णचरित मानस	— प्रद्युम्न दुर्गा	— सन् १६४१
८	कृष्णायन	— द्वारिकाप्रसाद मिश्र	— सन् १६४२

९	कुरुक्षेत्र	— रामधारीसिंह दिनकर	— सन् १९४३
१०	साकेत-संत	— बल्देवप्रसाद मिश्र	— सन् १९४६
११	दैत्यवंश	— हरदयालु सिंह	— सन् १९५२
१२	कैकेयी	— केदारनाथ मिश्र प्रभात	— सन् १९५९
१३	प्रगराज	— आनन्द कुमार	— सन् १९५०
१४	रावण	— हरदयालु सिंह	— सन् १९५२
१५	जयभारत	— मैथिलीशरण गुप्त	— सन् १९५२
१६	पार्वती	— रामानद तिवारी	— सन् १९५५
१७	रश्मिरथी	— रामधारीसिंह दिनकर	— सन् २९५७
१८	दमयंती	— तारादत्त हारीत	— सन् १९५७
१९	ऊर्मिला	— बालकृष्ण नवीन	— सन् १९५८
२०	एकलव्य	— रामकुमार वर्मा	— सन् १९५८
२१	सेनापति कर्ण	— लक्ष्मीनारायण मिश्र	— सन् १९५८
२२	तारकवध	— गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश	— सन् १९५८
२३	रामराज्य	— बल्देवप्रसाद मिश्र	— सन् १९६०
२४	सारथी	— रामगोपाल दिनेश	— सन् १९६१
२५	उर्वशी	— रामधारीसिंह दिनकर	— सन् १९६१
२६	प्रियमिलन	— नदकिशोर झा	— सन् १९६४

पौराणिक विषयों के आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों की उपर्युक्त लम्बी सूची देखकर यह प्रश्न स्वभावत उठता है कि क्या इस सूची में उल्लिखित सभी काव्यग्रन्थ महाकाव्य हैं। वस्तुत इस सूची के अधिकांश ग्रन्थों (जैसे नलनरेश, वैदेही वनवास, रावण दमयंती, प्रगराज सारथी सेनापति कर्ण, राम राज्य और प्रिय मिलन आदि) को तो महाकाव्य इसलिए भी कहा जाता रहा है कि उनके मुख पृष्ठ पर 'महाकाव्य' शब्द छपा हुआ है। कुछ ग्रन्थ (जैसे कृष्णायन, पार्वती, जयभारत तारकवध आदि) वृहदाकार होने के कारण महाकाव्य स्वीकारे गये हैं। कतिपय के भूमिका लेखकों और प्रस्तावकों ने उन्हें महाकाव्य की संज्ञा दी है। अथवा ग्रन्थों के रचयिताओं ने 'महाकवि बनने के व्यामोह म रूढ़काव्य शास्त्रीय लक्षणों का सकौशल निर्वाह करके अपनी कृतियों को समालोचकों से महाकाव्य कहला लिया है। –

यह तो निश्चित है कि ये सभी काव्य ग्रन्थ महाकाव्य नहीं हैं। महाकाव्य की रचना सहज सम्भव नहीं। महाकाव्य सृजन गुरुत्तर कवि-कर्म है। महाकाव्य की रचना जातीय जीवन और सामाजिक चेतना के आलकन का सास्कृतिक प्रयास होती है। युग-युग की चेतना का नवजागरण, राष्ट्रीय जीवन का प्रति निधित्व सांस्कृतिक उन्नयन, सामाजिक अभ्युत्थान का सफल और कलात्मक औदात्त महाकाव्य रचना

के आधारभूत प्रयोजन होते है। इन महत् प्रयोजनों की सिद्धि प्रत्येक कवि की लेखनी से सम्भव नही। अस्तु महाकाव्यकार के गौरवान्वित पद पर आसीन होने का अधिकारी वही मनीषी कवि होता है जिसने अपना जीवन को काव्य की साधना और कला की उपासना में समर्पित कर दिया हो। जो असाधारण प्रतिभा से सम्पन्न हो। इसलिए एवरक्राम्बी ने कहा था कि—'दी एपिक पोइट इज रेएरस्ट काइंड आव आरटिस्ट'[1] अस्तु, इस सन्दर्भ में विचार करें तो प्रमुख प्रश्न उपयुक्त काव्य ग्रन्थों के मूल्यांकन का आता है। मूल्यांकन के मानदण्डो का निर्णय महाकाव्य के रूपविधायक तत्वों की व्याख्या करते समय ऊपर किया जा चुका है। इसीलिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में केवल उन्ही ग्रन्थो को अध्ययनार्थ चुना गया है जो वस्तुतः महाकाव्योचित गरिमा से सम्पन्न है और महाकाव्यालोचन के निर्धारित मानदण्डो पर खरे उतरे हैं। ये ग्रन्थ हैं—

प्रियप्रवास साकेत, कामायनी, कुरुक्षेत्र, साकेतसन्त
दत्यवश, रश्मिरथी, उर्म्मिला और एकलव्य।

ये काव्य ग्रन्थ केवल महाकाव्यालोचन के मानदण्डो पर ही खरे नहीं है वरन् वाल्मीकिकृत 'रामायण' से लेकर दिनकर कृत 'उर्वशी' तक विकसित होने वाली पौराणिक महाकाव्य परम्परा की महत्त्वपूर्ण प्रवृत्तियों का भी प्रतिनिधित्व करते हैं। इन महाकाव्यों के रचयिता प्रतिभा सम्पन्न कवि हैं जिन्होंने आजीवन काव्य-साधना की है। इन कृतियो का रचनात्मक आधार पौराणिक इतिवृत्त होते हुए भी इनमे हमारे युग का उन्नत बोध प्रतिफलित हुआ है। इन सभी महाकाव्यों मे मानवतावादी जीवन-दर्शन की प्रतिष्ठा हुई है जिसका आधार चिरतन मानवीय-मूल्य और आध्यात्मिक निष्ठाएं हैं। इसीलिए ये महाकाव्य स्थायी महत्त्व की कृतियां हैं। जब महाकाव्य नामधारी अनेक कृतियां समय की धूल से धूसरित होते होते काल कवलित हो जायेंगी तब भी ये ग्रन्थ अपने जीवन-दर्शन और कलात्मक औदात्त्य के आलोक से साहित्य के क्षितिज को दीप्तिमान करते हुये, जनजीवन की प्रेरणा के अक्षय स्रोत बनकर चिरतन महत्त्व की रचनाएं बने रहेंगे। आगे के अध्यायों में इन्ही महाकाव्यों की कथा, चरित्र, शिल्प और जीवन-दर्शन सम्बन्धी विशेषताओं एवं उपलब्धियों का समालोचनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

१—एबरक्राम्बी—दी एपिक पृ० ४१

द्वितीय अध्याय

कथा—तत्त्व

भूमिका—

महाकाव्यो की रचना म कथातत्व का महत्वपूर्ण स्थान है। महाकाव्य मे कथानक की महत्ता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि विद्वानो ने महा काव्य को 'कथाकाव्य' की संज्ञा दी है। पाश्चात्य महाकाव्यालोचको ने सवत्र ही महाकाव्य को कथाकाव्य (Narrative Poetry) का पर्याय कहा है।[1] बावरा ने अपनी परिभाषा में महाकाव्य को 'बृहदाकार कथात्मक काव्य रूप' ही कहा है।[2] विश्वकोषकार ने महाकाव्य का अर्थ एक "कथात्मक कविता" ही दिया है।[3] महाकाव्य का विकास भी कथाप्रधान आख्याना (Narratives) से ही माना गया है[4] अस्तु स्पष्ट है कि महाकाव्य अ ततः कथाकाव्य है और कथानक महाकाव्य रचना का अनिवार्य उपकरण है। वास्तविकता तो यह है कि कथानक की व्यापकता, प्रसिद्धि और उसका सुसगठित स्वरूप ही ऐसे गुण हैं जो किसी काव्य को महा काव्योचित गरिमा से मंडित करते हैं।

प्रस्तुत प्रकरण मे आलोच्य महाकाव्यो के कथातत्व का अध्ययन किया गया है। यह अध्ययन निम्नांकित सरणिया (Phases) म प्रस्तुत किया गया है —

(१) सारांश— सवप्रथम प्रत्येक महाकाव्य की कथावस्तु को सार के रूप मे इस दृष्टि से प्रस्तुत किया है कि जिसस कथासूत्रो के मूल स्रोता के संधान और उनमे किये गये परिवतनो को सुविधापूवक समझा जा सके। साथ ही सम्पूर्ण ग्रन्थ म फले हुये कथातत्व की सयोजन विधि, प्रस्तुतीकरण मौलिकता आदि का अध्ययन किया जा सके।

(२) आधार ग्र थ— आलोच्य महाकाव्यो की कथावस्तु मूलत पुराणो से गृहीत है। किन्तु किन किन पुराणो एव पुराणोत्तर ग्र था का कथानक के सगठन में उपयोग किया गया है उसका उल्लेख इस शीषक अ तगत हुआ है।

---

1 I T Myers A Study in Epic Development–Introduction–page 32,

2 C M Bowra–From Viragil to Milton Page 1

3 Cassell's Encyclopedia of Literature Vol I, page 195,

4 Koklleshwar Shastry–A brief History of Sanakrit Literature Page 19,

(३) **मौलिक प्रसग तथा नवीन उद्‌भावनाए**—इस शीर्षक के अन्तर्गत महाकाव्यो म गहीत कथा प्रसगो की मौलिकता का परीक्षण किया गया है। वस्तुत कौन सी पौराणिक कथा को लेकर महाकाव्यकार ने अपनी प्रतिभा और कल्पना शक्ति से किन नवीन प्रसगो या कथावस्तु मे उद्‌भावनाए की हैं ? किन प्राचीन प्रसगो को मौलिक ढग से युगीन सन्दर्भों मे प्रस्तुत किया गया है ? कहा तक कथा वस्तु के सगठन म पौराणिकता की रक्षा की है ? या खण्डित किया है ? आदि प्रश्न चिह्नो के सन्दर्भ म भी आलोच्य महाकाव्यो की कथावस्तु का अध्ययन किया गया है।

(४) **शास्त्रीय-विधान**—कथावस्तु का प्रस्तुतीकरण, मुख्य कथा और अवान्तर कथा प्रसगो की अन्विति, सधियो एव कार्यावस्थाओ के अनुरूप सयोजन, पूर्वापर प्रसगानुसार घटनाक्रम का आयोजन, मार्मिक स्थलो की योजना और कथा मे प्रवाह आदि के निर्वाह का विवेचन इस शीर्षक के अन्तर्गत किया गया है।

(५) आलोच्य महाकाव्यो की कथावस्तु विषयक उपलब्धियो एव अभावो पर इस दृष्टि से भी विचार किया गया है कि इन कथाओ का स्थायी महत्त्व क्या है ?

प्रत्येक महाकाव्य की कथावस्तु का अलग अलग अध्ययन इस दृष्टि से किया गया है कि वस्तु विषयक विशेषताए पूर्णरूपेण उभर सकें।

प्रियप्रवास

कथासार

प्रियप्रवास की समस्त कथावस्तु सत्रह सर्गों मे विभाजित है। प्रथम सर्ग का प्रारभ सूर्यास्त के दृश्य से होता है। इसी समय श्री कृष्ण गोचारण के उपरान्त सखाओ सहित ब्रज म आते हैं। उन्हे देखकर समस्त ब्रजजनो को अपार आनन्द होता है। सहसा रात्रि हो जाती है। द्वितीय सर्ग म गोकुल ग्राम म एक ढिंढोरा पिटता है कि प्रात काल राजा कस के यहा धनुष यज्ञ उत्सव हो रहा है और मुकुन्द को मथुरा के लिये आमन्त्रित किया गया है। इस घोषणा से समस्त ब्रजवासी व्याकुल होकर अनेक प्रकार की चिन्ताओ म निमग्न हो शोकातुर होते है। तृतीय सर्ग म कृष्ण की मथुरा के लिए बिदाई का वर्णन है। कृष्ण की विदाई का दृश्य बडा करुण एव हृदय विदारक है। विशेषकर माता यशोदा के ममत्व का चित्रण इस सर्ग म बडा भव्य बन पडा है। वह जगदम्बा से कृष्ण की रक्षा की प्रार्थना करती है। कृष्ण बलराम जिस रथ से जाने को हैं उसके आगे प्रेम विह्वल नर-नारी लेट जाते हैं जिन्हे व किसी प्रकार समझा बुझाकर प्रस्थान करते हैं। चतुर्थ सर्ग म कृष्ण की चिन्ता म गोकुल ग्रामवासियो की विरह वेदना का वर्णन है। पशु-पक्षी भी कृष्ण की वियोग व्यथा से आकुल हैं। राधा की वेदना दुर्वह हो जाती है। राधा का परिचय कवि ने इसी सर्ग म दिया है। राधा और कृष्ण की बाल

लीलाओं का भी वर्णन है। पाचवें सर्ग में नंद कृष्ण बलराम के मथुरा गमन के कारण समस्त ब्रजवासी करुणक्रंदन करते है। यशोदा की दशा अवर्णनीय है वह शोकसिन्धु मे निमग्न हैं। छठे सर्ग में ब्रजवासी कृष्णागमन की प्रतीक्षा में पेड़ो पर चढ़कर उनकी राह देखते हैं। स्त्रियां गवाक्षो में झांकती हैं। राधा पवन को दूती बनाकर कृष्ण के पास सन्देश भेजती है। सप्तम सर्ग में नंद श्री कृष्ण को मथुरा छोड़कर गोकुल लौट आते हैं उन्हें अकेला देखकर यशोदा विरह में व्याकुल हो जाती है। अष्टम सर्ग में कृष्ण के आगमन की सूचना यशोदा को पागल बना देती है। तब नंद बाबा कृष्ण के अतुल पराक्रम अर्थात कुवलय हाथी, मल्ला एवं कंस के वध की बातें बताते हैं जिसमे यशोदा को कुछ सान्त्वना मिलती है। किन्तु कृष्ण के आगमन की प्रतीक्षा करते-करते सब निराश हो जाते हैं। ब्रज के लोग स्थान-स्थान पर बैठकर कृष्ण की बाल-लीलाओं का स्मरण कर अपने प्रेम भाव को व्यक्त कर रहें हैं। नवम सर्ग मे कृष्ण को मथुरा रहते बहुत दिनों बाद ब्रजजनो का स्मरण हो आया। उन्होंने अपने अभिन्न सखा उद्धव जी को ब्रजजनो की सुध लाने तथा समझाने बुझाने के लिये भेजा। उद्धव जी जब मथुरा से ब्रज आ रहे थे मार्ग मे प्राकृतिक दृश्यों की सुन्दर छटा भी मिली। दशम् सर्ग मे यशोदा ने उद्धव के सम्मुख कृष्ण की बाल लीलाओं तथा कथाओं का वर्णन किया है। इस सर्ग में भ्रातृत्व की व्यंजना सुन्दर ढंग से हुई है। एकादश सर्ग मे उद्धव ब्रजजनों सहित यमुना तट पर बैठे हैं तभी एक वृद्ध यमुना की ओर संकेत करके काली नाग के दलन तथा दावानल से गो-गोपों की रक्षा का वृत्त सुनाता है। द्वादश सर्ग मे पुरंदर के प्रकोप के कारण घोर वर्षा तथा कृष्ण द्वारा गोवर्धन पर्वत धारण की कथा है। त्रयोदश सर्ग में कृष्ण के समाज सेवी रूप का वर्णन है। कृष्ण के द्वारा अघासुर, केशी और व्योमासुर नामक दैत्यों के वध की कथाएं हैं। चतुर्दश सर्ग मे गोपिकाओं का उद्धव के प्रति विरह निवेदन है। इस सर्ग में भ्रमरगीत की परंपरा का विकसित स्वरूप है। उद्धव-गोपी संवाद में निर्गुण सगुण ब्रह्म की बौद्धिक व्याख्या प्रस्तुत की गई है। पंचदश सर्ग में एक ब्रजबाला मधुमास में उपवन में जाकर विभिन्न प्रकार के पुष्पों को अपनी विरह व्यथा सुनाती है। पुष्पों को निरुत्तर देखकर उन पर व्यंग्य कसती है तत्पश्चात भ्रमर से वार्तालाप करती है। अंत में यमुना तट पर जाती है। कृष्ण प्रेम में विह्वल गोपी के मर्मस्पर्शी भावोद्गारों को उद्धव छिपे हुए सुनते हैं। षोडश सर्ग में उद्धव और राधा का संवाद है। इसी सर्ग में राधा के श्रीमुख से विश्व प्रेम सत्यनिष्ठा नवधाभक्ति, सगुण निर्गुण आदि विषयों का विवेचन हुआ है। उद्धव कृष्ण का संदेश सुनाते है। राधा धैर्यपूर्वक कृष्ण का संदेश सुनकर अपने उद्गार भी कृष्ण के लिये उद्धव से कहती है। राधा के प्रेम के सम्मुख उद्धव नतमस्तक हो जाते हैं उनका समस्त ज्ञान गर्व खर्व हो जाता है और राधा की चरणरज लेकर मथुरा को चले जाते हैं। सप्तदश सर्ग मे मगधपति जरासन्ध के अत्याचारों से पीड़ित

जनता को त्राण देने के लिये कृष्ण द्वारिकापुरी चले जाते हैं। उधर राधा दीन-हीन निराश्रिता की सेवा-शुश्रूषा करती हुई यशोदा को धय बधाती हुई जीवन व्यतीत करती है।

कथात्मक आधार

प्रियप्रवास महाकाव्य का इतिवृत्तात्मक आधार कृष्णकथा है। कृष्णकथा सहस्राब्दियों से भारतीय जनजीवन का कण्ठहार बनी रही है। हिन्दी साहित्य की सुदीर्घ परंपरा में कृष्ण के नाम पर अपरिमित साहित्य सृजना हुई है। कृष्ण काव्य की एक समृद्ध परंपरा का स्वरूप हम आदिकाल से आज तक प्राप्त है। इसका कारण श्री कृष्ण के नाम गुण चरित्र और व्यक्तित्व की विलक्षणता है। कृष्ण के व्यक्तित्व की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता वैविध्य या अनेकरूपता है। दूसरे शब्दों में कृष्ण का चरित्र लोकजीवन की प्ररणा का अक्षय स्रोत रहा है। श्री मद्भागवत महापुराण, महाभारत, गीता आदि में कृष्ण का स्वरूप अनेक-मुखी प्रतिभाओं से संपन्न है। वह श्री मद्भागवत महापुराण में परमपुरुष-परमात्मा गीता में कर्मयोगी महाभारत में नीतिज्ञ विद्यापति के काव्य में रसराज शिरोमणि श्यामसुन्दर सूर के सखा गोपाल, मीरा के मोहन माधव रीतिकाल के रतिपति और हरिऔध के प्रियप्रवास में ब्रह्मतेज सम्भूत महामानव के रूप में अवतरित हुए हैं। हरिऔध जी ने इन्हीं श्रीकृष्ण की कथाओं को प्रियप्रवास का आधार बनाया है।

कृष्णकथा के पौराणिक स्रोत

पौराणिक वाङ्मय में कृष्ण कथा का उल्लेख महाभारत में मिलता है। मूल महाभारत में श्रीकृष्ण का वर्णन अवतार रूप में अधिक नहीं हुआ है। महाभारत में कृष्ण के राजनीतिज्ञ स्वरूप का ही विशेष विवेचन है। महाभारत में कृष्ण के द्वारिका गमनोपरांत की घटनाओं का ही उल्लेख है किन्तु महाभारत के परिशिष्ट हरिवंश पुराण के विष्णु पर्व में श्रीकृष्ण की जन्म से लेकर द्वारिका जाने तक की कथाओं का विस्तृत वर्णन है।[1]

ब्रह्मपुराण में कृष्ण कथा का विस्तृत विवेचन है। ब्रह्मपुराण के अध्याय १८८ से २१२ तक कृष्ण के चरित्र से संबंधित गोकुल वृन्दावन, मथुरा आदि की लीलाओं का वर्णन है। पद्मपुराण के सृष्टि खंड में कृष्णावतार का उल्लेख मात्र है।[2] इसी पुराण के स्वर्ग खंड में भी कृष्णकथा का वर्णन है।[3] श्रीकृष्ण के

---

१ हरिवंश पुराण विष्णु पर्व, सर्ग ४ से ५६ तक

२ कल्याण का पद्मपुराणांक-वर्ष १९ अंक १ पृ० ७४

३ पद्मपुराण-स्वर्गखंड-अध्याय ६९ तथा ७०

परब्रह्म स्वरूप की व्याख्या के साथ वृन्दावन, गोप गोपिकाओं की महिमा का भी वर्णन है।[१] पाताल खंड में भी श्रीकृष्ण-चरित दिया गया है। इसके अतिरिक्त विष्णुपुराण के चतुर्थ अंश में श्रीकृष्ण के जन्म की कथा का उल्लेख है।[२] विष्णु पुराण के पांचवें अंश में श्रीकृष्ण की जन्म से लेकर सम्पूर्ण कथाओं का विस्तृत वर्णन है।[३] महारास का सजीव वर्णन विष्णुपुराण के अध्याय १३ में है।

अग्नि पुराण के १२ वें अध्याय में कृष्णावतार की कथा दी गई है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के ब्रह्मखंड में श्रीकृष्ण के परब्रह्मस्वरूप का वर्णन है।[४] डा० हरवंशलाल शर्मा का अभिमत है कि—"श्रीकृष्ण चरित का पूर्ण विवेचन करने वाला दूसरा पुराण 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' है ब्रह्मवैवर्त में बहुत सी स्तुतियां दी गई हैं और अनेक स्थलों पर उच्चकोटि के शृंगारिक वर्णन हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि हिंदी के कवियों ने बहुत कुछ सामग्री ब्रह्मवैवर्त पुराण से ली है इस पुराण में कृष्ण की लीलाओं का वर्णन हरिवंश पुराण के वर्णनों की अपेक्षा अधिक शृंगारिक और विस्तृत है।[५] इसी पुराण में श्रीराधा की महिमा का वर्णन तथा गो, गोप और गोपिकाओं की लीलाओं का चित्रण है। इसी पुराण के श्रीकृष्ण जन्म नामक खंड में श्रीकृष्ण के जन्म से युवाकाल तक की लीलाओं का विस्तृत उल्लेख है। साथ ही उद्धव राधा संवाद और भक्तितत्व का विवेचन है।[६] वाराह पुराण में श्रीकृष्ण का उल्लेख न होकर मथुरा महात्म्य एवं वृन्दावन आदि वनों की रमणीयता का विस्तृत वर्णन है।[७] देवी भागवत पुराण के चतुर्थ स्कंद में कृष्ण जन्म तथा अन्य लीलाओं का वर्णन है।[८] वायुपुराण के द्वितीय खंड में श्रीकृष्ण जन्म एवं स्यमंतक मणि की कथा का उल्लेख है। कृष्ण की १६ सहस्र पत्नियां आदि का भी वर्णन इस पुराण में है। कृष्ण की गो-गोप लीलाओं का वर्णन यहां नहीं है।[९] वामनपुराण में केशी और कालनेमि के वध की कथा है। कूर्मपुराण में यदुवंश वर्णन तथा श्रीकृष्ण के पुत्रों की कथा है। गरुड पुराण में पूतना वध

१ पद्मपुराण अध्याय ७०, ७२
२ कल्याण विष्णु पुराणांक वर्ष २८, पृ० ७३१
३ विष्णु पुराण पंचम अंश, अध्याय १ से ३८ तक
४ ब्रह्मवैवर्त पुराण, ब्रह्मखंड, अध्याय २ ३
५ डा० हरवंशलाल शर्मा-सूर और उनका साहित्य पृ० १२८
६ ब्रह्मवैवर्तपुराण श्रीकृष्ण जन्म खंड अध्याय ९३ ९६
७ वराहपुराण अध्याय १५३
८ देवीभागवत पुराण, चतुर्थ स्कन्द, अध्याय २०-२५
९ वायुपुराण द्वितीय खण्ड अध्याय ३४

यमलार्जुन उद्धार, कालियदमन, गोवर्द्धन धारण आदि की कथाओं के साथ साथ कृष्ण की रुक्मिणी, सत्यभामा आदि आठ पत्नियों का भी उल्लेख है।[१]

कृष्ण कथा का सर्वाधिक समृद्ध स्वरूप श्रीमद्भागवत-पुराण में मिलता है। श्रीमद्भागवत पुराण के दशम स्कन्ध में ९० अध्यायों में श्री कृष्ण चरित्र का विस्तार से निरूपण किया गया है।[२] कृष्ण के जन्म से यौवन काल तक की समस्त घटनाऐं, गोपिकाओं से प्रेम, महारास, विरह वर्णन, के चित्र, गोपी उद्धव संवाद (भ्रमरगीत प्रसंग) प्रकृति वर्णन आदि श्रीमद्भागवत पुराण में प्राप्य हैं। कृष्ण चरित के सभी गायकों ने श्रीमद्भागवतपुराण का आश्रय लिया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार– सब सम्प्रदायों के कृष्ण भक्त भागवत में वर्णित कृष्ण की ब्रजलीला को लेकर चले।'[३] डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत है कि श्रीमद्भागवत महापुराण ने वैष्णव भक्तों और कवियों को विष्णुपुराण से भी अधिक प्रभावित किया है। उन्होंने लिखा है कि यह (विष्णु) पुराण सभी वैष्णवों के लिये प्रमाण और आदर का पात्र रहा है परन्तु भक्ति तत्त्व का विशद् वर्णन इसमें नहीं मिलता है। इस विषय में भागवतपुराण बेजोड़ है। क्या कवित्वशक्ति क्या शास्त्रीय तत्व-क्या ज्ञान चर्चा भागवत पुराण किसी में अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं जानता। इस महापुराण ने रामायण और महाभारत की भांति समस्त भारतीय चिन्ता को बहुत दूर तक प्रभावित किया है।"[४] श्रीमद्भागवत महापुराण ने भक्तिमार्ग को प्रशस्त तथा पुष्ट करने के साथ साथ ललित साहित्य के लिये भी अनमोल संपत्ति प्रदान की है।[५] इसके अतिरिक्त कवियों का भागवत को ग्रहण करने का प्रमुख कारण यह भी है कि उसमें कृष्ण के सभी रूपों का सांगोपांग विवेचन आ गया है। डा० हरवंशलाल शर्मा के शब्दों में—' महाभारत से लेकर पौराणिक युग तक जितना भी कृष्ण का विवेचन हुआ है, यह सब समन्वित रूप में श्रीमद्भागवत में मिल जाता है। भागवत में कृष्ण के सभी रूप आ गये हैं जैसे—(१) अद्भुत कर्मा असुर संहारक कृष्ण, (२) बालकृष्ण, (४) गोपीविहारी श्रीकृष्ण (४) राजनीति वेत्ता कूटनीति विशारद श्रीकृष्ण (५) योगेश्वर श्रीकृष्ण

---

१ गरुड़ पुराण अध्याय १४४

२ श्रीमद्भागवत महापुराण-दशम स्कन्ध

३ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १५३

४ डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य की भूमिका पृ० ८७

५ वैदिक संस्कृति का विकास, पृ० १७२

(६) परब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण ।"[1] श्री मद्भागवत पुराण मे, महाभारत, गीता तथा कृष्ण सम्बन्धी अन्य सभी ग्रथो मे दिये हुये भावो का समन्वय कर लिया गया है।

इस प्रकार महाभारत काल से लेकर विभिन्न कालो म निर्मित पुराणो मे कृष्ण कथा का स्वरूप विकसित हुआ है। वास्तव मे कृष्ण का अवतारी रूप ही काव्य का आलबन बन सका है। क्योकि अवतारी श्रीकृष्ण की लीलाए ही भक्त कवियो के आकर्षण का केन्द्र बनी। इस स्वरूप का विकास पुराण काल म ही हुआ है। डा० हरवशलाल शर्मा ने यही मत व्यक्त करते हुये लिखा है—"वैदिक साहित्य मे जिस रूप मे कृष्ण का उल्लेख मिलता है, उसमे उन्हें न तो हम अवतार की ही सज्ञा दे सकते हैं और न देवता की ही। महाभारत मे श्रीकृष्ण का अवतार रूप मे उल्लेख है उन्हें आधुनिक विद्वान प्रक्षिप्त मानते हैं। परन्तु महाभारत के अनन्तर तो कृष्ण का रूप ही बदल गया। उनकी गणना पूर्ण अवतारो में होने लगी। गोपाल रूप म उनकी उपासना पौराणिक काल की ही देन है।"[2] पुराणकाल तक आते-आते विष्णु, नारायण, वासुदेव आदि विभिन्न नामो का पर्यवसान कृष्ण नाम मे हो गया। पुराणो मे विष्णु के अवतारो की ही महिमा का गायन है। अवतारवाद पुराण-साहित्य का लक्षण बन गया। हिन्दी के काव्य विधायको ने विष्णु के अवतारो मे राम-कृष्ण की महिमा का गायन ही अधिक किया। सारा भक्ति-काव्य कृष्णकथाओ से परिपूरित है। अष्टछाप के कवियो, मीरा रीतिकाल के काव्य स्रष्टाओ के लिए कृष्ण का चरित्र अमूल्य निधि बना रहा है। आधुनिक युग के काव्य रचयिताओ ने भी कृष्ण कथा को माध्यम बनाया है। प्रियप्रवास महाकाव्य मे कृष्ण कथा का विकसित स्वरूप है। इस काव्य मे श्रीमद्भागवत पुराण की कथाओ को ही अधिकाशत ग्रहण किया गया है।

प्रियप्रवास की कथावस्तु के नवीनता (युगानुरूपता)

प्रियप्रवास के इतिवृत्त का आधार कृष्ण काव्य परम्परा की भाँति श्रीमद्भागवत पुराण है किन्तु प्रियप्रवासकार न कथानक को मौलिक रूप मे प्रस्तुत किया है। प्रियप्रवास की कथावस्तु का आरम्भ श्रीकृष्ण के मथुरा-गमन से होता है। वहा कस वध करके वे मथुराधिप होकर लोकरक्षण म लग जाते हैं। प्रमुख कथा भी यही है। लेखक का अभिप्राय भी कृष्ण के लोकरजक स्वरूप का चित्रण करना ही है किन्तु उनके वियोग म गोकुलवासियो का गुण-स्मरण के रूप मे कृष्ण की लीलाओं का उल्लेख हुआ है। प्रियप्रवास म वे कथाए विस्तृत रूप से आयी है

---

१ डा० हरवशलाल शर्मा-सूर और उनका साहित्य पृ० १३० १३२ १३४

२ वही पृ० ११६

जिनमें श्रीकृष्ण के लोकरंजक रूप का चित्रण होता है—उदाहरण के लिये कालियदमन,[१] दावानल दाह,[२] गोवर्द्धन धारण,[३] अघासुर का वध,[४] केशी दैत्य का हनन[५] व्योमासुर के विनाश की कथाए।[६] इन कथाओं को प्रस्तुत करने में हरिऔध जी ने कल्पना शक्ति का परिचय दिया है। इस कथन की पुष्टि के लिये कतिपय कथाओं की पौराणिक कथाओं से तुलना आवश्यक है।

श्रीमद्भागवत में कालियनाग को एक महान विषैला सर्प बताया है जिसने यमुनाजल को अपने विष से दूषित कर दिया था और कृष्ण ने एक दिन जल में कूदकर नाग को पकड़ उसे चरण प्रहार में विदीर्ण कर दिया। नागपत्नियों की प्रार्थना पर उसे प्राणदान देकर वहां से निकालकर रमणीक द्वीप में भेज दिया।[७] प्रियप्रवास में श्री कृष्ण वेणुनाद के द्वारा कौशलपूर्वक उसे वश में करके युक्तिपूर्वक किसी समीपवर्ती पर्वत के गहन वन में निकाल देते हैं। कृष्ण का नाद चातुर मानवीय कार्य है। यहां घटना की अलौकिकता का प्रक्षालन कर उसे मानवीय धरातल पर विवेचित किया गया है।

इसी प्रकार श्रीमद्भागवत में इन्द्र प्रकोप के कारण मूसलाधार वर्षा होने पर श्रीकृष्ण ने गोवर्द्धन पर्वत को उखाड़ कर छत्र की भांति ऊंगली पर रोककर व्रजजनों की रक्षा की।[८] किन्तु प्रियप्रवासकार ने इस घटना का उल्लेख इस प्रकार किया है कि व्रज में घोर वर्षा होने पर श्रीकृष्ण ने ग्रामवासियों को लेकर गोवर्द्धन पर्वत की गुफाओं और कंदराओं में जाकर निवास किया। बड़े कौशल से श्रीकृष्ण व्रज के आबाल वृद्धजनों को सुरक्षित स्थानों पर ले गये श्रीमद्भागवत में दावानल

---

१ प्रियप्रवास–११–११–५४

२ वही–११–५६–९६

३ वही–१२–१८–६८

४ प्रियप्रवास–१३–३७–५७

५ वही–१३–५८–६७

६ वही–१३–६८–८४

७ श्रीमद्भागवत पुराण—दशम स्कन्द अ० १७

८ इत्युक्त्वैकेन हस्तेन कृत्वा गोवर्धनाचलम्
दधार लीलया कृष्णश्छत्राकमिव बालकः ॥
—भागवत–दशमस्कन्द, अध्याय १९

९ सकल गोकुल को पुर ग्राम को सजन लोचन से कुछ काल में।
कुशल से गिरि मध्य बसा दिया लघु बना पवनादिप्रमाद को ॥
प्रियप्रवास–सर्ग १२–६३
लख अपार प्रसार गिरीन्द्र में व्रजधराधिप के प्रिय पुत्र का।
सकल लोग लगे कहने उसे। रख लिया ऊंगलियों पर श्याम ने ॥
प्रियप्रवास–सर्ग १२–६७

की कथा का वर्णन इस प्रकार है कि एक बार गायें बन मे चर रही थी तो दावाग्नि लग गयी। समस्त गो, गोप, ग्वालो को व्याकुल देख श्रीकृष्ण उस अग्नि को अपनी माया शक्ति से पी गये।[1] किन्तु प्रियप्रवास म श्रीकृष्ण अपने सखाओ तथा गायो की रक्षा के लिए अग्नि में कूद पडे और जाकर उन्हें आग मे से निकाल कर बचाया।[2] इस प्रकार हरिऔध जी ने कथाओ को युगानुरूप आवरण देकर बुद्धिग्राह्य बनाया है।

प्रियप्रवास के कथानक मे मौलिक प्रसग तथा नवीन उद्भावनाए

वस्तु विधान मे प्रियप्रवास का इतिवृत्तात्मक आधार पौराणिक होते हुए भी उसके रचयिता ने वस्तुविधान मे मौलिकता का परिचय दिया है। कृष्ण और राधा का समग्र जीवन लोकसेवी के रूप मे प्रस्तुत कर हरिऔध ने समस्त कृष्ण काव्य परपरा को एक नया मोड दिया है। पुराणकाल से लेकर रीतिकाल तक सवत्र ही कृष्ण राधा का स्वरूपाकन रसिक विहारी या गोपाल के रूप म हुआ था। उसम लोकपक्ष का अभाव था। आचाय रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि—"प्रियप्रवासकार ने कृष्ण के पूव प्रचलित चरित्र म आमूल परिवतन कर उन्हें समाजसुधारक, लोकसेवी जाति उद्धारक, विश्व प्रेमी एव नि स्वाथ नेता का रूप चित्रित किया। प्रियप्रवास की समस्त कथाओ की साथकता कृष्ण के इसी रूप की व्यजना मे हैं।"[3]

कृष्ण की ही भाति राधिका का चरित्र विधान करने वाली समस्त घटनाए भी हरिऔध जी की कुशाग्र बुद्धि की परिचायक हैं। श्रीमद्भागवत मे राधा का उल्लेख नहीं है। ब्रह्मववत पुराण से लेकर रीतिकाल तक सवत्र ही राधा को कृष्ण

---

१ पीत्वा मुखेन तान् कृच्छ्राद् योगाधीशो व्योमचय।

—भागवत-दशम स्कन्द, अध्याय १९-२२

कृष्णास्य योग वीर्यं तद्योग मायानुभावितम।
दावाग्ने रात्मन क्षेम वीक्ष्य ते मेनिरेऽमरम॥

—भागवत-दशम स्कन्द, अध्याय १९-१४

२ स्वसाथियो को देख दुदशा। प्रचड दावानल म प्रवीर से।
स्वय फसे श्याम दुरन्त वेग से। चमत्कृता सी वनभूमि को बना॥
प्रवेश के बाद सवेग ही बढ़े। समस्त गोपालक धेनु सग म।
अलौकिक स्फूर्ति दिखा त्रिलोक को। वसुधरा म कल कीर्ति बेलिबो॥

—प्रियप्रवास-सर्ग ११-९४-९५

३ आचाय रामचन्द्र शुक्ल-हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १५३-५४

को अनन्य प्रेमिका के रूप म चित्रित किया गया है राधा कृष्ण की प्रयसी एवं अनन्य उपासिका भी दिखाई गई है। राधा की विरह व्यजना म बहुत साहित्य सृष्टि हुई है। राधा के नाम नायिका भेदों का परिगणन भी खूब हुआ है। किन्तु हरिऔध जी ने प्रियप्रवास का कथा म राधा को लोकसेविका और विश्वप्रमिका के रूप मे प्रस्तुत किया है। प्रियप्रवास की कथावस्तु में राधिका, कृष्ण के विश्वव्यापी स्वरूप की वदना करती है। वह कृष्ण विरह म क्लाति मन है किन्तु विदग्धा या विमुग्धा की स्थिति को नही पहुचती। वरन् समस्त ब्रजजनों को शांति सात्वना देती है। राधा को परम मानवीया के रूप मे प्रियप्रवास के अत म वर्णित किया गया है। उनकी भक्ति का आदश भी युगानुरूप ही है। राधिका के लोकोपकारी रूप प्रतिष्ठा प्रियप्रवासकार की मौलिकता का ही द्योतन करती हैं।

प्रियप्रवास मे पवनदूती प्रसग भी नितात मौलिक है। यद्यपि दूत प्रणाली की एक सुव्यवस्थित परपरा मिलती है। जहा विरहिणी नायिकाए पक्षियों को प्राय अधिकतर दूत बनाकर प्रियतम को सन्देश भेजती रही है। प्रियप्रवास मे राधा ने पवन को दूतत्व का काय सौंपा है। कालिदास के मेघदूत म मेघ को यक्ष ने दूत बनाकर भेजा था। पवन दूती प्रसग की प्रेरणा और प्रभाव हरिऔध जी ने यद्यपि कालिदास के मेघदूत से प्राप्त की है तो भी कृष्ण कथा मे पवन दूती प्रसग की उद्भावना मौलिक ही कही जायेगी।

कृष्णकाव्य परपरा का भ्रमरगीत प्रसग भी प्रियप्रवास म नवीन ढग से प्रस्तुत किया गया है। यहा गोपी उद्धव सवाद के रूप में इसकी सयोजना नही हुई है। प्रियप्रवास के पचदश सग मे एक गोपिका भ्रमर को सबोधित कर अपनी विरह व्यथा निवेदन करती है। उद्धव दूरस्थ सब सुन लेते हैं किन्तु वार्त्तालाप नहीं करते हैं।

प्रियप्रवास की कथावस्तु म सध्या वणन, गोचारण, महारास आदि का निरूपण भी मौलिक ढग से हुआ है। यद्यपि इन प्रसगो का कथात्मक स्रोत श्रीमद् भागवत पुराण ही है।

प्रियप्रवास की कथावस्तु म मौलिक प्रसगोद्भावना के मूल म युग की प्रेरणा है। प्रियप्रवास का रचयिता महान कवि है। युगीन जीवन और जातीय सस्कृति के महाप्रवाह को उसन अपने महाकाव्योदधि मे सम्यक रूप से नियोजित किया है। वैज्ञानिक युग की प्रवत्ति के अनुरूप ही प्रियप्रवास की कथावस्तु का चयन तथा घटनाओं का बौद्धिक सयोजन हुआ है।

इसके अतिरिक्त कथावस्तु में शास्त्रीय विधान एव परिपाटी का भी समुचित रूप म परिपालन हुआ है। डा० द्वारिकाप्रसाद के शब्दों मे—"कथानक की योजना

कवि न सर्वथा शास्त्रीय नियमानुसार का है। इसमे सधियां एव कार्यावस्थाओ का ध्यान रखा है।' [1]

प्रियप्रवास के कथानक पर आक्षेप और उनका निराकरण

विद्वानों ने 'प्रियप्रवास' की कथावस्तु का महाकाव्य के लिए अपर्याप्त माना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रियप्रवास की कथावस्तु पर विचार प्रकट करते हुए लिखा है। कि—"जैसा कि इसके नाम से ही प्रकट है, इसकी कथावस्तु एव महाकाव्य क्या अच्छे प्रबन्ध काव्य के लिए भी अपर्याप्त है।' [2] डा० यमुनासिंह ने भी अपने शोधप्रबन्ध मे कहा है कि—"घटना विरलता और वर्णन विस्तार के कारण इसमे (प्रियप्रवास) कथानक बहुत सक्षिप्त है और उसमे वह प्रवाह तथा जीवन्तता नही जो महाकाव्य के कथानक मे होनी चाहिये।" [3] डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी ने लिखा है कि 'हरिऔध ने वर्त्तमान बुद्धिवाद और सुधारवाद की प्रगति के प्रभाव मे आकर कृष्ण और राधा को एक आदर्श महात्मा और त्यागिनी के रूप मे चित्रित करने की कोशिश तो की थी परन्तु अपनी इस कोशिश के लिये उन्होंने जो प्रतिपाद्य विषय चुना, वह उसके बिलकुल ही अनुपयुक्त था।' [4] डा० गोविन्दराम शर्मा का मत है कि—"महाकाव्य की दृष्टि से प्रियप्रवास की कथावस्तु की समीक्षा करने पर उसमें तीन मुख्य त्रुटियां दिखाई देती हैं। पहली तो यह है कि वह बहुत व्यापक और विस्तृत न होने के कारण महाकाव्य के उपयुक्त नहीं है। दूसरे कथावस्तु के साथ विविध घटनाओं का पूरा सामजस्य नही दिखाई देता है। तीसरी त्रुटि पाठकों को खटकने वाली कथावस्तु की एकरसता।" [5]

उपर्युक्त मतों मे जो बात अधिकतर कही गई है वह कथानक की लघुता की है। इस सबध मे मेरा मत यह है कि कथानक की लघुता किसी काव्य की महाधता को खत्म नही करती। वर्त्तमान युग के काव्यों और उपन्यासों की एक सामान्य प्रवृत्ति कथावस्तु का उत्तरोत्तर ह्रास है। इसका कारण युग की बौद्धिक प्रवृत्ति है इस युग का बुद्धि जीवी पाठक और लेखक काव्य-ग्रन्थो के प्रतिपाद्य (Themes) को अधिक महत्व न देकर इतिवृत्त के माध्यम से विचार उपलब्धि को महत्वपूर्ण मानता है। आज के महाकाव्यों मे घटना बाहुल्य है भी नही। इस युग के

---

१ डा० द्वारिकाप्रसाद प्रियप्रवास म काव्य, सस्कृति और दर्शन पृ० ९२

२ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ५८२

३ डा० यमुनासिंह हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ० ६९७

४ डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी महाकवि हरिऔध का प्रिय प्रवास, पृ० ९३

५ डा० गोविन्दराम हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य, पृ० १४०

अधिकाश प्रबन्ध काव्यों मे कथातत्व की प्रधानता न होकर भाव और विचार तत्व की ही प्रधानता है। उदाहरण के लिए कामायनी और कुरुक्षेत्र' को ले सकते हैं इसके अतिरिक्त पौराणिक वत्तो को अलौकिक घटनाओ की पुनरावत्ति म काव्य और कल्पना-शक्ति का कोई प्रमाण भी नही डा० प्रतिपालसिंह के इस मत से मैं सहमत हू कि— सबसे बडा आक्षेप यह है कि कथानक इतना सूक्ष्म है कि कृष्ण चन्द्र का पूर्ण जीवन इसमे व्यक्त न हो सका। किन्तु आलोचको को यह बात नही भुला देनी चाहिये कि यह बुद्धिवाद का युग है। इस काल मे महाकाव्य उतने घटना प्रधान नही होते जितने विचार प्रधान। अत इस महाकाव्य मे कृष्ण चरित्र को एक बौद्धिक और नैतिक रूप दिया गया है जो राष्ट्रीय भावना के अनुकूल है। जीवन वत्त कथन म तो काल के अनुरूप होता है न उसम एकरसता आती है जो कवि को अपेक्षित है।'[1] प्रियप्रवास के कथानक की विशेषता महाभारत काल से रीतिकाल तक की कृष्णकथा मे युगीन परिवतनो द्वारा नवीन अध्याय का आरम्भ है। प्रियप्रवास म हरिऔध जी ने कृष्ण कथा और काव्य की परम्परा को अग्रसर ही नही किया विकसित भी किया है। यही उसकी मौलिकता है। किसी भी ग्रथ की मौलिकता नई नई उद्भावनाओ म ही नही, वरन् विषय की पठ और गहराई मे भी होती है साहित्य म मौलिकता का अथ नवीनता ही नही विकास भी है। प्रिय प्रवास ने राधा-कृष्ण के अध्ययन मे एक नया अध्याय जोडा है जो पिछली पीढ़ियो के कवियो से निस्सन्देह कई कदम आगे है।[2] कथानक मे वणनात्मकता वास्तव म कथाप्रवाह को अवरुद्ध करती है। जसे सग ११ और १२ म उद्धव के सम्मुख एक वद्ध का भाषण समाप्त हुआ तो दूसरे ने कहना प्रारम्भ कर दिया। किन्तु ऐसे स्थल कम ही है। अ तत यह कहा जा सकता है कि कृष्ण कथा महाकाव्योचित गरिमा मे पूर्ण है। प्रियप्रवास मे कृष्ण की कथा को जिस रूप मे ग्रहण किया गया है उससे काव्य की कथात्मक महाघता मे कोई विशेष त्रुटि नही जान पडती वरन् प्रियप्रवास की कथा के प्रस्तुतीकरण की शली का तो वतमान युग के अनेक हिन्दी महाकाव्यकारो ने अनुसरण किया है। इस दृष्टि से प्रियप्रवास की कथावस्तु अना गत के लिये प्रेरणाप्रद सिद्ध हुई है।

कथासार **साकेत**

साकेत महाकाव्य मे १२ सग हैं। साकेत के प्रथम सग का समारम्भ सरस्वती वदना से होता है। साकेत नगरी (अयोध्या) का वणन करता हुआ कवि लक्ष्मण उर्मिला के प्रेमालाप और वाग्विनोद की सुदर झाकी देता है। यही दोनो के

---

१ डा० प्रतिपालसिंह बीसवी शताब्दी पूर्वार्द्ध के महाकाव्य, पृ० १००

२. वासुदेव विचार और निष्कष, पृ० २१२

वार्तालाप से राम के राज्याभिषेक की सूचना मिलती है जिसकी पुरवासी बडी लगन एव उत्साह से तयारी कर रहे हैं। द्वितीय सग मे मथरा नाम की दासी ककेयी के पासजाकर उसे महाराज दशरथ के विरुद्ध कुमत्रणा देती है कि भरत की अनुपस्थिति मे राम का अभिषेक हो रहा है। रानी के मन मे यह बात पदा हो जाती है कि—"भरत स सुत पर भी सदेह, बुलाया तक न उस जा गेह।' ककेयी कुपित हो राजा दशरथ से पूव सचित दो वरदान माग लेती है जिसम भरत को राज्य तया राम को चौदह वर्षों का वनवास है। सत्य प्रतिज्ञ दशरथ पुत्र विरह की कल्पना से मूच्छित हो जाते हैं। तृतीय सग म राम पितृ वदना के लिए प्रात जब आते हैं तो दशरथ जी की दशा को देखकर माता ककेयी से सब वत्तात सुन कर वनगमन को उद्यत हो जाते हैं। लक्ष्मण आवेश मे आकर ककेयी के प्रति अपशब्द तक कह जाते है। राम उन्हें वर्जित करते हैं। चतुथ सग मे राम माता कौशल्या से वनगमन की आज्ञा लेते हैं सुमित्रा लक्ष्मण के भी राम के साथ वन जाने म स्वय को गौरवान्वित मानती है। सीता भी बहुत समझाने बुझाने के उपरान्त राम के साथ ही वन जाने मे अपना कत्तव्य और पतिव्रत धम मानती है कि तु उर्मिला लक्ष्मण के माग की बाधा न बन विरह वेदना और शोक भार को पी जाती है। उसकी स्थिति बडी करुण और दारुण है। पचम सग म गुरु वशिष्ट एव प्रजाजनो से विदा हो राम, लक्ष्मण और जनकनदिनी सीता वनगमन के लिए प्रस्थान करते हैं। पहली रात्रि वे तमसा नदी के तट पर बिताते हैं। फिर शृगवरपुर म गुहराज से मिलकर गगातट पहुचते है। यही सुमत्र को सन्देश दे विदा करते हैं। गगा पार कर भारद्वाज मुनि क आश्रम म पहुचते हैं। फिर प्रयाग मे भारद्वाज से विदा हो चित्रकूट आते हैं। जहा लक्ष्मण निवास के लिए पर्णकुटी बनाते हैं। षष्ठ सग म राम सीता के विरह म राजा दशरथ कौशल्या सुमित्रा उर्मिला आदि शोक सिन्धु म डूबे हुए हैं। उसी समय सुमत्र खाली रथ ले आते हैं। राम का न लौटना देख महाराज दशरथ प्राण त्याग देते हैं। भीषण हाहाकार मच जाता है। महामुनि वशिष्ठ सभी को सात्वना देकर भरत को ननिहाल मे बुलाने के लिए दूतों को भेजते हैं। सप्तम सग म भरत शत्रुघ्न ननिहाल मे अयोध्या आते हैं। पिता निधन म व व्याकुल हैं। फिर राम सीता, लक्ष्मण का वनगमन सुन हतचेतन हो जाते हैं। ककेयी से स्वहेतु राज्य सिंहासन की बात सुनकर उसे ही कोसते हैं। गुरु की आज्ञा म पिता का दाह सस्कार कर राम को वन से लौटाने के लिए साकेत के जनसमूह सहित चित्रकूट प्रस्थान करते हैं। गुरु आदि के अत्यधिक कहने पर भी व अयोध्या का राज्य स्वीकार नहीं करते। अष्टम सग मे सीता राम के आनन्द-सामोद चित्रकूट निवास का वणन है। सीता के लिए राजकुटी राजभवन है। भरत साकेतवासियो सहित चित्रकूट पहुचते हैं। लक्ष्मण दूरस्थ भ्रातादि को देखकर उनकी कुटिल मति पर क्रोधित होते हैं। राम के समझाने पर वे चुप रहते हैं। यहा सबका मिलन होता है। ककेयी अपन

पूर्वकृत्य पर पश्चाताप कर क्षमायाचना करती है। भरत सहित सभी राम से अयोध्या लौटने का अनुनय विनय और आग्रह करते हैं किन्तु राम सभी को सस्नेह समझा-बुझाकर दृढ़ प्रतिज्ञ रहते हैं। भरत राम की चरण-पादुकाएं लेकर गैयर रूप में राज्य की देखरेख के लिये राम की आज्ञा शिरोधार्य करते हैं। यहीं सीता के चातुर्य से पर्णकुटी में लक्ष्मण उर्मिला की क्षणिक एकांत भेंट भी होती है। नवम सर्ग में उर्मिला की विरह वेदना की भावपूर्ण और हृदयस्पर्शी व्यंजना है। विरह की सभी दशाओं का मार्मिक वर्णन है। दशम सर्ग में उर्मिला सरयू का अपनी सखी मानकर स्मृति रूप में बीती हुई घटनाओं-स्वयं रघुकुल वैभव सीता स्वयंवर आदि का वर्णन करती है। एकादश सर्ग में प्रथम तो भरत और मांडवी के तपस्वी जीवन का चित्र है तत्पश्चात लक्ष्मण के मूर्छित होने पर हनुमान जी जो संजीवनी बूटी लेने जा रहे थे भरत के बाण से गिर पड़ते हैं। सचेत होकर वे भरत जी को दण्डकारण्य में मारीच प्राप्ति के वध, सीताहरण, रामसुग्रीव मैत्री लंका दहन, विभीषण भेंट कुम्भकरण वध लक्ष्मण मेघनाथ युद्ध और लक्ष्मण को शक्ति लगने तक की समस्त घटनाओं का विवरण देते हैं। संजीवनी, भरत जी से ही लेकर तदोपरांत चले जाते हैं। द्वादश सर्ग में सीताहरण एवं लक्ष्मण-शक्ति का समाचार वे सुन साकेतवासी रावण के विरुद्ध युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाते हैं उर्मिला का वीरत्व भाव जागता है वह स्वयं युद्धोद्यत हो जाती है। तभी वशिष्ट मुनि अपने योगबल से तथा दिव्य दृष्टि प्रदान कर लंका के रामरावण युद्ध का दृश्य दिखाते हैं जिसमें राम विजयी होते हैं। तब गुरु वशिष्ठ की आज्ञा से सब साकेतवासी सरयू स्नान कर लौट आते हैं। फिर वह दिन आता है जब श्री राम सीता, लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषण सहित अयोध्या लौट आते हैं। भरत राम का स्नेह मिलन तथा लक्ष्मण उर्मिला के भावमिलन के साथ साकेत काव्य की कथावस्तु समाप्त होती है।

कथात्मक आधार

साकेत महाकाव्य का वस्तु विन्यास सुप्रसिद्ध राम-कथा के आधार पर हुआ है। रामकथा पर संस्कृत प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दी भाषा में विपुल साहित्य सृजन हुआ। विभिन्न धर्म सम्प्रदायों और देशों के साहित्य में रामकथा की सुदीर्घ और समृद्ध परंपरा वर्तमान है। साकेत के पूर्व हिन्दी में रामकथा को लेकर तुलसी कृत 'रामचरितमानस' जैसे अमर ग्रन्थ का सृजन हो चुका है। साकेतकार ने भी उसी रामकथा रूपी प्रख्यात वस्तु को अपने महाकाव्य का माध्यम बनाया है। किन्तु कथा चयन में परम्परा विनियोजित होते हुए भी श्री मैथिलीशरण गुप्त ने मौलिक प्रसंगोद्भावनाएं की हैं जो कवि की कल्पना शक्ति एवं काव्य कौशल की परिचायक है।

रामकथा के पौराणिक स्रोत

रामकथा की उत्पत्ति और विकास के सम्बन्ध मे पाश्चात्य और पौर्वात्य विद्वानो के भिन्न भिन्न मत हैं। डा० वेबर ने रामकथा का आदि स्रोत बौद्ध दशरथ जातक को माना है जबकि श्री एच० याकोबी एव ए० ए० मक्डानल ने रामकथा को वेदो से उद्भुत कहा है। ई० हाप्किन्स और डा० वाननेगे वल आदि विद्वान रामकथा का आधार वदिक आख्यानो को ही मानते हैं। स्वदेशी विद्वानो मे श्री भदन्त आनन्द कौशल्यायन का मत है कि रामायण लेखन का आधार जातक कथाएं हैं। श्री आर० जी० भडारकर का मत है कि रामायण की रचना पतजलि के बाद हुई होगी क्योकि उनके महाभाष्य म राम का नाम नही आया है।

वास्तव मे मुख्य रामकथा का स्रोत वेद न होकर वाल्मिकि रामायण एव पुराण-ग्रन्थ ही हैं। वेदो म रामकथा के पात्रो (दशरथ राम, जनक आदि) के नाम तो प्राप्त हैं किन्तु कथा अपने पूर्ण अपूर्ण किसी भी रूप में प्राप्त नही है[1]। रामकथा की उत्पत्ति और विकास के अनुसधाता डा० कामिल बुल्के ने रामकथा का विकास वाल्मिकि रामायण से ही माना है।[2]

डा० गार्गी गुप्त का मत है कि—'अनेक विद्वाना के मतो के विवेचन से यही निष्कर्ष निकलता है कि राम कथा सत्य एव कल्पना का अद्भुत मिश्रण है। रामकथा का मूलरूप प्राचीनकाल से प्रचलित और उसका विकसित रूप रामायण मे सुरक्षित है। सभव है रामायण से पहले भी किसी राम काव्य की रचना हुई हो जिसकी दीप्ति इस महान काव्य के समक्ष क्षीण पड गई और आज उसका कोई सकेत भी अवशिष्ट नहा रहा है।[3]"

पुराण-साहित्य में रामकथा का उल्लेख मिलता है कही विस्तृत रूप में, कही सक्षिप्त और साकेतिक रूप मे। महाभारत के द्रोण और शाति पर्वों में रामकथा है। पुराण साहित्य तो आख्यानो का भडार है। पुराणों म रामकथा कितने ही स्थला पर आई है[4]। रामकथा की दृष्टि से निम्नाकित पुराण दृष्टव्य है —

१ हरिवश पुराण—अध्याय ४१, १२१, १२५
२ विष्णुपुराण—खण्ड ४, अध्याय ४

---

१ डा० कामिल बुल्के रामकथा उत्पत्ति और विकास पृ० २७–२८
२ वही, पृ० ४५७
३ डा० गार्गी गुप्त–रामचन्द्रिका का विशिष्ट अध्ययन पृ० ५०–५१
४ डा० द्वारिकाप्रसाद–साकेत में काव्य, सस्कृति और दर्शन, पृ० ६१

३ वायुपुराण—अध्याय २८
४ श्रीमद्भागवत पुराण—स्कन्द ९, अध्याय १० ११
५ कूर्मपुराण—अध्याय १९, ३१, ३४
६ अग्नि पुराण—अध्याय, ५, ११
७ ब्रह्मपुराण—अध्याय २१३
८ गुरुडपुराण—अध्याय १४३
९ स्कन्दपुराण—माहेश्वर खड, अ० ८, ब्रह्मखड—अ० २७, २२, ३०, ४४ ४७, नागरखड ९९–१०३
१० पद्मपुराण—पातालखड–अ० १–२८
११ शिवपुराण—धम सहिता अध्याय १३, १४

इस प्रकार पुराणो मे रामकथा का स्वरूप विकसित हुआ है परन्तु रामकथा को सम्यक रूप प्रदान करने का श्रेय आदि कवि वाल्मिकी को है। वाल्मिकि रामायण ने रामकथा के विकास और विधान मे महत्वपूर्ण योगदान किया है। कालान्तर मे वाल्मिकि रामायण मे भी परिवर्तन होते रहे है। पुराणकाल म, वाल्मिकि रामायण म अनेक उपाख्यान जोड दिये गये। किन्तु रामकथा नैतिक महत्ता और गुणात्मकता के कारण लोकप्रिय रही है। हिन्दी म तुलसी का 'रामचरितमानस' रामकथा की परपरा का महत्वपूर्ण विकास द्योतित करता है। तुलसी ने भी रामायण को ही प्रमुख आधार के रूप म ग्रहण किया है यद्यपि उन्होने लिखा है कि —

नाना पुराण निगमागम सम्मत यद्
रामायणे निगदित क्वचिदन्यतोऽपि।
(रामचरितमानस—बालकाड)

गुप्त जी ने वाल्मिकि रामायण और मानस को ही रामकथा के आधार रूप म ग्रहण किया है। इसके अतिरिक्त कवि ने कथा के सगठन के लिये संस्कृत भवभूति के 'उत्तर रामचरित' और कालिदास के 'रघुवश' आदि को भी आधार बनाया है।

साकेत की सृजन प्रेरणा और इतिवृत्तात्मक मौलिकता

साकेत-सृजन की प्रेरणा के अनेक कारणो म उपेक्षिता उर्मिला के चरित्र की महानता का काव्यात्मक प्रदर्शन प्रमुख है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के 'काव्येर-उपेक्षिता' नामक लेख स प्रभावित होकर गुप्त जी के काव्यपथ प्रदर्शक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी न सरस्वती मे 'कवियो की उर्मिला विषयक उदासीनता'

नामक निबंध लिखा।[1] इस निबन्ध से गुप्त जी को साकेत-सृजन की बलवती प्रेरणा प्राप्त हुई। इस प्रकार साकेत-रचना के मूल मे काव्य की उपेक्षिता उर्मिला की चरित्र व्यंजना प्रमुख है। काव्य मे वृत्त की दृष्टि से उर्मिला की कथा आई भी है किन्तु साकेतकार की राम के प्रति अटूट निष्ठा और आराध्य भाव के कारण राम सीता की कथा भी साथ-साथ चली है। साकेत का कवि राम का अनन्य उपासक है। इसलिये उसने रामकथा को आराध्य देव की गाथा के रूप मे प्रथमत स्वीकार किया है[2] और उर्मिला के चित्रण के लिए द्वितीयत। दूसरे रामभक्त होने के कारण रामकथा म भी कवि की पूज्य भावना कायरत रही है जिसके कारण कवि न रामकथा म मौलिकता लाने या उर्मिला के चरित्र को उभारने के लिए कही भी कथानक को खर्व नही किया है। उनकी स्वय की धारणा यह है कि—

किसी कथानक म आवश्यकतानुसार फेरफार करने का अधिकार कवियों को है पर आदर्श को विकृत करने का अधिकार किसी को नही।"[3] कथा के विषय में इस आदर्शोन्मुखी दृष्टिकोण के कारण गुप्त जी उर्मिला की कथा को किसी अत्यधिक नवीन रूप म प्रस्तुत न कर सके। दूसरे शब्दो मे उर्मिला के इति वृत्त को परिकल्पना रामकथा के परपरित स्वरूप से बहुत मुक्त न हो सकी। उर्मिला का वृत्त विधान कवि का अपना होते हुए भी रूढ है, उसम कवि कल्पना का उन्मुक्त विलास नही है। आचाय नददुलारे वाजपेयी के शब्दो मे—"ये शास्त्रीय और ऐतिहासिक परपरा पालन साकेत के लिए हानिकर ही हो गये। मैथिलीशरण जी को इतिहास पुराण आदि की अपेक्षा इस अवसर पर अपनी कल्पना शक्ति की ज्योति जगानी थी। पर यहां भी उन्होने रूढि शृखलाए नही तोडी। फलत उन्हें साकेत मे चित्र के दो पहलू (रामवृत्त और लक्ष्मण उर्मिला प्रेमाख्यान) दिखाकर महाकाव्य का भ ग निर्माण करना पडा।"[4] साकेत की कथा के दो पहलुओ ने साकेत के समालोचको को भी भ्रम म डाल दिया है। प्रो० त्रिलोचन पाडेय तो कहते हैं कि—'असल म साकेत' रामकथा है ही नही। आरम्भ, वर्णन, उद्देश्य किसी भी दृष्टि से नहीं है। मूल व प्रधान कथा है लक्ष्मण उर्मिला के जीवन की।'[5] इस सब विवेचन मे हम इस निष्कष पर पहुचते हैं कि —

---

१ सरस्वती-जुलाई १९०८

२ राम तुम्हारा वृत्त स्वय ही काव्य है
कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है। —साकेत

३ माइकेल मधुसूदन दत्त कृत मेघनाथ वध (काव्यानुवाद) गुप्त जी द्वारा द्वितीय सस्करण, पृ० ७२

४ आचाय नददुलारे वाजपेयी हिन्दी साहित्य बीसवी शताब्दी, पृ० ५१३

५ प्रो० त्रिलोचन पाडेय साकेत दर्शन, पृ० ७

(१) साकेत सृजन की मूल प्रेरणा उर्मिला का चरित्र निर्देशन होते हुए भी कवि का लक्ष्य आराध्यदेव की गुणगाथा रहा है।

(२) साकेत की रामकथा और उर्मिला लक्ष्मण कथा साथ साथ चलती हैं। काव्य की दृष्टि से लक्ष्मण उर्मिला की कथा ही प्रमुख है किन्तु वर्णन और विधान की दृष्टि से कौन सी आधिकारिक और प्रासंगिक है, कहना कठिन है।

(३) राम के प्रति कवि की अनन्य निष्ठा काव्यकला और कल्पना की दृष्टि से उर्मिला की चरित्र व्यंजना मे साधक सिद्ध नहीं हुई।

साकेत की कथा रामायणी और पौराणिक होते हुए भी गुप्त जी द्वारा सर्वथा नवीन एवं मौलिक ढंग से प्रस्तुत हुई है क्योंकि साकेत के प्रबंध शिल्प में प्राचीन महाकाव्यों की इतिवृत्तात्मक शैली का अनुसरण नहीं किया गया है।"[1] गुप्त जी ने साकेत का समारम्भ वाल्मिकि और तुलसी के काव्यों की भांति वर्णनात्मक ढंग से नहीं किया है। उन्होंने लक्ष्मण उर्मिला प्रमालाप से कथानक प्रारम्भ किया है जो नाटकीय एवं नवीन है। कथात्मक संयोजन में भी गुप्त जी ने मौलिक प्रसंगोद्भावनाएं की हैं। वे इस प्रकार हैं —

(१) लक्ष्मण उर्मिला के प्रेममय जीवन की समस्त कथा।
(२) कैकेयी का चरित्रांकन मनोवैज्ञानिक ढंग से।
(३) नवम् सर्ग में उर्मिला का विरह निवेदन।
(४) साकेत पुरी को ही समस्त रामकथा का संगम स्थल रखा है।
(५) लक्ष्मण शक्ति और राम रावण-युद्ध समाचार सुनकर समस्त साकेत समाज का रणोद्यत होना तथा उर्मिला का वीरत्व।
(६) वसिष्ठ जी का योग शक्ति के द्वारा अयोध्यावासियों को राम रावण युद्ध का दृश्य दिखाना आदि।

शास्त्रीय विवेचन

साकेत की कथा महाकाव्योचित गरिमा से पूर्ण है। क्योंकि वह इतिहास पुराण प्रसूत अर्थात प्रख्यात है। कथानक में कार्यान्विति और प्रभावान्विति दोनों हैं। यद्यपि कथा के दो पहलुओं के कारण साकेत में कार्य को ढूंढ निकालना कठिन है।[2] रामायण की कथा का मुख्य कार्य रावण वध है किन्तु साकेत का

---

१ डा० नगेन्द्र साकेत एक अध्ययन, पृ० ६
२ वही पृ० ०

मुख्य कार्य लक्ष्मण उर्मिला मिलन है। इसी दृष्टि से लक्ष्मण उर्मिला की कथा आधिकारिक वस्तु है। किन्तु राम की कथा का प्रासंगिकवस्तु भी नही कहा जा सकता है। दोनो कथाए परस्पर घनिष्ट हैं। स्वय कवि के मानस मे यह बात थी जिसे उसने इन शब्दो मे स्वीकार किया है— 'यद्यपि मेरी सहानुभूति उर्मिला के साथ बहुत थी फिर भी मेरी श्रद्धा और पात्रो का न छोड सकी सबके विषय मे मुझे अपनी श्रद्धा भक्ति प्रकट करनी था।'[1] साकेत के वृत्त मे कार्यावस्थाओ का रूप दिखाई देता है किन्तु रामकथा सबधी प्रसगो की भरमार के कारण समस्त कथा मे उनका सम्यक् समाहार नहा हो पाया है। कथावृत्ति का परीक्षण सधियो के सफल निर्वाह मे देख सकते हैं। साकेत की वस्तु मे सधियो की योजना है किन्तु स्वाभाविक रूप मे इनकेलिये कवि ने कोई कृत्रिम प्रयास नहा किया। साकेत के कथानक मे प्रारम्भ (१ से ८ सर्ग तक) मध्य (९ १० सर्ग) और पर्यवसान (११ १२ सर्ग) भी है।

अन्य विशेषताए

साकेत का कथावस्तु प्रस्तुतीकरण की दृष्टि मे सर्वथा नवीन है। कवि ने उर्मिला के चरित्र चित्रण मे असपृक्त और अनावश्यक घटनाओ का घटित न दिखा कर वर्णित किया है। कथा को समसामयिक आधार प्रदान करने के लिए लेखक ने सभी पात्रो और घटनाओ का युगीन बौद्धिकता के परिवेश मे भी अकित किया है। मार्मिक प्रसगो की योजना मे कवि ने वस्तु विधान कौशल का भी परिचय दिया है। उदाहरण के लिये साकेत के निम्न स्थल मार्मिक और प्रभावपूर्ण हैं जहा कवि की लेखनी खूब रमी है —

(१) लक्ष्मण उर्मिला का प्रेम सवाद, जिसमे भारतीय नव दाम्पत्य जीवन की सुदर झाकी है। प्रेम शृगार, हास-परिहास का निष्ठ रूप अकित किया गया है।[2]

(२ कैकेयी मथरा सवादो मे स्त्रियोचित ईर्ष्या और मानिनी भाव का मनोवैज्ञानिक आकलन है।[3]

(३) राम के अयोध्या से वनगमन के अवसर पर साकेत वासियो का प्रेम प्रदर्शन।[4]

---

१ साकेत-प्रथम सर्ग, पृ० २८ ४१

२ साकेत प्रथम सर्ग पृ० २८ ४१

३ साकेत द्वितीय सर्ग, पृ० ४४-५१

४ साकेत-पचम सर्ग पृ० १२८-१३५

(४) दशरथ मरण पर करुण दृश्य।

(५) भरत द्वारा ननिहाल से आगमन पर आत्मग्लानि तथा मनोव्यथा का मार्मिक चित्रण।[१]

(६) चित्रकूट की घटनाएं—राम सीता का गृहस्थ जीवन (सीता का अनुभव—मेरी कुटिया म राजभवन मन भाया) चित्रकूट की भरी सभा में कैकयी का पश्चाताप तथा कुटिया म सीताजी की चातुरी से लक्ष्मण उर्मिला का क्षणिक मिलन।

(७) उर्मिला का विरह वर्णन।

त्रुटियां

कथावस्तु के विन्यास म प्रवाह का अभाव है। डा० नगेन्द्र के शब्दो म—आरम्भ म कथा की मथर गति है मध्य म स्थिरता है और अन्त म बड़ी लपक झपक है। और ऐसा लगता है कि कवि को कुछ कहने का अवकाश ही नहा।'[२] डा० नगेन्द्र ने स्वय ही इसका कारण कवि की मानसिकता (Subjectivity) कहा है जो प्रबध और विशेषकर महाकाव्य म कथा प्रवाह के अनुकूल नहीं है[३] किन्तु यह तक बहुत ठोस प्रतीत नहीं होता। गुप्त जी सफल प्रबधकार रहे हैं। कथात्मक सयोजन की दृष्टि से भी वे असफल नहा कहे जा सकत। हां, साकेत की रचना में दीर्घावधि कथाप्रवाह म व्याघात का कारण हो सकती है। आचाय नददुलारे वाजपेयी का यह समाधान समीचीन प्रतीत होता है कि—कथावस्तु के सगठन की इस त्रुटि का कारण सभवत यह है कि कवि न साकेत की वस्तु कल्पना अपने आरम्भिक साहित्यिक जीवन म की थी और एक बार कथानक का ढांचा बन जाने के उपरान्त उसम परिवतन करना कठिन होगया।'[४] इसके अतिरिक्त नवम सग का उर्मिला विरह वणन भी कथात्मक प्रवाह म शिथिलता उत्पन्न करता है। घटना प्राधिक्य ने भी कथानक के सूत्रो को जोडने मे बाधा प्रस्तुत की है।

सर्वांगत साकेत की कथा योजना सफल ही कही जायेगी। कवि ने रामकथा को युगीन आवश्यकताओं के अनुसार सांस्कृतिक परिवेश प्रदान किया है। रामकथा की उपेक्षिता उर्मिला पर काव्य रचना कर हिन्दी प्रबंध काव्य परपरा को भी विकसित किया क्योंकि आगे चलकर रामकथा के अनेक उपेक्षित पात्रों पर प्रबंध

---

१ साकेत-सप्तम सग पृ० १८२ २०४

२ डा० नगेन्द्र साकेत एक अध्ययन, पृ० १५८

३ वही पृ० १५८

४ आचाय नददुलारे वाजपेयी आधुनिक साहित्य पृ० ५३

रचना हुई। बालकृष्ण शर्मा नवीन कृत 'उर्मिला', बलदेव उपाध्याय कृत 'साकेत सत' (भरत) आदि सफल महाकाव्य लिखे गये। डा० कमला कांत पाठक के शब्दों में- 'साकेत का वस्तु शिल्प नया और साहित्यिक क्रांति का परिचायक है।'' [१]

कामायनी

कथासार

प्रथम (चिंता) सर्ग में मनु हिमगिरि के उत्तुंग शृंग पर बैठे हुए चिंता निमग्न हैं। वे देव सृष्टि के ध्वंस और प्रलय के उपरांत जलप्लावन के दृश्य को देखकर कातर हैं। द्वितीय (आशा) सर्ग में आशा नामक प्रवृत्ति का उदय उनके हृदय में होता है। उधर सूर्य की किरणों के उदय से कालरात्रि पराजित होकर जल में अंतर्निहित हो जाती है। मनु एक गुहा में अग्निहोत्र के कार्य में निरत होकर कर्ममयी संस्कृति का अभ्युदय करने का उपक्रम करते हैं। मनु के मन में अपार संवेदना है जिसकी चोट उनके हृदय को कचोटती है। जीवन का आशा-निराशा का द्वन्द्व उनके हृदय को आंदोलित किये है। तृतीय (श्रद्धा) सर्ग में मनु की कामकन्या कामायनी अर्थात श्रद्धा से भेंट हो जाती है। श्रद्धा उन्हें दया, माया, ममता और सहानुभूति समर्पित करती है। श्रद्धा के सामीप्य से मनु के मन में एकाकीपन का द्वन्द्व शांत हो जाता है और वे भविष्य की मधुरिम कल्पना करते हैं। चतुर्थ (काम) सर्ग में अनंग की ध्वनि मनु स्वप्न में सुनते हैं जहां कामदेव मनु को कहते हैं कि वह अपने को श्रद्धा के योग्य बनावें और उनके संयोग से नवीन सृष्टि का विधान होगा। पंचम (वासना) सर्ग में मनु के मन में वासना का भावोदय होता है और वे काम-कन्या श्रद्धा के रूप-सौंदर्य पर आसक्त हो आत्मसमर्पित हो जाते हैं। षष्ठ (लज्जा) सर्ग में श्रद्धा के नारी-व्यक्तित्व में लज्जा भाव का जागरण होता है जिसके कारण मनु के प्रति आत्मसमर्पण में उन्हें संकोच होता है। अंततोगत्वा वह मनु के जीवन विकास की संगिनी बन जाती है। सप्तम (कर्म) सर्ग में मनु कर्म निरत होते हैं। वह प्रलय काल से बचे आकुली और किलात नामक पुरोहितों की सहायता से यज्ञ करते हैं जिसमें श्रद्धा द्वारा पोषित पशु की बलि दी जाती है। मनु हिंसक प्रवृत्ति से श्रद्धा के मन में क्षोभ उत्पन्न होता है। किन्तु मनु विनय भाव से श्रद्धा को सन्तुष्ट कर लेते हैं। अष्टम (ईर्ष्या) सर्ग में गर्भिणी श्रद्धा आगन्तुक (होने वाले शिशु) की भावना से कुटिया बनाती है तकली से सूत कात कर वस्त्र बनाती हुई व्यस्त रहती है। श्रद्धा का उदासीन भाव मनु को असहनीय हो जाता है वे भावी शिशु से ईर्ष्या करने

---

१ डा० कमलाकांत पाठक-मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य, पृष्ठ ४२०

मगते हैं और यहां तक कि श्रद्धा को अकेली छोड़ चल जाते हैं। नवम (इडा) सग म मनु को प्रथम ता काम का स्वर सुनाई देता है। जिसम कहा ह कि तुम श्रद्धा को भूल गये। फिर वे सारस्वत प्रदेश में आते हैं जहां इडा उनका स्वागत सम्मान करती है। वे सारस्वत प्रदेश के शासक बन जाते हैं। दशम (स्वप्न) सग में श्रद्धा अपने पुत्र मानव के साथ एकांत उदास जीवन बिताती ह। एक दिन स्वप्न में श्रद्धा देखती ह कि मनु सारस्वत प्रदश में इडा क प्रधान हो यहां के नायक बने हैं। मनु इडा पर मोहित हो उन्हें पाना चाहते हैं तभी प्रजा विद्रोह कर देती ह। श्रद्धा स्वप्न से भयभीत हो जाती ह। एकादश (सघष) सग म श्रद्धा का स्वप्न साकार हो जाता ह। मनु की स्वेच्छाचारिता प्रजा के अत्यधिक क्षोभ का कारण बन जाता ह आकुलि और किलात जो प्रजा क नेता हैं से मनु युद्ध म घायल होकर मूर्छित हो जाते हैं। द्वादश (निर्वेद) सग म इडा के मन म ग्लानि भाव पदा होता है। श्रद्धा मनु को ढूढती हुई यहा आ जाती है। जहा मनु मूर्छित हैं। वह करुणा स आप्यायित होकर मनु को सहलाती है। श्रद्धा के कुसुम कोमल स्पश से मनु जगते हैं किन्तु श्रद्धा स लज्जित एव इडा के प्रति विरक्ति के कारण वे भाग जाते हैं। त्रयोदश (दशन) सग म श्रद्धा अपने पुत्र मानव का इडा को सौंप मनु की खोज म चल देती है। मनु उसे सरस्वती नदी के तट पर एक गुहा मे मिल जाते हैं। मनु पश्चाताप प्रकट करते हैं। श्रद्धा का पुनर्मिलन उन्हें आनंदित भी करता है। श्रद्धा के सम्मुख गुहा के निविडतम म वह नर्तित नटेश के दिव्य रूप का दशन कर विमुग्ध हो जाते हैं। चतुर्दश (रहस्य) सग म श्रद्धा के साथ मनु आनद की खोज म चल देते हैं श्रद्धा उन्हे विविध लोक दिखाती हुई त्रिपुर म ले जाती है जहा वे निराधार स्थित हैं मनु के पूछने पर श्रद्धा इच्छा ज्ञान और कमलोक नामक त्रिपुरो का रहस्य समझाती ह कि तीनो के पृथक पृथक रहने के कारण ही मन की इच्छा पूर्ण नहीं होती। तभी श्रद्धा के स्मित हास्य से महाज्योति से रेखा निकल कर तीनो बिन्दुओं का लय कर देती है। ससार म दिव्यनाद पूरित हो जाता है। श्रद्धा और मनु आनद की भूमिका पर स्थित हो जाते हैं। पचदश (आनद) सग म इडा कुमार मानव और प्रजा सहित वहा पहुच जाती है। वहा समरसता की भावमहिमा के आगे अवनत हो कृतज्ञता प्रकट करती है। मानव भी श्रद्धा की गोद म ही शांति पाता है। मनु समरसता का उपदेश देते हुए आनन्द की भूमा म लीन हो जाते हैं।

कथात्मक आधार

कामायनी की कथा के प्रमुख सूत्रों का सबध मनु, श्रद्धा तथा इडा नामक पात्रों से है जिनके कथा सूत्र भारतीय वाङ्मय के विभिन्न ग्रथो मे बिखरे पड़े हैं। वेद, ब्राह्मणग्रथ उपनिषद, पुराण रामायण, महाभारत एव अनेक ग्रथो म मनु की कथा मिलती है। प्रसाद जी न कथा सयोजन क लिए इन भी ग्रथा

का सम्यक अध्ययन करने के उपरांत कामायनी की कथावस्तु का संयोजन किया है। कामायनी महाकाव्य के 'आमुख' में कवि ने कथा संयोजन सूत्रों का स्पष्ट और सप्रमाण उल्लेख किया है। प्रसाद जी ने कहा है कि—'आय साहित्य में मानवों के आदि पुरुष मनु का इतिहास वेदों से लेकर पुराण और इतिहास में बिखरा हुआ मिलता है। मनु भारतीय इतिहास के आदि पुरुष हैं राम, कृष्ण और बुद्ध इन्हीं का वंशज है।''[1] स्पष्ट है कि कवि ने मनु के व्यापक आख्यान को कामायनी का कथात्मक आधार बनाया है। साथ ही कथा शृंखला और काव्यात्मक औदात्त के लिये उसने कल्पनाशक्ति का भी समुचित उपयोग किया है उनके शब्दों में—*हां कामायनी की कथा शृंखला को मिलाने के* लिए कहीं कहीं थोड़ी बहुत कल्पना को भी काम में ले आने का अधिकार नहीं छोड़ सका हूं।'[2]

वस्तु के स्रोत

कामायनी में मनु से संबंधित ये कथाएं हैं—

(१) जलप्लावन की घटना।

(२) मनु और श्रद्धा का मिलन।

(३) मनु और इडा का मिलन सारस्वत प्रदेश में।

(४) मनु और श्रद्धा का पुनर्मिलन—आनंद की खोज में कैलाश भ्रमण।

(१) जलप्लावन की घटना —इस घटना का उल्लेख स्वदेश विदेश के विभिन्न ग्रंथों में भिन्न भिन्न प्रकार से मिलता है। पुराणों में इस घटना का उल्लेख प्रलय के रूप में हुआ है। वहां प्रलय का अर्थ समस्त सृष्टि का ध्वंस, विनाश या समाप्ति है। विष्णुपुराण में नैमित्तिक प्राकृतिक तथा आत्यंतिक नाम के तीन प्रलयों का वर्णन है।[3] इन्हीं का उल्लेख ब्रह्मपुराण में भी है।[4] अग्निपुराण[5] तथा *श्रीमद्भागवत पुराण*[6] में नैमत्तिक प्रलयों का उल्लेख है मत्स्य पुराण[7] में इस कथा का विस्तृत वर्णन है। इसके अतिरिक्त भविष्य पुराण[8] में मनु का नौका बना कर प्रलयकाल में रक्षा करने का उल्लेख किया है। जल प्लावन की घटना का वर्णन अन्य पुराणों में भी है।[9]

---

१ कामायनी—आमुख पृ० १० (दशम संस्करण)
२ वही पृ० १०
३ विष्णु पुराण—६।३-१-२
४ ब्रह्म पुराण—१३१-१
५ अग्निपुराण—२-८-२
६ श्रीमद्भागवत पुराण—८।२१४।७
७ मत्स्यपुराण—१।१०।३४
८ भविष्य पुराण—प्रतिसर्ग पर्व—३।४।१।५४
९ पद्मपुराण—१—३६ स्कन्दपुराण (वैष्णव खंड), वायुपुराण—सृष्टि प्रकरण अध्याय ६९

महाभारत म जलप्लावन की घटना का बडा सुन्दर वर्णन प्राप्त है। यहां प्रथम तो महाप्रलय की भयकर स्थितिया का वर्णन है तत्पश्चात मनु सप्तर्षि और समस्त पदार्थों के बीज एक नौका म बच जाते हैं। ब्रह्मा के कथनानुसार मनु सृष्टि रचना करते है।[1]डा० द्वारिकाप्रसाद ने अपने शोध प्रबन्ध म ससार के विभिन्न देशों और धम ग्रथो की जलप्लावन सबधी घटनाओ का वर्णन किया है और बतलाया है कि किस प्रकार बाइबिल कुरान की कथाओ का शतपथ ब्राह्मण ग्रथा आदि से साम्य है।[2] किन्तु जलप्लावन की घटनाओ तथा कामायनी म उल्लिखित एतद् विषयक वर्णनो से हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि कामायनीकार ने पुरागत भारती ग्रथो को ही आधार बनाया है।

मनु स सबधित घटनाए भी भारतीय ग्रथो से ही ली गई हैं। मनु का उल्लेख वेदो म भी हुआ है। पुराणो म चौदह मन्वतरो की कल्पना है। प्रत्येक मे एक-एक मनु अर्थात् स्वयभू स्वारोचिष उत्तम तामस रवत चाक्षुष ववस्त, सावर्णि, भौत्य रौच्य तथा चार मरसावर्ण्य नामक मनुओ का उल्लेख है।[3] वेद तथा अन्य ग्रथो म भी मनु के अनेक रूपो का उल्लेख है। वास्तव मे भारतीय साहित्य म मनु के दो रूप मिलते है—एक तो प्रजापति मनु और दूसरे स्मृतिकार मनु। विद्वानो म इस पर मतभेद हैं कि प्रजापति और स्मृतिकार मनु एक है या नही। सुभ श्री महादेवी वमा के अनुसार—'वेद म मनु की स्थिति की परीक्षा के उपरान्त यह मानने के लिए बहुत अवकाश रह जाता है कि मनुस्मृति के प्रणेता और मन्वन्तर के प्रवत्तक भिन्न हो सकते हैं।[4] इस सबध म प्रसाद जी का मत यह है कि— मन्वन्तर के अर्थात मानवता के नवयुग के प्रवत्तक के रूप मे मनु का

---

१ महाभारत—वनपर्व—१८।२-५५

२ डा० द्वारिकाप्रसाद कामायनी मे काव्य संस्कृति और दर्शन पृ ६३

३ संक्षिप्त मार्कण्डय-ब्रह्मपुराणाक (कल्याणक) पृ० २८३

कथा आर्यों की अनुश्रुति म दृढता से मानी गई ह । इसलिए ववस्त मनु को ऐतिहासिक पुरुष मानना ही उचित है । [१]

कामायनी का घटना विधान प्रसाद जी के कल्पना विलास का परिणाम है । पुराण म इतिहास का तत्व अवश्य है किंतु अतिरंजित या अलौकिक रूप में । डा० शंभुनाथ सिंह का यह कथन ठीक ही है कि—"पौराणिक कथाओ मे ऐतिहासिक सत्य छिपा रहता है । अत प्रसाद जी ने पुराण म वर्णित कथाओ को तर्कों के आधार पर ऐतिहासिक सत्यो के रूप म स्वीकार किया है ।" [२] इसका प्रमाण यह है कि जलप्लावन एव मनवतर को उन्होने पुराण कथाओ से भिन्न रूप म लिया । अत कथा सायोजन म प्रसाद जी का दृष्टिकोण पौराणिक नही ऐतिहासिक और वैज्ञानिक था । [३]

(२) **श्रद्धा और मनु का मिलन**—श्रद्धा मनु की कथा का आधार वेद पुराण हैं । मनु की भाति श्रद्धा के विषय मे भी वेदादि ग्र थो म भिन्न भिन्न उल्लेख हैं । प्रसाद जी ने कामायनी के आमुख म श्रद्धा विषयक विभिन्न स्रोतो को उद्धृत किया है । ऋग्वेद के वालखिल्य सूक्त म 'श्रद्धाया दुहिता तपस', कहकर श्रद्धा को सूर्य की पुत्री कहा गया है । [४] यजुर्वेद [५] एव शतपथ ब्राह्मण [६] में भी श्रद्धा को सूर्यस्यदुहिता कहा गया है । तत्त रीय ब्राह्मण म श्रद्धा को ऋत की पुत्री तथा काम की माता कहा गया है है । [७] पुराणो मे श्रद्धा का दक्ष प्रजापति की पुत्री माना गया है । [८] श्रीमद्भागवत महापुराण म मानवोत्पत्ति मनु और श्रद्धा से ही मानी गई है । [९] जहा तक श्रद्धा का काम की पुत्री होने का प्रश्न है इसके लिये प्रसाद जी

---

१ कामायनी– आमुख, पृ० १ ।
२ डा० शमुनाथ सिंह–हिंदी महाकाव्यो का स्वरूप विकास, प० ५६८-६६ ।
३ वही प० ५७३ ।
४ ऋग्वेद-६।१।६
५ यजुर्वेद-१६।४
६ शतपथ ब्राह्मण १२।७।३।११
७ 'श्रद्धा देवी प्रथमजा ऋतस्य (तैत्तरीय ब्राह्मण ३।१२।१-२)
'श्रद्धा कामस्य मातरम् (तैत्तरीय ब्राह्मण-२।८।८।८)
८ मार्कण्डेय पुराण ५०।१६।२० विष्णु पुराण १।७
९ "ततो मनु श्राद्धदेव सजयामास भारत ।"
श्रद्धायां जनयामास दशपुत्रान स आत्मवान ॥
भागवत-स्कन्ध ६।१।११

ने ऋग्वेद को आधार रूप मे ग्रहण किया है। श्रद्धा को कामगोत्र मे उत्पन्न होने के कारण कामायनी कहा गया है।[1] श्रद्धा और मनु के विवाह के विषय म भी भिन्न भिन्न मत हैं। कही वह सत्य की पत्नी[2] कही धम की पत्नी मानी गई है।[3] इस सबध मे श्रीमद्भागवत पुराण का उल्लेख अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि वहा स्पष्ट रूप से श्रद्धा को ववस्वत मनु की पत्नी कहा गया है[4] और प्रसाद जी ने भी इसी दृष्टिकोण को अपनाया है। इसी पुराण म यह भी कहा गया है कि श्रद्धा और मनु के सयोग से दस पुत्र हुए।[5] प्रसाद जी ने भी मानव सृष्टि का विकास श्रद्धा और मनु से ही बताया है। स्पष्ट है कि प्रसाद जी ने यहा पौराणिक आधार पर श्रद्धा मनु के मिलन प्रसग की सृष्टि की है।

इसके अनन्तर निजन प्रदश म सृष्टि के पुनारम्भ के लिए श्रद्धा और मनु मिलकर प्रयत्नरत होते है। इसी बीच आकुलि और किलात नाम के दो असुर पुरोहितो से मनु का साक्षात्कार होता है जिनके परामश पर मनु पशु यज्ञ करते हैं जिसमे श्रद्धा द्वारा पालित पशु की बलि दे दी जाती है। इन घटनाओ का पुराणो म विवेचन नहीं। क्योंकि इनका आधार यजुर्वेद ऋग्वेद एव ब्राह्मण ग्रथ ही हैं।

मनु के पशुबलि कम से श्रद्धा का रूठ जाना, गभवती होना और तदनतर भावी सतति के लिए ऊनी वस्त्र एव सुदर कुटीर आदि का निर्माण करना कवि कल्पना प्रसूत हैं। इन वणनो का आधार पौराणिक या ऐतिहासिक नहा है।

(३) मनु और इडा मिलन (सारस्वत प्रदेश मे)—मनु के मन म वासना की अग्नि प्रदीप्त होती है। वे श्रद्धा की गर्भावस्था से खिन्न रहते हैं। गभस्थ शिशु के प्रति मन म ईर्ष्या भाव जाग्रत होता है। एक दिन व गभवती श्रद्धा को छोडकर ऊजड सारस्वत प्रदेश म पहुचते है जहा की रानी इडा मनु को नगर का शासक नियुक्त करती हैं। मनु के प्रयासो से नगर समृद्ध एव सम्पन्न बन जाता

---

१ काम गोत्रजा श्रद्धा नामर्षिका। तया चानुक्रम्यत। श्रद्धया श्रद्धा कामायनी श्राद्धमानुष्टुभाविति।
—ऋग्वेद १०।१५६ (अनुक्रमणिका)

२ ऐतरेय ब्राह्मण ७।२।१०

३ मार्कण्डेय पुराण ५०।२१ और विष्णुपुराण १।७

४ श्रीमद्भागवत पुराण ६।१।१४

५ ततो मनु श्राद्धदेव सज्ञयामास भारत।
श्रद्धायां जनयामास दश पुत्रान स आत्मवान ॥
—श्रीमद्भागवत पुराण ६।१।११

है। मनु इडा मे अपनी वासना तृप्ति का प्रयास करते हैं जिसके कारण सारस्वत प्रदेश की जनता विद्रोह कर देती है। संघर्ष मे मनु घायल होते हैं।

उपर्युक्त घटनाओं मे सारस्वत प्रदेश की स्थिति का ऐतिहासिक एवं पौराणिक आधार प्राप्त होता है। ऐतिहासिक दृष्टि से सरस्वती नदी का तटवर्ती प्रदेश सारस्वत प्रदेश है। ऋग्वेद मे इस नदी का उल्लेख भी है। आधुनिक विद्वान पंजाब से बहने वाली नदी को सरस्वती मानते है किन्तु प्रसाद जी ने सप्रमाण सिद्ध किया है कि सरस्वती नदी पश्चिमी अफगानिस्तान के पास गांधार मे बहती थी, जहां सप्त सिन्धु प्रदेश था। अस्तु, कंधार के समीप स्थित प्रदेश को ही सारस्वत माना है।[1]

जहां तक पुराणों का संबंध है वहां सरस्वती नदी का उल्लेख अवश्य है किन्तु सारस्वत प्रदेश का वर्णन नहीं है। पद्मपुराण मे सरस्वती नदी की प्रशंसा मिलती है।[2] स्कन्द पुराण म सारस्वत प्रदेश को द्वारावती नगरी नाम प्राप्त है।[3] अन्य कुछ पुराणों म इडावर्त्त वर्ष का उल्लेख मिलता है।[4] जिससे प्रतीत होता है कि यह नाम इडा से संबंधित है। मनु ने इडा के साथ जो अनीतिपूर्ण आचरण करने का उद्योग किया उसका वर्णन वेदो मे तो नहीं किंतु ऐतरेय ब्राह्मण म कथासाम्य रखता है। सारस्वत प्रदेश मे जो जनविद्रोह चित्रित किया गया है, वह देवी का कोप का प्रतीक है —

> 'धूमकेतु से चला रुद्र नाराच भयंकर,
> लिए पूंछ म ज्वाला अपना अति प्रलयंकर
> अंतरिक्ष म महाशक्ति हुंकार कर उठी,
> सब शस्त्रों की धारें भीषण वेग भर उठी।'[5]

इस जनक्रान्ति का नेतृत्व करते हुए असुर पुरोहित आकुलि और किलात को दिखाया गया है जिन्हें मनु धराशायी कर देते हैं। यह प्रसंग प्रसाद जी की निजि कल्पना पर आधृत है। अंत म मनु ही रुद्र बाण के प्रहार से मूर्च्छित हो जाते हैं।

---

१ कोशोत्सव-स्मारक संग्रह पृ० १७२ १७३
२ पद्मपुराण–सरस्वती आख्यान-सृष्टिखंड–अध्याय १८
३ स्कन्द पुराण–ब्राह्मखंड धर्मारण्य माहात्म्य, अध्याय २९
४ मार्कण्डेय पुराणांक (कल्याण) पृ० ३०७, मत्स्यपुराण (हिंदी अनुवाद) पृ० २९०, वायु पुराण हिंदी पृ० ११४, अग्नि पुराण, अध्याय १०७–१०८
५ कामायनी–संघर्ष सर्ग, पृ० २०२

मनु इडा मिलन और सारस्वत प्रदेश मे गमन—इस कथा भाग मे इडा और मनु का मिलन तथा मनु इडा पर स्वच्छन्द प्रेम आरोपित करने का प्रयत्न और देवों का प्रकोप शतपथ ब्राह्मण के आधार पर, सारस्वत नगर मे मनु का इडा को भाग प्रदान आदि ऋग्वेद पर आधारित घटनाएं हैं।

४ श्रद्धा—मनु का पुनर्मिलन और आनंद की खोज मे कैलाश भ्रमण— कामायनी महाकाव्य की कथावस्तु का यह अन्तिम अंश प्रसाद जी की दार्शनिक तत्व चिंतक दृष्टि पर निर्मित हुआ है। यहां ऐतिहासिक तथ्यों का प्राय लोप है। इस कथा भाग मे मनु नटराज शिव को ताडव करते हुए देखते हैं उन्हे इच्छा ज्ञान और क्रिया के त्रिकोण की वस्तु स्थिति का परिज्ञान होता है। कैलाश मे ही इडा श्रद्धापुत्र मानव और सारस्वत प्रदेश की प्रजा पहुंच जाती है और सब मिलकर एक संयुक्त परिवार के रूप मे रम जाते हैं। मनु को अखड आनंद की प्राप्ति होती है।

शिव के ताडव नृत्य का वर्णन पुराणों मे प्राप्त है।[1] शिव के तांडव नृत्य पर संस्कृत भाषा मे एक शिव-तांडव-स्तोत्र की भी रचना हुई है। शिव महिमा स्तोत्र के अनुसार शिव का ताडव नृत्य विश्व के कल्याण के लिये है।[2] प्रसाद जी ने भी शिव के ताडव नृत्य को आनंदमयी भूमिका पर प्रस्तुत किया है —

> आनन्दपूर्ण ताण्डव सुन्दर
> झरते थे उज्ज्वल श्रम सीकर।[3]

इसी कथा मे त्रिपुर या त्रिकोण का भी वर्णन मिलता है। त्रिपुर कल्पना भारतीय वाङ्मय का प्राचीन रूपक है जिसका उल्लेख वैदिक एवं ब्राह्मण ग्रंथों के अतिरिक्त पुराणों मे भी विस्तार सहित मिलता है। शिवपुराण[4] लिंगपुराण[5] मत्स्यपुराण[6] श्रीमद्भागवत पुराण[7] महाभारत[8] आदि मे त्रिपुर कथा का उल्लेख इस

---

१ मार्कण्डेय ब्रह्मपुराण अंक (कल्याण), पृ० ३४२–४४,
   लिंग पुराण २०६ २५–२८
२ शिवमहिम्न स्तोत्र १६–३३
३ कामायनी—दर्शन सर्ग पृ० २५३
४ शिवपुराण—रुद्रसंहिता—युद्ध खंड ५–१–१०
५ लिंग पुराण—अध्याय ७१
६ मत्स्य पुराण—अध्याय १२९–१४०
७ श्रीमद्भागवत पुराण—७-१०-५३-७०
८ महाभारत—कर्ण पर्व—अध्याय ३३-३४

रूप म हुआ है कि असुरो ने लोहे चादी और स्वर्ण के तीन पुरो का निर्माण देवताओं से सुरक्षित होने के लिये किया, जिनका ध्वंश शिव द्वारा किया गया। त्रिपुर रहस्य के अनुसार श्रद्धा को त्रिपुरा देवी माना गया है वही अपनी अनतशक्ति द्वारा त्रिपुरों को एक करती है।[1]

कामायनी के मनु कैलाश पर पहुच कर अखड आनद की अनुभूति करते है उन्हें नटराज शिव के चरणो मे ही अखड आनद की प्राप्ति होती है।[1] कैलाश पर्वत का जो वर्णन कामायनीकार ने किया है उसका उल्लेख भी पुराणो म मिलता है। कैलाशगिरि की जिस अनुपम शोभा एव मानसरोवर के जिस दिव्य रूप का वर्णन पुराणो मे हुआ है उसी के अनुसार प्रसाद जी ने भी कामायनी मे कैलाश प्रदेश का चित्र अकित किया है।

इस प्रकार उपयुक्त आधार ग्रथो का अनुशीलन करने पर स्पष्ट दिखाई देता है कि इस कथा भाग की निर्मिति म प्रसाद जी की कल्पनाशक्ति का ही अधिक योग रहा हैं। उन्होने वेद ब्राह्मणग्रथो, शवागमो पुराण-ग्रथो मे विकीर्ण कथा सामग्री को लेकर कामायनी के कथानक का निर्माण किया है।

कथावस्तु में रूपक तत्व की प्रतिष्ठा

कामायनी महाकाव्य के 'आमुख" म प्रसाद जी ने लिखा है—'यदि श्रद्धा और मनु अर्थात् मनन के सहयोग से मानवता का विकास रूपक है तो भी बडा भावमय और श्लाघ्य है यह मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास बनने म सहायक हो सकता है।'[3] एक अन्य स्थान पर प्रसाद जी ने लिखा है कि- यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास मे रूपक का भी अद्भुत मिश्रण हो गया है। इसीलिये मनु श्रद्धा और इडा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए साकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। मनु अर्थात मन के दोनो पक्ष-हृदय और मस्तिष्क का सबध क्रमश श्रद्धा और इडा म भी सरलता से लग जाता है इन्ही सबके आधार पर कामायनी की कथासृष्टि हुई है।"[4]

प्रसाद जी के उपयुक्त कथनों से स्पष्ट है कि कामायनी की ऐतिहासिक कथा म रूपक तत्व का भी समन्वय है। यहा उल्लेखनीय यह कि मनत कामायनी

---

१ त्रिपुरारहस्य—ज्ञान खड, अध्याय ६

२ कामायनी—रहस्य सर्ग, पृ० २७२-७३

३ कामायनी - आमुख, पृ० ९-१०

४ वही, पृ० ६

ऐतिहासिक काव्य ही है। हा, गौण रूप म रूपक तत्त्व का भी कामायनी की कथा मे समावेश है। कामायनी की कथा मे रूपक तत्त्व की व्यजना मुख्यत तीन प्रकार से हुई है —

(१) प्रमुख पात्रो के मनोवैज्ञानिक रूपचित्रण म।
(२) कथानक के सर्गों के नामकरण एव क्रम में।
(३) घटनाओ की अप्रस्तुत अर्थ सयोजना में।

कामायनी के कथानक की रूपकात्मक अभिव्यक्ति के लिए प्रसाद जी ने काव्य के प्रमुख पात्रो के ऐतिहासिक व्यक्तित्व के साथ उन्ह मनोवैज्ञानिक रूप म चित्रित किया है। कामायनी के मनु मन के श्रद्धा हृदय की और इडा बुद्धि का प्रतीक है। कामायनी की कथा से स्पष्ट होता है कि मनु श्रद्धा के सान्निध्य से ही आनद की प्राप्ति करते हैं। इडा मनु को भौतिकता के सघष म उलझाकर उनका जीवन दुखमय बना देती है। इस प्रकार यदि मात्र बुद्धि का आश्रय ग्रहण कर मनुष्य का मन (मनु) सुख की प्राप्ति करना चाह तो सघर्षों मे पड जाता है। मन (मनु) हृदय (श्रद्धा) अर्थात् रागात्मिका वत्ति का आश्रय प्राप्त करके ही आत्म विश्वास के साथ जीवनपथ पर अग्रसर होता हुआ अखड आनद की प्राप्ति कर सकता है। कामायनी के अन्य पात्रो म आकुलि और किलात नामक पुरोहित आसुरी वृत्तियो के प्रतीक हैं जो मानव मन (मनु) को पाप कर्म (हिंसा यज्ञ) मे प्रवृत्त करते है। श्रद्धा मनु का पुत्र कुमार नवमानव का प्रतीक है।[1] डा० नगेन्द्र ने तो कामायनी म उल्लिखित देव, श्रद्धा के पशु वृषभ सोमलता आदि के क्रमश इन्द्रियो अहिंसा धर्म और भोग साकेतिक अर्थ माने है।[2]

पात्रो के अतिरिक्त कामायनी की कथा की रूपकात्मकता सर्गों क नामकरण एव क्रम से भी स्पष्ट है। प्रत्येक सर्ग का नामकरण मानवीय प्रवृत्तियो के आधार पर चिन्ता, आशा, श्रद्धा, काम, वासना आदि रूप मे किया गया है। सबसे बडी विशेषता इन सर्गों के विकास क्रम की है। इन सर्गों को उसी प्रकार चित्रित किया गया है जिस प्रकार यह वत्तिया मानव हृदय म उदित होकर विकसित होती हैं। चिन्ता मानव मन की प्रारम्भिक वत्ति है। अभाव के कारण मनुष्य के मन में चिन्ता का उदय होता है, तभी मनुष्य का चिताग्रस्त मन अशाति से निवृत्ति पाने के लिए व्यग्र होता है कि आशा का भाव उदय होता है। आशा मन को शात करती है तभी श्रद्धा का विकास होता है जो मानव के चचल मन को आस्था और विश्वास का सबल प्रदान करती है। तत्पश्चात काम और वासना नामक वत्तिया जाग्रत

१ डा० नगेन्द्र कामायनी के अध्ययन की समस्याए पृ० ४५
२ वही पृ० ४६

होती हैं। वासना के आवेग को रोकने के लिए लज्जा की उत्पत्ति होती है। वासना की तीव्रता तृष्णा के रूप मे परिणित होकर मानव को कमप्रवृत्त करती है। कम प्रवृत्त मन अहभाव के कारण ईर्ष्यालु हो जाता है और श्रद्धा की अवहेलना करके बुद्धि अर्थात् इडा का आश्रय लेता है। बुद्धि (इडा) आश्रित मन भौतिक सम्पन्नता के लिये नये नये स्वप्न देखता है। वह बुद्धि पर विजय पाने के लिए 'सघर्ष रत भी होता है। सघर्ष मे असफल होने पर मनुष्य के मन मे निर्वेद (वराग्य) की भावना का उदय होता है। चोट खाकर मनुष्य का मन पुन श्रद्धा की ओर उन्मुख होता है और श्रद्धा के सहयोग से उसे आत्मसाक्षातकार (दर्शन) होता है। तभी मानव मन अपनी पराजय का रहस्य समझता है। अ तत मानव मन इच्छा ज्ञान और क्रिया आदि वृत्तियो का समन्वय (समरसता) करके अखड आनन्द की प्राप्ति करता है। इस प्रकार सर्गो के विकास क्रम मे एक सुन्दर रूपक की योजना हुई है।

इसी प्रकार जलप्लावन, त्रिपुर, मानसरोवर, कलाश आदि मे घटित घटनाओं के साकेतिक एव प्रतीक अर्थ भी भारतीय दार्शनिक मान्यताओ की पष्ठभूमि मे मिल जाते हैं। उदाहरण के लिए कामायनी की प्रस्तुत कथा म मानसरोवर का यात्रा मनोमय कोश मे स्थित जीव की आनन्दमय कोश मे स्थित होने के लिये साधना ही है। यह आनन्दमय कोश ही कलाश है। त्रिपुर इच्छा, ज्ञान और क्रिया का त्रिकोण है जिनका समन्वय श्रद्धा के द्वारा होता है।

इस प्रकार कामायनी की प्रस्तुत कथा मे मानवता के विकास का सुन्दर रूपक सयोजित किया गया है। जहा तक रूपक तत्त्व के सफल निर्वाह और सगति का प्रश्न है—विद्वानो के अलग अलग मत हैं। एक विद्वान के शब्दों म—'पूरे आमुख के परिशीलन से यह ज्ञात हो जाता है कि कथा के इतिहासानुमादित होने के आग्रह के साथ रूपकत्व का निर्वाह ही उनको अधिक अभीष्ट है।"[1] किंतु यह दृष्टिकोण पूर्णत उपयुक्त प्रतीक नही होता। क्योकि कामायनी म प्रस्तुत कथा प्रधान है और अप्रस्तुत कथा गौण है। दूसरे रूपक तत्त्व के पूर्ण निर्वाह के लिए कवि अपनी ओर से विशेष प्रयत्नशील नहीं रहा है। कवि ने स्पष्ट कहा है कि कथा म साकेतिक अर्थ की अभिव्यक्ति भी दिखाई पड़े तो 'मुझे' (प्रसाद जी) कोई आपत्ति नही। स्पष्ट है कि कामायनी मे रूपकत्व की प्रतिष्ठा कवि को अधिक अभीष्ट नहीं। इस कथा के रूपक मे कुछ असगतिया भी हैं। जैसे "जब मनु मानव मन अथवा मनोमय कोश म स्थित जीव का प्रतीक है तो उसके पुत्र कुमार को नवमानव का प्रतिनिधि मानकर

---

1 साहित्य सन्देश—अप्रेल १९६२—अक १० भाग २३।

भी सगति नही बठती क्योकि इस तरह पिता पुत्र म लगभग एक ही प्रतीकार्थ की पुनरावत्ति हो जाती है।"[1] इस प्रकार की असगतिया के सम्बध म डा० नगेन्द्र का विचार है कि—'प्रस्तुत कथा को पूरी तरह अप्रस्तुताथ से जकड देना ठीक नही है। आखिर प्रस्तुत कथा को थोडा सा तो स्वतत्र अवकाश देना चाहिये।"[2] निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि कामायनी की कथा मे इतिहास और रूपक तत्त्व का अद्भुत समन्वय हुआ है जो अभूतपूव है।

कथानक की अन्य विशेषताए

कामायनी की कथावस्तु की अन्य विशेषताओ का विवेचन शास्त्रीय कथा विधान, नवीन प्रसगा की उद्भावना, मौलिकता एव कल्पना शक्ति के प्रयोग की दृष्टि से किया जा सकता है।

१ प्रसाद जी ने कामायनी के कथाविधान म एक ओर ऐतिहासिकता और पौराणिकता की रक्षा करते हुए कथावस्तु को प्रामाणिक बनाया है वहा दूसरी ओर मौलिक प्रसगोद्भावनाए भी की हैं। वेदो, ब्राह्मणग्रथो उपनिषदा, पुराणो आदि प्राचीन ग्रथों म बिखरे कथानक को कल्पना और काव्य शक्ति द्वारा अभिनव ढग से सग्रथित करके महाकाव्योचित गरिमा से मडित किया है।

२ कामायनी के कथानक मे निम्नाकित घटनाए कवि की सवथा मौलिक उद्भावनाए हैं —

(अ) गर्भिणी श्रद्धा के वात्सल्य भाव के कारण मनु के मन म ईर्ष्या की उत्पत्ति और परिणामस्वरूप श्रद्धा को अकेली छोडकर मनु का सारस्वत प्रदेश चला जाना।

(आ) सारस्वत प्रदेश मे मनु के विरुद्ध जनक्राति।

(इ) श्रद्धा के स्वप्न का प्रसग।

(ई) मनु और श्रद्धा की कलाश यात्रा इडा और मानव का परिणय सबध एव सारस्वत प्रदेश वासिया सहित इडा और मानव का कैलाश प्रस्थान।

(उ) इनके अतिरिक्त भी अनेक एसे स्थल एव प्रसग हैं जिनम कवि ने परिवतन-परिवद्ध न किया है। जस मनु का पुत्रोत्पत्ति के लिये नही वरन्

---

१ डा० कन्हैयालाल सहल और डा० विजयेन्द्र स्नातक कामायनी दशन, पृ० १४१।

२ डा० नगेन्द्र कामायनी के अध्ययन की समस्याए, पृ० ५२।

देव प्रवृत्ति के कारण यज्ञ करना, इडा को मनु की पालिता पुत्री के रूप में चित्रित न करना, मनु के केवल एक पुत्र का होना आदि।

३ शास्त्रीय कथा विधान की दृष्टि से कामायनी की कथावस्तु मे सधियो एव अथ प्रकृतियो की सफल योजना तो हुई है, साथ ही पाश्चात्य दृष्टि से विचार करें तो प्रारम्भ, विकास, चरम-सीमा, निगति और अ त आदि कार्यावस्थाए भी स्पष्टत देखी जा सकती है।

४ कामायनी के कथानक की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इतिहास का पुनमू ल्याकन है। भारतीय इतिहास का जितना महिमामय और गौरवमय आयोजन कामायनी के इतिवृत्त मे हुआ है वह अ यत्र दुलभ है।

५ कामायनी की कथावस्तु घटना-विरल है। "यद्यपि महानकाव्यो की कथायोजना मे घटनाओ की प्रधानता मिलती है। "कामायनी की घटना इतनी विस्तृत नहीं। वह इ गितों के द्वारा आगे बढती है। उसमें दीघता की अपेक्षा गाम्भीय अधिक है।" [1] कामायनी के कथानक म धारावाहिकता के अभाव म भी एक ऐसी अविच्छिनता विद्यमान है जिसके कारण विभिन्न प्रसगों म सफल सबध निर्वाह हुआ है। इसके अतिरिक्त कथानक यद्यपि तीव्रगति से विकसित नही होता एव कही कहीं उसम शथिल्य भी दिखाई देता है, फिर भी घटनान्विति काव्य मे सवत्र बनी हुई ह।

इस प्रकार कामायनी महाकाव्य के कथानिर्माण मे प्रसाद जी ने इतिहास मनोविज्ञान और कल्पना के प्रयोग से मानवता के विकास का अद्भुत रूपक प्रस्तुत किया है।

कुरुक्षेत्र

कथासार

प्रथम सर्ग—कुरुक्षेत्र का युद्ध पाडवो और कौरवो मे हुआ। युद्ध मे पाडव विजयी हुए। युद्ध की समाप्ति पर सभी आनद निमग्न थे। किसी को भी युद्ध के विनाशकारी भयकर और वीभत्स दृश्यो की स्मृति न थी। किन्तु धमराज युधिष्ठिर का हृदय करुणाकुल था। वे उस विजय की ओट मे हुए असख्य नर-सहार और विनाश की स्मृति करके शोकातुर हो रहे थे। वे सोचते थे कि पाच असहिष्णु नरों के द्वेष से सारे देश का सहार हो गया। करोडो माताए और नारिया पुत्र-पति

---

१ डा० प्रेमशकर प्रसाद का काव्य पृ० ३१७।

विहीन हो गई। उन्होने सोचा कि रक्त से सने इस राज्य का उपभोग म कैसे करूंगा ? इसी प्रकार के विचारो से युधिष्ठिर का हृदय इतना खिन्न हो उठा कि व पाप से कहकर भीष्म पितामह के पास चले गये।

द्वितीय सग—अजेय भीष्म ने आई हुई मृत्यु से कह दिया कि अभी जाने का योग नही है और यह कर नरशय्या पर पड़े रहे। काल के करो से उन्होने प्राणो को छीन लिया।

उसी समय धमराज को भीष्म पितामह ने चरणस्पश करते देखा। धमराज ने अत्यत अधीर और व्याकुल होकर कहा कि हे पितामह महाभारत विफल हुआ। तदन्तर धमराज ने युद्ध के विनाशकारी परिणामो का विवरण दिया और मन सघर्ष की व्यथा को व्यक्त किया। तब भीष्म पितामह ने धमराज युधिष्ठिर को सम भाते हुए कहा कि युद्ध अवश्यम्भावी है उसे पाडव नहीं रोक सकते थे। युद्ध के अनेक कारण हैं—स्वाथ राजनीतिक प्रवचना और प्रतिशोध। कौरवो ने पाडवों का अपमान किया अत प्रतिशोध की भावना से युद्ध हुआ। अस्तु, धमराज का यह विचार सवथा निमू ल है कि युद्ध करके पाप किया। भीष्म पितामह ने कहा कि पाप और पुण्य के बीच कोई विभाजक रेखा नही खीची जा सकती।

भीष्म पितामह ने श्रीराम का उदाहरण दिया कि उन्होने भी कानन मे मुनिपु गवो के अस्थि समूह को देखकर दत्यो का वध करने का प्रण किया था।

तृतीय सग—इस सग मे शाति की समस्या पर विचार किया गया है। भीष्म पितामह ने कहा कि सभी शाति चाहते हैं। कोई भी मरने मारने के घृणित व्यापार म लिप्त नहा होना चाहता किंतु विवश होकर युद्ध का वरण किया जाता है। शाति दो प्रकार की है—एक तो कृत्रिम जिसका आधार अन्याय और शोषण है, दूसरी वास्तविक शाति जिसका आधार प्रम और अहिंसा है। सत्ताधारी वग चाहता है कि वह शासित का शोषण करे और शाति भग न हो। किंतु शाति का यह कृत्रिम रूप जनमत को बहुत समय तक दमित नही कर सकता क्योकि दमन जनमानस म घृणा पदा कर क्राति करा देता है और युद्ध होते हैं। अस्तु ऐसे युद्ध के लिए उत्तरदायी आततायी शासक है। भीष्म पितामह ने कहा कि प्रतिशोध से तो शौय की शिखाए दीप्त होती हैं। प्रतिशोधहीनता तो महापाप है। अन्याय और शोषण का तो प्रतिशोध होना ही चाहिये। शाति का प्रथम न्यास न्याय और समता है। इनके अभाव मे समाज म सच्ची शाति स्थापित नही हो सकती।

चतुथ सग—ब्रह्मचय के व्रती, धम के महास्तम्भ और काल के आगार भीष्म ने कहा कि धमराज न्याय को चुराने वाला ही रण को आमन्त्रित करता है।

स्वत्व का अन्वेषण पाप नही है। कोई भी अकारण किसी से लडना नहीं चाहता। अन्यायी स्वय दूसरा के न्यायोचित स्वत्वा को छीनकर युद्ध करता है। अत युद्ध का उत्तरदायित्व सुयोधन पर है क्योकि उसने पाडवा के अधिकारा का हरण और हनन कर युद्ध किया।

इसके अतिरिक्त भी महाभारत युद्ध के अनेक कारण थे। सुयोधन ने द्रोपदी का भरी सभा मे अपहरण किया था। भीष्म ने कहा युद्ध मे जिन व्यक्तियों और नरेशों ने तुम्हारा और सुयोधन का साथ दिया वह भी व्यक्तिगत कारणों से है। उदाहरण के लिये अर्जु न का वध करने के कारण कर्ण सुयोधन की ओर से लडा। राजा द्रुपद ने द्रोणाचाय से वैर चुकाने के लिये पाडवा का साथ दिया। इसी प्रकार किसी न किसी द्वेष के कारण राजा युद्ध मे सम्मिलित हुए। राजसूय यज्ञ युद्ध का कारण बना क्योकि दूसरा पक्ष ईर्ष्या करने लगा। इस प्रकार महाभारत युद्ध की भूमिका निर्मित हुई। महाभारत एक ज्वालामुखी के समान विस्फोट था जिसके लिये बहुत समय से ताप स चित हो रहा था।

भीष्म पितामह न कहा कि पाडवा के राजसूय यज्ञ की समाप्ति पर भी व्यास जी ने राजाओ से प्रेम और सद्भावपूवक रहने को कहा था। किन्तु तुम जुए में द्रोपदी को हार गये। पितामह ने स्वय को भी युद्ध के लिये दोषी बताते हुए कहा कि मेरे मन मे प्रेम और कत्तव्य का स घष था। मुझे पाडवा से प्रेम था किन्तु कत्तव्य के बधन के कारण मे सुयोधन की ओर से लडा। उन्होने कहा कि मेरी बुद्धि ने मुक्त हृदय को शासित कर लिया और स भवत मैं ही यदि बुद्धि का अनुशासन न मान सुयोधन को न्याय के लिये ललकार देता तो वह स भल कर चलता और युद्ध न होता। किन्तु अब हो चुका। बीती बात को भुलाकर नये युग का सूत्रपात करो।

पचम सग - इस सर्ग के आरम मे कवि न तत्कालीन समाज की भीषण परिस्थिति का चित्र अ कित किया है कि किस प्रकार सर्वत्र ईर्ष्या और द्वेष की अग्नि प्रज्ज्वलित थी। धमराज ने विजय श्री प्राप्त की किन्तु वे युद्ध की विभीषिका पर विचार निरत थे। भीष्मपितामह की बात सुनते-सुनते वे रोदन कर उठे कि सवत्र विनाश का वीभत्स दृश्य है। धमराज ने कहा कि हे पितामह राक्षसी समूह माना मेरे समक्ष आकर उपहास कर रहा है कि मैं ऊपर से साधू वृत्ति धारण किए रहा किन्तु प्रतिशोध की भावना और राज्य लिप्सा न मेरे तप त्याग को तिलाजलि द दी। मुझे यह राज्य पाप कर्मों से प्राप्त हुआ है। युधिष्ठर ने पश्चाताप करते हुए कहा कि मुझे युद्ध पूव यह बोध क्या नहीं हुआ कि युद्ध का कारण राज्य का भोग और धन है। अन्यथा म युद्ध करता ही नहीं। राज्य सिंहासन के लोभ ने ही मेरा

भवनाश किया है परन्तु अब मैं सोम रूपी कृती से द्वितीय युद्ध लडूंगा। महाराज युधिष्ठिर ने कहा कि इस युद्ध में भी विजयी होंगे। मनु का यह पुत्र निराश नहीं है वह नवधर्म का दीप प्रदीप्त करेगा।

षष्ठ सर्ग—प्रस्तुत सर्ग में कवि ने स्वयं युद्ध की समस्या पर विचार किया है। द्वापरकाल के युद्ध विषय को उसने विज्ञान युग की परिस्थितियों के परिपार्श्व में भी सोचा है। सर्गारम्भ में कवि ने भगवान से पूछा कि धर्म या दया का दीप संसार में कब जलेगा? शांति की सुकोमल ज्योति से धरा कब प्रतिबिम्बित और सरस होगी। भीष्म, युधिष्ठिर, बुद्ध, अशोक, गांधी और ईसामसीह आदि ने शांति स्थापना का प्रयास किया है। सभी ने महानुभावों की वाणी को सिर झुकाकर सम्मान भी दिया है किन्तु कोई भी उनके आदर्शों को मानता नहीं। मानव आज भी पुराने मार्ग पर ही चल रहा है।

आज का युग पुराने युग की भांति बेबस भी नहीं है। आज मानव ने बुद्धि के द्वारा प्रकृति पर विजय प्राप्त कर संसार के सभी रहस्यों को ज्ञात भी कर लिया है। धरती, आकाश, सागर सर्वत्र वह गतिगामी है। जल वायु अग्नि और विद्युत मानव के दास हैं। किन्तु सच यही है कि बुद्धि की भांति मानव के हृदय का सम-विकास नहीं हो पाया है। उसे आज प्रेम और बलिदान की आवश्यकता है।

कवि कहता है कि विज्ञान के अन्वेषणों से अन्ततः मनुष्य चाहता क्या है? संसार वासना में डूब रहा है। पृथ्वी के सम्पूर्ण रहस्यों को जानकर मानव नक्षत्रों को जानने में प्रयत्नशील है। युद्ध और संहार का प्रिय मानव ग्रहों तक पहुँचना चाहता है। किन्तु यह लक्ष्य उचित नहीं। विज्ञान का लक्ष्य संसार में समरसता की प्रतिष्ठा होनी चाहिये। साम्य की स्निग्ध और उज्ज्वल रश्मि से ही विश्व में सरसता आयेगी किन्तु ऐसा कब होगा?

सप्तम सर्ग—काव्य का यह सबसे बड़ा सर्ग है। प्रारम्भ में कवि स्वयं विचार कर रहा है कि एक व्यक्ति यदि पाप की खाई में गिरकर भी निकलने का प्रयास करता है तो वह महान् है। संसार में पाप और पुण्य, उत्थान और पतन सभी हैं। युधिष्ठिर को जब यह बोध हुआ तो भीष्मपितामह ने भी वही बात कही कि धर्मराज! कुरुक्षेत्र के युद्ध से मानवता का संहार या अन्त नहीं हो सकता। दुःख की घटा दूर होकर सुख शान्ति के फूल भी खिलेंगे। द्वापर युग की समाप्ति पर जिस नवीन युग का समारम्भ होगा उसमें मानव अवश्य ही प्रगतिपथ गामी होगा। मनुष्य ने अभी भी महानता का दिग्दर्शन नहीं किया है अन्यथा वह वैर भाव त्याग देता। धर्मराज! यदि तुम मानव कल्याण के मार्ग का संधान करना चाहते हो तो

ज्ञान के दीपालोक को लेकर ससार म बढो। समाज मे सच्ची शान्ति की स्थापना तभी होगी जब सभी को अपने अधिकार प्राप्त हो जायेंगे।

भीष्म ने कहा कि बहुत पहले व्यक्तियो के समान अधिकार और कर्त्तव्य थे। अत जीवन मे सर्वत्र शान्ति थी। व्यक्ति के मन मे स्वार्थ का उदय हुआ और उसने अधिकारो का सचय आरम्भ किया। अस्तु शान्ति भग हुई सघर्ष हुए। तभी शासक का जन्म हुआ। राजतन्त्र का उद्देश्य अधिकारों की सुरक्षा तथा न्याय की स्थापना था। राजतन्त्र के भय से लोग ठीक रहने लगे। किन्तु कालान्तर मे राजाओ ने भी शोषण प्रारम्भ किया। यह शोषण जब तक समाप्त नहीं होगा, शान्ति असम्भव है। व्यक्ति का शोषण-मुक्त होना अनिवार्य है।

पितामह ने कहा कि धर्मराज! तुम्हे सन्यास ग्रहण न कर दुखी जनता को सुखी बनाने का प्रयास करना चाहिये। सन्यास से व्यक्ति ससार को नश्वर समझकर चिन्ताओ म डूब जाता है। वास्तविकता यह है कि नश्वर ससार मे ही हमें कर्त्तव्य पालन करना चाहिये। ससार म सुख दुख तो है ही। साहसी व्यक्ति सुख दुख सहन करता हुआ ससार को सरस और सुन्दर बनाता है। सन्यासी तो ससार से पलायन करता है। वह ससार के काम नहीं आता। मानव के शत्रु उसके अन्त करण म ही विद्यमान हैं अन्यत्र नहो। अत मन पर सयम रखकर मानवता के विकास में विश्वास लिये हुए जीवन को लोककल्याण के पथ पर अग्रसर करना चाहिये। पितामह ने अन्त म कहा कि धर्मराज ? आशा के दीप जलाये चलो। एक दिन अवश्य ही यह धरा युद्ध की आशका से मुक्त होगी। हार से मानव की महिमा घटगी नहीं और न जीत से तेज बढेगा। स्नेह और बलिदान से ही पृथ्वी स्वर्ग के समान हो सकेगी।

कथानक के आधार-स्रोत

कुरुक्षेत्र काव्य के कथानक का मूल आधार महाभारत है। महाभारत के "सौप्तिक पर्व" म युधिष्ठिर को मृत सम्बन्धियों के अन्तिम सस्कार सम्पन्न करते समय ज्ञात होता है कि कर्ण उनके अग्रज थे। इससे उनका मन अशान्त हो जाता है। 'शान्ति पर्व' मे युधिष्ठिर नारद के सम्मुख विस्तार से अपनी अन्तर्वेदना का प्रस्तुत करते हैं। वे युद्ध की निन्दा करते हुए वनगमन हेतु उद्यत होते हैं। किन्तु अपने चारों भाइयो तथा द्रौपदी के विरोध एव श्रीकृष्ण के परामर्श पर वे हस्तिनापुर आते हैं जहाँ उनका राज्याभिषेक होता है। श्रीकृष्ण के आदेशानुसार वे राज्य धर्म के ज्ञान-बोध हेतु भीष्म पितामह के पास जाते हैं। भीष्म पितामह बड़े विस्तार से राज्य धर्म का उपदेश देते हैं। इस वार्तालाप म युधिष्ठिर के प्रति भीष्म पितामह

ने सकडो विषयों का विवेचन किया है। भीष्म पितामह के देहावसान के बाद धर्म राज युधिष्ठिर पुन मोह ग्रस्त होकर शोक सतप्त रहते हैं। उन्हे व्यास और श्रीकृष्ण विभिन्न प्रकार से समझाते हैं।

महाभारत मे उपयु क्त कथानक 'स्त्री पर्व' से 'आश्वमेधिक पर्व' तक फला हुआ है। किन्तु कुरुक्षेत्र मे प्रयुक्त कथानक शांति एव उद्योग पर्व तक ही परि सीमित है।

थानक की विशेषताए

कुरुक्षेत्र काव्य के कथानक पर विचार करते समय हमे निम्नांकित तथ्यों को दृष्टिगत रखना चाहिए कि—

(१) कुरुक्षेत्र एक विचार प्रधान काव्य है, घटना प्रधान नहा।

(२) कुरुक्षेत्र के कवि का प्रमुख ध्येय प्रबध कार्यकारो की भाति कथा कहना नही वरन् एक विशिष्ट विचारणा को प्रस्तुत करना है।

(३) कुरुक्षेत्र मे कथातत्त्व की योजना को कवि ने महत्त्व नहो दिया है।

(१) ऐतिहासिकता

कुरुक्षेत्र काव्य की कथावस्तु की ऐतिहासिकता का जहा तक सम्बन्ध है उसे हम महाभारत की कथा के सन्दर्भ म रख कर ही देख सकते हैं। घटनाओ की दृष्टि से प्रस्तुत काव्य का कथानक तनिक भी महत्त्वपूर्ण नहो क्योकि कोई भी घटना घटित होते हुए चित्रित नही की गई है अत घटनाओ की ऐतिहासिकता का उस रूप मे (घटित होने मे) प्रश्न ही नही उठता। सम्पूर्ण का य के यत्किंचित तथाकथित कथानक का विकास दो पात्रो (युधिष्ठिर और भीष्म) के पारस्परिक सवादो के माध्यम से ही हुआ है। इन पात्रा की ऐतिहासिकता ही प्रस्तुत काव्य के कथानक की ऐतिहासिकता के रूप से ग्रहणीय है।

दूसरे महाभारत के पात्रा के सम्बन्ध म विद्वाना के अनेक मत हैं। उन्हें ऐतिहासिक और अनैतिहासिक दोनो ही माना गया है। प्रस्तुत प्रसग म उल्लेखनीय यह है कि कुरुक्षेत्र के रचयिता ने महाभारत म प्रतिपादित ऐतिहासिकता को अक्षुण्ण बनाय रखा है।

(२) काल्पनिकता या मौलिकता

महाकाव्यकार का कर्त्तव्य इतिहास-पुराण के जीर्णकाय कथानकों को युग जीवन के अनुरूप आकार प्रदान करना होता है। कुरुक्षेत्र के रचयिता ने साथ ही कल्पना शक्ति के सशक्त प्रयोग द्वारा कथा विधान मे मौलिकता का प्रदर्शन किया है।

महाभारत मे भीष्मपितामह युधिष्ठिर के प्रति राजनीति, वर्णाश्रम, राष्ट्र रक्षा, तप, सत्य, अध्यात्मज्ञान, मोक्ष, सृष्टि की उत्पत्ति एव प्रलय, युद्धनीति सैन्य सचालन विधि, धर्माचरण आदि अनेक विषयो पर सविस्तार उपदेश देते हैं कुरुक्षेत्र मे कवि ने काव्य के मूलप्रतिपाद्य विषय को ही दोनो के पारस्परिक विचार विनिमय का माध्यम बनाया है। कवि ने प्रसगेतर विषयो के प्रतिपादन द्वारा कथावस्तु में अनावश्यक आकार वृद्धि नही की है। इसके विपरीत काव्य के प्रतिपाद्य (युद्ध और शाति की समस्या) को विविध प्रकार से सागोपाग उल्लिखित किया है।

(३) युगानुरूपता

कुरुक्षेत्रकार कल्पना का प्रयोग करने में सयत रहा है। उसने कालविपरीत कुछ नही कहा है। काव्य सत्य को युग जीवन के अनुरूप ग्राह्य बनाने के लिए कवि ने स्वतन्त्र चिन्तन का सहारा भी लिया है। कवि के ही शब्दो मे—"यद्यपि, मैंने सवत्र इस बात का ध्यान रखा है कि भीष्म और युधिष्ठिर के मुख से कोई ऐसी बात नहीं निकल जाय, जो द्वापर के लिए सवथा अस्वाभाविक हो। हा, इतनी स्वतत्रता जरूर ली गई है कि जहां भीष्म किसी बात का वर्णन कर रहे हो, जो हमारे युग के अनुकूल पड़ती हों, उसका वर्णन नये और विशद रूप से कर लिया जाय।"[१] स्पष्ट हैं कि कवि ने महाभारत के कथानक को युगानुरूप आकार देने के लिए ही स्वातन्त्र्य का सदुपयोग किया है।

कुरुक्षेत्र के कथानक की सबसे बडी विशेषता यह भी है कि कवि ने प्राचीन कथा के द्वारा आधुनिक युग की एक महत्त्वपूर्ण समस्या को चित्रित किया है। वह समस्या है—युद्ध और शाति की। युद्ध की समस्या यद्यपि मानव जीवन की एक चिरतन समस्या है किन्तु वर्त्तमान युग जीवन के परिप्रेक्ष्य मे उसके स्वरूप, प्रतिक्रिया, परिणाम आदि पर विचार कवि की निजी सूझबूझ का उदाहरण हैं।

कुरुक्षेत्र के कथा सयोजन में कवि साग्रह प्रयत्नशील भी नहीं है। प्रबन्धात्मकता को बन्धन के रूप वरेण्य नही हैं। प्रस्तुत काव्य में कवि का प्रमुख लक्ष्य विचारधारा

---

१ कुरुक्षेत्र निवेदन, पृ० ३-४

का प्रतिपादन करना है। जहा कथानक इस कार्य को पूरा करने मे सक्षम नही हुआ वहा कवि ने स्वय कहना भी प्रारभ कर दिया है उदाहरण के लिये छठे सर्ग म कवि स्वय युद्ध की समस्या पर विचार करता है। वह द्वापर युग की सीमाओ को छोड विज्ञान युग के विकास की पृष्ठभूमि पर इस समस्या के समाधान और निदान की चेष्टा करता है। दूसरे शब्दो मे वातावरण के अनुरूप कथानक को गति प्रदान की गई है। डा० पाण्डेय के शब्दो मे "कुरुक्षेत्र के युद्धोत्तर काल के वातावरण को कवि ने अपने विचारो की अभिव्यक्ति के लिये बडे कौशल से चुना है। और जहा कही उसका काम कुरुक्षेत्र के कथानक से नही चल पाया वहा स्वय पाठको के सम्मुख आ गया है। छठवा सर्ग इसी प्रकार का सर्ग है।"[1]

कुरुक्षेत्र काव्य के कथानक की कुछ त्रुटिया भी है। प्रस्तुत प्रबन्ध म कथा वस्तु की महाकाव्योचित व्यापकता नही है। ऐसा प्रतीत होता है मानो दो व्यक्तियो के सवादो म ही काव्य का आदि अन्त समाहित है। घटनात्मक विनियोजन के अभाव ने कथात्मक दृष्टि से कुरुक्षेत्र को महत्व हीन बना दिया है। कदाचित इसीलिये कतिपय समीक्षको ने कुरुक्षेत्र का एक महाकाव्य मानने मे सकोच किया है किन्तु महाकाव्य म कथानक का मात्र अभाव ही उसे महाकाव्य की गरिमा से युक्त या रहित होने मे सहायक नही हो सकता। कथानक का ह्रास वर्तमान युग के साहित्य की एक विशेषता बनती जा रही है। यह बात काव्यो के साथ ही नहीं वरन् कथासाहित्य (कहानी उपन्यास, नाटक, एकाकी आदि) पर भी लागू होती है। महाकाव्य का प्राणतत्व उसके उद्देश्य की महानता और विचारो की उच्चता है जो कुरुक्षेत्र मे विद्यमान है। जहा तक कथावस्तु का सम्बन्ध है, वह महाभारत की पृष्ठभूमि पर आधारित होने कारण एक प्राचीन तथा दूसरी ओर आधुनिक युग बोध को प्रतिफलित करने के कारण नवीन भी है। वाजपेयी जी ने उचित ही ही कहा है— हम यह भी स्मरण रखना होगा कि कुरुक्षेत्र काव्य प्राचीन पृष्ठभूमि पर रखा गया है। उसमे सपूर्ण आधुनिकता हो ही नही सकती। महाभारत म आये हुए भीष्म और युधिष्ठिर सवाद को ही नये साचे मे ढालने की चेष्टा की गई है। उसमे पूरा आधार महाभारत का भी नहा है। और न पूरी नवीनता हा है। प्राचीन और नवीन के मिश्रण मे जो चीज बन सकती है वह बनी है।'[2]

कुरुक्षेत्र के कथातत्व मे बौद्धिकता की भी प्रधानता है। क्योकि यह एक चिंतन प्रधान काव्य है। आद्य त बौद्धिक मथन ही काव्य की उपलब्धि रही है।

---

१ डा० शम्भूनाथ पाडेय—आधुनिक हिन्दी काव्य म निराशावाद पृ० ३८६–८७

२ नददुलार वाजपेयी आधुनिक साहित्य, पृ० १४५

इस प्रकार कथानक की दृष्टि से कुरुक्षेत्र के सृजन की अपनी सीमाएं हैं। कुरुक्षेत्र की कथावस्तु में विज्ञानयुग के महाकाव्य की विशेषताएं दिखाई देती हैं और इस दृष्टि से आधुनिक महाकाव्यों की यह सम्भावना भी प्रकट होती है कि कथाविहीन काव्य कृतियां भी वैचारिक गरिमा के कारण महाकाव्यात्मक औदात्य से सम्पन्न हो सकती हैं।

साकेत सन्त

कथासार

साकेतसंत महाकाव्य की कथावस्तु १४ सर्गों में विभाजित है। प्रथम सर्ग का समारम्भ भरत और माण्डवी के प्रेमपूर्ण वार्तालाप से होता है। भरत अपने मामा युधाजित के साथ अपनी ननिहाल जाते हैं। मार्ग में हिमालय के सौन्दर्य एवं प्रकृति सुषमा पर भी चर्चा होती है। नवदम्पति (भरत और माण्डवी) रात्रि हिमालय पर बिताकर प्रातःकाल केकय देश में पहुँचते हैं। द्वितीय सर्ग में भरत अपने मामा युधाजित के साथ शिकार खेलने जाते हैं। भरत के बाण से एक कस्तूरिका मृग हत होकर गिर पड़ता है। मृग के करुणापूरित नेत्र देखकर भरत द्रवीभूत हो जाते हैं। तभी युधाजित भरत को ओजपूर्ण वक्तृता द्वारा शासक बनने को उत्साहित करते हैं। किन्तु भरत हिंसात्मक नीति का विरोध करते हैं। इसी अवसर पर युधाजित भरत को कैकेयी विवाह के पूर्व राजा दशरथ द्वारा किये गये प्रण की बात बताते हैं जिसमें कैकेयी के ही पुत्र को राज्याधिकार मिलना है और यह भी कहते हैं कि भरत के हितों की रक्षा के लिये वह अवध में मंथरा नामक दासी को बता आये हैं। अपने मामा की बात से भरत चिंतातुर हो जाते हैं कि अयोध्या में कहीं कुचक्र न हो जाय। वे साकेत जाने के लिये उद्यत हो जाते हैं। तभी अवध से दूत उन्हें बुलाने आ जाते हैं। तृतीय सर्ग में भरत अयोध्या पहुँचकर राम के वनगमन तथा पिता के मरण का समाचार पाकर दुःखी हो जाते हैं। वे अपनी माता और मंथरा के कुकृत्य से व्यग्र हो जाते हैं। स्वयं को कोसते हैं और माता कौशल्या से याचना करते हैं। उधर शत्रुघ्न मंथरा की दुर्दशा करते हैं। भरत मंथरा की प्राणरक्षा करते हैं। चतुर्थ सर्ग में भरत आत्मग्लानि और परिताप की ज्वाला से विदग्धप्राय होते हैं। राम, लक्ष्मण और सीता के वनगमन और पिता-मरण का हेतु वे स्वयं को समझ बड़े दुःखी होते और माण्डवी को उर्मिला की देखरेख का भार सौंपते हैं। पंचम सर्ग में मंत्रणागार में गुरु वशिष्ठ भरत को राज्यारोहित होने की आज्ञा देते हैं। भरत इस आज्ञा से स्तंभित हो जाते हैं। वे राम को वन से वापिस लाने का दृढ़ संकल्प करते हैं। अयोध्यावासी भरत के निर्णय की प्रशंसा करते हैं किन्तु कैकेयी आज्ञा के विपरीत भरत का निर्णय व निश्चय देख मूर्च्छित हो जाती है। षष्ठ सर्ग में कैकेयी वशिष्ठ जी के पास जाकर दशरथ के पुनर्जन्म

की प्रार्थना करती है और सफलता न मिलने पर राजा दशरथ के शव के साथ ही सती होने को उद्यत हो जाती है। भरत कैकेयी को सती होने से रोकते हैं। सप्तम सर्ग मे भरत नगर की व्यवस्था कर पुरजन, परिजन एव सैनिकगण सहित चित्रकूट जाने के लिए तैयार हो जाते हैं। साकेतवासी समझते हैं कि भरत राजमद में चूर होकर राम को पथ बाधा समझ कर सदैव के लिए हटाने जा रहे हैं। अत वे विरोध करते हैं। किन्तु भरत के निष्कलुष हृदय का परिचय पाकर लज्जित हो जाते है। भरत शृ गवेरपुर पहुचते हैं अष्टम सर्ग म निषादराज अरण्यवासियो सहित भरत जी के मतव्य पर सन्देह कर उन्हे रोकने के लिए युद्धोद्यत हो जाता है किन्तु भरत से भेंट होने पर उसके सन्देह का निवारण होता है। भरत उसके साथ गगा को पारकर भारद्वाज आश्रम म पहुचते है। नवम सर्ग म भारद्वाज मुनि के आश्रम का महिमा और अपार वैभव का वर्णन है। योगबल से आश्रम म समस्त सुख सुविधाओ का मुनि आयोजन करते हैं पर भरत कुछ भी ग्रहण नही करते। भरत की त्याग भावना स आश्रमवासी अत्यधिक प्रभावित होते हैं। भरत भारद्वाज मुनि की आज्ञा लेकर चित्रकूट चल जाते हैं। दशम सर्ग म मार्ग की कठिनाइयो और ग्रीष्म ऋतु की दुवह यातनाओ को सहते हुए चित्रकूट पहुचते हैं। वहां राम की पर्णकुटी को देखकर भरत विह्वल हो जाते है। एकादश सर्ग म श्रीराम स्वय भरत से मिलने के लिए आते है और मध्य-मार्ग मे ही गले मिलकर अपने निवास स्थान पर ले जाते हैं। फिर राम माताओ, पुरजनों आदि से मिलते । गुरु वशिष्ठ से पितामरण की सूचना पाकर राम दुखी होते हैं प्रेम और करुणा की प्रतिमूर्ति भरत अपनी मनोकामना कहे बिना ही कई दिनों तक चित्रकूट मे रहते हैं। द्वादश सर्ग मे भरत पर सन्देह कर जनक भी सदल बल सहित आते हैं किन्तु भरत की दशा देखकर चुप हो जाते हैं। चित्रकूट म कई दिनो रहने के पश्चात एक दिन भरत श्रीराम के हृदय की बात जानने के लिए प्रेम और कर्त्तव्य पर चर्चा करते हैं। श्रीराम चतुराई से भरत को १४ वर्षों तक अवध के राज्य सचालन का सकेत दे देते हैं। त्रयोदश सर्ग म अचानक रात्रि मे घोर आधी और वर्षा होती है। प्रकोप के शांत होने पर प्रात काल सभा आयोजित होती है और श्रीराम को वन से लौट चलने के लिए कैकेयी जाबालि, मन्त्रि और जनकराज परामर्श देते है। परन्तु राम सभा के निर्णय को अस्वीकार कर देते हैं। तभी वशिष्ठ जी सभा का सारा दायित्व भरत जी पर छोड देते हैं। भरत श्रीराम की इच्छानुसार चौदह वर्षों तक राज्य सचालन का भार स्वीकार कर चरण पादुकाए लेते हैं। चतुर्दश सर्ग मे भरत नदीग्राम में तपोमय जीवन व्यतीत करते हुए अवध के राज्य का सचालन करते हैं। माण्डवी भी पतिअर्चना मे लीन रहती है। भरत प्रजापालन-कमको धर्मव्रत के समान करते हैं। एक दिन आकाशमार्ग से सजीवनी ले जाते हुए हनुमान जी को राक्षस समझ कर भरत बाण मार कर गिरा देते हैं। तब हनुमान

सीताहरण से लेकर लक्ष्मण मूर्च्छा तक की घटनाएं सुनाते हैं। भरत विह्वल होकर लंका जाने को सन्नद्ध होते हैं तभी वशिष्ठ योगबल से लंका युद्ध के दृश्य का भविष्य दिखा देते हैं। चौदह वर्षों के बाद लंका विजय कर श्रीराम अयोध्या आते हैं। भरत उन्हें राज्य सौंपकर शांति लाभ करते हैं। अन्त में भरत माण्डवी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन कर घर में ही हिमालय का सा सुख प्राप्त करते हैं।

आधार

साकेत संत की कथावस्तु का मुख्य आधार बाल्मिकी रामायण है। कथात्मक संयोजन और घटना विनियोजन के लिए कवि गुप्त जी के साकेत का भी ऋणी है।

साकेत संत के रचयिता का प्रमुख लक्ष्य भरत के चरित्र की महत्ता को प्रकाश में लाना है। अतः उसने रामायण के उन्हीं कथाप्रसंगों को मुख्य वस्तु का आधार बनाया है जिनका भरत जी के चरित्र चित्रण से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। परंपरित रामकथा के आख्यानों में डा० बलदेव प्रसाद मिश्र ने मौलिक प्रसंगोद्भावनाएं भी की हैं।

कथानक में नवीन उद्भावनाएं

साकेत संत के प्रथम और द्वितीय सर्ग में भरत और माण्डवी का प्रेमालाप, अपने मामा युधाजित के साथ मालेट के लिए हिमालय पर जाना और घायल मृग की दशा पर भरत का करुणापूरित होना आदि घटना प्रसंग सर्वथा मौलिक और नवीन हैं।

परंपरित रामकथा में दशरथ पर यह दोषारोपण किया जाता है कि राम को राज्य देने के लिए भरत को कैकेयी देश भेजा गया था। साकेत संत में भरत के ननिहाल जाने का कारण युधाजित हैं। इसमें दशरथ जी पर कोई आरोप नहीं आता।

प्रचलित रामकथा में विधाता द्वारा मंथरा का मतिभ्रम दिखाकर उसके द्वारा कैकेयी को दो वर मांगने के लिए उत्साहित किया गया है। साकेत संत में युधाजित और भरत के मध्य हुए वार्तालाप से यह स्पष्ट हो जाता है कि भरत को राजा बनाने के लिए युधाजित ने कुचक्र किया था —

> तुमको राजा होना है, अपने को भरत संभालो।
> रघुपति से यह प्रण लेकर, कैकेयी हमने दी है।
> तुम समझो युवा हुए हो, अब बालक बुद्धि नहीं है।

है धन्य मन्थरा ही वह, यद्यपि दासी की दारा
जो समझ गई सब बातें, पाकर बस एक इशारा ।" [१]

दशरथ मरण और भरतागमन के उपरान्त केकयी की मनोदशा का चित्रण करने मे साकेतकार गुप्त जी एव साकेत सतकार मिश्र जी ने अद्भुत कला कौशल का परिचय दिया है । गुप्त जी ने ककेयी को पश्चाताप की घोर अग्नि मे परितप्त दिखाया है । किन्तु साकेत सतकार ने प्रस्तुत कथा प्रसग मे दो मौलिक उद्भावनाए की हैं । प्रथम तो ककेयी गुरु वशिष्ठ के पास जाकर राजा को पुनर्जीवित करने की प्रार्थना करती है । [२] दूसरे निरुपाय हो राजा के साथ सती होने को आरुढ़ हो जाती है । [३] भरत के बहुत अनुनय पर रुक्ती हैं । चित्रकूट म राम से मिलने के लिए भरत के परिवार, प्रजा एव सैन्यदल सहित गमन के कारण को भी कवि ने स्पष्ट कर दिया है सभी के साथ जाने का कारण श्रीराम को ससम्मान राज्य अर्पित करना था ।

भूप के अभिषेक के सब साज लो, तीर्थ के जल और पावन ताज लो ।।
छत्र चवर गजादिवाहन सग हो, चक्रवती के सभी वे रग हो ।
साथ सेना हो कि नृप को मान दे, साथ हो मुनि मण्डली जो विधान दे ।।
साथ परिजन हो कि सेवा भार लें, साथ पुरजन हो कि प्रभु स्वीकार लें ।
साथ मणि माणिक्य के भडार हो साथ राजस विभव के शृगार हो ।
चक्रवती की समूची शान से वे यहाँ आवें स्वत भगवान से ।। [३]

चित्रकूट म भरत के आगमन की सूचना कोता से प्राप्त हो जाने से रामायण की कथा के लक्ष्मण–रोष–प्रसग का प्रश्न ही नही उठता है । इसी प्रकार चित्रकूट की सभा से पूव राम और भरत के एकात मिलन का भी अवसर दिया गया है । काव्य के उपसहार मे भरत माण्डवी का मिलन भी मिश्रजी की निजी कल्पना है ।

इस प्रकार परम्परित राम कथा के प्रसगों में मिश्र जी ने नवीन उद्भावनाए की हैं । इन सब घटना परिवतनों और मौलिक प्रसगों के मूल में कवि का दृष्टिकोण भरत के चरित्र को गरिमापूण बनाना है ।

---

१ साकेत सत–सग २ पृ॰ ४२
२ वही, पृ॰ ७६
३ 'नृपति के सग जलने खड़ी थी, सति निज स्वत्व पर आकर अड़ी थी ।।'
—साकेत सत पृ॰ ४१
४ साकेत, सग ७–४७–४९ और, पृ॰ ९१–९२

'साकेतसत' के कथा सयोजन मे गुप्त जी के साकेत का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। उदाहरण के लिये चतुदश सग मे भरत को हनुमान द्वारा सीता हरण तथा लक्ष्मण को शक्ति लगने की बात कहना, राम की सहायता के लिये भरत का लका जाने को सनद्ध होना एव वशिष्ठ द्वारा दिव्य दृष्टि प्राप्त करके युद्ध मे राम की विजय देखना आदि प्रसग 'साकेत' के ही आधार पर निर्मित हुए हैं। शचीरानी गुट्ट का यह कथन उचित ही है कि "कथानक के सृजन मे मिश्रजी श्री मथिली शरण गुप्त के साकेत के बहुत ऋणी हैं। उनकी पद्धति और प्रेरणा पर काव्य की रचना हुई है।"[१] बीच म कवि की बौद्धिक विवेचना के कारण कथा प्रवाह म शथिल्य भी आया है। कही कही तो कवि का अभिप्रेत विचार-प्रतिपादन अधिक प्रमुख प्रतीत होता है। इससे प्रबन्धत्व म व्याघात भी आया है किन्तु आधुनिक युग के महाकाव्यो की यह एक सामान्य प्रवृत्ति बन गई है। साकेत सत इसका अपवाद नहीं है।

समष्टि रूप मे साकेतसत का इतिवृत्त अत्यधिक व्यापक न होते हुए भी महत्वपूर्ण है। रामकथा म भरत का चरित्र त्याग और तपस्या के कारण महान और उदात्त है। उसमे भारतीय सस्कृति की त्याग, तपस्या और कतव्य भावना की त्रिवेणी का अद्भुत सगम है। चारित्रिक महत्ता की दृष्टि से भरत का चरित्र गौरवपूर्ण एव महिमामडित है। मिश्रजी ने साकेतसत की रचना से रामकथा के अक्षय भडार की श्रीवृद्धि ही की है।

दत्यवश

कथासार

दैत्यवश की सपूर्ण कथा १८ सर्गों में विभाजित है।

प्रथम सग का समारम्भ मगलाचरण और सरस्वती वदना से होता है, तत्पश्चात दत्यवश के वैभव का वणन है। दिति के गभ से हेमलोचन और हेमकश्यप की उत्पत्ति होती है दोनो अथक तपस्या कर ब्रह्मा से वरदान प्राप्त करते हैं। इनसे त्रस्त होकर देववृन्द परम पुरुष से प्रार्थना करते हैं विष्णु क्रमश वाराहवतार एव नृसिह अवतार को लेकर दोनो का वध करते हैं। हेमकश्यप का पुत्र प्रहलाद का विरोधी होने के कारण दत्य (असिलोमा, रुद्रवक आदि) विरोचन को सिंहासन पर आरूढ करते हैं।

द्वितीय सग में इन्द्र गुरु बृहस्पति एव देवों सहित विरोचन के पास आते हैं और उसे वर भाव त्यागने का परामर्श दकर अपनी ओर मिला लेते हैं।

---

१ शचीरानी गुट्ट वचारिकी, पृ० ११९

है धन्य मन्थरा ही वह, यद्यपि दासी की दारा
जो समझ गई सब बातें, पाकर बस एक इशारा ।"[1]

दशरथ मरण और भरतागमन के उपरान्त कैकयी की मनोदशा का चित्रण करने में साकेतकार गुप्त जी एवं साकेत सतकार मिश्र जी ने अद्भुत कला कौशल का परिचय दिया है। गुप्त जी ने कैकेयी को पश्चाताप की घोर अग्नि में परितप्त दिखाया है। किन्तु साकेत सतकार ने प्रस्तुत कथा प्रसंग मे दो मौलिक उद्भावनाएं की हैं। प्रथम तो कैकेयी गुरु वशिष्ठ के पास जाकर राजा को पुनर्जीवित करने की प्रार्थना करती है।[2] दूसरे निरुपाय हो राजा के साथ सती होने को आरूढ़ हो जाती है।[3] भरत के बहुत अनुनय पर रुकती हैं। चित्रकूट मे राम से मिलने के लिए भरत के परिवार, प्रजा एवं सैन्यदल सहित गमन के कारण को भी कवि ने स्पष्ट कर दिया है सभी के साथ जाने का कारण श्रीराम को ससम्मान राज्य अर्पित करना था।

भूप के अभिषेक के सब साज लो, तीर्थ के जल और पावन ताज लो ।।
छत्र चवर गजादिवाहन संग हों, चक्रवर्ती के सभी वे रंग हो ।
साथ सेना हो कि नृप को मान दे, साथ हो मुनि मण्डली जो विधान दे ।।
साथ परिजन हो कि सेवा भार लें, साथ पुरजन हो कि प्रभु स्वीकार लें ।
साथ मणि माणिक्य के भंडार हो साथ राजस विभव के शृंगार हो ।
चक्रवर्ती की समूची शान से वे यहाँ आवें स्वतः भगवान से ।।[4]

चित्रकूट मे भरत के आगमन की सूचना कोलों से प्राप्त हो जाने से रामायण की कथा के लक्ष्मण–रोष–प्रसंग का प्रश्न ही नही उठता है। इसी प्रकार चित्रकूट की सभा से पूर्व राम और भरत के एकांत मिलन का भी अवसर दिया गया है। काव्य के उपसंहार में भरत माण्डवी का मिलन भी मिश्रजी की निजी कल्पना है।

इस प्रकार परम्परित राम कथा के प्रसंगों में मिश्र जी ने नवीन उद्भावनाएं की हैं। इन सब घटना परिवर्तनों और मौलिक प्रसंगों के मूल में कवि का दृष्टिकोण भरत के चरित्र को गरिमापूर्ण बनाना है।

---

१ साकेत संत–सर्ग २ पृ० ४२
२ वही, पृ० ७६
३ 'भूपति के संग जलने खड़ी थी, सति निज स्वत्व पर आकर अड़ी थी ।।'
—साकेत संत पृ० ४१
४ साकेत, सर्ग ७–४७–४९ और पृ० ९१–९२

'साकेतसत' के कथा सयोजन मे गुप्त जी के साकेत का भी पर्याप्त प्रभाव पडा है। उदाहरण के लिये चतुदश सग मे भरत को हनुमान द्वारा सीता हरण तथा लक्ष्मण को शक्ति लगने की बात कहना, राम की सहायता के लिये भरत का लका जान को सन्नद्ध होना एव वशिष्ठ द्वारा दिव्य दृष्टि प्राप्त करके युद्ध मे राम की विजय देखना आदि प्रमग 'साकेत' के ही आधार पर निर्मित हुए हैं। शचीरानी गुर्टू का यह कथन उचित ही है कि 'कथानक के सृजन म मिश्रजी श्री मथिली शरण गुप्त के साकेत के बहुत ऋणी हैं। उनकी पद्धति और प्रेरणा पर काव्य की रचना हुई है।'[1] बीच म कवि की बौद्धिक विवचना के कारण कथा प्रवाह म शथिल्य भी आया है। कही-कही तो कवि का अभिप्रेत विचार-प्रतिपादन अधिक प्रमुख प्रतीत होता है। इससे प्रबन्धत्व म व्याघात भी आया है किन्तु आधुनिक युग के महाकाव्यो की यह एक सामान्य प्रवत्ति बन गई है। साकेत सत इसका अपवाद नहीं है।

समष्टि रूप म साकेतसत का इतिवत अत्यधिक व्यापक न होते हुए भी महत्वपूर्ण है। रामकथा म भरत का चरित्र त्याग और तपस्या के कारण महान और उदात्त है। उसम भारतीय सस्कृति की त्याग, तपस्या और कतव्य भावना की त्रिवेणी का अद्भुत सगम है। चारित्रिक महत्ता की दृष्टि से भरत का चरित्र गौरवपूर्ण एव महिमामडित है। मिश्रजी ने साकेतसत की रचना से रामकथा के अक्षय भडार की श्रीवृद्धि ही की है।

दैत्यवश

कथासार

दैत्यवश की सपूर्ण कथा १८ सर्गों मे विभाजित है।

प्रथम सग का समारम्भ मगलाचरण और सरस्वती वदना से होता है, तत्पश्चात दत्यवश के वभव का वणन है। दिति के गभ से हेमलोचन और हेमकश्यप की उत्पत्ति होती है दोनो अथक तपस्या कर ब्रह्मा से वरदान प्राप्त करते हैं। इनस त्रस्त होकर देववृन्द परम पुरुष से प्राथना करते हैं विष्णु क्रमश वाराहवतार एव नृसिंह अवतार को लेकर दोनो का वध करते हैं। हेमकश्यप का पुत्र प्रहलाद वश विरोधी होने के कारण दत्य (अमिलोमा, रुद्रवक आदि) विरोचन को सिंहासन पर आरूढ करते हैं।

द्वितीय सग मे इन्द्र गुरु बृहस्पति एव देवों सहित विरोचन के पास आते हैं और उसे वर भाव त्यागने का परामर्श देकर अपनी ओर मिला लेते हैं।

---

[1] शचीरानी गुर्टू बचारिकी, पृ० ११९

विरोचन देवों की बातों में आकर शुम्भ, निशुम्भ चामर हयग्रीव उत्कल आदि असुरो को निवास देते हैं। ये सभी असुर मधुकटभ और महिष के दल मे जाकर मिल जाते हैं। विरोचन के पुत्र बलि को जब यह ज्ञात होता है तो वह गुरु शुक्राचाय से परामश करता है। शुक्राचाय विरोचन को देवो की कुमत्रणा के लिये सजग करते हैं। विरोचन उनकी सलाह के अनुसार असुरो से पुन सधि करने के लिये बलि का विवाह करता है। विवाहोपरान्त बलि राज्यासीन होकर सनिक सगठन तथा प्रजाहित हेतु समस्त सुविधाए जुटाता है। ९९ अश्वमेध यज्ञ करने के पश्चात भी उसका राज्य कोष अमित रहता है।

अनेक वर्षों के बाद बलि के वेन नामक पुत्र पदा होता है। वह शिव की आराधना करता है। अदेवो के उत्कष को देखकर देवो को शका होती है। वे मत्रणा करते है और विनाश के लिये चन्द्रमा और वहस्पति को भेजते हैं।

तृतीय सग—दत्या के धमव को देखकर देव समूह खिन्न होता है और वे एक षडयत्र रचते है। सब मिलकर बलि की सभा मे जाकर मुदित मन से प्रस्ताव करते हैं। सवप्रथम चन्द्रमा कहते हैं कि हम एक ही कुल की सतान हैं अत तुच्छ बातो पर विकट बधु विरोध का बडा दुष्परिणाम होगा। कही दानव भी हमारी निबलता का लाभ उठाकर अपने भाग के लिये कलह न ही कर बठे—अगर ऐसा हो गया तो हमारा सारा अस्तित्व मिट जायेगा। तत्पश्चात सुरगुरु वहस्पति ने इन्द्र के प्रस्ताव का अनुमोदन किया और सधि करने पर बल दिया। उन्होने कहा कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी इस वश के प्रतिकूल हैं। श्रीहरि ने भी छलपूवक दत्यों का वध किया है। अत तुम दोनों मिलकर वचक विधाता (ब्रह्मा) को यह पाठ पढ़ादो कि तपस्वी को वह इस प्रकार वरदान न दें। इधर ब्रह्मलोक उजाड दो और फिर विष्णु से बात करो। इस प्रकार प्रबल शत्रुओं को दबाकर ब्रह्मलोक और बकुण्ठ को मिलाकर दोनों मिलकर शासन करो। शिव कलाश पर भग में मस्त रहते हैं। जब वे विधि विष्णु का पतन सुनेंगे तो अकेले कुछ नहीं कर सकेंगे। तब तुम उन्हें प्रसन्न कर इच्छानुसार वरदान ले लेना।

सुरगुरु के यह वचन सुनकर शुक्राचाय ने मुस्कराकर दत्य नरेश को समझाया कि ये ब्रह्मा विष्णु महेश से वर कराकर तुम्हारे वश का नाश कराना चाहते हैं। जब जब हरि ने दत्यों का वध किया, इन्होने उनकी स्तुति की थी। हर समय ये शत्रु से मिलकर कुमत्रणा करते रहे हैं। अब तो ये बलि के उत्कष से घबराकर समझौता करने आये है। इस पर बलिराज ने निरथ का कलह समाप्त करने के उद्देश्य से इनके प्रस्ताव का अदाचित ही स्वीकार करने की सलाह दी। इस पर वरुण ने कहा कि सिन्धु मे कमला और अपार रत्नराशि है अत सागर

मथन करके उसके सम भाग को बाट दीजिये। बलि ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

सागर मथन के लिये वासुकिनाग की रज्जु और मदराचल की मथनी बना कर बडी बडी औपधिया डाली गयी। दत्यो ने वासुकी का मुख पकडा था अत वासुकि के विष उगलने पर उनका रग काला पड गया। अपार कष्ट सहकर भी दत्यो ने सागर मथन किया। सवप्रथम सागर से हलाहल नाम का एक विष निकला जिसे श्रीहरि के आग्रह पर शिव ने कठ मे धारण कर लिया। फिर कल्पतरु, गज, बाजि, रम्भा, धेनु, धनु आदि निकले, जिन्हें सुरो ने लिया। कौस्तुभ लेने की इच्छा दत्यो की हुई किन्तु बलि ने मना कर दिया। तब कमला निकली जिसके लिये सभी लालायित थे। अत यह तय हुआ कि प्रात स्वयवर होगा और जिसे यह सुन्दरी चाहेगी, वरमाला पहना देगी। पुन मथन करने पर धनवतरि पीयूष घट लेकर निकले। सुर जब प्रमुद मन से आगे बढे तभी बलिराज ने कडक कर कहा कि यहीं खडे रहो और घट लेकर चले गये।

चतुथ सग—दूसरे दिन प्रात सिन्धु सुता का स्वयवर हुआ। सागर ने एक सुदर भवन का निर्माण किया। देव अदेव सभी वहा बठ गये। शारदा ने एक एक देवता से सिन्धु सुता का परिचय कराया। अततोगत्वा सिन्धु सुता ने श्रीहरि को वरण किया।

अमृतपान के लिये शक्रादि देवो ने श्रीहरि से प्राथना की तथा विष्णु ने छद्म तिया का रूप धारण कर सब को मोह लिया और देवों को अमृत और अदेवों को वारुणी पिलादी। देवो की पक्ति मे राहु भी देववपु धारण कर बठ गया और अमृत पी गया। तभी शशि के बताने पर इन्द्र ने वज्र से राहु का सिर काट दिया किन्तु अमृत के प्रभाव से वह बच गया और राहुकेतु बन गया। उसने बलि के पास जाकर सारा समाचार कह दिया। अत मे कामदेव ने तिय रूप धारण कर सब सनिकों को धोखे मे डाल दिया और बलि के घर से अमृत कलश ले आया। उस समय बलि आदि दत्य सिन्धु सुता के स्वयवर मे गये हुए थे।

पचम सग—राहु से अमी वितरण की विडम्बना सुनकर बलिराज ने गुरु, मत्री और सभासदो से परामश किया और समर की तयारी हुई। देवा ने भी व्यूह रचना की। देव अदेव चमूओ सहित समरागण में आ डटे। सर्गान्त मे बाणासुर ने षटमुख से सवाद किया कि हम दोनो ने शिव से सर सधान सीखा उमा का दूध पिया फिर यहा शत्रुता क्यो ?

षष्ठ सग—षटमुख ने कहा कि कत्तव्य-कम बडा कठोर है। मैं देवो की सेना का सेनानी हू अत कत्तव्य पथ पर अडिग रहना है। इसके बाद सेनानी और

बाणासुर म परस्पर भयकर सग्राम छिड गया। बहुत दिनो तक युद्ध चलता रहा। बाणासुर क बाद तारक सेनापति बने तब इन्द्र ने बलि को बुलाया। दोनों में भयकर युद्ध हुमा। अठाइसवे दिवस दत्या की विजय हुई।

सप्तम सग–सचेत होने पर इन्द्र छिपत छिपते इन्द्रपुरी म अपनी माता के पास पहुचे मौर पुन युद्ध के लिये आज्ञा मागी। माता ने समझाया कि दत्यो ने सम्पूण पुरी पर कब्जा कर लिया है मत अपने प्राण बचाने के लिये मानसरोवर क कमल नाल म जाकर छिप जाम्रो। हम अबलाम्रो को बलि नही मारेगा। इन्द्र चला गया। इधर प्रात काल बलि ने समस्त मलकापुरी को लुटाया मौर म त म नहुष को राज्य सौप दिया। इन्द्र वर्षो तक मानसरोवर मे रहा। एक दिन हस के साथ अपनी माता पत्नी मौर पुत्र को सन्देश भेजा कि दुख के दिन सदा नहीं रहते। धय धारण करना चाहिये। हस शची को सन्देश देकर वापिस लौट आया। इन्द्र ने प्रसन्न होकर हस को वरदान दिया।

अष्टम सग–राजा बलि विजयोपरान्त अपनी पुरी मे आया। गुरु शुक्र एवं प्रजा द्वारा उसका भव्य अभिनदन किया गया। माता पिता ने उसे आशीर्वाद दिया। सम्पूर्ण नगर विजयोपलक्ष मे आनदोत्सव म मग्न हो गया।

नवम सग–बलि ने गुरु शुक्र स कहा कि बल स हमने इन्द्र को जीत लिया पर इससे हमारा राज्य स्थायी नही हो सकेगा क्योकि शत्रु के मन मे सदा बर की भावना रहेगी। ६६ अश्वमेध तो कर लिये है, सो पूरे करके मैं इन्द्रासन का अधिकारी बन सकता हूँ। गुरु की आज्ञा स बलि न सौवा अश्वमेध यज्ञ प्रारभ कर दिया। नमदा क तट पर विधिवत यज्ञ काय प्रारम्भ हुमा पर छीक हो जान स आशका भी हुई। बाणासुर अश्व को लेकर सस य बढा। माग मे अक्षय कुमार ने अश्व को पकड लिया मौर मेघनाथ युद्ध के लिए प्रस्तुत हुमा। लेकिन सायकाल का समय होन के कारण दशानन ने रोक दिया। दोनो सेनाए चली गई। बाणासुर न जब यह समाचार बलि को भिजवाया तो बलि को बडी चिंता हुई।

दशम सग–देवमाता अदिति क गभ से श्रीहरि ने वामन के रूप म जम लिया। वामन बहुत तेजस्वी था। उसे सभी विद्याम्रो म पारगत किया गया। देवो के दुख से दुखी रहन पर भी अदिति वामन को कुछ नही कहती। वह वामन स विशेष प्रेम करती थी। उसको खिन्न चित मौर आँसु बहाते देख कर वामन ने एक दिन कारण पूछा। उसके अत्यधिक आग्रह पर अदिति न दत्या द्वारा देवो के पराभव की कथा को सविस्तार सुनाया। दत्यो के आक्रमण मौर शची पर आघात इन्द्र की दुराशा की करुण कथा सुनकर वामन अमष पूरित हो गए। वह दत्यो

का नाश करने को सन्नद्ध हो गया किन्तु अदिति ने समझाया कि पहले बलि को जाकर समझा दो। यदि वह न माने तो जो चाहे सो करना।

एकादश सर्ग—के प्रारंभ मे प्रकृति वर्णन है। बाद मे वामन अपने पिता कश्यप के पास जाता है और अदिति के दुःख और दैत्यों के अत्याचारों का वर्णन किया तथा उपाय पूछा। कश्यप ने देवों की कुटिलता तथा दैत्यों की बुद्धिहीनता का समर्थन किया। किन्तु अन्ततोगत्वा वामन को आज्ञा दे दी। वामन बलि के पास गगन मार्ग से वटु का वेष बनाकर आये।

द्वादश सर्ग—वामन बलि की यज्ञशाला मे जाते हैं तथा तीन पग पृथ्वी की याचना करते हैं। शुक्राचार्य वामन की प्रवचना के रहस्य को बलि से अवगत कराते हैं पर बलि दृढ प्रतिज्ञ रहते है। बलि से तीन पग धरती मांगकर वामन दो पग मे ही आकाश-पाताल और पृथ्वी नाप लेते हैं। तीसरे पग के लिय बलि ने स्वशरीर अर्पण कर दिया। वामन ने बलि को बांधकर पाताल भेज दिया देवता पुनः इन्द्रपुरी मे आ गये।

त्रयोदश सर्ग—अश्वमेघ यज्ञ के सम्बंध मे बलि पुत्र बाणासुर जब विजयी होकर लौटा तो पुर उजडा हुआ पाया। स्वागतार्थ भी कोई नहीं आया। अन्त मे माता और गुरु से सारी घटना ज्ञात हुई। तब बाणासुर ने उत्तर में आक्रमण कर सोनपुर बसाया। वहां समस्त दैत्य रहने लगे। बाणासुर के उषा नाम की कन्या हुई जो असाधारण सुन्दरी थी। उसकी सहेली चित्ररेखा थी। उषा ने स्वप्न मे अपने प्रिय को देखा और चित्ररेखा से प्राप्त करने को कहा। चित्ररेखा मन्त्रबल से यदुवंशी अनिरुद्ध को द्वारिका से ले आई। उषा और अनिरुद्ध विहार करने लग गये। उधर द्वारिका में अनिरुद्ध की खोज प्रारम्भ हुई। उसकी माता चिन्तित रहने लगी।

चतुर्थ सर्ग—चरों द्वारा अनिरुद्ध की खोज कराई गयी। प्रमुख चर ने सोनपुर के समस्त समाचार बलदाऊ को बताये। साथ ही बाणसुता का प्रेम और नृप-नीति का भी वृत्तांत सुनाया।

पंचदश सर्ग—बलदाऊ ने समस्त प्रजाजनों, मन्त्रियों एवं सेनाध्यक्षों को बुलाकर परामर्श किया। सबकी सलाह से वे यदुवंशी सेना सहित सोनपुर आये। अक्रूर जी सन्देश लेकर बाण की सभा में उपस्थित हुए। बाणासुर को सन्देश बुरा लगा। उसने कह दिया कि गायों को चराने वाले राजकुल से विवाह नहीं कर सकते। दोनों दलों की सेनाएं युद्धोद्यत हो गयी। तभी शिव आये और बाणासुर को समझाकर विवाह हेतु प्रसन्न कर लिया। अनिरुद्ध भी आकर स्वजनों से मिले।

षोडस सर्ग—उषा अनिरुद्ध विवाह की सम्पूर्ण प्रथाओं का सविस्तार वर्णन है। बाणासुर कृष्ण बलराम की सम्पूर्ण बरात का स्वागत करता है। अंत मे बरात द्वारिकापुरी के लिए विदा होती है।

सप्तदश सर्ग—बाणासुर की पत्नी ऊषा की चिंता म चिन्तित रहती है। उसे बुलाने के लिए पुत्र प्रसवद कुमार को भेजा जाता है। विरोचन जरावस्था म रोगग्रस्त होकर मृत्यु को प्राप्त होता है। बाणासुर पुत्र प्रस्कद कुमार का राज्या भिषेक करके स्वय वृच्छतप करके शिवलोक प्रस्थान करता है।

अष्टादश सग म नृप प्रस्कदकुमार राज्य का भार मन्त्रियो को सौंपकर रानियो एव युद्ध सेना के साथ समस्त नगर का भ्रमण करता है। भ्रमण करते समय समस्त गुरुकुलो यज्ञशालाओ राजमार्गों एव व्यवसायिक वर्गों आदि का पय वेक्षण करता है। तदोपरात ऋतुओ के अनुकूल रानियो सहित आमोद प्रमोद, विलास एव शिवाराधना के साथ काव्य का अन्त होता है।

वस्तु का पौराणिक आधार

दत्यवश महाकाव्य का कथानक प्रख्यात और पौराणिक है। कथा का मुख्य आधार ग्रथ श्रीमद्भागवत पुराण है। वस दत्यवश की कथाए विष्णु पुराण, वामनपुराण एव नृसिंह पुराण भी प्राप्य है।

सृजन प्रेरणा के स्रोत

दत्यवश के सृजन की प्रेरणा कवि को मूलत रघुवश के अध्ययन से प्राप्त हुई। काव्य की प्रस्तावना म कवि न स्वीकार किया है कि वाल्मीकीय रामायण श्रीमद्भागवत हरिवश पुराण आदि के अध्ययन ने उस राक्षसो दत्यो और असुरो के विवेचनात्मक चरित्र विश्लेषण की दृष्टि दी। माइकल मधुसूदन दत्त के मेघनाथ वध तथा गुप्तजी के 'साकेत' ने उपेक्षित पात्रो पर काव्य सृजन का माग प्रशस्त किया। स्वभावत दत्यवश की रचना म इन सभी कृतियो का योग रहा है।

मौलिक प्रसगोद्भावनाए

दत्यवश का मुख्याधार श्रीमद्भागवत महापुराण होन क कारण कथाए पौराणिक और प्रख्यात तो है ही कवि ने भी कथा चयन म मौलिकता का प्रदर्शन नवीन प्रसगोद्भावनाओ द्वारा किया है। उदाहरण क लिए दत्यवश क निम्न लिखित प्रसग मौलिक और सवथा नवीन है—

प्रथम सग में वराह ने आकर हेम लोचन की पुष्प वाटिका और सुदर उद्यानों को उजाड़ा जिसमे क्रोधित होकर हेम लोचन आया। चतुर्थ सग म सिंधु-सुता के स्वयवर के अवसर पर उसके साथ सरस्वती भी हैं जो सभी देवो और अदेवो का परिचय कराती है। कवि की कल्पना शक्ति का परिचय अनेक स्थलो पर मिलता है। जसे कवि ने ब्रह्माजी का परिचय इस प्रकार दिया है —

"तीनहू लोक के ये करता अरु चारहूँ वद बनावन वारे।
दाढ़ी भई सन-सी सिगरी सिर प कहू कम न दीसत कारे॥
नारद से इनके हैं सपूत, तिन्हू पुर ज्ञान सिखावन हारे।
प्रम की पास मे बाधन को, तुम्ह दृढे बावा हैं यहा पगु धारे॥
(सग ४, पृ० ३५)

सप्तम सग म इन्द्र का हस के साथ शची को सदेश प्रेषित करना तथा अमरावती की दशा का वणन प्रसग भी नवीन है। वसे इस प्रसग पर कालिदास के मेघदूत का प्रभाव भी है। दशम सग मे वामन के जन्म, बाल लीलाओ द्वारा वात्सल्य का सजीव चित्र अकित किया गया है। त्रयोदश सग मे चित्ररेखा द्वारा अनिरुद्ध का हरण भी मौलिक प्रसग हैं।

इन नवीन प्रसगोद्भावनाओ द्वारा दत्यवश के पौराणिक कथानक मे नवीनता का विधान किया गया है।

इसके अतिरिक्त दैत्यवश के वस्तु विधान की सर्वाधिक मौलिक विशेषता पौराणिक आख्यान के साथ साथ जीव विकासवाद एव मानव मनोविज्ञान का विकास है। क्योंकि प्रस्तुत महाकाव्य म दवत्व और दानवत्व को प्रवत्तिमूलक दृष्टि स भी प्रस्तुत किया गया है। दैत्यवश के भूमिका लेखक श्री उमेशचन्द्र मिश्र के अनुसार—'मानव का अविकसित या अर्धविकसित रूप दत्य और सुविकसित रूप दव हैं। फलत दत्य प्रकृति को आदि मानव रूप कहा जा सकता है, जिसम शारीरिक बल प्रचुर मात्रा म मौजूद है, क्योंकि वह प्रकृति की सीधी देन है। परन्तु मस्तिष्क बल अधिक नही है। शारीरिक और मानसिक शक्तिया प्राय एक स अनुपात म किसी वग मे नही पायी जाती। विकास क्रम म यह भी देखा गया है कि किसी वग म जसे जस मस्तिष्कीय शक्तियों का विकास होता है शारीरिक बल का ह्रास भी हो जाता है। छल, प्रपच धूतता विश्वासघात आदि मस्तिष्क के विकास के आवश्यक परिणाम हैं। दत्य शारीरिक बल में बढ़े-चढ़े हैं तो उनमे सरल विश्वास, सत्यनिष्ठा और सिधाई विद्यमान है। देवगण शरीर मे निबल है पर चतुर अधिक है। वे बात बात म दत्यो को धोखा देते हैं और उनकी सरल

प्रकृति से लाभ उठा कर उन्हें छल लेते हैं।"[1] कथा में हम इस तथ्य का स्वाभाविक स्वरूप विकसित पाते हैं। यद्यपि दैत्यवंश के कवि ने कामायनीकार की भांति ऐसी किसी बात का उल्लेख प्रस्तावना में नहीं किया।

दैत्यवंश के वस्तु विधान में अन्विति का अभाव अवश्य खटकता है। घटनाएं कहीं कहीं तो बिखरी हुई सी प्रतीत होती है। इसका कारण अनेक राजाओं की कथाओं का समावेश है। 'दैत्यवंश' छः (हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, विरोचन, बलि, बाण और स्कन्द) राजाओं का कथानक है। प्रमुख कथा की दृष्टि से बलि का चरित्र ही महत्वपूर्ण है। मूलकथा का लक्ष्य दैत्यों का चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन है जिसका सम्यक विकास बलि के चरित्र में ही होता है। सम्पूर्ण दैत्यवंश से संबंधित होने के कारण कथानक अति विस्तार भी हो गया है।

सर्वाशेन कवि का प्रयास सराहनीय है। दैत्यवंश में प्रथम बार पौराणिक इतिवृत्त को क्रांतिकारी ढंग से प्रस्तुत किया गया है। दैत्यवंशकार का यह प्रयास युगजीवन की विचारधारा के अनुरूप और सामयिक है।

रश्मिरथी

कथासार

प्रथम सर्ग—इस सर्ग के प्रारम्भ में रंगभूमि का दृश्य है जहां अर्जुन अपनी धनुर्विद्या के प्रदर्शन द्वारा उपस्थित जनसमूह द्वारा अपनी जय जयकार सुन रहा है। इसी अवसर पर कर्ण आकर अपने शौर्य और पराक्रम का प्रदर्शन करके सबको चकित कर देता है। कर्ण अर्जुन को द्वन्द्व युद्ध के लिए आमंत्रित भी करता है। किन्तु अर्जुन इसके लिये प्रस्तुत नहीं। इसी समय कृपाचार्य कर्ण का नाम कुल जाति आदि पूछते हुए कहते हैं कि अर्जुन से लड़ने के लिये उसे राज्य कुलीन होना चाहिये। कर्ण आवेश में जातिवाद की निन्दा करता है। उस सभा में दुर्योधन कर्ण के गुणों का सम्मान करता है और उसके सिर पर राजमुकुट रख कर अंगदेश का स्वामी बना देते हैं। किन्तु सन्ध्या हो जाने के कारण सभी योद्धा लौट आते हैं। अर्जुन और द्रोणाचार्य चिंतातुर चल देते हैं। कर्ण को कौरव शंख बजाते हुए ससम्मान ले जाते। रनिवास जब राजभवन को लौटता है तो कुन्ती चिन्तातुर दिखाई देती है।

द्वितीय सर्ग—कर्ण महेन्द्र गिरि पर्वत पर जाकर अपने को ब्राह्मण बताकर परशुराम से शस्त्रास्त्र एवं युद्ध विद्या की शिक्षा लेता है। एक दिन परशुराम

---

१ श्री उमाचन्द्र मिश्र दैत्यवंश–प्रस्तावना, पृ० ६–७

कर्ण की जघा पर सिर रखकर शयन कर रहे थे, उसी समय एक विष कीट ने कर्ण की जाघ कुरेदकर रक्त प्रवाहित कर दिया, किन्तु गुरु की निद्रा भग न हो, अत कर्ण कष्ट सहन कर मौन बैठा रहा। रक्त की गर्म धार का शरीर से स्पर्श होते ही परशुराम जगे और क्रोध मे कर्ण की जाति पूछी, क्योकि वे मानते थे कि ब्राह्मण कुमार इतना सहनशील नही हो सकता। कर्ण के सूत पुत्र कहने पर परशुराम ने रण मे सब विद्या भूल जाने का शाप दे दिया। किन्तु यह ज्ञात होने पर कि कर्ण ने अर्जुन को परास्त करने के लिये छद्मवेष धारण किया है उसका क्रोध शात हुआ। कर्ण की गुरु भक्ति निष्ठा और वीरत्व से प्रसन्न होकर परशुराम ने कहा कि वह शाप मुक्त तो नही हो सकता किन्तु भारत का इतिहास उसके चरित्र की गाथा से उज्ज्वल होगा। कर्ण गुरु के चरणो की धूल लेकर चला आया।

तृतीय सर्ग—पाडव १३ वर्ष का अज्ञातवास समाप्त कर लौटे और उन्होने श्री कृष्ण को दूत बनाकर सधि प्रस्ताव के लिये दुर्योधन के पास भेजा। दुर्योधन ने अज्ञानवश श्री कृष्ण को बन्दी बनाने का प्रयत्न किया। वहा कृष्ण ने अपने विराट रूप का प्रदर्शन करके सबको सम्मोहित कर दिया। वे युद्ध की घोषणा करके चल दिये। मार्ग मे कर्ण सकुचित भाव से मिला। कृष्ण ने कर्ण को रथ पर बैठाकर उसे पाडवो से मिलने की बात कही। श्री कृष्ण ने कर्ण को उसके जन्म की बात भी बतादी। किन्तु कर्ण ने बडी विनम्रता और मानवोचित तर्कों के द्वारा कृष्ण के परामर्श को अस्वीकार कर दिया और कहा कि अब युद्ध भूमि मे ही आपके दर्शन होगे। श्री कृष्ण कर्ण को रथ से उतार कर लौट आये।

चतुर्थ सर्ग—दोपहर के समय कर्ण गगा के तट पर ध्यान लीन था तभी इन्द्र ने ब्राह्मण वेश मे आकर कर्ण से कवच और कुडल माग लिये। कर्ण ने सच्चे दानी की भाति अपने शरीर से काटकर जन्मजात कवच और कुडलो को दे दिया। इन्द्र ने प्रसन्न होकर कर्ण को अमोघ अस्त्र दिया।

पञ्चम सर्ग—कुन्ती छिपकर कर्ण के पास आई और उसे जन्म की घटना से अवगत कराया। उसने भाइयो से मिलने का भी अनुरोध किया। किन्तु कर्ण अपने कर्त्तव्य और दुर्योधन को दिये गये वचन के प्रति दृढ रहा। अन्तत कुन्ती ने अर्जुन को छोड सब पाडव पुत्रो को न मारने की प्रतिज्ञा कराकर प्रस्थान किया।

षष्ठ सर्ग—इस सर्ग मे महाभारत के युद्ध का वर्णन है कौरवो के सेनानायक भीष्मपितामह घायल होकर शरशय्या पर जब शयन करने लगे तो द्रोणाचार्य सेनापति हुए। तभी कर्ण ने युद्ध मे भाग लेना प्रारम्भ किया। भीष्म पितामह ने शय्या पर पडे ही कर्ण को युद्ध बद करने का परामर्श दिया किन्तु कर्ण ने अस्वीकार

कर दिया। कर्ण के पराक्रम से पांडवो की सेना मे हाहाकार मच गया। कर्ण अर्जुन को ढूंढ रहा था तभी श्री कृष्ण ने घटोत्कच को युद्ध मे बुला लिया। उस महामानव के वध हेतु कर्ण को इन्द्र द्वारा दिये गये एकघनी अस्त्र का प्रयोग करना पडा। घटोत्कच के वधोपरान्त शक्ति इन्द्र लोक को लौट गई। घटोत्कच के वध से कौरव बडे प्रसन्न थे किन्तु कर्ण के पास अमोघ अस्त्र न रहने के कारण वह निराश था।

सप्तम सर्ग—द्रोणाचार्य की मत्यु के पश्चात् कर्ण कौरवो का सेनानायक बना। कर्ण ने अद्भुत पराक्रम दिखाया। अन्तत युद्ध क्षेत्र मे कर्ण के रथ का एक पहिया फस गया। जब वह पहिया निकाल रहा था तब श्री कृष्ण के आदेश से अर्जुन ने अनीतिपूर्वक कर्ण का निशस्त्र अवस्था मे वध कर दिया। पाडवो में प्रसन्नता की लहर दौड गई परन्तु प्रकृति बडी उदास थी। सर्वत्र निजनता एवं शोक सन्तप्त वातावरण छा गया। श्री कृष्ण स्वय कर्ण के निधन पर क्षुब्ध थे। उन्होने कहा कि कर्ण के निधन से मनुजता का नेता खो गया। वह महादानी और जगत की ज्योति था।

कथाचयन का आधार एव सृजन प्रेरणा—

रश्मिरथी काव्य की रचना का मुख्याधार 'महाभारत' है। कथावस्तु का आधार पौराणिक होते हुए भी रश्मिरथी की सजन प्रेरणा नितात नवीन और युगीन है। आज के युग मे जाति एव कुल का दर्प व्यक्ति के गुणात्मक विकास के मार्ग मे अवरोध है जिसका प्रतिकार आवश्यक है। वस्तुत इतिहास के ऐसे आख्यान और चरित्र प्रस्तुत करने अनिवार्य हैं जिससे सामाजिक जीवन को अधोगत मान्यताओं का बहिष्कार हो और मानवीय गुणो की महत्ता को स्वीकृति मिले। रश्मिरथी काव्य सजन की मूल प्रेरणा मे यही विचारधारा कार्यरत रही है। दिनकर जी ने स्वय भूमिका मे लिखा है कि, 'हमारे समाज में मानवीय गुणो की पहचान बढने वाली है। कुल और जाति का अहकार विदा हो रहा है। आगे मनुष्य केवल उसी पद का अधिकारी होगा जो उसके सामर्थ्य से सूचित होता है उस पद का नही, जो उसके माता पिता या वश की देन हैं। इसी प्रकार, व्यक्ति अपने निजी गुणो के कारण जिस पद का अधिकारी है, वह उसे मिलकर रहेगा? यहां तक कि उसके माता-पिता के दोष भी इसमे बाधा नहीं डाल सकेंगे। कर्ण चरित का उद्धार एक तरह से नई मानवता की स्थापना का ही प्रयास है।'[1]

---

1 रामधारीसिंह दिनकर रश्मिरथी, पृ० ५

कथानक समीक्षा

रश्मिरथी एक कथा काव्य है, जिसमे कर्ण चरित्र से सम्बन्धित महाभारत की घटनाओ का कथात्मक सयोजन किया गया है। रश्मिरथी के कथानक की विशेषता यह है कि कवि ने कर्ण के चरित्र स सम्बन्धित घटनाओ की पुनरावृत्ति मात्र नहीं कर दी है, वरन् आवश्यकतानुसार अनेक स्थलो को सशोधित करके नवीन रूप म प्रस्तुत करने का भी प्रयास किया है।

प्रस्तुत काव्य म चिन्तन पक्ष की प्रबलता और चरित्र-विश्लेषण पर दृष्टि केन्द्रित होने के कारण कथा-विधान म नवीन प्रसगोद् भावनाओ की ओर कवि न विशेष ध्यान नही दिया है। काव्य के कथाचयन म घटनाओ क अभाव को कवि ने स्थान स्थान पर प्राकृतिक वातावरण की सृष्टि एव वस्तु वर्णनों की पृष्ठभूमि निर्मित करके दूर कर दिया है।

कथावस्तु का विकास स्वाभाविक एव समगति मे हुआ है। दूसरे शब्दो मे 'रश्मिरथी की कथा म पर्याप्त गतिशीलता है। सर्ग विधान की दृष्टि से प्रारम्भ से अन्त तक सभी सर्गों के कथानक म स्पष्ट घटना क्रम और प्रसगो की पूर्वापर अन्विति है।

दिनकर ने यद्यपि 'रश्मिरथी' के कथानक म नवीन मार्मिक प्रसगो की सृष्टि नही की है, किन्तु प्रचलित और पुरातन प्रसगो को मार्मिकता प्रदान करने म वे पीछे नहा रहे है। उदाहरण के लिये प्रथम, द्वितीय और पचम सर्गों को इस दृष्टि से उल्लेखनीय कहा जा सकता है।

उर्मिला

कथासार

प्रथम सर्ग—*उर्मिला महाकाव्य का प्रथम सर्ग अनेक उपशीर्षकों म बटा* हुआ है। काव्य का आरम्भ 'प्रोत्साहन' नामक उपशीर्षक से होता है जिसम लेखनी को उर्मिला की करुण कथा कहने का प्रोत्साहन है। इसी मे कवि ने वाल्मीकि और तुलसी की उर्मिला विषयक उदासीनता का भी सकेत किया है। '*प्रार्थना*' नामक द्वितीय उपशीर्षक म उर्मिला की वन्दना की गई है। इसे दूसरे शब्दों म मगलाचरण भी कह सकते हैं। तीसरा उपशीर्षक ध्यान है जिसम उर्मिला का ध्यान केवल चार पक्तियो की चतुष्पदी म किया गया है।

'पुर प्रदक्षिणा' उपशीर्षक के अंतर्गत जनकपुर नगर का वर्णन है। 'जनकपुर प्रदेश' मे जनकपुरी के वैभव एव सौ दर्य का विस्तृत वर्णन है। 'प्रसाद प्रांगण' म जनक की दुहिताओ का वर्णन किया गया है।

सीता और उर्मिला का सौ दय वर्णन करते हुए कवि उनकी केलि क्रीडाओ तथा आहार विहार का सजीव चित्र अ कित करता है। उपवन मे सीता और उर्मिला दोनों परस्पर कपोत-कपोती और आय वासा की कहानियां सुनाती है। इन कहानियो म सीता और उर्मिला के भावी जीवन का आभास है। सीता की कहानी मे एक राजा दूसरे राजा की क या के अपहरण के लिये आक्रमण करता है। कि तु उसकी चेष्टा विफल हो जाती है। वह पराजित होता है। उर्मिला की कहानी म एक क र र आ खेटक ने विरह मे एक भोले कपोत को बाण से मार दिया तो कपोती विरह विदग्ध होती है और एक दिन उसका प्राणा त भी हो जाता है। दोना कपोत की कहानी पर विवाद भी करती है। सीता कहती है कि यदि वह कपोती होती तो कपोत के साथ वन मे अवश्य चली जाती कि तु उर्मिला कहती है कि ऐसे अवसर पर हठवादी होना उचित नही।

दोनो फूल चुनकर चली जाती है जनक और उनकी पत्नी पुत्रियों से वात्सल्य एव विनोदपूर्ण बात करते हैं। जनक पुत्रियो के भविष्यो पर भी विचार करते है।

द्वितीय सर्ग—इस सग म प्रारभ से लेकर 'राजप्रासाद मे' उपशीर्षक तक धनुष यज्ञ का वणन है, जिसमे जनक की चारो पुत्रियो का विवाह महाराज दशरथ के चारो पुत्रो से होता है। 'राजप्रसाद मे" उपशीर्षक म राम और उनके भ्राताओ के विवाह के उपरा त छाए आन दोल्लास का वणन है। सीता और उर्मिला की सभी मुक्त कठ स प्रशसा करते हैं। कवि ने विशेषकर उर्मिला के गुणो की भूरि भूरि प्रशसा की है।

इस सग का दूसरा उपशीर्षक 'मुकलित कुसुमदृशान' है जिसमे लक्ष्मण और उर्मिला भ्रमण के लिये विन्ध्याद्रि जाते हैं कवि ने प्रणय के बडे सु दर दृश्य अ कित किये हैं। नवविवाहित दपति की प्रणय क्रीडाओ का अ कन करते समय वासना का कही वेग नही है बल्कि प्रेम की सरसता का सु दर अ कन हुआ है। लक्ष्मण और उर्मिला के परस्पर सवादो मे प्रेम के सच्चे स्वरूप और विशेषताओ का भी वणन है।

तृतीय सग—सग का प्रारम्भ 'आँसू के सम्ब ध म कवि के विचारों से होता है। "आसू" की उत्पत्ति के कारण, प्रयोजन और साधक्य पर कवि ने सु दर

कल्पनाएं की हैं। इसके अनन्तर सीता राम के वनगमन के अवसर पर लक्ष्मण उर्मिला से विदा मांगने जाते हैं। लगभग सौ पृष्ठों में भी अधिक में दोनों का भावपूर्ण एवं मर्मस्पर्शी वाद विवाद है। उर्मिला आवेश में यहाँ तक कह देती है कि —

"यह कैकेयी कौन ? कि जो श्री रामचन्द्र को भेजे वन ?
यह कैकेयी कौन ? उजाड़े, जो सीता का सुखद सदन ?
यह कैकेयी कौन उर्मिला का, उपवन जो करे दहन ?
कैकेयी ? लूट ले सुमित्रा, माता की गोदी का धन ?[1]

लक्ष्मण सब प्रकार से उर्मिला को समझाते हैं। दोनों के वार्तालाप के मध्य सीता भी आ जाती है। उनको लक्ष्य करके भी उर्मिला ने बहुत सी बातें अपनी मर्म व्यथा को व्यक्त करने को कहीं। अन्ततः उर्मिला ने कहा कि —

पर, हे आर्य ! आत्म आहुति की !
यह घटिका यदि आई है
तो मैं बाधा नहीं बनूंगी !
श्री रघुवीर दुहाई है ![2]

फिर लक्ष्मण माता सुमित्रा से विदा लेने गये। लक्ष्मण ने माता की आज्ञा और आदेश को शिरोधार्य कर निम्न प्रतिज्ञा से प्रस्थान किया।

"माँ देखोगी दूध तुम्हारा नहीं लजायेगा लक्ष्मण,
देकर अपने प्राण करेगा, वह आदर्शों का रक्षण।"[3]

चतुर्थ सर्ग—इस सर्ग का नाम विरह मीमांसा है। 'उर्मिला' के रचयिता ने विरह का व्यापक स्वरूप विवेचन किया है। उसने विरह की महिमा और संसार में उसके प्रसार का विस्तार से वर्णन किया है। प्रकृति के एक एक उपादान में विरह भाव की कल्पना की गई है। संसार की वेदना और करुणा को विरह का ही परिणाम माना गया है।

उर्मिला भी विरह वेदना से व्याकुल है। वह प्रियतम के आगमन की प्रतीक्षा में लम्बी अवधि से वियोग को सह रही है।

पंचम सर्ग—इस सर्ग की रचना दोहा और सोरठों में की गई है। ७०४ दोहे सतसई का रूप ग्रहण कर लेते हैं। इसमें ब्रज और खड़ी बोली का मिश्रित रूप है। एक एक दोहे में भावों की सुन्दर छटा दर्शनीय है।

---

१ उर्मिला, पृ० १३५
२ उर्मिला, पृ० ३०३
३ वही, पृ० ३३६

सम्पूर्ण सर्ग मे विरहणी उर्मिला की मूक वेदना को साकार किया गया है। विविध ऋतुओं मे पावस ऋतु उर्मिला को अधिक कष्ट देती है। प्रिय की स्मृतियाँ उसे विह्वल किये रहती हैं उर्मिला की विरह वेदना विश्व व्यापी है। उसकी व्यथा बडी करुण और हृदय द्रावी है।

षष्ठ सर्ग—यह काव्य का अन्तिम सर्ग है। इस सर्ग का प्रारम्भ रावण वध के उपरान्त राम द्वारा विभीषण को लका के राज्य दिये जाने से होता है। विभीषण के राज्याभिषेक के अवसर पर राम धर्म की महत्ता पर वक्तव्य देते हैं। फिर पुष्पक विमान म राम, सीता और लक्ष्मण अयोध्या लौट आते हैं। मार्ग मे लक्ष्मण को ध्यान मग्न देख सीता अपने देवर से वाक्विनोद भी करती है कि कही उर्मिला की स्मृति तो नहा हो रही। दोनो के सवाद म सीता की सहानुभूति भी चित्रित है। राम के अयोध्या आगमन पर सर्ग की समाप्ति हो जाती है।

कथात्मक आधार—

कथानक की दृष्टि से 'उर्मिला' महाकाव्य की रचना का स्थूल आधार राम कथा है। राम-कथा का पुराण ग्रथो मे सविस्तार वर्णन हुआ है। उर्मिला महाकाव्य के घटनात्मक सयोजन मे प्रचलित राम कथा का आधार होते हुए भी काव्य-कलेवर निर्माण म कवि कल्पना प्रमुख रूप से सहायक रही है। सामान्यत वाल्मिकि रामायण की कथा को ही उसने यत्र तत्र ग्रहण किया है।

कथानक के सम्बन्ध मे कवि की धारणाए

उर्मिला काव्य की भूमिका म एतद्विषयक कुछ विचार कवि ने व्यक्त किये है जो सक्षेप म निम्न प्रकार से है —

(१) 'मैं यह नहा कहता कि प्रबन्धकाव्य के लिये नये विषय नही मिल सकते या नये विषयो को लेकर प्रबन्ध काव्य की रचना नही हो सकती। मेरा मत भी तो उलटा इस सिद्धान्त से है कि पुराने विषयो या व्यक्ति विषयो पर आजकल प्रबन्ध काव्य लिखना समय गवाने के बराबर है। पुराने विषयो को लेकर भी नवीनता म सुसज्जित किया जा सकता है।'[१]

(२) '... वस्तुत अभिनवता नवीनता मौलिकता बहुत अंशो म कलाकार की अनुभूति पर अवलबित है। अत काव्य के लिये ऐतिहासिक पौराणिक

१ उर्मिला लक्ष्मणापगमस्तु, पृ० घ

विषय केवल मात्र चवित-चवण के तक के आधार, पर त्याज्य या वज्य नही हो सकत।" [१]

(३) 'मेरी इस 'उर्मिला' मे पाठकों को रामायणी कथा नही मिलेगी। रामायणी कथा से मेरा अर्थ है क्रम म राम लक्ष्मण जन्म मे लगाकर रावण विजय और फिर अयोध्या आगमन तक की घटनाओ का वणन। ये घटनायें भारतवर्ष म इतनी अधिक सुपरिचिता हैं कि इनका वणन करना मैंन उचित नही समझा।" [२]

(४) "इसम जो कुछ कथा भाग है वह गहीत है—वणनात्मक अर्थात् घटना विवरणात्मक नहा।" [३]

इस प्रकार स्पष्ट है कि नवीन जी ने 'उर्मिला' महाकाव्य के सृजन म परम्परित पौराणिक रामकथा को ग्रहण तो किया है किन्तु उसके प्रस्तुतीकरण म घटनात्मक वाहुल्य न लाकर काल्पनिक कथाप्रसंगों की नवीन सृष्टि की ह।

सृजन प्रेरणा

उर्मिला की सृजन प्रेरणा पर विचार किया जाय तो इससे पूर्व उर्मिला के चरित्र को लेकर गुप्त जी 'साकेत' महाकाव्य की रचना कर चुके थे। प्रश्न यह है कि नवीन जी ने पुन उसी काव्य उपेक्षित उर्मिला के चरित्र पर काव्य सृष्टि क्या की ? यदि साकेत' और 'उर्मिला' का तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो इस प्रश्न का समाधान हो जाता है। साकेत म उर्मिला काव्य सृजन की प्रेरिका होकर भी काव्य का सवस्व नही बन पाई ह। गुप्त जी राम माता के व्यक्तित्व के समक्ष उर्मिला के व्यक्तित्व को उभार नहीं सके हैं। दूसरे साकेत म 'राम कथा के सम्पूर्ण चित्रण की आकांक्षा न भी उर्मिला के जीवन की समग्रता को भी चित्रित नहीं होने दिया। सत्य तो यह है कि राम की महत्ता को सर्वोपरि रखने एव सम्पूर्ण रामकथा के अंकन का लोभ संवरण न कर सकने के कारण उर्मिला के चरित्र का एक नायिका के रूप मे पूर्ण प्रतिफलन नहीं हो सका है। साकेत के कवि ने उर्मिला का सवत्र ही उल्लेख किया है किन्तु उसके चरित्र को सर्वोपरिता प्राप्त नहीं हो पाई है। इसके विपरीत 'उर्मिला' महाकाव्य सब प्रकार से उर्मिला की ही जीवन कृति है। साकेत की उर्मिला के दर्शन हम विवाहोपरान्त होते हैं। जबकि नवीन जी के काव्य म उर्मिला की बाल्यावस्था म ही प्रारम्भ हो जाता है। वैसे ऊर्मिला का

---

१ वही

२ वही पृ० च

३ उर्मिला, श्री लक्ष्मणचरणार्पणमस्तु पृ० छ

सृजन नवीन जी ने 'साकेत' की प्रकाशन तिथि [१] से बहुत पूर्व प्रारम्भ कर दिया था। जैसा कि उन्होंने काव्य की भूमिका में कहा है—"माता उर्मिला के स्तवन की लालसा मेरी जीवनसंगिनी रही है। मैंने इस कथा का प्रारम्भ जिस समय किया था वह समय अब इतिहास में परिणत हो गया है। क्यों? इसलिये कि मैंने इस कथा को सतीस पूर्व प्रारम्भ किया था। सन् १९२१–२३ के डेढ़ वर्ष के कारावास-काल में मैंने इसे लिखना प्रारम्भ किया। प्रथम सर्ग लखनऊ कारावास में प्रायः एक सवा मास में लिखा गया।" [२] इस प्रकार 'उर्मिला' काव्य की प्रेरणा का मूल आधार देवी उर्मिला के चरित्र का ही स्तवन है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये ही कवि ने काव्य की कथावस्तु में तदानुरूप परिवर्तन-परिवर्द्धन किया है।

कथाविधान की मौलिकता एवं नवीन प्रसंगोद्भावनाएं

(१) 'उर्मिला' काव्य की रचना का मुख्य उद्देश्य उपेक्षित उर्मिला के चरित्र को व्यापक रूप में उपस्थित करना है। अस्तु कवि ने आद्यान्त काव्य में उर्मिला को ही कथा का केन्द्र बिन्दु मानकर घटनात्मक संयोजन किया है। प्रथम सर्ग में बालिका उर्मिला और उसकी बहन सीता की बालक्रीडाएं सर्वथा कवि कल्पना प्रसूत हैं। उर्मिला के बाल्यरूप वर्णन में कवि ने जिन विविध कल्पना चित्रों को अंकित किया है वह रामकथा में संभवतः प्रथम बार ही आये हैं। सीता और उर्मिला का कहानी कहना कवि की निजी उद्भावना है। [३] उर्मिला के जिस चरित्र का विकास काव्य के आगामी सर्गों में होता है अथवा साकेत' आदि काव्यों में हुआ है, उसकी पृष्ठभूमि अंकित करने में नवीन जी सफल हुए हैं।

(२) द्वितीय सर्ग में लक्ष्मण उर्मिला के मिलन दृश्यों का अंकन करने में संयोग शृंगार की शताधिक झांकियां प्रशंसनीय हैं। प्रेमालाप के सुन्दर दृश्यों और प्रिय-प्रियतम के मिलन प्रसंगों का निर्माण कवि ने कल्पना से ही किया है। लक्ष्मण और उर्मिला के दाम्पत्य जीवन सुख सौभाग्य को वर्णित करने में कवि ने अद्भुत काव्य कौशल का परिचय दिया है। नवविवाहित दम्पत्ति की प्रणय लीलाओं, आहार-विहार केलि क्रीड़ा भ्रमण और मनोरंजन, पारस्परिक प्रेमालाप के मनोरम दृश्य अंकित किये हैं। बीच बीच में लक्ष्मण-उर्मिला के वार्तालाप में ही कवि-प्रेम के सच्चे स्वरूप और लक्षणों का भी विवेचन करता गया है।

---

१ उर्मिला श्री मन्मगाचरणापरणमस्तु पृ० क, ख

२ साकेत-प्रकाशन १९३१

३ उर्मिला-प्रथम सर्ग पृ० ४० से ४४ और ४६ से ५२

(३) तृतीय सग में राम वन गमन आदि के प्रसग तो प्रचलित राम कथा के ही हैं किन्तु राम कथा को कवि ने एक नवीन ढग से देखा ह। राम की वन यात्रा एक आध्यामिक सक्ल्प के रूप म चित्रित की गई है। राम वन गमन करत हैं–आय सस्कृति के प्रसार के लिये वनवासिया को प्रबोध देने और भौतिकता के अज्ञान को दूर कर आध्यात्मिकता का प्रसार करन के लिये।[1] नवीनजी न भूमिका मे कहा है कि–"मैंने राम वन गमन को एक विशेष रूप म देखने और उपस्थित करन का साहस किया है। राम की वन–यात्रा, मेरी दृष्टि मे एक महान अथपूर्ण आय सस्कृति–प्रसार–यात्रा थी। राम को वन यात्रा भारतीय सस्कृति प्रसाराथ, एक महान् यज्ञ के रूप म थी।"[2] राम की वन यात्रा का अद्यावधि रामकथा के गायको ने सत्यव्रत पालन देवी प्रकोप के रूप म ही चित्रित किया था। महाकवि वाल्मिकी ने राम के मुख स यात्रा का कारण बताते हुए स्पष्ट कहलाया है कि–हे सुमित्रातनय ! मेरे वन गमन और प्राप्त प्राय राज्य के पुन हाथ स निकल जान का एक मात्र कारण देव ही हैं।[3]

(४) अन्तिम सग म रावण वध के उपरान्त राम–सीता और लक्ष्मण पुष्पक विमान से जब लौट रहे हैं तो भावी देवर (लक्ष्मण सीता) का परिसम्वाद पर्याप्त मनोरजक और ममस्पर्शी है। इस परिसवाद की योजना बडी सुन्दर बन पडी है। लक्ष्मण को विमान म चुप और चिंतित देख कर सीता के विनोदपूर्ण प्रश्ना जस–"लक्ष्मण। किसका ध्यान कर रहे हो ? क्या उर्मिला की स्मृति कर रहे हो ? आदि–का उत्तर लक्ष्मण बडा गम्भीर और मार्मिक देते हैं।[4]

इस प्रकार कवि ने जितना भी कथांश ग्रहण किया है उसम नवीन प्रसगो को उद्भावना की है।

कथानक की शास्त्रीय समीक्षा—

ऊर्मिला महाकाव्य का कथानक प्रख्यात है। कवि ने राम कथा के उपेक्षित कथा प्रसगो एव उपेक्षित पात्रो को ही उभारन का प्रयत्न किया है। साथ ही पुराने कथा प्रसगो को नवीन रग भी दिया है। सम्पूर्ण काव्य का सगबद्ध विभाजन भी हुआ है यद्यपि कुल सर्गो की सख्या ६ ही है जो आचार्यों द्वारा निर्धारित सख्या स

---

१ वही–तृतीय सग पृ० १९६
२ ऊर्मिला–श्री लक्ष्मणचरणापणमस्तु पृ० छ
३ वाल्मिकी रामायण, अयोध्या काडम् सग २२/१५
४ ऊर्मिला, सग ६ पृ० ५९३

कम है। कथावस्तु में विकास, मध्य और अन्त की स्थितियाँ भी दिखाई देती है किन्तु कार्यावस्थाओं एवं संधियों का स्पष्ट अंकन नहीं हुआ है। तृतीय सर्ग में गर्भ संधि प्राप्य है।

कथानक में वर्णनों की भी प्रचुरता है जो महाकाव्य वस्तु के अनुरूप है। उदाहरण के लिए प्रारम्भ में ही पुर-प्रशस्ति और जनकपुर प्रकरण में नगर का वर्णन है। प्रकृति का सुन्दर और विस्तृत विवरण भी उपलब्ध है। नगर, पर्वत, उपवन आदि के भी वर्णन यत्र तत्र हुए हैं।

कवि ने मार्मिक प्रसंगों की भी अवतारणा की है। प्रारम्भिक सर्गों के कथा विधान में रोचकता और नाटकीय वैषम्य भी है।

कथा विधान की त्रुटियाँ

उर्मिला काव्य की कथावस्तु की अनेक विशेषताओं के बावजूद भी उसमें अनेक त्रुटियाँ हैं। यथा—

(१) उर्मिला काव्य का कथानक इतना सूक्ष्म और विरल है कि वह महाकाव्यत्व की गरिमा के अनुरूप नहीं हो पाया है। घटना विस्तार के अभाव और कथा प्रसंगों के सम्बन्ध निर्वाह में धारावाहिकता नहीं आ पायी है। प्रथम ३ सर्गों के उपरान्त कथासूत्र छिन्न भिन्न हो गया है। छठा सर्ग अलग सा प्रतीत होता है। चौथे और पाँचवे सर्गों में भी कोई घटना अवतरित नहीं है।

(२) सम्पूर्ण काव्य में मात्र उर्मिला के चरित्रांकन की दृष्टि प्रमुख होने के कारण महत्वपूर्ण कथा प्रसंग छूट गये हैं। जिसके कारण कथानक एक पक्षीय हो गया है। उसमें रामकथा का गाम्भीर्य नहीं आ पाया है।

(३) कवि ने उर्मिला की जीवन कथा को भी पूर्णरूपेण प्रतिफलित नहीं किया है। उर्मिला-लक्ष्मण के पुनर्मिलन प्रसंग का अभाव अन्त में खटकता है। काव्यांत में लक्ष्मण-उर्मिला का मिलन न दिखाने से उर्मिला की कथा भी अपूर्ण सी लगती है।

(४) सम्पूर्ण काव्य में अनुभूति की प्रधानता के कारण कथानक की प्रबन्ध धारा में व्याघात उत्पन्न हो गया है। कवि ने अनुभूति के आवेग में कुछ प्रसंगों को आवश्यकता से अधिक विस्तार दिया है।

इन सब अभावों के होते हुए भी विद्वानों ने 'उर्मिला' के कथानक को महाकाव्य के उपयुक्त माना है। उर्मिला में कथानक की प्रधानता न होकर,

अनुभूति की प्रमुखता है। इसका प्रभाव उनके प्रबंध शिल्प पर भी प्रतिकूल रूप में परिलक्षित होता है। प्रबंधात्मकता का अभाव है। कवि की नूतन अवतारणा सांस्कृतिक दृष्टिकोण एवं मौलिक कल्पना शक्ति की चकाचौंध के समक्ष यह त्रुटि परिमार्जनीय है।..... वास्तव में उर्मिला महाकाव्य है और कवि का परम काव्य।"[1] श्री जगदीशप्रसाद श्री वास्तव ने 'उर्मिला' के कथानक के आक्षेपों का समाधान करते हुए लिखा है कि—'जहाँ तक कथा की सूक्ष्मता का प्रश्न है, यह समाधान किया जा सकता है कि इस बुद्धिवादी युग में प्रबंध काव्य में घटना को प्रमुखता देना उचित नहीं, विचारों को प्रमुखता मिलनी चाहिये। रामायणी कथा रहे न रहे, होती भी तो संभव है लोकविश्रुत होने से नयापन न रहता, किन्तु भावों का चित्रण अनिवार्य है जो काव्य को गौरव प्रदान करता है। इस काव्य में पुराने मनोरागों की अभिव्यक्ति में नवीनता लाने का प्रयत्न है। उर्मिला के चरित्र को लेकर कवि चला है जिसमें पूर्णता है। घटनात्मकता के अभाव की पूर्ति भावों की अभिव्यक्ति और नूतनता के द्वारा की गई है।"[2]

एकलव्य

कथासार

एकलव्य महाकाव्य १४ सर्गों में विभाजित है। काव्यारम्भ से पूर्व स्तवन है जिसमें कवि ने किरातराज शिव और वाल्मिकि का स्तवन किया है।

१ दर्शन—प्रथम सर्ग का प्रारम्भ एकलव्य और उसके मित्र नागदत्त के परस्पर वार्तालाप से होता है। एकलव्य कहता है कि वह नाराच के लिये लौहखण्ड लेने राजधानी गया था, किन्तु वहाँ सब लौह भंडार राजकुमारों के विशिष्ट अस्त्रों के लिये रक्षित थे, अतः उसे निराश लौटना पड़ा। मार्ग में देखा कि वीटिका के कुएँ में गिर जाने के कारण राजपुत्र निराश खड़े हैं। द्रोणाचार्य उनसे कहते हैं कि तुम धुरन्धर वीर हो राज्यश्री तुम्हारे बाहुबल की स्वामिनी है और तुम एक क्षुद्र वीटिका नहीं निकाल सकते हो? तुम अपने स्वजनों को दुःख कूप से क्या निकालोगे। लज्जित होकर एक राजपुत्र ने कहा देव हमने सब उपाय किये किन्तु निष्फल हुए। तभी द्रोण ने अभिमन्त्रित करके सींक डाली और वीटिका बाहर आ गई। राजकुमार प्रार्थना करके द्रोणाचार्य को भीष्म के पास ले गये। एकलव्य ने धनुर्वेद की शिक्षा द्रोणाचार्य से ही ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की।

---

१ डा० लक्ष्मीनारायण दुबे 'उर्मिला का महाकाव्यत्व' 'गवेषणा' (अर्द्ध मासिक) सन् १९६३

२ जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव—नवीन और उनका काव्य पृ० १०८

२ परिचय—इस सर्ग मे हस्तिनापुरा की राजसभा के कलात्मक सौन्दर्य का वर्णन है। राजसभा में नृप धृतराष्ट्र एव सभासदों के सम्मुख भीष्म द्रोणाचार्य का स्वागत करते हुए उनसे स्व-परिचय देने को कहते हैं। द्रोणाचार्य ने कहा कि वह अंगिराकुल के ऋषि भारद्वाज के अयोनिज पुत्र हैं। महर्षि अग्निवेश के यहां उन्होने शिक्षा प्राप्त की है। महात्मा शरद्वान की कन्या कृपि से उनका विवाह हुआ और अश्वत्थामा पुत्र हुआ। फिर उन्होने धनाभाव के कारण होने वाली यातना और तिरस्कार का वर्णन तथा परशुराम से दिव्यास्त्र की प्राप्ति के विषय मे बताया। अपने मित्र द्रुपदराज यज्ञसेन के द्वारा किये गये घोर अपमान का भी उन्होने वर्णन किया। उनके परिचय से प्रभावित होकर भीष्म ने उन्हें ससम्मान राजकुमारो को शस्त्रास्त्र शिक्षा देने के लिये शिक्षक नियुक्त किया।

२ अभ्यास—गुरु द्रोण ने सभी राजकुमारो को विविध प्रकार के शस्त्र अस्त्रों का अभ्यास कराया। धनुर्वेद मे सबको निपुण किया। अर्जुन पर उनका विशेष स्नेह था अत उसे तमवेध भी सिखाया। दिव्यास्त्रो की भी शिक्षा दी गई। द्रोणाचार्य ने राजकुमारों को अहकार और द्वेष आदि मानसिक वृत्तियो पर विजयी होने की भी शिक्षा दी। द्रोणाचार्य की दिव्य परीक्षा की ख्याति दूर-दूर तक फैल गई। राजवशों एव अन्य वशो के भी अनेक कुमार भिन्न भिन्न देशों मे गुरु द्रोण के पास शिक्षा प्राप्त करने आने लगे।

प्रेरणा—एकलव्य ने बाणो की नोक से रेखाएं खीचकर पत्थर पर गुरु द्रोणाचार्य का चित्र बनाया। नागदत्त पूछने पर वह कहता है कि गुरु द्रोण का चित्र उसके हृदय पटल पर अकित है। वह एक दिन का स्वप्न भी बताता है जिसमे उसने गुरु द्रोण को पास खड़े हुए देखा था। वीटिका से उसे प्रेरणा प्राप्त होती है तभी गुरु बादलो मे छिप जाते है। तब एकलव्य को मिट्टी के ढेर मे खिले पुष्पो मे गुरु द्रोण का मुख दिखाई देता है। वह हाथ बढ़ाता है कि मां उसका अंगूठा काट लेता है। मा उसे बुला ले जाती है। एकलव्य माता के सामने भी नागदत्त से वार्तालाप करते हुए द्रोण का शिष्य बनने का निश्चय प्रकट करता है। तभी एकलव्य का पिता हिरण्यधनु आ जाता है। एकलव्य की माता उसके हठ का वर्णन हिरण्यधनु से करती है। हिरण्यधनु कहता है कि निषाद पुत्र की शस्त्रशिक्षा राजकुल के लोग पसन्द नही करेंगे। पुत्र के दृढ निश्चय से प्रभावित हो व उसे हस्तिनापुर ले जाने को सहमत हो जाते हैं जहा राजकुमारो के शस्त्रास्त्रों का प्रदर्शन होना है। वहा सभी जनता प्रदर्शन देखने को आमंत्रित थी। माता चिंतित होती है कि कहा गुरु द्रोण दीक्षा देना स्वीकार न करें और एकलव्य पर कोई सकट आ जाय।

५ **प्रदर्शन**—नगर के बाहर एक सुन्दर स्थान पर प्रेक्षागार बनाया गया, जहां राजकुमारो के अतुल अस्त्र वैभव को देखने के लिये महाराज धृतराष्ट्र, भीष्म, गांधारी, कुन्ती तथा अपार जनसमूह उपस्थित था। सभी राजकुमारो ने एक-एक करके अपने अस्त्र शस्त्र ज्ञान का परिचय दिया। सबसे सुन्दर प्रदर्शन अर्जुन का था जिसने दिव्य अस्त्रो के प्रयोग द्वारा उपस्थित जनसमूह को आश्चर्य चकित कर दिया। प्रदर्शनोपरान्त सभा विसर्जित हुई नाना वेश मे तथा देशो से आये हुए राजकुमार गुरु द्रोणाचार्य के प्रति श्रद्धानत थे। उसी समय एकलव्य की दृष्टि भी गुरु द्रोणाचार्य के दिव्य चरणो मे विनय भाव से अवनत थी।

६ **आत्मनिवेदन**—एकलव्य द्रोणाचार्य के पास गया और अपने पितादि का परिचय देकर शिष्य बनने की इच्छा प्रकट की। द्रोणाचार्य ने कहा कि धनुर्वेद का ज्ञान निषादकुल के काम की वस्तु नही फिर उसकी साधना भी कठोर है। एकलव्य के दृढ निश्चय, एकाग्र साधना और भावपूर्ण उत्तर को सुन कर द्रोण ने कहा कि वे राजगुरु होने के कारण राजपुत्रो के अतिरिक्त अन्य किसी को दीक्षा नही दे सकते। एकलव्य ने श्रद्धाभाव से अपने मन मे द्रोणाचार्य को गुरु मानकर साधना करने का प्रण किया।

७ **धारणा**—घर पहुंचने पर एकलव्य के साथियो ने उस पर व्यग्य कसे। उसने कहा कि वह महान साधक और गुरु द्रोण का शिष्य है। उसकी अनन्य निष्ठा को देखकर उसके साथी स्तब्ध रह गये। उसने नागदत्त को अपना निश्चय बताया कि वह धनुर्विद्या सीख कर ही आयेगा। उसने माता को सान्त्वना देने के लिये भी नागदत्त से कहा और साधना के लिये एकान्त अज्ञात स्थान को चल दिया।

८ **ममता**—इस सर्ग मे एकलव्य की माता के ममतापूर्ण गीत हैं। मातृ हृदय की पुत्र वियोग जन्य वेदना की मार्मिक व्यजना हुई है। पुत्र की पूर्व स्मृतियां और षटऋतुओ के प्रत्यागमन की माता के मन पर प्रतिक्रियाओ का वर्णन भी बड़ा भव्य है। अन्त मे माता अपने पुत्र के मगल की कामना करती है।

६ **सकल्प**—एकलव्य वारणावत पर्वत अरण्य मे जाकर साधनारम्भ कर देता है वह सोचता है कि राजपुत्र न होने के कारण वह त्याज्य क्यो समझा गया? सब क्षत्रिय राजनीति की प्रवचना है। गुरु तो विवश हैं, वे क्या करें? उसने गुरु द्रोण की मूर्ति बनाई और धनुर्वेद सीखने का निश्चय किया। तभी एक व्याघ्र टूट पड़ा जिसे एक ही बाण से एकलव्य ने मार गिराया।

१० साधना—एकलव्य ने गुरु द्रोण की मृण्मयी मूर्ति बनाकर उनके चरणों में बैठकर धनुर्वेद की साधना का समारम्भ कर दिया। सतत ध्यान की प्रेरणा उसे प्रकृति के कण कण में प्राप्त होने लगी। एकलव्य अनेकानेक विधियों से लक्ष्यभेद करने लगा। धनुर्वेद की सभी विधियाँ—पतीढ़, प्रत्यालीढ़, विशाल, असम, गरुडक्रम, दुर्दुर क्रम आदि में एकलव्य पारंगत हो गया। उसकी साधना शुक्ल पक्ष की चन्द्रिका के समान विकसित होने लगी।

११ स्वप्न—ब्राह्ममुहूर्त की वेला में गुरु द्रोण ने एक स्वप्न देखा कि वह एक घने जंगल में बैठे एक श्यामल वर्ण कुमार को अद्वितीय धनुर्विद्या सिखा रहे हैं। उन्हें स्वयं पर आश्चर्य हुआ कि अद्वितीय धनुर्विद् होने का वरदान तो उन्होंने अर्जुन को दिया है। उन्हें ग्लानि होती है तभी पार्थ आते हैं। गुरु द्रोण उन्हें स्वप्न की बात बताते हैं। वाराणत वन में मृगया खेलने का निश्चय किया जाता है।

१२ लाघव—राजकुमार मृगया खेलने जाते हैं। उनका श्वान एकलव्य की ओर जाता है जिसके मुँह को वह सात बाणों में बंद कर देता है। चोट तो नहीं आती पर श्वान का भौंकना बन्द हो जाता है। अर्जुन एकलव्य के आश्रम में पहुँचता है और उसकी साधना से चकित हो जाता है। एकलव्य अर्जुन का आदर करता है और पूछने पर बताता है कि गुरु द्रोण की मृण्मयी प्रतिमा से उसने दीक्षा प्राप्त की है।

१३ द्वन्द्व—एकलव्य के धनुर्विद्या कौशल से पार्थ के मन में हीन भावना का जन्म होता है। उसे रात भर नींद नहीं आती। वह गुरु द्रोण के पास जाकर उनके वचन की याद दिलाता है, जिसमें अर्जुन को अद्वितीय धनुर्धर का वरदान दिया गया था। गुरु द्रोण एकलव्य आश्रम में जाने का निश्चय करते हैं।

१४ दक्षिणा—द्रोणाचार्य अर्जुन सहित एकलव्य के आश्रम में आते हैं। एकलव्य श्रद्धाभाव से गुरु का सत्कार करते हैं। गुरु की प्रतिज्ञा के आधार पर एकलव्य अर्जुन को सर्वश्रेष्ठ धनुर्विद मान लेता है। अर्जुन के सन्तुष्ट न होने पर वह धनुष बाण तोड़ देता है और कभी धनुष बाण न चलाने की प्रतिज्ञा करता है। अर्जुन तब भी असन्तुष्ट ही रहा। इस पर एकलव्य अपना दाहिना करांगुष्ठ काट कर गुरु दक्षिणा के रूप में द्रोणाचार्य के चरणों में अर्पित कर देता है। द्रोण एकलव्य के त्याग से स्तंभित रह जाते हैं और ग्लानि से भर जाते हैं। तभी एकलव्य के माता पिता आ जाते हैं जिन्हें द्रोणाचार्य सारा वृत्तान्त

सुनाते हैं। एकलव्य की माता दुखी होती है। द्रोण लज्जा से भर कर चल देते हैं। एकलव्य उन्हें सादर विदा करता है।

आधार ग्रन्थ

एकलव्य काव्य का कथात्मक आधार महाभारत है। महाभारत के सम्भव पर्व में १३२ वें अध्याय के ३१ वें श्लोक से लेकर ६० वें श्लोक तक एकलव्य की कथा कही गयी है। महाभारत की कथा में निम्नांकित कथा प्रसंग हैं —

१ द्रोणाचार्य से एकलव्य की दीक्षा के लिये प्रार्थना और उनकी अस्वीकृति।

२ एकलव्य का द्रोणाचार्य की मूर्ति बनाकर अद्वितीय धनुर्विद बनना।

३ एकलव्य का राजकुमारों के श्वान का मुख तीरों से बन्द करना और अर्जुन का चकित होना।

४ अर्जुन का गुरु द्रोण से उनकी प्रतिज्ञा का स्मरण कराना जिसमें उन्होंने अर्जुन को अद्वितीय धनुर्विद होने का कहा था।

५ द्रोणाचार्य का एकलव्य के पास जाना और गुरु दक्षिणा रूप में दाहिने हाथ का अँगूठा मांगना—एकलव्य का प्रसन्नता पूर्वक काट कर दे देना।

महाभारत के उपर्युक्त अल्प कथासूत्र को डा० रामकुमार वर्मा ने अपनी कला कल्पना और काव्यशक्ति से महाकाव्योचित आकार प्रदान किया है।

शास्त्रीय विवेचन

डा० वर्मा ने एकलव्य के आमुख में कहा है कि—"केवल ३० श्लोकों में यह कथा बड़ी शीघ्रता से कही गई है। सम्भव पर्व की परिचयात्मक कथाओं की अधिकता के कारण महान पुरुषों के चरित्र चित्रण की चारुता तथा वर्णन वचित्र्य की विशेषताओं के बीच निषाद के चरित्र के लिये यथोष्ट स्थान प्राप्त न हो सका हो फिर भी कथाप्रसंग में ऐसे संकेत अवश्य हैं, जिनमें निषाद संस्कृति का उदात्त रूप हमारे सामने आता है। महर्षि व्यास ने एकलव्य की कथा में व्यास" शैली का अनुसरण नहीं किया। जिन प्रसंगों से एकलव्य की कथा के मनोविज्ञान में जिज्ञासा की सृष्टि होती है, उनमें तत्कालीन राजनीति, सामाजिक स्थिति, आचार्य

द्रोण का वध संकट और द्रुपद द्वारा अपमान तथा एकलव्य का आत्मदान प्रमुख है।"[1]

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि कवि ने महाभारत के इस कथा प्रसंग को व्यापक दृष्टि से प्रस्तुत काव्य में संकलित किया है। डा० वर्मा ने एकलव्य के चरित्र में आर्य संस्कृति के तीन गुण आचरण की मार्मिक व्याख्या प्रस्तुत की है। एकलव्य की समस्त कथा १४ सर्गों में विभाजित है। आरम्भ निवेदन साधना नामक गुरु और दक्षिणा नामक सर्गों की कथा का सीधा सम्बन्ध महाभारत के १० श्लोकों में वर्णित कथा प्रसंगों से है। इनके अतिरिक्त द्वार, परिचय अभ्यास और प्रदर्शन नामक ४ सर्गों की कथा भी महाभारत में अन्यत्र उल्लिखित है, जिनके कलात्मक विनियोजन करने में कवि ने अपनी रचना-शक्ति का परिचय दिया है। दूसरे शब्दों में इन ९ सर्गों की कथा अनुवाद्य अर्थात् प्रख्यात है। शेष सर्गों (प्रश्न, धारणा, ममता, संकल्प और स्वप्न) की कथावस्तु सर्वथा मौलिक अर्थात् कल्पना प्रसूत है। इन सर्गों की कथा से सम्पूर्ण काव्य को गति मिली है और घटनाओं की परस्पर सम्बन्धित स्थिति भी स्पष्ट हुई है।

इस प्रकार एकलव्य की कथावस्तु में एकलव्य का अपने पिता हिरण्यधनु के साथ राजकुमारों के शस्त्र कौशल को देखने के लिए हस्तिनापुर जाना, धनुर्विद्या के लिए गृहत्याग, द्रोणाचार्य का स्वप्न देखना और माता का ममत्व भाव प्रदर्शन आदि प्रसंग मौलिक और नवीन हैं। इन प्रसंगों का सबसे अधिक महत्त्व पात्रों के मनोविज्ञान को स्पष्ट करने में है। एकलव्य महाकाव्य की कथा के पाठक के मन में यह प्रश्न शंका के रूप में बना होता है कि गुरु द्रोण से तिरस्कृत होने पर भी एकलव्य ने द्रोणाचार्य को ही क्यों वरण किया? द्रोणाचार्य जैसे मनस्वी ने बिना दीक्षा दिये ही एकलव्य से दक्षिणा क्यों मांगी? इन दोनों शंकाओं के पार्श्व में अनेक युगीन मनोवैज्ञानिक समस्याएं प्रतिफलित होती हैं, जैसे आर्यसंस्कृति के उच्च आदर्शों की अवगणना, सामन्त युगीन शासन व्यवस्था में जातीय आधार पर असमानता का व्यवहार, गुरु शिष्य परंपरा, मानव मूल्यों की उपेक्षा आदि। एकलव्य के वृत्त में इन सभी सम्भावनाओं पर विचार किया गया है।

एकलव्य के इतिवृत्त की विशेषताएं

(१) एकलव्य का इतिवृत्त महाभारत-आधृत है अतः पौराणिक और प्रख्यात है। अनुवाद्य होते हुए भी कवि की कल्पना-शक्ति और मौलिक सृजन

---

१. डा० रामकुमार वर्मा : एकलव्य, आमुख, पृ० १

प्रतिभा के कारण वृत्त में वतमान युग की विचारधारा का उपयुक्त विकास हुआ। कथाचयन में कवि न परम्पराओं का अनुमोदन और सम सामयिकता का समथन किया है। डा० गोविन्दराम शर्मा के शब्दों में—"मूलकथा के पौराणिक रूप की यथष्ट रक्षा करते हुए कवि ने आज के युग की माग के अनुरूप नवदृष्टि से देखा है।"[1]

(२) कथावस्तु शास्त्रीय दृष्टि से भी सफल है। आधिकारिक और प्रासगिक वस्तुए स्पष्ट हैं। कथावस्तु का विकास बडे स्वाभाविक और क्रमिक ढङ्ग से हुआ है। कथाविकास की प्रारम्भ प्रयत्न, प्राप्त्याशा चरमसीमा, नियताप्ति और फलागम सभी स्थितिया कथावस्तु मे प्राप्य है। कथावस्तु की समाप्ति नायक के उत्कष में होती है। अथ प्रकृतियो की दृष्टि से भी कथापूण है। कथाविधान में नाटकीयता के कारण रोचकता और सजीवता बनी हुई है।

(३) वस्तु में विस्तार का अभाव होन हुए भी नायक के जीवन की समग्रता का चित्रण है। एकलव्य के जन्म स मृत्यु पयन्त की घटनाओं का सांख्यिकी वणन न होते हुए भी उसके जीवनकाल के उत्कर्ष का मापाकन हुआ है।

(४) कथावस्तु म अलौकिक और अप्राकृतिक तत्त्व होते हुए भी उसे कवि ने बुद्धिग्राह्य ढग प्रस्तुत किया है। अलौकिक घटनाए भी अविश्वसनीय प्रतीत न होकर अद्भुत रस पोषक लगती है।

(५) एकलव्य के कथानक म समसामयिक जीवन चेतना के स्वर मुखरित हुए है। उसमे मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा की गई है। उसमे उच्च जीवनादर्शों को युग जीवन की यथाथ भूमि पर अकित किया है।

समष्टि रूप म एकलव्य की कथावस्तु महाकाव्य वस्तु के गुणो से विभूषित है।

१, डा० गोविन्दराम शर्मा हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य पृ० ४२८

तृतीय अध्याय

चरित्र-तत्त्व

भूमिका

महाकाव्य के रूप विधायक तत्वो म कथातत्व के अनन्तर चरित्र-तत्त्व ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। महाकाव्य चाहे ऐतिहासिक हो या पौराणिक उनकी रचना के मूल म कोई न कोई महत् चरित्र अवश्य होता है। महा-काव्य का मुख्य विषय है, मानवीय चेतना का आकलन। इस चेतना की अभिव्यक्ति महाकाव्या में महिमावान चरित्रो की अवतारणा से होती है। ये चरित्र ही महाकाव्य के घटनाचक्र का सचालन और महत् जीवनादर्शों की प्रतिष्ठा का माध्यम बनते हैं।

इस अध्याय में आलोच्य महाकाव्यो के चरित्र-तत्व का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस अध्ययन क्रम में सवप्रथम प्रत्येक महाकाव्य के पात्रो को दो श्रेणियो में बाटा गया है—प्रथम-प्रमुख-पात्र और दूसरे अन्य पात्र। प्रमुख पात्रो में महाका य के नायक नायिका हैं। 'अन्य पात्रो' म वे चरित्र परिगणित किये गये हैं जिनका स्थान अपेक्षाकृत गौण है किन्तु जो नायक नायिका के चरित्रोत्कप मे सहायक होते हैं। ये ही पात्र नायक के लिये सघप की भूमिका प्रस्तुत करते हैं। प्रमुख पात्रो का चरित्र-चित्रण 'अन्य पात्रो' की तुलना में विस्तृत एव सांगोपाग है। चरित्र विश्लेषण म सव प्रथम नायक-नायिका के पौराणिक स्वरूप का ऐतिहासिक विकास क्रम बताते हुये उनकी चरित्रगत विशेषताओ का सौदाहरण निरूपण किया गया है। च रत्र-विश्लेषण में मनोवैज्ञानिक एव मानवतावादी दृष्टियो को विशेष महत्व दिया गया है। इन दृष्टिया से चरित्रो के कार्यों क औचित्य अनौचित्य का मूल्याकन किया गया है। आलोच्य महाकाव्या के पात्र पौराणिक होने के कारण लोकप्रसिद्ध हैं। उनके सम्बन्ध में लोगो की बद्धमूल धारणायें हैं। किन्तु आधुनिक महाकाव्यकारो ने परम्परा से भिन्न अर्थात वत्तमान युग-जीवन के सन्दर्भों म किस प्रकार उन्हें प्रस्तुत किया है, यह विशेष रूप से विवेचनीय रहा है। महाकाव्या के पात्र किन

विशेषताओं के कारण अविस्मरणीय है ? उनके कौन से कार्य मानवता के अनुकरणीय आदर्श बन सकते हैं ? परम्परा प्रचलित रूप से उनका वर्तमान रूप कितना और कहां भिन्न है ? किन चारित्रिक विशेषताओं के कारण वे मानवता की अमर विभूति हैं ? आदि सन्दर्भों को प्रस्तुत प्रकरण में व्यंजित किया गया है।

चरित्र विश्लेषण की तीन पद्धतियां प्रचलित हैं। प्रथम जिसमें कृतिकार चरित्रों के सम्बन्ध में प्रशंसा या निंदापूर्ण मतव्य स्वयं प्रस्तुत करता है। दूसरी पद्धति में चरित्रों का मूल्यांकन उस पात्र विशेष के सम्बन्ध में अन्य पात्रों के कथनों से किया जाता है। तीसरी वह पद्धति है जिसमें पात्र-विशेष के व्यक्तित्व और कृतित्व के आधार पर उसका महत्वांकन किया जाता है। आलोच्य महाकाव्यों में चरित्र विश्लेषण में मुख्यतः अंतिम पद्धति को अपनाया गया है।

प्रियप्रवास

प्रियप्रवास चरित्र प्रधान काव्य है। किन्तु इस काव्य में पात्रों की संख्या अधिक नहीं है। यद्यपि गोप-गोपिकाओं एवं अन्य बालवृद्धों को सम्मिलित करने से पात्रों की संख्या अधिक दिखाई देती है किन्तु इन पात्रों का काव्य में कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं है। जिन पात्रों के चरित्र-चित्रण की ओर कवि का विशेष ध्यान रहा है वे पांच हैं-श्रीकृष्ण, राधा, नन्द यशोदा और उद्धव। इनमें भी श्रीकृष्ण, राधा और यशोदा के चरित्रांकन में हरिऔधजी ने अपनी प्रतिभा और काव्य-कला का सुन्दर परिचय दिया है। प्रियप्रवास' के महाकाव्यत्व का वास्तविक आधार यही पात्र हैं। व्यापक विषयभूमि के अभाव के कारण प्रियप्रवास के कथाशिल्प और प्रबन्ध-कल्पना में जो शिथिलता आ गई थी, उसका परिमार्जन उत्कृष्ट कोटि की चरित्र-सृष्टि द्वारा हो गया है।

प्रमुख पात्र

श्रीकृष्ण—श्रीकृष्ण इस काव्य के नायक हैं। उनका व्यक्तित्व महाकाव्य के नायक की गरिमा और महिमा के पूर्णतः अनुरूप है। भारतीय धर्म संस्कृति और साहित्य साधना के मूल में श्रीकृष्ण की स्थिति बहुत महत्वपूर्ण रही है। कृष्ण शब्द की प्राचीनता को विद्वानों ने स्वीकार किया है। वैदिक काल से आज तक कृष्ण शब्द का निरंतर प्रयोग मिलता है। ऋग्वेद में कृष्ण का ऋषि रूप में उल्लेख है।[1] महाभारत में कृष्ण का अनेक रूपों में चित्रण हुआ है। वहां उन्हें

---

1 ऋग्वेद, अष्टम मंडल सूत्र सं० ८३ ८६, ८७ तथा दशम मंडल सूत्र सं० ४२, ४३, ४४

और राजनीतिज्ञ, विद्वान् एवं परोपकारी के रूप में दैवी अवतार भी स्वीकार किया गया है। डा० द्विवेदी का कथन है कि "कृष्णावतार के दो मुख्य रूप हैं। एक में वे यदुकुल के श्रेष्ठ रत्न हैं, वीर हैं, राजा हैं, कंसारि हैं, दूसरे में वे गोपाल हैं, गोपीजन वल्लभ हैं, राधाधर सुधापान शालि वनमाली हैं। प्रथम रूप का पता बहुत पुराने ग्रन्थों से चल जाता है पर दूसरा रूप अपेक्षाकृत नवीन है। धीरे-धीरे यह दूसरा रूप ही प्रधान हो गया है और पहला रूप गौण।"[1] सच तो यह है कि कृष्ण उतने ही प्राचीन हैं जितनी कि भारतीय साधना में अवतारवाद की विचारधारा। अवतारों में भी राम और कृष्ण दो प्रमुख अवतार रहे हैं। "इनमें भी कृष्णावतार की कल्पना पुरानी भी है और व्यापक भी।" वेदोत्तर वाङ्मय में कृष्ण का उल्लेख ई० पू० चौथी शताब्दी से तो स्पष्ट रूप से मिलने लग जाता है। पाणिनी (चौथी सदी ई० पू०) मेगस्थनीज (तीसरी ई० पू०) एवं पतंजलि (१५० वर्ष ई० पू०) आदि के ग्रन्थों और लेखों में वासुदेव और कृष्ण की स्पष्ट चर्चा मिलती है।[3] इस समय तक कृष्ण को आर्य जाति के देवता या धार्मिक नेता के रूप में ही माना जाता था। प्राचीन काल से पुराण काल तक कृष्ण सम्बन्धी जो विवरण मिलता है उसके सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं कि वह एक ही कृष्ण है। डा० भंडारकर प्रभृति विद्वान ने 'गोविन्द' शब्द की व्युत्पत्ति गोविद् से मानी है और कर्षिविसूदन को भी इन्द्र का ही विशेषण माना है। उनका मत है कि पहले यह विशेषण इन्द्र के लिये प्रयुक्त होते थे और बाद में श्रीकृष्ण के साथ जोड़ दिये गये है।[4] इस सम्बन्ध में डा० हरवंशलाल शर्मा का मत उपयुक्त जान पड़ता है—'इन मन्त्रों में (ऋग्वेद के मन्त्रों में) जो नाम आये है उनका यद्यपि गोपाल कृष्ण से कोई सम्बन्ध नहीं है, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि जिस प्रकार वैदिक कृष्ण का सम्बन्ध महाभारत के कृष्ण से जोड़ दिया गया उसी प्रकार इन सभी नामों का उपयोग पौराणिक युग में कृष्ण से सम्बद्ध कर दिया गया है।"[5] कृष्ण सम्बन्धी मान्यताओं के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि उनके दो रूप थे—एक तो ऐतिहासिक और दूसरा पौराणिक। डा० दिनकर का कथन है कि 'कृष्ण ऐतिहासिक पुरुष हैं इसमें सन्देह करने की गुंजाइश नहीं दीखती और वे अवतार के रूप में पूजित भी बहुत दिनों से चले आ रहे हैं। उनका सम्बन्ध क्रमश

---

१ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी मध्यकालीन धर्म साधना, पृ० १२६

२ वही, पृ० १२६

३ डा० रामधारीसिंह दिनकर संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ६५

४ डा० भंडारकर—वैष्णवइज्म, शैवइज्म एण्ड माइनर रलीजस सिस्टम्स, पृष्ठ ५१

५ डा० हरवंशलाल शर्मा सूर और उनका साहित्य पृ० १९१

भौर गाय से था, यह भी विदित बात है। प्राचीन ग्रथों म उनके साथ जो प्रेम-कथाए नही मिलती, उससे यह भी प्रमाणित होता ह कि वे कोरे प्रेमी और हल्के जीव नही बल्कि देश भौर धम के बडे नेता थे।"[१] विष्णु के भवतार के रूप में कृष्ण का उल्लेख पौराणिक काल से ही मानना चाहिये। कृष्ण की जिन विभिन्न लीलाभो, क्रीडाभो भौर कार्यों को लेकर भागे साहित्य रचना हुई वे कृष्ण पुराण-काल की ही देन ह। पुराणो में श्रीमद्भागवत महापुराण, ब्रह्मववत्त पुराण भौर हरिवंश पुराण में कृष्ण को लीलाभो का सविस्तार वणन हुमा ह। इनके भतिरिक्त भय पुराणा (जसे—वायुपुराण, पद्मपुराण, वामनपुराण, कूमपुराण मादि में भी कृष्ण—चरित सम्बधी वणन ह।

कृष्ण काव्य रचना के विकास क्रम की दृष्टि से जयदेव का 'गीत गोविन्द' (१२ वी शताब्दी) सस्कृत की प्रथम रचना है।[२] इसके मनन्तर १४ वी १५ वी शती मे विद्यापती की पदावली म कृष्ण चरित्र की साहित्यिक भभिव्यक्ति मिलती है। हिन्दी कृष्ण काव्य परम्परा को विकसित करने का श्रेय भक्तिकाल के वष्णव कवियो को है। भष्टछाप के कविया ने (जिनम सूरदास प्रमुख थे) कृष्ण काव्य की धारा को प्रवाहित किया। यही धारा रीतिकाल भौर भाधुनिक काल के कविया की काव्य रचना का प्रेरणा स्रात बनी। भक्ति काल के कविया ने कृष्ण की प्रेममयी मूर्ति को लेकर प्रेमतत्व की व्यजना बडी तन्मयता से की। भष्टछाप के कविया ने श्री कृष्ण के मधुर रूप की सुन्दर झाकी भपने काव्य के माध्यम प्रस्तुत की। रीति काल के कवियो ने श्री कृष्ण के व्यक्तित्व के शृगार पक्ष के उद्‌घाटन मे भपनी काव्य मेधा का प्रदशन किया। भाधुनिक काल में हरिभौध से पूव तक कृष्ण चरित के भक्ति भावना, हास विलास, शृगार—माधुय एव भगवत एश्वय सम्बधित पक्ष ही हमारे समक्ष भाते है।

उपयु त्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रियप्रवास की रचना से पूव तक हि ो कृष्ण काव्य की परम्परा मे श्री कृष्ण के चरित्र के दो पक्ष उपस्थित किये गये थे। एक पक्ष तो वह था जिसमे भक्ति कालीन कवियो ने उन्हें परम ब्रह्म का भवतार मानकर दवी शक्तिया से सम्पन सिद्ध किया था। साथ ही उनक बाल भौर किशोर रूप की लीलाभों का भी चित्रण किया था। श्री कृष्ण के चरित्र का दूसरा पक्ष वह था जिसमें रीतिकाल के कवियो ने कृष्ण भौर राधा की सामान्य नायक नायिका के रूप मे परिकल्पना करके वासनात्मक प्रेम की उद्‌भावना की, तथा प्रेमी,

---

१ डा० रामधारीसिह दिनकर सस्कृत के चार भध्याय पृ० ६२

२ हिन्दी साहित्य कोश, कृष्ण काव्य, पृ० २४०

कामुक एवं विलासी कृष्ण का रूप अंकित किया। हरिऔध जी कृष्ण विषयक के इन रूपों से पूर्णतः परिचित थे।

प्रिय प्रवास की रचना से पूर्व उन्होंने भी कृष्ण-नाटक, प्रद्युम्नविजय, प्रद्युम्नवरणव्याख्यान और प्रद्युम्नप्रवाह नामक काव्यों तथा रुक्मिणी-परिणय और उद्धव-प्रद्युम्नविजय नामक दो नाटकों एवं 'रसकलस' के बहुत से छन्दों की रचना की थी जिनमें श्री कृष्ण को परमब्रह्म अवतारी आदि रूपों में चित्रित किया था। इन रचनाओं में कवि की कृष्ण के प्रति प्रारम्भिक भावना का परिचय मिलता है। 'प्रिय प्रवास' की कृष्ण-भावना में कवि का सबसे नवीन दृष्टिकोण दिखाई देता है। प्रिय प्रवास की भूमिका में कवि ने लिखा है कि "मैंने श्री कृष्ण चन्द्र को इस ग्रंथ में एक महापुरुष की भांति अंकित किया है ब्रह्म करके नहीं। अवतारवाद की जड़ में मैं श्रीमद्भागवत गीता का यह श्लोक मानता हूँ 'यद् यद् विभूतिमत् सत्त्वं श्रीमद्जितमेव वा। तत्तदेवावगच्छत्वं ममतेजोंऽशसम्भवम्।" अतएव जो महापुरुष है उनका अवतार होना निश्चित है।[1] स्पष्ट है कि प्रियप्रवासकार ने श्री कृष्ण को महापुरुष के रूप में अंकित किया है न कि ब्रह्म के रूप में। प्रियप्रवासकार की यह विचारणा समय के अनुरूप भी थी। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में बुद्धिवाद के प्राधिक्य वैज्ञानिक-शिक्षा के विकास तथा ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज आदि धार्मिक आन्दोलनों के कारण नवीन चिन्तनधारा का सूत्रपात हो चुका था जिसके कारण कृष्ण का अवतारी रूप मान्य न रह गया था। यूरोपीय शिक्षा एवं संस्कृति के सम्पर्क ने जहाँ रूढ़िवादी धार्मिक मान्यताओं का उन्मूलन किया वहीं चिंतन के क्षेत्र में नवीन बौद्धिक एवं तार्किक दृष्टिकोण दिया। प्राचीन आस्थाओं के स्थान पर नये विश्वासों नवीन मानवीय मूल्यों की स्थापना हुई। इसीलिए हरिऔध ने स्पष्ट लिखा था कि— "मैंने कृष्ण चरित्र को इस प्रकार अंकित किया है जिससे आधुनिक लोग भी सहमत हो।" इस प्रकार कृष्ण चरित्र के निरूपण में कवि ने आधुनिक युग की वैज्ञानिक एवं तार्किक दृष्टि का उपयोग किया है। इसलिए प्रिय प्रवास कृष्ण आदर्श मानव किंवा अनुकरणीय चरित्र के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। प्रिय प्रवास के प्रथम सर्ग में श्री कृष्ण का मनोहर एवं चित्ताकर्षक रूप है।[2] कृष्ण का रूप सौन्दर्य ही ब्रजवासियों के आकर्षण का कारण था। कृष्ण की सुरम्य मूर्ति शील गुण से सम्पन्न भी थी।[3] श्री कृष्ण का व्यक्तित्व जितना आकर्षण का केन्द्र था उतना ही उनका व्यवहार भी मृदु एवं सुखकारी था। कृष्ण के चरित्र में सौन्दर्य शक्ति और शील का समन्वय था। अपनी शक्ति और सामर्थ्य

---

१ प्रिय प्रवास भूमिका पृ० ३१

२ प्रिय प्रवास—सर्ग १ १५ से २८ तक

३ वही—सर्ग ५ ८३

से ही कृष्ण ने व्रजजनो को अनेक सकटो एव आपदाओ से बचाया था। महावृष्टि के समय गोवधन पवत के सरक्षण मे कृष्ण ने एक स्वय सवक के रूप मे काय किया। यमुना से कालियनाग को निकला और दावानल की ज्वाला म भस्म होते ग्वाल बालो की रक्षा की। शकटासुर, अघासुर, बकासुर व्योमासुर, केशी, कस आदि भयकर राक्षसो का वध किया। जाति, समाज और देश की मर्यादा के लिये श्रीकृष्ण ने सब प्रकार के काय किये। परोपकार की भावना कृष्ण के चरित्र की महत्वपूर्ण विशेषता थी। उनके सभी कार्यों के मूल मे जाति, समाज और देशोत्थान की भावना कार्य कर रही थी। इन्ही गुणो के कारण वे अत्यन्त लोकप्रिय थे। उनके कार्यों का स्मरण करके व्रज के आबाल वृद्धजन शोक निमग्न हो जाते थे। कृष्ण के मथुरागमन की सूचना व्रजजनो पर वज्र प्रहार के समान थी। उक्त अवसर पर एक आभीर वृद्ध का यह कथन उनकी भावना का प्रतीक है —

> "सच्चा प्यारा सकल व्रज का वश का है उजाला,
> दीना का है परम धन और वृद्धो का नेत्र तारा,
> बालाओ का प्रिय स्वजन और बन्धु है बालको का,
> ले जाते है सुर-तरू कहा आप ऐसा हमारा।" [१]

जहा तक उनके प्रेमी रूप का प्रश्न है—प्रिय प्रवास के कृष्ण प्रेमी हैं किन्तु कत्तव्यपरायण पहले है। राधा और गोपियो के प्रेमाकषण मे वे जनहित की भावना और कर्त्तव्य को विस्मृत कर व्रज म लौटकर न आ सके। उद्धव के द्वारा राधा को भेजे गये सन्देश म श्री कृष्ण ने स्पष्ट कहा कि मैं कठिन पथ का पान्थ हो रहा हूँ जिससे मिलन की आशा दूर हो रही है। अस्तु, मधुर सुख भोग की लालसाओ को छोडकर जगत हित और लोक सेवा के कार्यो म लीन हो जाना चाहिये। इसी से लोकोत्तर शान्ति एव श्रेय की प्राप्ति होती है। [२] गोपियो को प्रबोधन करते हुए उद्धव ने श्री कृष्ण की प्रकृति का परिचय दिया है —

> "वे जी से है जगत जन के सवदा श्रेय कामी
> प्राणो से है अधिक उनको विश्व का प्रेम प्यारा।
> स्वार्थों को औ विपुल सुख को तुच्छ देते बना है।
> जो आ जाता जगत हित है सामने लोचनो के॥"

इसी के साथ श्री कृष्ण के हृदय की विह्वलता एव मानवोचित स्वभाव दौबल्य का चित्रण भी उद्धव जी के निम्न लिखित शब्दों म दिखाई देता है —

---

१ प्रिय प्रवास, सग ५, २८

२ वही, सग १६—३७ से ४

'प्यारा वृन्दाविपिन उनको आज भी पूर्व सा है
वे भूले हैं न प्रिय जननी औ न प्यारे पिता को।
वैसे ही हैं सुरति करते श्याम गोपांगना की
वैसे ही है प्रणय प्रतिमा बालिका याद आती।"

इस प्रकार प्रियप्रवास के श्रीकृष्ण ब्रज के प्राण, शील की सुरम्य मूर्ति, मानवता के पुजारी, कठिन पथ के पान्थ, और कर्त्तव्यपरायण लोकप्रिय नेता हैं।[1] प्रियप्रवास के श्री कृष्ण ने उद्धव के द्वारा जो सन्देश ब्रजजनों को प्रसारित किया उसमें योग और ज्ञान का उपदेश नहीं वरन् कर्त्तव्य पालन की शिक्षा है। श्रीकृष्ण का चरित्र एक कर्त्तव्यनिष्ठ लोकसेवक एवं आदर्श महापुरुष का चरित्र हैं। इसीलिए विद्वानों ने प्रियप्रवास के चरित्र विश्लेषण की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। प्रियप्रवास में कृष्ण अपने शुद्ध मानव रूप में विश्वकल्याण-कार्य निरत एक जननेता के रूप में अंकित किये गये हैं।[2] प्रियप्रवास के कृष्ण चरित की सबसे बड़ी विशेषता उसका मानवोचित वृत्तियों से सम्पन्न होना है। प्रियप्रवासकार ने बड़े कौशल से कृष्ण के ईशावतारी रूप को छोड़ कर भी उनकी महिमा को अक्षुण्ण रखा है प्रियप्रवास के नायक श्रीकृष्ण में न तो भक्तिकालीन आध्यात्मिकता है न रीतिकालीन वासनात्मकता। उसमें एक ऐसी नवीनता है जो प्राचीन श्रद्धा भाव को विकसित और कामुकता को खंडित करती है। प्रियप्रवास के श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व साहित्यिक लोकप्रियता की दृष्टि से गांधीजी के समान प्रख्यात दिखाई देता है। एक आलोचक के शब्दों में—'प्रियप्रवास के कृष्ण का चित्रण बरबस महात्मा गांधी की याद दिला देता है। ऐसा दिखता है मानो इस काव्य को लिखते समय कवि की मानस रंगभूमि के नेपथ्य में महात्मा गांधी की मूर्ति झिलमिल झिलमिल झांकती रही हो और वह महात्मा श्रीकृष्ण के वाङ्मय के रूप में प्रतिमूर्त हो उठी हो।"[4] इसके अतिरिक्त कृष्ण चरित्र की लौकिकता सिद्ध करने के लिये कवि ने अलौकिक घटनाओं और अस्वाभाविक कार्यों को भी स्वाभाविक ढंग से निरूपित करने का प्रयास किया है। जैसे गोवर्द्धन धारण प्रसंग, कालियदमन तथा दावानल आदि प्रसंगों के अवसर पर। किन्तु इस दृष्टि से हरिऔध जी को आंशिक सफलता ही प्राप्त हुई है। कुछ घटनाओं में जैसे 'कुवलयासममत्त गजेन्द्र' को एक बालक द्वारा पछाड़ते दिखाते

---

१ डा० द्वारिकाप्रसाद प्रियप्रवास में काव्य, संस्कृति और दर्शन, पृ० १११-११४

२ श्री शिवदानसिंह चौहान हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष, पृ० ४९

३ डा० श्यामनन्दन किशोर आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्पविधान पृ० २१२

४ डा० धर्मेन्द्र शास्त्री महाकवि हरिऔध का प्रियप्रवास, पृ० ९४

समय या एकाध अन्य स्थान पर भूत-प्रेत म भय प्रदर्शन जसे अविश्वासो म प्राचीनता के प्रभाव को वे दूर नहा कर पाये हैं। किन्तु यह नगण्य त्रुटिया है। वैसे हरिऔध जी ने कृष्ण की सामाजिक मर्यादा और महापुरुषोचित गौरव-गरिमा की रक्षा करने के लिये चीरहरण एव गोपिकाओ के साथ की गई असगत लीलाओ को प्रियप्रवास मे स्थान नही दिया है। प्रियप्रवास की रासलीलाओ मे कृष्ण के साथ केवल गोपिया ही नहीं वरन् गोप भी दिखाई देते हैं।

इस प्रकार प्रियप्रवास के श्रीकृष्ण का चरित्र महाकाव्योचित गरिमा से सवथा सम्पन्न दिखाई देता है। कृष्ण चरित्र की स्थापना म हरिऔध जी ने क्रातिकारी एव मौलिक दृष्टि का परिचय दिया है। वदिककाल स पुराणयुग और भक्तिकाल से आधुनिक युग तक कृष्णचरित का जो निरूपण हुआ है उसमे 'प्रियप्रवास' के श्रीकृष्ण का अभिनव और गौरवान्वित रूप देखने को मिलता है। इस काव्य के श्रीकृष्ण युगजीवन की आकाक्षाओ का प्रतिनिधित्व करने मे सक्षम हैं। व मानवतावादी पृष्ठभूमि पर स्थापित होने के कारण जन जन की प्रेरणा के स्रोत एव अभिनन्दनीय भी हैं। प्रियप्रवास के श्रीकृष्ण प्राचीन और नवीन, पौराणिकता और आधुनिकता, महाधता और नम्रता, शील और शक्ति, प्रेम और मोह, त्याग और सयम ओज और औदार्य के अद्भुत समन्वयात्मक प्रतीक हैं।

राधा—'राधा' शब्द का सवप्रथम आविर्भाव कसे कहा और किसके द्वारा हुआ, इस सम्बन्ध मे ऐतिहासिक प्रमाण आज भी अनुपलब्ध हैं। यद्यपि हाल की गाथा सप्तशती तथा पचतन्त्र में राधा का उल्लेख अवश्य मिलता है किन्तु उससे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता क्योंकि यहा राधा कृष्ण की सहचरी नहीं है। कुछ विद्वानों ने अनुमान लगाया ह कि राधा मध्य एशिया से आने वाली आभीर जाति की उपास्य देवी था। किन्तु सवप्रथम ब्रह्मवैवत्त पुराण मे राधा का विस्तृत उल्लेख मिलता ह। इस पुराण म 'राधा नाम की व्युत्पत्ति दो प्रकार से बतलाई जाती ह :—

> "राधेत्यय समिद्धा राकारो दानवाचक
> स्वय निर्वाणदात्री या सा राधा परिकीर्तिता।
> रा च रासे च भवनाद धा एव धारणा दहो,
> हरे रा लिगनादारात तेन राधा प्रकीर्तिता॥'[1]

श्री बलदेव उपाध्याय ने इन श्लोको की व्याख्या करते हुए लिखा है कि "राधा का अथ है ससिद्ध अर्थात सम्यक स्थित, नित्य। रा=दान, धा=आधान

---

1 ब्रह्मवैवर्त पुराण कृष्ण जन्म खण्ड, अ० १७, श्लोक २२३ २२४- -

करने वाली। इस व्युत्पत्ति से निर्वाण की दात्रि होने के कारण ही वे राधा कहलाती है। रा=रास मे स्थिति, धर=धारण, रास म विद्यमान रहने तथा भगवान श्रीकृष्ण को आलिंगन देने के कारण ही श्रीमती राधा इस नाम से प्रसिद्ध है।[1] ब्रह्मववत्त पुराण के रचनाकाल के सम्ब ध मे विद्वाना मे मतक्य न होने के कारण इस पुराण की राधा शब्द विषयक व्युत्पत्ति को अति प्राचीन मानना सभव नही। प्रो० विल्सन ने भी राधा की उद्भावना का आधार पुराणों को माना है। उनके मतानुसार ब्रह्मववत्त पुराण ही राधा के चरित्र विकास का आधार ग्रन्थ है।[2] डा० शशिभूषणदास का मत है कि "पुराणों, उपपुराणो श्रुतियो स्मृतियो, तन्त्रादि म राधा का उल्लेख है उनकी प्राचीनता और प्रामाणिकता बिल्कुल उडा देने की हमे हिम्मत न होने पर भी इन तथ्यो, प्रमाणों के आधार पर किसी विशेष ऐतिहासिक निष्कर्ष पर पहुचने मे हम असमर्थ हैं।"[3] आश्चर्य तो यह है कि कृष्णचरित से सबधित श्रीमद्भागवत महापुराण एव अन्यकृष्ण कथा उल्लेखनीय–महाभारत, हरिवश, ब्रह्मपुराण,विष्णुपुराण आदि मे राधा का कही उल्लेख नही है। श्रीमद्भागवत म एक गोपी का उल्लेख अवश्य मिलता है जो श्रीकृष्ण को सब गोपियों से अधिक प्रिय थी और रासलीला करते हुए अन्य गोपियो का गव भग करने के लिये कृष्ण उसी गोपी के साथ अन्तर्ध्यान हो गये थे। श्रीकृष्ण को ढूढते हुए जब अन्य गोपियो ने उस युवती के चरण चिह्न भी देखे तो कहा कि निश्चय ही इस गोपी ने श्रीकृष्ण की आराधना की है जो वह हम सबको छोडकर एकात मे चले गये—

अनयाऽऽराधितो नून भगवान हरिरीश्वर ।
यन्नो विहाय गोविन्द प्रीतो याम नद दरह ॥

विद्वाना ने इसी आराधित शब्द से राधा शब्द की उद्भावना मानी है और उस मुख्य गोपी को राधा माना है। आराधित शब्द से मिलती जुलती व्युत्पत्ति ब्रह्म सहिता मे भी मिलती है—

---

१ श्री बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय पृ० १४३

२ "We must look to the Braham Vaivart Purana as the chief authority of a classical character on which the presentations of Radha are founded'
H H Wilson—Hindu Religions Page 113

३ डा० शशिभूषणदास—श्री राधा का क्रम विकास, पृ० ११

त्वया आऽऽराधितो यस्या दह कु ज–महोत्सवे ।
राधेतिनाम विख्याता रास लीला विधायका ॥[१]

श्री मद्भागवत पुराण की इस गोपी को ही भारतीय एव पाश्चात्य विद्वाना न राधा स्वीकार किया है। डा० फर्कुहर राधा का उद्भव एव राधा–भक्ति का प्रारम्भ श्रीमद्भागवत पुराण से ही मानत हैं।[२] आगे चलकर वे स्पष्ट स्वीकार करते हैं कि भागवतपुराण क आधार पर ही राधा का मिथ (?) प्रचलित हुआ और वृन्दावन के बाद राधा का प्रचार बगाल एव अन्य स्थानो पर हुआ।[३] इसके अतिरिक्त वायुपुराण वराह पुराण नारदीय पुराण, मत्स्यपुराण आदि मे भी राधा का उल्लेख मिलता है। इस प्रकार प्राचीन वाग्मय मे उपलब्ध तथ्यो के आधार पर यही कहा जा सकता है कि श्री राधा की उद्भावना पौराणिक काल की देन है।

राधा की माधुरी मूर्ति का अकन हमे भक्तकवि जयदेव के 'गीत-गोविन्द' मे मिलता है। जयदेव ने 'उद्दाम प्रेममयी' राधा का चित्रण किया है। उनकी राधा विलासिनी होते हुए भी कृष्ण के प्रेम मे अनन्य भाव से उन्मत्त और आसक्त चित्रित की गई है। जयदेव के बाद विद्यापति की पदावली म विरहिणी राधा का रूप दिखाई देता है। साथ ही बगाल के वष्णव कवि चण्डीदास की पदावली म भी राधा का विरहिणी के रूप मे ही चित्रण मिलता हैं। किन्तु दोनों मे अन्तर यह है कि "चण्डीदास की राधा मे मानस-सौन्दर्य अपनी चरम सीमा तक पहुचता है। विद्यापति की राधा मे शरीर सौन्दय उसी प्रकार अपनी परिणति पर पहुचता है।"[४]

इन सभी कविया की कल्पना से सवथा पृथक चित्र सूरदास की राधा का मिलता है जिन्होने राधा के सयोग और वियोग दोनो का ही मर्यादित चित्रण किया है। सूर के अनन्तर तीन चार सौ वर्षों के ब्रज-साहित्य मे राधा का चित्रण सामान्यत सभी कवियो ने अपने ढग से किया है। ब्रजभाषा काव्य म राधा-कृष्ण कवियों की भाव-साधना के प्रतीक बन गये थे। इसलिए किसी किसी को छोडकर

---

१ बृहद् ब्रह्मसहिता द्वितीय पाद, चतुथ अध्याय, श्लोक १७४

२ डा० जे० एन० फर्कुहर एन आउटलाइन आफ दि रिलीजस लिटरेचर आफ इडिया, पृ० २३७

३ डा० जे० एन० फकुहर–एन आउट लाइन आव दी रलीजस लिटरेचर आफ इडिया पृ० २३८

४ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी मध्यकालीन धम साधना, पृ० १८३

सभी कवियों ने राधाकृष्ण के चित्रण द्वारा अपनी लेखनी को धन्य किया। "ब्रज भाषा काव्य के प्रारम्भ काल में राधा और कृष्ण इतिहास या तत्व की चीज नहीं रह गये थे। वे सम्पूर्णत भाव जगत की चीज हो गये थे।" [1] यही कारण है कि वल्लभ सम्प्रदाय के अष्टछाप के कवियों ने श्री वल्लभाचार्य द्वारा राधा का उल्लेख न होने पर भी उसका सभी कवियों ने अपने काव्य में निरूपण किया। राधा सम्बन्धी भक्ति भावना का मत अष्टछाप के कवियों ने विट्ठलनाथ जी से ग्रहण किया था। डा० दीनदयाल गुप्त ने लिखा है—"श्री वल्लभाचार्य ने गोपियों के प्रकार बताते हुए राधा नाम की स्वामिनी स्वरूपा गोपी का उल्लेख नहीं किया, उन्होंने अन्य किसी ग्रन्थ में राधा का उल्लेख नहीं किया है।.... राधा नाम का समावेश श्री विट्ठलदास जी ने अपने सम्प्रदाय में किया था। अष्टछाप के कवियों ने गोस्वामी विट्ठलनदास जी के मत को इस सम्बन्ध में ग्रहण किया।" [2]

'सूर और नन्ददास आदि कवियों ने भक्तिकाल में राधा कृष्ण की जिस रूप माधुरी का चित्रण प्रारम्भ किया था उसमें भक्ति और शृंगार का सुन्दर सामंजस्य था। आगे चलकर रीतिकालीन कवियों ने दरबारी वातावरण तथा अन्य कुछ कारणों से राधा को नायिका के रूप में चित्रित करना प्रारम्भ किया। रीतिकालीन राधा में ऐन्द्रिक शृंगार भावना के कारण विकृति आ गई क्योंकि रीतिकाल के कवियों ने कलुष शृंगार में डुबोकर राधा को काव्य रचना का विषय बनाया था। आधुनिक काल में पुन भारतेन्दु से राधा के रमणीय रूप का संयत चित्रण प्रारम्भ होता है। हरिऔध जी ने राधा के चरित्र विश्लेषण में सर्वथा नवीन दृष्टिकोण का परिचय दिया है। प्रियप्रवास की राधा जहां परिणय की प्रतिमा है वहां लोकसेविका भी है। उनके चरित्र का विकास प्रेम और कर्त्तव्य की पवित्र भूमि पर हुआ है। उन्हें आदर्श भारतीय नारी के रूप में चित्रित किया गया है।

राधा प्रियप्रवास महाकाव्य की नायिका हैं। प्रियप्रवास की रचना में राधा का विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण स्थान है। प्रियप्रवास के चतुर्थ सर्ग में सर्व प्रथम राधा के दर्शन एक अपूर्व छविमयी बालिका के रूप में होते हैं। उनकी रूपमयी माधुरी का चित्र अंकित करते हुए कवि ने लिखा है —

> 'रूपोद्यान प्रफुल्ल प्राय कलिका राकेन्दु बिम्बानना,
> तन्वंगी कल हासिनी सुरसिका, क्रीडा कला पुत्तली।
> शोभा वारिधि की अमूल्य मणि सी, लावण्य लीलामयी,
> श्री राधा मृदु भाषिणी मृगदृगी, माधुर्य सम्मूर्ति थी॥[3]

---

१ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी सूर साहित्य पृ० २१
२ डा० दीनदयाल गुप्त अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ५०८
३ प्रियप्रवास सर्ग ४–४

इस सर्ग मे राधा के नखशिख सौन्दर्य चित्र का अंकन बडे कलात्मक ढंग में हुआ है। कवि ने राधा को कलामगन, सुकुमार, कमनीय एवं सद्गुण अलङ्कृता बाला के रूप मे चित्रित किया है। इस चित्रण म कवि ने श्री राधा के परम्परित लावण्यमय एवं आकर्षक व्यक्तित्व को सजोया है जिसके चित्रण में जयदेव, विद्यापति, चण्डीदास, सूरदास, नन्ददास एवं रीतिकालीन कवि अपनी प्रतिभा का परिचय दे चुके थे। किन्तु फिर भी प्रियप्रवास की राधा का रूप सर्वथा नवीन है। क्योंकि वह जयदेव की विलासिनी प्रेम विह्वला नारी, विद्यापति की यौवनामत्त मुग्धा नायिका, चण्डीदास की परकीया नायिका सूर की मर्यादा सन्तुलित नागरी, नन्ददास की तार्किक और रीतिकाल की उच्छृंखल अल्हड किशोरी सी नहीं जान पडती।[1] जयदेव की राधिका के समान उनमें प्रगल्भ व्याकुलता नही है, विद्यापति की राधिका के समान उनमें मुग्ध कौतुहल और अनमिल प्रेम लालसा नहीं है। चण्डीदास की राधा के समान उनमे अधीर कर देने वाली गलद्वाष्पा भावुकता भी नही है पर कोई सहृदय इन सभी बातों को उनमें एक विचित्र मिश्रण के रूप म अनुभव कर सकता है।[2] प्रियप्रवास म राधा के प्रेममय व्यक्तित्व का क्रमिक एवं समुचित विकास चित्रित किया गया है। कृष्ण और राधा दोनो के पिता म स्नेह सम्बन्ध था।[3] इसलिये दोनो बालको का प्रेम बाल्यावस्था से ही विकसित हुआ था।

राधा कृष्ण के प्रेम का प्रसार बडे स्वाभाविक ढंग से हुआ था। अत राधा के हृदय म कृष्ण के प्रति प्रेम भाव दृढतर होता गया। यौवनावस्था तक पहुँचते २ दोनो का स्नेह भाव का प्रणय में परिवर्तन हो गया। राधा के मनमानस म कृष्ण की मन माधुरी मूर्ति बस गई।[4] प्रणय भाव की तीव्रता मे वे कृष्ण को पतिरूप मे वरण करना चाहती थी—"मम पति हरि होवें चाहती मैं यही हू।" कृष्ण के मथुरागमन से राधा की आकाक्षाओं पर तुषारापात हो गया। उसने पवन दूत के द्वारा अपना विरह संदेश भेजा। यही से राधा का विरहिणी रूप दिखाई देता है। उनके मानस पर कृष्ण के रूप की छवि अंकित हो गई थी। किन्तु विरह वेदना ही राधा के व्यक्तित्व का उन्मेष करती है। कृष्ण से विलग होने पर राधा के हृदय मे उदात्त भावों की सृष्टि होती है। उसे सारा जगत कृष्णमय प्रतीत होता है। कालिन्दी के जल में उन्हें श्याम के गात की आभा दिखाई देती है। सरो म खिले

---

१ श्री दुर्गाशंकर मिश्र हिन्दी काव्य मथन, पृ० २७१
२ हरिऔध अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ४६१
३ प्रियप्रवास, सर्ग ४–६
४ वही, सर्ग ४ छन्द १७, १८

कमलो म कृष्ण के कर पग दिखाई देते हैं।[1] तारामा से खचित नभ और मेघो म मुदित बक पक्ति म उन्हे श्याम का मुक्त लसित उर दिखाई देता है।[2] ऊचे शिखरो म कृष्ण के चित्त की उच्चता,[3] फूली सध्या म परमप्रिय की काति, रजनी म श्याम के तन का रग,[4] मृगमालिका म अलक-सुषमा, मृगो म आखो की छवि,[5] गगनतल म श्यामगात की नीलिमा, भू मे शाभा[6] और खग कूजन म उन्हे श्याम की मोहिनी वशिका की धुनि सुनाई देती है।[7] श्याम को विश्वमय देखने स उन्हे दो लाभ हुये —

> हो जाने स हृदय तल का भाव ऐसा निराला।
> मैंने प्यारे परम गरिमावान दो लाभ पाये॥
> मेरे जी मे हृदय विजयी विश्व का प्रेम जागा।
> मैंने देखा परम प्रभु को स्वीय प्राणेश ही म॥[8]

अब राधा लोकसेविका और विश्व प्रेमिका हो गई। उनका हृदय विशाल उदार और मानवीय प्रेम भावना स पूरित हो गया। उन्हाने पीडित, पतितो और असहायओ की सेवा का व्रत लिया। राधा ने भगवान की भक्ति का नवीन रूप ग्रहण किया। नवधा भक्ति की नवीन व्याख्या की। डा० रवी द्रसहाय वर्मा के शब्दा म 'कृष्ण स विलग होने पर राधा के प्रेम का उदात्तीकरण मानवजाति एव समस्त लाक के प्रति प्रेम की भावना के रूप मे हा जाता है और वे प्रत्येक प्राणी एव प्रकृति की प्रत्येक वस्तु मे कृष्ण के ही रूप का दर्शन करती है'[9] यहा कृष्ण के अभिन्न ब धु उद्धव के आगमन पर प्रियप्रवास की राधा उन्हे व्यग्य या उपालम्भ नही देती न ही मोहनिमग्ना होकर विरह वेदना का प्रलाप करती है। व शिष्टता पूर्ण ढग स उद्धव का स्वागत करके धर्यपूर्वक श्री कृष्ण का सन्देश सुनती हैं। तदन्तर अपन उर के भावो सवेदनाओ और जीवनादर्शों को स्पष्ट रूप म उद्धव से

---

१ प्रियप्रवास सर्ग १६–७९
२ वही सर्ग १६–८०
३ वही सर्ग १६–८२
४ वही , सर्ग १६–८४
५ वही सर्ग १६–८५
६ वही सर्ग १६–८७
७ वही सर्ग १६–८८
८ वही सर्ग १६–१०४
९ डा० रवीन्द्रसहाय वर्मा हिन्दी साहित्य पर आग्ल प्रभाव पृ० १६१

कह देती है। अपनी ममव्यथा को व्यक्त करने मे वह अपनी दुबलता स्वीकार करती है—

> मैं नारी हू तरल उर हू प्यार से वचिता हू।
> जो होती हू, विकल, विमना, व्यस्त वचित्र्य क्या है ?[1]

राधा न स्पष्ट कहा है कि यद्यपि मैं नित्य सयत और निर्लिप्त भाव से रहती हू फिर भी श्याम की याद आत ही व्यथित हो जाती हू। प्रियलाभ की लालसा मेरे उर म जितनी प्रबल है उतनी जगत हित की इच्छा नही।[2] प्रियानुराग एव लोकसेवानुराग का यह द्वन्द्व राधा म बराबर बना रहता है।[3] यहा कवि न बड कौशल से मानव मनोविज्ञान का प्रदशन किया है। इस मानसिक सघष ने ही राधा की चरित्र सृष्टि को महान और महत्वपूण बनाया है। अन्तत वह लोकसेवा म ही समर्पित हा जाती हैं। तभी तो वह यह कहन मे समथ होती है—

> 'प्यारे जीव जग हित कर गेह चाह न भावें॥[4]

इस प्रकार राधा काव्य के अतिम सग मे सच्ची लोकसेविका बन जाती हैं। व्रजजना के कष्ट निवारण म सब प्रकार से जुट जाती हैं। वह माता यशोदा को सात्वना देती है, गोपजनो को कमठ और परिश्रमी बनने का उपदेश दती हैं। खिन्नमन गोपिकाओ को कृष्ण की मधुर कथाए सुनाकर एव सदुपदेश देकर प्रसन्न करती है। इसीलिये तो कवि न कहा है कि—

> कगाला की परम निधि थी औषधी पीडितो की,
> दीनो की थी बहिन, जननी थी अनाश्रितो की,
> आराध्या थी ब्रज अवनि की प्रेमिका विश्व की थी।[5]

परमाथ सवा भाव के कारण राधा अपने दु ख की अपेक्षा ब्रजवासियो के दु ख से दु खी थी, और उन्ही के निमित्त कृष्ण का ब्रजागमन चाहती थी। अपने लिये तो उनकी यही कामना थी कि—

---

१ प्रियप्रवास सग १६ ५०
२ वही , सर्ग १६ ५६
३ डा० श्यामसुदर व्यास हिंदी महाकाव्या म नारी चित्रण, पृ० १०२
४ प्रियप्रवास – सग १६–६८
५ वही – सग १७–१०

"आशा भूलू न प्रियतम की विश्व के काम आऊ,
मेरा कौमार-व्रत भव मे पूर्णता प्राप्त होवे ॥" [१]

इस प्रकार प्रियप्रवास की राधा हिन्दी कृष्ण काव्य परपरा की एक अद्भुत सृष्टि है जिसके निर्माण मे कवि ने युगचेतना और नवीन जीवना दर्शी की पूर्ण रक्षा की है। प्रियप्रवास की राधा हमारे युग में नारी चेतना का सच्चा प्रतिनिधित्व करती हैं। उनके व्यक्तित्व म प्रम, कर्त्तव्य, त्याग, निष्ठा, शील सौजन्य आदि गुणो का सुन्दर समाहार हुआ है। राधा की चरित्र-कल्पना के द्वारा निश्चय ही हरिऔध जी ने प्रगतिशील दृष्टिकोण का परिचय दिया है। प्रणय, विरह और त्याग की त्रिवेणी से स्नात प्रियप्रवास की राधा का चरित्र भारतीय सस्कृति की साकार प्रतिमा है।

यशोदा—प्रियप्रवास म राधा के अनन्तर यशोदा सबसे महत्वपूर्ण नारी पात्र है। उसका चरित्र करुणा, वात्सल्य और ममता की त्रिमूर्ति है। उनकी चरित्र-योजना मे भारतीय जननी की आदर्श प्रतिमा साकार हो उठी है। प्रियप्रवास मे यशोदा के दर्शन सर्वप्रथम तृतीय सर्ग मे २८वें छन्द से होते हैं। यहा यशोदा कृष्ण की शय्या के समीप बैठी आसू बहा रही हैं क्योंकि उनके मन मे आशकाए व्याप्त हैं जिनके कारण उनका चित्त खिन्न और हृदय व्याकुल है। कृष्ण प्रात कस के यहा चले जायेंगे। वह अत्याचारी कस न जाने क्या बाधा उपस्थित करदे। यशोदा अपने करुण क्रन्दन को धीरे धीरे व्यक्त कर रही हैं। उन्हे यह भी भय है कि कही कृष्ण की नीद मे बाधा न पडे। किन्तु जब उनका दुख न घटा तो सिर झुकाकर चुपचाप श्याम की कुशलता के लिए देवता की आराधना करने लगी। [२] यद्यपि कृष्ण लोकसेवा एव जनहित के लिए जा रहे थे किन्तु भोले स्वभाव एव वात्सल्य के कारण ये बातें यशोदा को प्रभावित नहीं करता। अन्त मे विदाई वेला के समय उनके वात्सल्य का स्रोत फूट पडता है। वह अनेक प्रकार से समझा बुझाकर नद के साथ बालको को भेजती हैं। मार्ग में इन बालको को दुख न हों, इसके लिये सभी प्रकार की प्रार्थना नद से करती हैं। वह कहती है कि इन्हें मधुर फल खिलाना, नाना दृश्य दिखाना, प्यास लगने पर मधुर जल पिलाना आदि। [३] यशोदा कृष्ण के क्षणिक वियोग की वेदना सहन मे भी असम थी किन्तु यह वियोग जब सदव के लिये हो गया तो उसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है। नद का मथुरा से अकेले ही लौटकर आने पर यशोदा के धय का

---

१ प्रियप्रवास, १६।१३५
२ वही, ३।३८ से ८५
३ प्रियप्रवास–५।४९ से ६२

बांध ही टूट जाता है। वह छितामूला लता की भांति महाखिन्नमना होकर नद के परा पर गिर पडती है। [१] वह विकल भाव से आसू बहाती हुई नद से पूछती है —

"प्रिय पति वह मेरा प्राण प्यारा कहा है,
दुख जलधि निमग्ना का सहारा कहा है,
अब तक जिसको देखकर मैं जी सकी हू
वह हृदय हमारा नेत्र तारा कहा ?" [२]

विरहावेग मे वह प्रश्नो की झडी लगा देती है। वह कहती है कि वृद्धा के नेत्रो का तारा, दुख जलधि मे डूबी हुई का सहारा दुखिया मा का जीवन कहा है ? [३] पुत्र के अभाव मे यशोदा मरने को उद्यत हो जाती है —

"इस कृशित हमारे गात को प्राण त्यागो।
वन विवश नही तो नित्य रो रो मरूगी॥
+ + +
हा जीऊगी न अब, पर है वेदना एक होती।
तेरा प्यारा वदन मरती बार मैंने न देखा॥" [४]

इस प्रकार अश्रुधारा प्रवाहित करते करते वह सज्ञा शून्य होने लगी। उनकी करुणार्द्र दशा को देख सभी भीत थे। [५] नद ने यशोदा को सांत्वना दी कि कृष्ण दो दिन मे आ जायेंगे। तत्पश्चात् यशोदा कृष्णागमन की प्रतीक्षा करने लगी। उनके वियोग मे माता का शरीर जीर्ण शीर्ण हो गया था। वह प्रतिदिन द्वार पर आकर बैठती और प्रतिक्षा म ही दिन बिता देती। आने वाले पथिको से पूछती, देवताओं को मनाती और ज्योतिषियो से कृष्णागमन के विषय मे पूछती थी। बहुत दिवस व्यतीत होने पर भी कृष्ण नही आये। उन्होने उद्धव के साथ सदेश भेजा। इस समय यशोदा की दशा बडा दयनीय हो गई थी —

'आवेगो से विपुल विकला शीर्ण काया कृशांगी
चिंता दग्धा व्यथित हृदया शुष्क-ओष्ठा अधीरा
आसीना थी निकट पति के अम्बु नेत्रा यशोदा
खिन्ना दीना विनत बदना मोह मग्ना मलीना।" [६]

---

१ प्रिय प्रवास—७।१०
२ वही—७।११
३ वही—७।१२ से १५
४ वही—७।५५ से ५७
५ वही—७।५८
६ वही—१०।६

ऐसी दशा मे यशोदा बडे व्यथित भाव से कृष्ण के लालन पालन करने में उठाये कष्टो की कथा कहती है। साथ ही ब्रज की व्यथा का वर्णन भी करती है।[१] नदगृह मे बठे उद्धव रात्रि भर यह सारी कथा सुनते रहे। प्रात होने पर उद्धव नन्द सहित सद्म से चले गये। उद्धव के गृहत्याग से ही वह दुख की कथा परिसमाप्त हुई, किन्तु यह कथा उद्धव के हृदय पर सदा के लिये अकित हो गई।[२]

इन्ही वियोग जन्य परिस्थितियो मे जहां हम यशोदा के चरित्र मे वेदना के दर्शन होते हैं, वही उनके चरित्र का उदात्त रूप भी हमारे सामने आता है। एक ओर वह कहती हैं—

'ऊधो कोई न कल छल लाल ले ले किसी का।'[३]

यहा व्यजना से सकेत देवकी की ओर है। उनके हृदय मे एक कसक सी उठती थी कि—

हो जाती हू मृतक सुनती हाय जो यो कभी हू,
होता जाता मम तनय भी अन्य का लाडला है।'[४]

वही उनका मातृत्व यह कह उठता है—

'मैं रोती हू हृदय अपना कूटती हू सदा ही
हा! ऐसी ही व्यथित अब क्यो देवकी को करूगी

प्यारे जीवें पुलकित रहे औ बने भी उन्ही के
धाई नाते बदन दिखला एकदा और देवें।"[५]

इन पक्तियो मे यशोदा सच्ची माता भी है जो स्वार्थ भावना से उठकर केवल अपने लाल को पुलकित देखना चाहती है। वह देवकी को भी अपनी तरह व्यथित करना नहीं चाहती। उन्हे धाय कहलाने म ही सन्तोष है। "यही भाव उन्हे विश्व म श्रेष्ठ और उच्चतम पद प्रदान करने के लिये पर्याप्त है और इसलिए वे वदनीय और श्लाघनीय है।"[६] इस प्रकार यशोदा माता की दृष्टि से प्रियप्रवास'

---

१ प्रियप्रवास–१०।२० से ८५
२ वही–१०।९६ ९७
३ वही–१०।६९
४ वही–१०।६४
५ प्रियप्रवास–१०।६५
६ डा० प्रतिपाल सिंह बीसवं शताब्दी के महाकाव्य पृ० १०८

तो सम्पूर्ण हिन्दी काव्य रचना मे एक अनुपम सृष्टि हैं। "प्रिय प्रवास मे करुणा की जो सरिता बही है, उनमे सबसे पृथुल धारा यशोदा के शोक की है।" [१] सूर सागर की यशोदा से अनुप्राणित होकर भी प्रियप्रवास की यशोदा, माता की दृष्टि से हिन्दी महाकाव्यो मे एक अद्वितीय स्थान रखती हैं।" [२]

डा० द्वारिकाप्रसाद ने उन्हे वीर प्रसूति माताओ की कोटि मे मानते हुए लिखा है कि– '*अन्तकरण की विशालता एव उदारता के कारण यशोदा माता* वीर प्रसूति माताओ की कोटि मे भी जा पहुँचती हैं। यद्यपि कृष्ण उनके औरस पुत्र नही हैं तथापि वे उन्हे औरस से भी अधिक मानती हैं और उन्हें लोकहित एव लोकसवा के कार्यों म लीन देख कर अतीव हर्ष प्रकट करती है। वास्तव म भारतीय जननी का यही आदर्श रहा है वह ममता एव वात्सल्य से परिपूर्ण होकर भी अपने पुत्र को लोकहित एव लोकसेवा के लिये सहर्ष अग्रसर करती रही हैं। इस दृष्टि से यशोदा जी, कुन्ती, विदुला, सुभद्रा आदि वीर प्रसूती माताओ से किसी प्रकार कम नही दिखाई देती।" [३]

इस प्रकार यशोदा का चरित्र पर्याप्त मौलिकता ग्रहण किये हुए है। हरिऔध जी ने कृष्ण और राधा की भाति यशोदा के चरित्र निर्माण मे महाकाव्यात्मक प्रतिभा का परिचय दिया है। यशोदा का चरित्र अविस्मरणीय रूप स पाठक के मन मस्तिष्क पर अकित हो जाता है। यही इसकी सबसे बडी सफलता है।

अन्यपात्र

नन्द—प्रियप्रवास मे नन्द के चरित्र के दो रूप मिलते है–पिता और पति। तृतीय सर्ग मे कस द्वारा कृष्ण को बुलाने एव अक्रूर आगमन से उनका मन विचलित हो जाता है। यथा–

> "सित हुए अपने मुख लोम को। कर गहे दुख व्यजक भाव से।
> विषम सकट बीच पडे हुए। बिलखते चुपचाप ब्रजेश थे॥" [४]

किन्तु ब्रजधराधीश होने के कारण उनमे गभीरता, दूरदर्शिता एव धैर्य भी था। अपनी मर्मव्यथा को दबाये, भग्न हृदय एव आशकित से वे कृष्ण को लेकर

---

१ प्रिय प्रवास, सर्ग ३।२१
२ विश्वम्भर मानव खडी बोली के गौरव ग्रथ
३ डा० द्वारिका प्रसाद प्रियप्रवास मे काव्य, सस्कृति और दर्शन, पृ० १३१
४ डा० श्याम सुन्दर व्यास हिन्दी महाकाव्यो म नारी चित्रण, पृ० १३९

अक्रूर के साथ मथुरा जाते हैं। वहा कृष्ण को लोकहित मे रत छोड़कर वे दृढ चेता एव उदार हृदय पिता की भांति खाली ही लौट आते हैं। यशोदा एव ब्रजजनो की दशा अत्यत विकल हो जाती है। इस अवसर पर नन्द एक सफल पति की भांति कृष्ण के पुनरागमन का आश्वासन देकर प्रबोधित करते हैं।[1] दशम सर्ग म नन्द के हृद्‌भोगारों की मार्मिक व्यजना हुई है—

'राजा हो वे न असमय मे पा सका मैं सु-साथी'
कस ऊधो कु-दिन अवनि मध्य होते बुरे हैं।"[2]

नद स्वय अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए कहते है कि —

मैं जसा ही अति सुखित था लाल पा दिव्य ऐसा।
वसा ही हूँ दुखित अब मैं काल कौतूहलो से॥[3]

इस अवसर पर नन्द कर्तव्यच्युत नही होते वरन् बड़े कौशल से अपने दायित्व का वहन करते हुए चित्रित किये गये है। उनके सन्तोष का सबसे बडा कारण यही है कि उनका पुत्र लोकहित एव जातीय गौरव की रक्षा के कार्यों म व्यस्त है। नन्द के चरित्र का विकास यद्यपि प्रियप्रवास म पर्याप्त विस्तार से नही हुआ है तथापि एक गभीर उदार विचार सम्पन्न पिता तथा कर्तव्य परायण पति के रूप मे उनकी जितनी भी झाकिया काव्य म दिखाई देती हैं वे कम महत्वपूर्ण नहो है।

उद्धव— प्रिय प्रवास' म उद्धव का प्रवेश नवम् सर्ग से होता है जहा वे अभिन्न बन्धु के रूप म श्री कृष्ण से उनकी खिन्नता का कारण पूछते है और फिर उनके सन्देशवाहक बनकर ब्रज आते है। उनके आगमन स ब्रजवासियो को यह सन्तोष होता है कि कृष्ण उन्हे भूले नही। दूसरे उनके माध्यम से वे अपनी व्यथा को कृष्ण तक भेजने म भी सफल होत हैं। प्रियप्रवास क उद्धव की विशेषता यह है कि वे श्रीमद्‌भागवत सूरदास, नन्ददास आदि अष्टछाप के कवियों एव कृष्ण काव्य मे भ्रमरगीत प्रसग के अन्य गायको के उद्धव की भांति शुष्क ब्रह्मवाद या तत्वज्ञान का उपदेश न देकर जगहित एव विश्व प्रेम का सन्देश देते हैं। यही कारण है कि प्रियप्रवास के उद्धव को सूर, नन्ददास आदि के उद्धव की भांति अवमाननापूर्ण व्यग्य वाक्य नही सुनने पडते, न ही श्रीमद्‌भागवत के उद्धव की भांति

---

१ हो आवेगा प्रिय सुत प्रिय गेह दो ही दिनों मे
ऐसी बातें कथन कितनी और भी नन्द ने की
जैसे तसे हरि जननी को धीरता से प्रबोधा॥
—प्रियप्रवास सर्ग ७।६१

२ प्रियप्रवास सर्ग १०।८९

३ वही सर्ग १०।९४

गोपियों की चरण रज को सिर पर लगाते हैं।[1] यहाँ तो उद्धव के सदेश से प्रेरित होकर राधा लोकसेविका बन जाती हैं। वास्तव म यहाँ उद्धव हरिऔध जी की विचारधारा के सवाहक के रूप मे दिखाई देते हैं। कवि ने अपने विचारो को उनके माध्यम से व्यक्त करने का पूण अवसर पाया है। यही उनके चरित्र का महत्त्व है।

मूल्याकन—

समष्टि रूप म 'प्रियप्रवास' चरित्र विनियोजन की दृष्टि से पूणत सफल रचना है। 'प्रियप्रवास' चरित्र प्रधान महाकाव्य है। विभिन्न पात्रो के चरित्र का समुचित मूल्याकन प्रस्तुत करना भी प्रियप्रवासकार का एक उद्देश्य रहा है।[2] प्रियप्रवास के चरित्र चित्रण म निम्न लिखित विशेषताए दिखाई देती हैं—

(१) प्रिय प्रवास के प्रमुख पात्र कृष्ण और राधा महाकाव्योचित गरिमा से मडित हैं।

(२) प्रियप्रवास के राधा और कृष्ण पौराणिक एव परम्परित व्यक्तित्व-अनुकृति ग्रहण किये हुए भी, अपने कृतित्व एव चारित्रिक विशेषताओ के कारण नवीन, युगीन एव मौलिक है। उनके चरित्र म पौराणिकता और आधुनिकता, ऐतिहासिकता और नवीनता, परम्परा और युगानुरूपता का अद्भुत समन्वय हुआ है।

(३) प्रियप्रवास म नारी चित्रण का आधार मनोवैज्ञानिक है। कवि ने इन पात्रो की विरह वेदना को ऊहापोह बनाकर अतिशयोक्तिपूर्ण ढग से चित्रित न करके परिस्थिति जन्य एव स्वाभाविक रूप मे प्रस्तुत किया हैं।

(४) प्रियप्रवास के सभी पात्र अपनी शक्ति, सामर्थ्य एव क्षमता के अनुसार लोकहित एव जातीय गौरव की भावना के पोषक दिखाइ देते हैं।

साकेत

'प्रियप्रवास' की भाति साकेत' भी चरित्र प्रधान काव्य हैं।[3] यद्यपि गुप्त जी ने साकेत मे कथाचयन कौशल का परिचय कथानक की मौलिक प्रसगोद्भावनाओं, प्रस्तुतीकरण एव घटनावित्ति के द्वारा दिया है किन्तु साकेत के सक्षिप्त कथानक का विस्तार घटनाओ के घटित रूप मे न होकर पात्रो के चरित्र विश्लेषण

---

१ श्रीमद्भागवत पुराण – १०।४७।३९-६३

२ प्रियप्रवास, भूमिका भाग (ग्रथ का विषय), पृ० २९-३०

३ डा० नगेन्द्र-साकेत एक अध्ययन, पृ० १०२

द्वारा कथित रूप म ही अधिक हुआ है। इसलिए साकेत को घटनाप्रधान काव्य न कह कर चरित्र प्रधान काव्य कहना ही अधिक समीचीन है।[1] वस्तुत साकेत चरित्र प्रधान कथा सृष्टि है। कथा विकास तो उसका पृष्ठाधार मात्र है।[2] साकेत की चरित्र सृष्टि का आधार राम कथा के ही लोक प्रसिद्ध पौराणिक पात्र हैं। साकेतकार के चरित्र चित्रण कौशल का परिचय इस बात से मिलता है कि उसने दैवी और राजवंशीय पात्रों के देवत्व और कौलियगव का प्रक्षालन करके उन्हें मानवीय धरातल पर प्रस्तुत किया है। केवल राम का चरित्र एक सीमा तक इस कथन का अपवाद हो सकता है। राम कवि के आराध्य देव हैं अत उनके चरित्र को व सामान्य मानव की कोटि तक चित्रित नही कर सकते थे। इसलिए राम के चरित्र में दवी गुणा का ही प्राधान्य है। वस्तुत राम चरित्र का असाधारण एव आदश रूप कवि की आराध्य देव के प्रति पूज्य भावना का ही परिणाम है। अन्य सभी पात्रो के चरित्र विवेचन म कवि ने प्रसगानुकूल अमानवीय एव मानवीय गुणो की प्रतिष्ठा की है। साकेत की चरित्र योजना मे रामकथा के सभी पात्र किसी न किसी रूप मे आ गये हैं। इनम महत्व की दृष्टि से उर्मिला लक्ष्मण राम सीता भरत, कैकेयी और दशरथ एव अन्य पात्रों म कौशल्या सुमित्रा, माडवी, मथरा रावण एव हनुमानादि उल्लेखनीय हैं।

उर्मिला— साकेत महाकाव्य का सबस महत्वपूर्ण पात्र उर्मिला है। वही इस काव्य की नायिका है। साकेत की सृजन प्ररणा के मूल म काव्योपेक्षिता उर्मिला का ही चरित्र है। 'साकेत की सम्पूण कथा की गति प्रसार एव सवहन म उर्मिला का महत्वपूण स्थान है। डा० नगेन्द्र का मत है कि—' चरित्र प्रधान काव्य की सफलता के लिए यह वाछित है कि उसके सभी पात्र मुख्य पात्र क चरित्र पर घात प्रतिघात द्वारा प्रभाव डालें तथा कभी परिस्थिति और कभी पृष्ठभूमि के रूप मे उपस्थित होकर उसको प्रकाश मे लाए। [3] इस दृष्टि से साकेत का चरित्र विकास पूणत सफल कहा जायगा। उसके सभी पात्र प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप स उर्मिला के चरित्र विकास स सबधित हैं। उर्मिला के सम्पूण चरित्र का अध्ययन तीन रूपा म किया जा सकता है —

१ प्रारम्भिक चरित्र जिसम उसे हम नव परिणिता राजवधू एव आदर्श गृहिणी के रूप म पाते हैं।

---

१ डा० द्वारिकाप्रसाद साकेत म काव्य सस्कृति और दशन पृ० १३६

२ डा० कमलाकान्त पाठक मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृष्ठ ४४३

३ डा० नगेन्द्र—साकेत एक अध्ययन पृ० १०२

२ उर्मिला के चरित्र का द्वितीय रूप विरहिणी का है।
३ तृतीय सर्वगुण सम्पन्न आदर्श नारी।

'साकेत' के प्रथम सर्ग में ही हमें उर्मिला के दर्शन होते हैं जहाँ उसे अनिंद्य सौंदर्य शालिनी, दिव्य गुण सम्पन्न नवयौवना राजवधू के रूप में कवि ने प्रस्तुत किया है। गुप्त जी ने 'मूर्तिमती उषा' 'सजीव सुवर्ण की नयी प्रतिमा', विधि के हाथों ढली', 'कल्प शिल्पी की कला' कहकर उर्मिला की मनोरम रूपाकृति का चित्र अंकित किया है।[1] उर्मिला को कवि ने स्वर्ग का सुमन' कहकर सम्मानित किया है। इसी सर्ग में लक्ष्मण उर्मिला का पारस्परिक हास्यविनोद चित्रित है जिसमें उर्मिला की परिहास वृत्ति आदर्श पत्नीत्व एवं शुद्ध गंभीर प्रेम का परिचय मिलता है। उर्मिला का रमणी हृदय आल्हाद, उत्साह और उमंगों से भरा है। वह चित्रकला प्रवीण, वाक्य पटु, विनयशील और पति को देवरूप में वरण करने वाली रमणी है।[2] उर्मिला का हास्य व्यंग्य, विनोद-वार्त्ता एवं पतिपरायणता के साथ स्वाभाविक सौंदर्य प्रथम सर्ग में ही पाठक के हृदय पटल पर उसके व्यक्तित्व की अमिट रूप छवि अंकित कर देता है।

राम के राज्याभिषेक की चर्चा लक्ष्मण के "कल प्रिये, निज आर्य का अभिषेक है। सब कहीं आनन्द का अतिरेक है।'[3] इस वाक्य में ही मिल जाती है। द्वितीय सर्ग में ही मंथरा की कुमंत्रणा से कैकयी द्वारा राम के वनगमन का वरदान मांगना उर्मिला के जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप बन जाता है। लक्ष्मण राम के साथ वन जाने को उद्यत हो जाते हैं। सीता भी पति के साथ जाती हैं किन्तु उर्मिला अपने पति के साथ वन जाने का आग्रह न कर अपने धैर्य एवं त्याग का परिचय देती है। उर्मिला अपने मन को प्रियपथ का विघ्न नहीं बनने देती। वह अपने स्वार्थ को त्यागकर अनुराग की विराग पर बलि दे देती है। वह अपने मन को विकार एवं शोकभार से भी चूर्ण नहीं होने देना चाहती।

उर्मिला के इस कथन में बड़ा विचित्र मनोवैज्ञानिक संघर्ष है। यही उसके प्रेम और कर्त्तव्य की कसौटी बनता है। यहाँ हम उर्मिला को त्यागमयी देवी के रूप में पाते हैं। पति वियोग की वेदना में वह लावण्यमूर्ति उर्मिला कुम्हलाई लता के समान कृशकाया पीली मुख कांति एवं अशांत नीली आँखें लिये मूर्च्छित मौन पड़ी

---

१ साकेत, सर्ग १, पृ० २६
२ वही पृ० ३०
३ वही सर्ग १, पृ० ३३

दिखाई देती है।[१] उर्मिला की दशा बडी दयनीय हो जाती है। दशरथ का उसे 'रघुकुल की असहाय बहू'[२] कहना उचित ही है। उर्मिला का चरित्र करुणा की साक्षात प्रतिमा बन जाता है और उसकी विरह-वेदना के उच्छ्वास नवम सर्ग के छन्दो म करुणा का स्रोत बन कर फूट पडते हैं। साकेत का नवम सर्ग उर्मिला के विरह-विषाद की चरम निदर्शना है। प्रिय के वियोग म अम्बु प्रवनि, अम्बर म स्वच्छ शरत की पुनीत स्वच्छ क्रीडा अवधि-चित्त-पीडा सी हो जाती है।[३] भोग रोग हो जाते है और उसके हृदय की विरहाग्नि तालवृन्त से धधक उठती है। प्रिय के वियोग मे वह उपवन को वन बनाती है, कुलकलश को अश्रु जल से धोती है[४] तथा अपने मन मन्दिर मे प्रिय की प्रतिमा स्थापित कर, सम्पूर्ण भोगो को त्याग कर अपना जीवन योगमय बना लेती हैं —

> 'मानस मन्दिर मे सती पति की प्रतिमा थाप
> जलती थी उस विरह म बनी आरती आप
> आखो म प्रिय मूर्ति थी भूल थे सब भोग
> हुआ योग से भी अधिक उसका विषम वियोग।''[५]

स्वामी के ध्यान में वह आत्म विस्मृत सी हो जाती है। कामवासना से वह पीडित नही वरन् कामदेव को शिव के तृतीय नेत्र के सदृश अपना सिन्दूर बिन्दु दिखाकर भयभीत कर देती है। वह प्रोषित पतिकाओ के दु ख म समदु खिनी भी होना चाहती हैं।[६] वह विरह के साथ अभिसार भी स्वीकार करती है। विरह म भी उसे काल-ज्ञान का विचार रहता है।[७] प्रकृति के उपादानो के प्रति उर्मिला के मन मे अब भी आकर्षण है वितृष्णा नही। उर्मिला सभी ऋतुओ का स्वागत करती है। प्रकृति के प्रति सवेदना और कृषको के प्रति उसके हृदय म सद्भाव है। वह तो यहा तक कहती है कि—

> सींचे ही बस मालिने, कलश ले कोई न ले कर्त्त री।'

यही नही अपने देश की दशा और उपज के बारे म उर्मिला शत्रुघ्न से समय समय पर पूछती है। विरह की अग्नि म तपकर उर्मिला प्रेम की सात्विक मूर्ति बन जाती है। विरह की कठोर परिस्थितियो मे भी उसका यही विश्वास है कि—

---

१ साकेत, सर्ग ९, पृ० १६०-६१
२ वही सर्ग ६ पृ० १६८
३ वही सर्ग ९ पृ० ३००
४ वही पृ० २६८
५ वही पृ० २६९
६ वही पृ० २७५
७ वही पृ० २८०

'प्रेम की ही जय जीवन म,
यही भाता है इस मन मे ।" [१]

हृदय की उदारता और संवेदनशीलता ही उर्मिला के चरित्र को ऊँचा उठाती है।

उर्मिला के चरित्र का तृतीय पक्ष वह है जब हम उसे अदम्य विश्वास से पूरित वीर क्षत्राणी के रूप म पाते हैं। लक्ष्मण को शक्ति लगने का समाचार पाकर उर्मिला क्षत्राणी वेश म आकर शत्रुघ्न के समीप उपस्थित हो गई। वह कार्तिकेय के निकट भवानी [२] लग रही थी। उसके आनन पर सौ अरुणो का तेज फूट रहा था। उसके माथे का सिन्दूर सजग अगार सदृश था। [३] उनके दायें कर म विकट शूल था और वह गर्जना कर रही थी कि—

'धीरो, धन को आज ध्यान मे भी मत लाओ
जाते हो तो मान हेतु ही तुम सब जाओ।
+ + +
विन्ध्य-हिमालय-भाल भला झुक जाय न धीरो
चन्द्र-सूर्य-कुल-कीर्ति कला रुक जाय न वीरो।
+ + +
ठहरो यह मैं चलू कीर्ति सी आगे आगे
भोगें अपने विषम कर्म फल अधम अभागे।' [४]

उर्मिला के उक्त कथन म कितना प्राणवान् उद्बोधन है। देश प्रेम की ज्वाला है, पराक्रम और साहस का अद्भुत वेग है। शत्रुघ्न के इस कथन पर कि—

क्या हम सब मर गये हाय, जो तुम जाती हो।'

वह वीरो के ही घाव धोने को ही जाना चाहती है जिसमे उसकी सेवा भावना झलकती है। वियोगिनी उर्मिला का ओजमयी वीर क्षत्राणी एव सेवा भाव पूरित नारी का यह स्वरूप निश्चय ही श्लाघनीय है। इसलिए अन्त मे भी राम को उर्मिला की गुण-गीता गानी पडी—

---

१ साकेत पृ० ३२४
२ वही सर्ग १२ पृ० ४७३
३ वही पृ० ४७३
४ वही पृ० ४७४-४७५

> 'तुम हो सहृदय स्वामिनी के भी ऊपर
> मन रखकर जिनका आत्मगात है, इस भू पर।' [1]

> अन्त में प्राण प्रिय लक्ष्मण से मिलकर वह यही कहती है कि—
> 'स्वामी, स्वामी, जन्म जन्म के स्वामी मेरे।' [2]

साकेत में उर्मिला का लौकिक चरित्र स्वर्गिक गुणों से सम्पन्न है। उसके चरित्र में नारी स्वभाव की दुर्बलताएँ भी हैं और आत्मिक विशेषताएँ भी। उर्मिला के चरित्र का विकास परिस्थिति जन्य संघर्षों में हुआ है। उसके व्यक्तित्व में एक ओर रूप का आकर्षण एवं दीप्त यौवन का उन्मेष है तो दूसरी ओर साहस शौर्य स्वाभिमान एवं स्वदेश प्रेम का गौरव भी है। वह विरहिणी है किन्तु कर्त्तव्यनिष्ठ एवं संयमशील। साकेत की यह चिर उपेक्षिता नायिका ही नहीं, हिन्दी महाकाव्यों की चरित्र भूमि में प्रथम बार जिस रूप में प्रकट होती है, वह वेग प्रभृति विगलित होकर भी भावमय एवं अन्तःप्रवाह होकर भी स्वाभाविकता के निकट एवं दैवी गुणों से मण्डित होकर भी नारी सुलभ है।' [3] डा० सत्येन्द्र ने उर्मिला के चरित्र की तुलना दिव्य दीप से करते हुए लिखा है—'उर्मिला घर में जलाई गई उस स्नेहापूत दिव्य दीपशिखा की भाँति प्रज्ज्वलित है जो दूर देशगामी पुरुष को प्रकाश प्रदान करने की कामना का प्रतीक है। उर्मिला में जितना रोना है उतना ही गाना है, जितनी अवरुद्ध है उतनी ही मुक्त है जितनी दुःखी है उतनी ही सुखी है। फिर भी उसमें वीर रमणीत्व ने तो एक अलौकिक दीप्ति उपस्थित कर दी है। उर्मिला का दीपक घर घर में जलाया जा सकता है।' [4] इस प्रकार उर्मिला का चरित्र महाकाव्योचित गरिमा से पूर्ण है।

साकेत का नायकत्व

काव्यशास्त्रीय दृष्टि से साकेत में नायकत्व का प्रश्न कुछ उलझा हुआ है। साकेत के समीक्षक जहाँ उर्मिला को एक मत से नायिका स्वीकार करते हैं वहाँ नायक के सम्बन्ध में भी उनमें मतैक्य नहीं। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी भरत को नायक मानते हैं [5] तो प्रो० त्रिलोचन पाण्डेय [6] और विश्वम्भर मानव [7]

---

१ साकेत, पृ० ४९५
२ वही पृ० ५००
३ डा० श्याम सुन्दर व्यास हिन्दी महाकाव्यों में नारी चित्रण पृ० १०६
४ डा० सत्येन्द्र—गुप्त जी की कला, पृ० १३३–३४
५ श्री नन्ददुलारे वाजपेयी—आधुनिक साहित्य, पृ० ९८
६ श्री त्रिलोचन पाण्डेय—साकेत दर्शन पृ० ९५
७ श्री विश्वम्भर मानव—खड़ी बोली के गौरव ग्रन्थ

के अनुसार राम साकेत के नायक हैं। डा० प्रतिपाल सिंह के अनुसार लक्ष्मण इस काव्य के नायक हैं।[१] डा० कमलकान्त पाठक के मतानुसार—"साकेत के नायक लक्ष्मण हैं। यद्यपि लक्ष्मण सदैव राम के पार्श्ववर्ती रहे, अप्रधान रहे, पर साकेत की कथावस्तु के केन्द्र वे ही हैं ... प्राधान्य की दृष्टि से वास्तविक नायकत्व उर्मिला का है और औपचारिक नायकत्व लक्ष्मण का।"[२] श्री गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' के अनुसार—"साकेतकार ने लक्ष्मण को साकेत का नायक तो बनाया है किन्तु साथ ही पग पग पर उन्हें रामचन्द्र जी का आश्रित बना दिया है।"[३] डा० श्यामनन्दन किशोर ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि "नायक के गुणों का विस्तार वे न तो पूर्णतः उर्मिला में कर सके हैं, न लक्ष्मण में और न राम में, कई उद्देश्यों के जाल में नायकत्व उलझ कर रह गया है।"[४] वास्तव में साकेत में नायकत्व की समस्या उत्पन्न इसलिये हुई कि एक ओर साकेतकार राम के प्रति अपनी पूज्य भावना के कारण उन्हें काव्य में सर्वोपरि स्थान देने से वंचित नहीं रख सका और दूसरी ओर उर्मिला-पति के रूप में लक्ष्मण को नवीन रूप में उभारने तथा मुख्य कथा संचालक की स्थिति प्रदान करने का लोभ संवरण भी नहीं कर सका। साकेत की रंगस्थली पर लक्ष्मण और उर्मिला काव्यारम्भ से प्रविष्ट होते हैं और काव्यान्त भी उन्हीं के संवादों से होता है। सम्पूर्ण कथा की संचालन विधि में लक्ष्मण का महत्वपूर्ण स्थान है। अतः साकेत का नायक लक्ष्मण और नायिका उर्मिला ही को कहा जा सकता है।

लक्ष्मण—साकेत में लक्ष्मण का चरित्र परम्परित रामकाव्यों की अपेक्षा अधिक उन्नत बन पड़ा है। काव्यारम्भ में लक्ष्मण सुकुमार प्रकृति के विनोद प्रिय एवं ललित नायक के रूप में हमारे सामने आते हैं। उर्मिला के साथ हास्यपूर्ण वार्तालाप में लक्ष्मण सौम्य स्वभाव के हास-विलास प्रिय राजकुमार चित्रित किये गये हैं। यह उनके चरित्र का कोमल रूप है।

लक्ष्मण के उग्र रूप का चित्रण तृतीय सर्ग में दृष्टिगत होता है जब वनगमन की सूचना से वे क्रोधित होकर कैकेयी और महाराज दशरथ को कटु से कटु वचन कहते हैं —

---

१ डा० प्रतिपालसिंह—बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य पृ० १३४
२ डा० कमलाकान्त पाठक—मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ० ४४५
३ श्री गिरिजा दत्त शुक्ल गिरीश—गुप्त जी की काव्यधारा, पृ० १४०
४ डा० श्यामनन्दन किशोर—आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्प विधान, पृ० २२४

'अरे मातृत्व तू अब भी जताती ठसक किसको भरत की है बताती
भरत को मार डालूं और तुझको, नरक में भी न रक्खूं ठौर तुझको।'

+ + +

बुलाले सब सहायक शीघ्र अपने, कि जिनके देखती है व्यर्थ सपने।

+ + +

भला वे कौन है जो राज्य देवें, पिता भी कौन है जो राज्य देवें।" [1]

इस अवसर पर वे राम के समझाने पर भी शांत नहीं होते। यहां तक कि कैकेयी को 'नागिनी', 'हतभागिनी', 'दस्युजा' तक कह देते है। अंततः राम के आदेश से सयमित होते हैं। लक्ष्मण की सेवा भावना का प्रत्यक्ष प्रमाण उनका अकेले राम सीता के साथ साग्रह वनगमन है। लक्ष्मण का त्याग और तपस्या भाव महान है। एक ओर वे राम के सच्चे अनुयायी है तो दूसरी ओर उर्मिला के स्वामी भी। उर्मिला के प्रति सच्चा स्नेह भाव होते हुए भी लक्ष्मण सदव सीता की सेवा मे वीर व्रती बन कर रहते हैं। लक्ष्मण की चारित्रिक गरिमा का प्रमाण युद्ध क्षेत्र मे मिलता है जहा वे समान–पराक्रमी मेघनाद को पाकर प्रसन्न होते हैं। सच्चे योद्धा की भाति मेघनाद के बल की प्रशसा करके युद्ध का आह्वान करते हैं। लक्ष्मण म वीरत्व और ओज का भाव काव्य म स्थल स्थल पर दृष्टिगत होता है। सीता हरण के अवसर पर उनका यह कथन श्लाघनीय है —

"बच सकता है रश्मि राजी क्या महाग्रास के तम से भी।
माय उगलवा लूंगा अपनी आर्या को मैं यम से भी॥' [2]

इस प्रकार युद्धोद्यत लक्ष्मण से राम जब विश्राम के लिये कहते हैं तो उनका उत्तर बडा भावपूर्ण है —

'हाय हाय! विश्राम! शत्रु अब भी है जीता
कारागृह में पडी हमारी देवी सीता।

+ + +

यदि बैरी को मार न कुल लक्ष्मी को लाऊ
तो मेरा यह शाप मुझे मैं सुगति न पाऊ॥'

एक अन्य अवसर पर भरत को दल-बल सहित चित्रकूट आते देख उनका अभिमान जाग्रत हो उठता है।

---

१ साकेत–एकादश सर्ग पृ० ४२६ ४२७
१ वही, सर्ग ३, पृ० ८६ ७७

इस प्रकार लक्ष्मण के चरित्र मे स्नेह, संवेदनशीलता, भक्तिभाव, साहस, वीरत्व, पराक्रम आदि गुणों का अद्भुत समन्वय हुआ है। समष्टि रूप में लक्ष्मण के चरित्र के दो पक्ष हैं—एक तो वीर व्रती का और दूसरा भावुक एव प्रेमी पति का। प्रथम पक्ष मे जहां उनकी स्वभावगत चचलता के कारण कही कहीं उग्रता आई है। वही सयम, सेवा भाव, साधना एव तपस्या पूर्ण जीवन के कारण उनके चरित्र का दूसरा पक्ष उज्ज्वल बना है। लक्ष्मण का स्वभावगत आवेश और चाचल्य उन्हें मानवीय बनाता है, यही कवि की सफलता है। "गुप्त जी ने परिवतन यथेष्ठ किया किन्तु लक्ष्मण का मनुष्योचित रूप ही चित्रित किया। उसमें हमें इस धरती के मनुष्य की प्रवृत्तिया झाकती हुई मिलती हैं।" [१]

राम—राम साकेतकार के आराध्य देव हैं अत उनका चरित्राकन करते समय कवि की पूज्य भावना सर्वत्र बाधक रही है। राम को आदश मानव या महापुरुष के रूप मे ही कवि चित्रित कर सका है। राम-भक्त परिवार की याती और सस्कार जन्य निष्ठा के कारण गुप्तजी ने एक ओर राम को ईश्वर माना ह तो युग के प्रभाव और बौद्धिक दृष्टिकोण ने उन्हें मानव के रूप म प्रतिष्ठित किया ह। कवि ने स्वय कहा ह कि—"राम, तुम मानव हो ? ईश्वर नही हो क्या ?[२] और—

> राम तुम्हारा वृत्त स्वय ही काव्य ह।
> कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य ह॥[३]

यही नही गाधीजी को लिखे गये पत्र में गुप्तजी ने स्पष्ट स्वीकार किया है कि साकेत म मुझे राम को प्रभु कहते ही बना ह।[४] गुप्त जी के राम निश्चित रूप से भगवान् ह।[५] यद्यपि कवि ने विश्वास के बल पर उन्हें अवतार माना है पर बुद्धिवाद के प्रभाव के कारण उन्हें मानव ही रखा ह।[६]

वसे राम के चरित्र मे आदश मानवोचित गुण हैं। वे माता पिता के भक्त एव आज्ञाकारी हैं। कत्तव्यपरायणता, त्याग, क्षमा और विनय उनके चरित्र के

---

१ प्रो० त्रिलोचन पाडेय—साकेत दर्शन, पृ० ६१
२ साकेत मुख पृष्ठ
३ साकेत सग ५ पृ० १५६
४ डा० कन्हयालाल सहल—साकेत के नवम सग का काव्य वभव, पृष्ठ १४२
५ डा० उमाकात गोयल—मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय सस्कृति के आख्याता, पृ० १६६
६ डा० कमलाकात पाठक—मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ० ४५९

प्रमुख गुण है। वनवास की आज्ञा मिल जाने पर भी भरत और कैकेयी के प्रति उनके मन म कोई दुर्भाव पैदा नहीं होता। विषम से विषम परिस्थितियों में भी वे अटूट धैर्य धारण किये रहते हैं। साकेत के राम मानवता के लिए जो सदेश प्रस्तुत करते हैं वह म,मुख है—

"मैं आर्यों का आदर्श बताने आया,
जन सम्मुख धन को तुच्छ बताने आया।
सुख शान्ति हेतु मैं क्रांति मचाने आया।
× × ×
भव म नव वैभव व्याप्त कराने आया,
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।
सन्देश यहीं मैं नहीं स्वर्ग का लाया
इस भूतल को ही स्वग बनाने आया।"[1]

राम शक्ति और तेज के निधान है, किन्तु इनका उपयोग वे दीनों के बबर कौणपों के मद को चूर करने के लिये करते हैं। वे ऋक्ष और वानरों के समान बने मानवों तक को आर्यत्व देने वाले हैं —

"बहुजन बने ऋक्ष वानर स
मैं दूगा अब आर्यत्व उन्हें निज कर से ॥"[2]

परिवारजनों के प्रति स्नेह और औदार्य का भाव स्थान-स्थान पर उनके वचनों म प्रकट होता है। 'राम की प्रतिमा म साकेतकार ने अनन्त शील, अनन्त शक्ति और अनन्त सौन्दय का समावेश किया है—परन्तु उसम मानवत्व कुछ अधिक है—साथ ही कुछ नवीनता भी है।"[3] जो भी हो यह तो कहना ही पड़ेगा कि साकेत के राम वाल्मिकि और तुलसी के राम से भिन्न हैं। उनके चरित्र म युग की सम्भावनाएं साकार हुई हैं।

सीता—साकेत म सीता का चित्रण भी नवीनता लिये है। सीता एक ओर भारतीय आदर्श पत्नी है, जिनम पतिपरायणता, त्याग, सेवा, शील और सौजन्य है तो दूसरी ओर वे युग जीवन की मर्यादा के अनुरूप श्रमसाध्य जीवन-यापन में गौरव का अनुभव करने वाली नारी है। उन्हें वन में राज्य वैभव का सुख प्राप्त है, वे आत्मनिर्भर और स्वावलम्बन म विश्वास रखती हैं —

---

१ साकेत सग ८, पृ० २३४ २३५
२ वही, सग ८, पृ० २३५
३ डा० नगेन्द्र—साकेत एक अध्ययन पृ० ११२

"औरो के हाथो यहाँ नही पलती हू,
अपने परो पर खडी आप चलती हू ।
श्रम वारि बिन्दुफल स्वास्थ्य शुचित फलती हू,
अपने अचल से व्यजन आप झलती हू ।
तनु लता सफलता स्वादु आज ही आया,
मेरी कुटिया मे राज भवन मन भाया ॥"[१]

काव्यारम्भ मे हम सीता को एक कुल वधू के रूप में पाते हैं। दशरथ परिवार मे वे एक आदर्श गृहिणी दिखाई देती हैं। परिवार-जनो मे (विशेषकर लक्ष्मण और उर्मिला से) हास परिहास एव व्यग्य विनोद मे उनका सहज व्यक्तित्व मुखरित हुआ है। तदनतर राम के वनगमन की सूचना पाकर पति के साथ ही बन जाने मे अपने को धन्य मानती हैं। सीता सतीत्व की साकार मूर्ति हैं। अपहरण हो जाने के पश्चात रावण जब उन्हे रानी बनाने का प्रलोभन देता है तो वे उसे बुरी तरह फटकारती ही नही हैं वरन् अपने सतीत्व बल के प्रभाव से दपहीन कर देती हैं। उनकी राम के प्रति जो आस्था और प्रेम है, उसी के बल पर उन्होने पति वियोग की वेदना को सहा है। सीता में पतिपरायणा और गृहस्थ धर्म का पालन करने वाली आदश भारतीय नारी का रूप है।

भरत—'साकेत' के भरत 'रामचरितमानस' के भरत से बहुत भिन्न नहीं हैं। उनकी चरित्र, सृष्टि का आधार परम्परित विशेषताएं ही हैं। साकेत में सवप्रथम उनके दर्शन उस समय होने हैं जब वे ननिहाल से लौट कर आते है। पितृ मरण और राम-वनगमन की सूचना से व स्तभित रह जाते हैं। अपने राज्याभिषेक की सूचना पाकर वे 'हा हन्त हिम' कह कर मूच्छित हो जाते हैं। सचेत होने पर वे कैकेयी को 'चडी' और 'दुरमने' कहकर उनके कुकृत्य की निन्दा करते हैं। मातृ-स्नेह म विह्वल होकर वे आवेश म राज-पद का ही तिरस्कार कर देते हैं। वे चाहते हैं—'विगत हो नरपति रहें नर मात्र' इस प्रकार यहाँ भरत समाजवाद और समानता के आदश का क्रातिकारी ढग से प्रतिपादन करते हुए दिखाई देते हैं। इस अवसर पर भरत जिस प्रकार ग्लानि का अनुभव करके दैन्य की अभिव्यक्ति करते हैं वह अवर्णनीय है। तदनतर शकित हृदय से अपराधी के समान भरत माता कौशल्या के समक्ष जाते हैं। भरत स्वय को षडयत्रकारी अधम, अपराधी एव गृह कलह का मूल कहकर दड याचना करते हैं। किन्तु माता कौशल्या यह कहकर —

"मिल गया मेरा मुझे तू राम,
तू वही है भिन्न केवल नाम।"

---

१ साकेत, सग ८, पृ० २२३।

भरत के हृदय को शान्त करती हैं।

भरत राज्यसिंहासन को ठुकरा कर राम को ढूंढने चित्रकूट पहुँचते हैं। अपने आसुओ से उनके चरण पखारते है। भरत के लिए राम इष्टदेव तुल्य हैं। चित्रकूट की सभा मे मुनि वशिष्ठ, राम एव अन्य समासद भरत के शील एव स्वभाव की भूरि भूरि प्रशसा करते हैं। भरत के कारण ही राम और सभासद भरत के शील एव स्वभाव की सराहना करते हुए कहते हैं कि—"सौ बारधन्य वह एक लाल की माई।' इस अवसर पर सभी भरत के धीरता गभीरता मातृ प्रेम, विनम्रता, सदाशयता आदि गुणो की सराहना करते हैं। भरत राम की चरण पादुकाए लेकर लौट आते हैं। और उन्हे सिंहासन पर स्थापित कर एक भक्त की भाति चौदह वर्षो तक कठोर साधना, तप एव सयम का जीवन बिताते हैं। वे नदीग्राम मे तपस्वियों की भाँति रहते हुए राज्य व्यवस्था का विधिवत् सचालन करते हैं।

भरत के अद्भुत व्यक्तित्व का परिचय तब मिलता है जब वे हनुमान के मुख से सीता हरण एव लक्ष्मणशक्ति का समाचार पाकर क्षत्रिय धर्म पालन हेतु वीरत्व भाव को सधारण करते हैं। वे वीरता के दर्प से हुकार उठते हैं —

> 'भारत लक्ष्मी पडी राक्षसो के बन्धन में,
> सिन्धु पार वह बिलख रही है व्याकुल मन में,
> बैठा हू मैं भण्ड साधुता धारण करके
> अपने मिथ्या भरत नाम को धारण करके।
> \+ \+ \+
> मेटूं अपने जडी भूत जीवन की लज्जा।
> उठो, इसी क्षण दूर, करो सेना की सज्जा।
> \+ \+
> सजे अभी साकेत, बजे हाँ जय का डका,
> रह न जाय अब कहीं किसी रावण की लका।'[1]

भरत चरित्र की यह विशेषता साकेतकार की निजी सूझ की परिचायक है। राम काव्यों की परम्परा मे इस रूप में भरत पहली बार चित्रित किये गये हैं।

कैकेयी—'साकेत' के पात्रों मे कैकेयी के चरित्र निरूपण मे गुप्त जी सबसे अधिक सफल हुए हैं। राम कथा के पात्रों में कैकेयी के कलकित एव तिरस्कृत चरित्र को गुप्त जी की लेखनी ने धन्य किया है। सर्वप्रथम 'साकेत' के द्वितीय सर्ग मे हम कैकेयी को सौजन्य से पूर्ण माता के रूप में पाते हैं। जिसे राम के राज्या

---

१ साकेत, सर्ग १२ पृ० ४५४

भिषेक की प्रसन्नता है, क्योकि राम और भरत उसके लिए समान है। मथरा के कुमन्त्रणा से उसके मन मे सन्देह विष बीज वपन हो जाता है। मथरा का निम्न कथन उसे मर्मान्तक आघात पहुचाता है—

"भरत से सुत पर भी सन्देह ।
बुलाया तक न उसे जो गेह ।" [१]

कैकेयी ईर्ष्या और प्रतिशोध की ज्वाला म दग्ध होकर दशरथ से वर मागती है जिसके परिणामस्वरूप उसे वैधव्य का दु ख और पुत्र से विमुखता का क्लेश सहना पडता है। भरत का राज्य सिंहासन के प्रति उपेक्षा भाव देखकर कैकेयी का हृदय निराशा, ग्लानि, परिताप और पश्चाताप से विदग्ध हो जाता है। कैकेयी अपना सर्वस्व लुटाकर और ससार की अवमानना सहकर भी मातृत्व की अभिलाषिनी है। तभी तो वह चित्रकूट की सभा म कहती है, कि—

'थूके, मुझ पर त्रलोक्य भले ही थूके,
जो कोई जो कह सके, कहे, क्यों, चूके?
छीने न मातृपद किन्तु भरत का मुझ से,
रे राम, दुहाई करू और क्या तुझ से। [२]

कैकेयी के इस कथन में कितना विषाद है, कितनी अथाह आत्म व्यथा है। वह अपने को धिक्कारती हुई कहती है कि—

"युग युग तक चलती रहे यह कठोर कहानी—
रघुकुल मे भी थी एक अभागिन रानी।
निज जन्म जन्म मे जीव सुने यह मेरा—
धिक्कार! उसे था महास्वार्थ ने घेरा।" [३]

कैकेयी के इन उद्गारो से उसके समस्त पापों का प्रक्षालन हो जाता है। राम सहित चित्रकूट की सारी सभा एक स्वर से कहती है कि—

'पागल सी प्रभु के साथ सभा चिल्लाई,
सौ बार धन्य वह एक लाल की माई॥' [४]

---

१ साकेत, सर्ग २, पृ० ४९
२ वही, सर्ग ८, पृ० २४९
३ वही, सर्ग ८, पृ० २४९
४ वही सर्ग ८, पृ० २५०

इस प्रकार युग युग से कलंकित चरित्र 'साकेत' में बड़ा भव्य और उज्ज्वल बन जाता है। पश्चाताप की अग्नि में तप कर और आत्मग्लानि के अश्रु प्रवाह से प्रक्षालित होकर कैकेयी का हृदय निष्कलुष किंवा पवित्र हो जाता है। जिस स्वाभाविकता और मनोवैज्ञानिकता की पृष्ठभूमि पर कैकेयी का चरित्र अंकित हुआ उसके कारण वह पाठक की सहानुभूति एवं करुणा का पात्र बन जाती है। इस चरित्र परिवर्तन का श्रेय गुप्त जी को है जिन्होंने चित्रकूट की सभा में उपस्थित होने का अवसर प्रदान कर कैकेयी को मातृत्व की मंगलमयी महिमा से अलंकृत किया है। भारतीय साहित्य के चिर कलंकित पात्रों में कैकेयी की तो उन्होंने कायापलट दी है। साकेत के अध्ययन के पश्चात् कैकेयी के प्रति युगांतर का घनीभूत मालिन्य निःशेष रह जाता है।[1]

अन्य पात्र

साकेत में रामकथा के अन्य सभी पात्रों का भी यथाप्रसंग चित्रण हुआ है। महाराज दशरथ को कवि ने धीर गंभीर नरेश के अतिरिक्त वात्सल्यपूर्ण पिता के रूप में चित्रित किया है। राम की माता कौशल्या उदारमना पुत्रवत्सला जननी के रूप में प्रतिष्ठित की गई हैं। सुमित्रा के चरित्र में क्षत्रियोचित वीरता एवं मातृत्व का सफल समन्वय हुआ है। माण्डवी पति परायणा एवं साध्वी नारी के रूप में अंकित की गई है। उनके चरित्र में अनुराग–विराग एवं आशा–निराशा का विचित्र द्वन्द्व है। वह संयोगिनी होकर भी वियोगिनी का जीवन व्यतीत करती हैं। मंथरा जहाँ नीच दासी है वहीं स्वामिभक्त एवं कर्त्तव्य परायण भी है। शत्रुघ्न कुशल राज्य प्रबंधक एवं आज्ञाकारी भ्राता और हनुमान राम के अनन्य भक्त एवं अतुल पराक्रमी योद्धा हैं, किन्तु उनके चरित्र में वह विशदता नहीं आ पाई जो 'मानस' में है। रावण एक ओर पराक्रमी एवं वैभव सम्पन्न सम्राट है तो दूसरी ओर नीच कर्मी अत्याचारी एवं लोकपीड़क है। इस प्रकार 'साकेत' के प्राय सभी पात्रों का चरित्र परिस्थितियों के अनुरूप अंकित किया गया है।

मूल्यांकन

(१) साकेत के पात्र रामकथा के पात्र हैं और इस दृष्टि से उनका व्यक्तित्व पूर्व निर्धारित है पर गुप्त जी ने उनके निर्माण में युग-चेतना और सामयिक आदर्शों को व्यंजित किया जाता है।

---

१ डॉ॰ उमाकान्त गोयल—मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता, पृ॰ १७३

(२) साकेत के नारी पात्रो मे उपेक्षिता उर्मिला और कलंकिता कैकेयी के चरित्र निर्माण मे गुप्त जी ने मौलिकता एव नवीनता का पूर्ण परिचय दिया है। पुरुष पात्रो में भरत का चरित्र इस दृष्टि से उल्लेखनीय है।

(३) साकेतकार ने दशरथ परिवार के पात्रो के मध्यम से जो चरित्र चित्रण किया है, उसम वतमान युग की परिवार व्यवस्था का सुदर रूप दिखाई देता है। "साकेत के पात्र न तो वाल्मिकी रामायण के चरित्रो की भाँति लोक-प्रतिनिधि और वीर चरित्र हैं, न वे मानस की भाति उदात्त और आदर्श हैं। उनम एक सामान्य पारिवारिक भावना का विकास है, जो वतमान युग की सम्मिलित परिवार व्यवस्था का आभास लिये हुए है।"[१]

(४) साकेत के कवि का प्रयत्न यद्यपि पात्रो को यथार्थवादी भूमिका पर प्रस्तुत करने का रहा हैं किन्तु वे यथार्थ की उपेक्षा आदर्श की ओर ही अधिक उन्मुख रह हैं।

(५) साकेत के चरित्र-चित्रण की सबसे बडी विशेषता यह है कि उसका आधार मानवीय और मनोवैज्ञानिक है। "साकेत का चरित्र चित्रण मानस के चरित्र चित्रण से कम सफल नही है। उसके चरित्रो का मनोवैज्ञानिक आधार तो अधिक पुष्ट है ही। साथ ही साकेत के पात्र अधिक सजीव हैं। वे असाधारण व्यक्तित्व के मनुष्य हैं। परन्तु हैं मनुष्य ही, अत हमारे निकट है।'[२]

कामायनी

'कामायनी' की पात्र सृष्टि अति अल्प है। 'कामायनी' म कुल आठ पात्र हैं। जिनमे प्रमुख तीन हैं—मनु श्रद्धा और इडा। इसके अतिरिक्त तीन अन्य पात्रों में असुर-पुरोहित, आकुलि किलात और मनु-श्रद्धा का पुत्र कुमार मानव हैं। काम और लज्जा अशरीरी पात्र हैं जिनका कथा विकास और घटनाचक्र को प्रभावित करने की दृष्टि से विशेष महत्व नही है।

प्रमुख पात्र

मनु—मानवता के जनक मनु कामायनी महाकाव्य के नायक हैं। काव्य शास्त्रीय दृष्टि से महाकाव्य के नायक में जो धैर्य, औदात्त, शौर्य, साहस, पराक्रम और अदम्य उत्साह होना चाहिये उसका उनके चरित्र मे अभाव ही है। फिर भी सम्पूर्ण काव्य के कथा सचालन और उद्देश्य (फल) की प्राप्ति म वे आद्यात काय रत चित्रित किये गये हैं मनु का चरित्र इतिहास और कल्पना की समन्वित पृष्ठभूमि

१ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—आधुनिक साहित्य, पृ० १०१

२ डा० नगेन्द्र, साकेत एक अध्ययन पृ० ११४

पर अंकित किया गया है। कामायनी में मनु के अनेक रूप दिखाई देते हैं। डा० फतहसिंह ने तीन रूपों[1], डा० द्वारिका प्रसाद ने चार रूपों[2] और डा० श्याम नन्दन किशोर ने मनु के पांच रूपों[3] की प्रधानता स्वीकार की है। मनु के सम्पूर्ण चरित्र का विकास का अध्ययन निम्नांकित चार रूपों में अन्तर्गत किया जा सकता हैं। –

(१) प्रलयकाल के अनन्तर देव सृष्टि के अवशेष के रूप में बचे हुए मनु जो पुष्ट शारीरिक गठन एवं दर्प प्रदीप्त व्यक्तित्व धारण किये हुए चिन्ताग्रस्त दिखाई देते हैं।

(२) श्रद्धा को जीवन संगिनी बनाकर गृहस्थ निर्माण करते हुए मनु, जो वासनातिरेक में अविवेकी बनकर श्रद्धा को निर्जन प्रदेश में छोड़कर चले जाते हैं।

(३) सारस्वत प्रदेश में इड़ा के सम्पर्क में प्रजा पालन करते हुए मनु, जो कालान्तर में विलासी प्रवृत्ति के कारण असफल हो जाते हैं।

(४) श्रद्धा के पुनसम्पर्क से आनन्द की खोज में रत मनु, जिन्हें अन्तत सफलता मिलती है।

कामायनी का प्रारम्भ मनु के ही अन्तर्बाह्य व्यक्तित्व के निरूपण से होता है। उनके व्यक्तित्व के दो पक्ष हैं एक ऐतिहासिक और दूसरा सांकेतिक। ऐतिहासिक दृष्टि से मनु का चरित्र वैदिक वाङ्मय एवं पौराणिक ग्रन्थों में उपलब्ध है। वहां वैवस्वत मनु को प्रजापति पृथ्वी पति, श्रद्धादेव प्रथम पाकयज्ञकर्ता एवं सृष्टि-कर्त्ता आदि कहा गया है। सांकेतिक दृष्टि से मनु को मन का प्रतीक मानकर उन्हें इन्द्रियों का स्वामी संकल्प–विकल्प शील, बलिष्ठ चंचल एवं अभीष्ट कार्य का संपादन कर्त्ता बताया गया है प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में मनु का चरित्र अत्यन्त एवं विशद रूप

---

१ 'मनु का पहला प्रजापति रूप हैं—दूसरा वैदिक कर्मकांडी ऋषि का रूप है—मनु का एक तीसरा रूप और भी है जो मनु–इड़ा युग के अन्त होने पर आनन्द पथ को खोजते हुए मनु में देखा जा सकता है।"

—डा० फतहसिंह–कामायनी सौन्दर्य, पृ० १४७

२ डा० द्वारिकाप्रसाद–कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन पृ० १०५ से १०८। (अ) ऋषि मनु (आ) गृहस्थ मनु, (इ) प्रजापति मनु, (ई) आनन्द के अधिकारी मनु

३ डा० श्यामनन्दन किशोर–आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों में शिल्प विधान पृष्ठ २२७—२२८

तरुण तपस्वी चिन्तक गृहस्थ, बुद्धिवादी और आनन्द तत्त्वदर्शी

में ग्र कित किया गया है। प्रसाद जी ने 'कामायनी' के मनु का निर्माण करते समय ऐतिहासिक मनु का प्रांशिक रूप ही ग्रहण किया, शेष चरित्र विकास उनकी निजी कल्पना पर प्राधारित है। काव्यारम्भ म ही मनु के सम्पुष्ट शरीर गठन का परिचय देते हुए उनके व्यक्तित्व में दवीय प्र श की प्रवतारणा की गई है। पौरुष ग्रौर यौवन से ग्रोतप्रोत होकर भी मनु चिन्ता-कातर है।[1] उनकी चिता का कारण प्रकस्मात को जलप्लावन द्वारा महान् देव सृष्टि का ध्वस है। मनु देव-जाति के विनाश के कारणों की चिता में डूबे हुए सोचते हैं —

> ग्राज ग्रमरता का जीवित हूँ,
> मैं वह भीषण जजर दम्भ,
> ग्राह् सग के प्रथम ग्र क का
> प्रथम पात्र मय-सा विष्कम्भ।[2]

इस स्थिति में श्रद्धा के सम्पक से मनु के हृदय म ग्राशा का सचार होता है। मनु श्रद्धा पर ग्रासक्त हो जाते हैं। श्रद्धा नारी का समर्पण भाव लेकर उनके जीवन में प्रविष्ट होती है। श्रद्धा ग्रौर मनु प्रणय सूत्र म बध यज्ञादि कर्मों को सम्पन्न करते हुए गृहस्थ जीवन मे प्रविष्ट होते हैं। यहाँ हम मनु को चचल, कामुक, वासनाप्रिय, हिंसक एव स्वार्थी व्यक्ति के रूप मे देखते हैं। वे ग्राकुलि ग्रौर किलात के परामश से श्रद्धा के पालित पशु की वलि दे देते हैं। इन कार्यों मे श्रद्धा का प्रतिरोध उन्हें ग्रच्छा नही लगता। वे गभवती श्रद्धा से ग्रपनी उद्दाम कामवासना की तृप्ति चाहते हैं। मनु कहते हैं —

> तुच्छ नहीं ह ग्रपना सुख भी,
> श्रद्धे ! वह भी कुछ ह,
> दो दिन के इस जीवन का तो
> वही चरम सब कुछ ह।"[3]

मनु इन्द्रिय जन्य ग्रभिलाषाग्रो की तृप्ति को ही जीवन का ध्येय मान लेते हैं। श्रद्धा की भावी सतति के प्रति प्रेम के कारण उनके मन मे ईर्ष्या भाव उत्पन्न होता है। ग्रौर एक दिन 'लो चला ग्राज म छोड यही सचित सवेदन भार पु ज'[4] कहते हुए श्रद्धा को निजन प्रात में ग्रकेली छोड कर चले जाते हैं।

---

१ कामायनी, चिन्तासग, पृ० ४
२ वही पृष्ठ १८
३ वही, कम सग, पृ० १३०
४ वही ईर्ष्या सग, पृ० १५४

श्रद्धा से विमुख होकर मनु सारस्वत प्रदेश पहुँचते हैं। वहाँ इडा के रूप सौन्दर्य पर रीझ कर सारस्वत प्रदेश के शासन का सचालन करते हैं। किन्तु यहाँ भी इडा पर एकाधिकार की भावना उन्हें सकटपूर्ण स्थिति म डाल देती ह। इडा पर निरकुश अधिकार की कामना से मनु बलात्कार करने का प्रयत्न करते हैं, परिणामस्वरूप सारस्वत प्रदेश की प्रजा विद्रोह कर देती ह और मनु घायल हो जाते हैं। इस प्रसग म युद्ध करते हुए यद्यपि मनु का प्रजापति, योद्धा एव कुशल प्रशासक रूप भी हमारे समक्ष आता ह किन्तु इन्द्रिय लिप्सा, कामुकता एव अतृप्त वासना स वह मुक्त नही ह।

श्रद्धा के पुनर्मिलन से मनु क चरित्र म आपातिक परिवतन आ जाता ह। मनु ससार से पराड मुख होकर आनन्द की खोज मे चल पडत हैं। श्रद्धा के पुन सपक से उनके वासनापूर्ण जीवन की इति हो जाती ह। सारस्वत प्रदेश के कटु अनुभवो के कारण उनका सम्पूर्ण अहकार और मिथ्यादम्भ समाप्त हो जाता ह। काव्य के प्रारभ मे जिस मनु को हम स्वार्थी इन्द्रिय लिप्सु भौतिकता प्रिय ईर्ष्यालु पाते हैं वे अब निवत्ति मार्गी होकर अखड आनन्द की खोज मे चल देते है। अपने पुत्र कुमार और इडा को सारस्वत प्रदेश मे छोडकर श्रद्धा के साथ हिमालय प्रस्थान करते है। वहा नर्तित नटेश (शिवताण्डव) क दशन से उनका हृदय पवित्र हो जाता ह तभी मनु पुकार उठते है —

> यह क्या श्रद्धे ! बस तू ले चल, उन चरणो तक दे निज सम्बल,
> सब पाप पुण्य जिसमे जल जल, पावन बन जात है निमल
> मिटते असत्य स ज्ञान लेश, समरस अखड आनन्द वेश।"[1]

श्रद्धा मनु को इच्छा ज्ञान और क्रिया प्रदेशो का भ्रमण कराती हुई अपनी स्मिति मात्र मे त्रिकोण को एकाकार कर अर्थात समरसता का सचार कर उन्हे अभेद स्थिति का बोध कराती ह। मनु का अहम् भाव इदम् म समाविष्ट हो जाता है। उन्ह सम्पूर्ण विश्व अखड चेतना का विलास प्रतीत होता ह। मनु को अखड आनन्द की प्राप्ति होती ह।

इस प्रकार कामायनी के नायक मनु का चरित्र यथाथ और आदश की समन्वित भूमिका पर अवतरित हुआ ह। मनु के चरित्र म उत्थान-पतन की सभी रेखाए उभरी हैं। मनु के चरित्र विकास म प्रसादजी ने मनोवैज्ञानिक अन्तदृष्टि का पूर्ण परिचय दिया ह। मनु के चरित्र म जिस चिन्ता निराशा कामना ज य कुण्ठा अहम् वान्तिता और पराजयवादी प्रवत्तियो का चित्रण किया गया ह उनके कारण

---

१ कामायनी दर्शन सग पृ० २५४

वे यथार्थ की भूमिका पर ग्रामीण होकर सामान्य मानव की श्रेणी में आते हैं। इन्ही दुर्बलताओं के कारण मनु का चरित्र युगानुरूप और अनुकरणीय बनता है। उनके चरित्र का दूसरा पक्ष वह है जिसमे उन्हें निवृत्ति मार्गी किंवा आनन्द पथ के खोजी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। काव्य के अन्तिम तीन सर्गों में मनु ऐतिहासिक और पौराणिक परिदर्शों के अनुरूप उदात्त एवं महान व्यक्ति दिखाई देते हैं। मनु का यह रूप उन्हें महत् चारित्रिक गरिमा प्रदान करता है। मनु के चरित्र का एक अन्य पक्ष भी है—वह है मनोवृत्तिमूलक। मनु को मन का प्रतीक मानकर उनके कार्य व्यापार एवं गतिविधियों का अध्ययन किया जाय तो कोई असंगति नहीं मिलती। मनु का चरित्र एक ओर मन की अहंकार जन्य, व्यक्तिवादी और वासना लिप्सु प्रवृत्तियों का प्रतीक है तो वही दूसरी ओर मयमशील, आनन्दवादी और निवृत्तिमूलक स्थितियों का सुन्दर रूपक प्रस्तुत करता है। चरित्र की मूल व्यंजना यह है कि "बुद्धि के वशीभूत होकर मानव जीवन मे संघर्ष, विप्लव एवं अतृप्त आकांक्षाओं के इतिहासो का जन्म होता है।[1]

महाकाव्य के नायक की दृष्टि से विचार करें तो कामायनी मे चित्रित मनु चरित्र को हम पूर्ण विकसित महाकाव्य के अनुरूप चरित्र नहीं कह सकते। प्रसाद ने मनु के जिस रूप को प्रस्तुत किया है, वह समर्थ एवं सफल नायक की परिभाषा मे पूरा तरह नही आता है।[2] प्रथम तो मनु के चरित्र में नायक के अनुरूप गुणात्मक उत्कर्ष का अभाव है। वे सर्वत्र ही श्रद्धा के सम्पर्क—सान्निध्य से उत्थान मूलक गति को प्राप्त करते हैं। दूसरे काव्य के मुख्यफल (अखण्ड आनन्द) की प्राप्ति के लिये भी अपनी पूर्ण शक्ति और सामर्थ्य से रत नहीं होते हैं। उनके चरित्र में न तो देव सम्भूत उदात्त भावनाओं का उत्कर्ष हुआ है और न सत्य शील, त्याग संयम समर्पण आदि मानवीय गुणों की सफल प्रतिष्ठा हो पायी है। काव्य के प्रारम्भ में मनु चतुर्दिक वातावरण के प्रभाव से चिन्ताग्रस्त हैं मध्यमभाग में जीवन की विकृतियों से आक्रान्त हैं और अन्तिम भाग में संसार की विडम्बनाओं और संघर्ष से विमुख होकर कल्पित आनन्द (?) की खोज मे रत हैं। मानव सभ्यता के संस्थापक के रूप मे मनु के चरित्र मे जिस पौरुषेय विराटत्व और उत्थान मूलक चारित्रिक गरिमा की अपेक्षा थी उसे प्रसाद जी कामायनी के मनु में नही ला पाये हैं।

श्रद्धा

श्रद्धा कामायनी की सबसे महत्वपूर्ण पात्र-सृष्टि है। वह काव्य की नायिका है। काव्य की सभी प्रमुख घटनाएं उसी से परिचलित होती हैं। कामायनी महाकाव्य के फल (आनन्द) की प्राप्ति में वही मनु की सहायक होती है।

१ प्रो० शिवकुमार मिश्र—कामायनी और प्रसाद की कविता गंगा पृ० ५९
२ डा० विजयेन्द्र स्नातक—कामायनी दर्शन, पृ० १५५

नायकत्व के अधिकांश गुणों का समात श्रद्धा का चरित्र है। श्रद्धा के चरित्र मे नारीत्व के आदर्श की सम्पूर्ण उदात्त कल्पनाओं का सुंदर समाहार हुआ है।

काव्य म 'श्रद्धा' का आगमन तृतीय सर्ग से होता है। यहां श्रद्धा को 'उन्नत हृदय की बाह्य अनुकृति' कहा गया है उसकी उन्मुक्त लम्बी काया, गान्धार देश के नील रोम वाले मेघो के चर्म के बीच, यौवन की निरय छवि से दीप्त है। वह विश्व को करुण कामना की मूर्ति सी दिखाई दे रही है।[1] श्रद्धा का शरीर स्पर्श के आकर्षण से पूर्ण है। उस मे भी स्फूर्ति सचार करने की क्षमता रखती है।[2] श्रद्धा के मन मे ललित कलाओं का ज्ञान प्राप्त करने का नवीन उत्साह है, जिसके कारण वह गधर्वों के देश से आकर हिमालय पर इधर-उधर भटकने लगती है और तभी मनु से श्रद्धा का साक्षात्कार होता है।[3] श्रद्धा अज्ञात जटिलताओं का अनुमान करके दुःख से डरे मनु जीवन मे प्रवेश करके भविष्यत् से अनजान और काम से झिझक रहे मनु को एक दिव्य सदेश देती है। श्रद्धा मनु को आश्वस्त करते हुए कहती है कि जिसे तुम अभिशाप समझ रहे हो वही ईश्वर का वरदान है।[4] तदनन्तर वह दया, माया, ममता, मधुरिमा और अगाध विश्वास सहित अपने रत्ननिधि स्वच्छ हृदय को मनु के समक्ष समर्पित कर देती है। श्रद्धा का यह समर्पण भारतीय नारीत्व की गरिमा का परिचायक है। श्रद्धा मनु को शक्तिशाली और विजयी बनने क लिये भी उत्साहित करती है।

मनु के जीवन मे श्रद्धा का प्रवेश उनके जीवन की निराशा, कुंठा और चिन्ता को दूर कर देता है। श्रद्धा और मनु गृहस्थ जीवन म प्रविष्ट होते हैं। यहाँ से श्रद्धा का नारीत्व और मातृत्व रूप विकसित होता है। वह एक पतिपरायणा आदर्श पत्नी के रूप मे दिखाई देती है। उसमे नव परिणिता वधू की लज्जा का अपूर्व भाव है छवि के भार से दबी श्रद्धा लज्जा और उल्लास का आकर्षण है ऐसी श्रद्धा पाकर मनु की कामवासना उदीप्त होती है। किन्तु श्रद्धा मनु की वासना जन्य प्रवृत्तियों का अन्धानुकरण नही करती। श्रद्धा को मनु के सोमपान और हिंसा कार्यों (यज्ञ मे पशु बलि आदि) से भी अरुचि है। सुखी जीवन व्यतीत करने के लिये वह मनु से कहती है कि —

> 'औरों को हसते देखो मनु,
> हसो और सुख पाओ।

---

१ कामायनी—श्रद्धा सर्ग, पृ० ४६ ४७
२ वही, , पृ० ५१–५२
३ वही ,, पृ० ५३
४ वही ,, पृ० ५६

अपने उर को विस्तृत करलो
सबको सुखी बनाओ।"[1]

इन कथनो मे श्रद्धा की उदात्त भावना प्रकट हुई है।

श्रद्धा के चरित्र मे नारी का मातृत्व रूप भी सुन्दर ढग स अकित हुआ है। गर्भिणी श्रद्धा का भावी सतति के लिये कुटीर बनाना, पशुओ की ऊन स वस्त्र क लिये तकली पर सूत कातना, पुआलो का छाजन और वनसी लता क फूल का निर्माण करना श्रद्धा के नारी सुलभ मातृ रूप का प्रमाण है। श्रद्धा गृहलक्ष्मी है जिसके गृह विधान को देखकर मनु चकित हो जाते है।[2] श्रद्धा के मन में भावी शिशु के मुख चूमने, झूले पर झुलाने, मीठी रसना स मधुर बोल सुनने की लालसाए हैं, जिन्हें वह हृदय मे सजोये कुशल गृहिणी की भाति गर्भावस्था म केतकी सा पीला मुख, आखो म अलस-स्नेह और मातृत्व बोध स झुके पीन पयोधर बाधे गृह कार्यों मे भावी सतति के प्रति ईर्ष्यालु होकर मनु को निर्जन प्रदेश म अकेली छोडकर चल जाते हैं। इस परित्यक्तावस्था में भी वह मातृत्व का भार सहन करती है। वियोग और वात्सल्य के दुःख-सुख का सहती हुई श्रद्धा बडी व्यग्र दिखाई देती है। वह प्रश्न करती है —

"जीवन में सुख अधिक या दुःख मदाकिनी कुछ बोलोगी ?
× × ×
या दोनों प्रतिबिम्ब एक के इस रहस्य को खोलोगी।"[3]

इसी अवस्था मे श्रद्धा एक दिन स्वप्न देखती है जिसम मनु की दुर्दशा का चित्र दिखाई देता है। प्रिय के अनिष्ट की आशका से व्यग्र होकर पुत्र सहित वह मनु खोज मे चल दती है और मनु को घायलअवस्था मे पाकर उनका समुचित उपचार करता है। मनु, जिन्होंने उसे त्याग दिया था के प्रति भी श्रद्धा के मन म घृणा का भाव उत्पन्न नहीं होता। श्रद्धा यहा पतिपरायणा एव साध्वी नारी का परिचय देती है जिसकी चरित्रमहिमा के सम्मुख इडा और मनु दोनो नत मस्तक हो जाते हैं। मनु कहते हैं कि—

"तुम अजस्र वर्षा सुहाग की और स्नेह की मधु रजनी,
चिर अतृप्ति जीवन यदि था, तुम उसम सतोष बनी।
कितना है उपकार तुम्हारा, आश्रित मेरा प्रणय हुआ।"[4]

---

१ कामायनी, कर्म सर्ग, पृ० १३२
२ ईर्ष्या सर्ग, पृ० १५०
३ वही, स्वप्न सर्ग पृ० १७६
४. वही निर्वेद सर्ग पृ० २२६

क्षमायाचना करती हुई इडा कहती है कि—

"हे देवि ! तुम्हारा दिव्य राग,

× ×

दो क्षमा, न दो अपना विराग।"[1]

श्रद्धा इडा से भी ईर्ष्या नहीं करती। वह मानवता के भाग्योदय एवं समरसता के प्रचार के लिये कुमार को इडा के पास छोड़कर मनु के साथ अखण्ड आनन्द की उपलब्धि के लिये कैलाश की ओर प्रस्थान करती है। पर्वत श्रद्धा मनु के आनन्द पथ की प्रदर्शिका बन कर उन्हें भगवान शिव के तांडव नृत्य का दर्शन कराती है और इच्छा ज्ञान व क्रिया के त्रिपुर का समन्वय करके मनु को अखण्ड आनन्द की प्राप्ति कराती है। त्रिपुर समन्वय के कारण समरसता के सात्विक भाव का संचार मनु के हृदय में होता है। वह उन्हें राग-द्वेष से मुक्त कर सच्चे सुख की प्राप्ति कराती है।

इस प्रकार कामायनी की श्रद्धा नारी आदर्श की साकार प्रतिमा बन कर हमारे समक्ष प्रस्तुत होती है। उसके चरित्र में भारतीय नारी की अपूर्व व्यंजना हुई है। वह सच्ची प्रेमिका, आदर्श पत्नी, मातृत्व की अनुपम विभूति, प्रेम और त्याग की अनुपम आदर्श है। श्रद्धा की चरित्र रचना प्रसाद जी की नारी कल्पना के उच्चतम सांस्कृतिक आदर्श को व्यंजित करती है। प्रसाद जी के मन में ही नारी जाति के प्रति श्रद्धासिक्त भावना थी। 'नारी का सांस्कृतिक निरूपण उनकी साहित्यिक साधना का मुख्य विषय बना है।[2]

प्रसाद ने श्रद्धा के व्यक्तित्व निर्माण की पृष्ठभूमि में जहाँ ऐतिहासिक प्रमाणों की पुष्टता प्रदान की है वहीं श्रद्धा के चरित्र की प्रतीकात्मक व्यंजना में भी वे सफल रहे हैं। प्रतीक रूप में श्रद्धा नारी हृदय की सम्पूर्ण उदात्त वृत्तियों का प्रतिनिधित्व करती है। कामायनी के अप्रस्तुत पक्ष में हृदय का सच्चा प्रतिनिधित्व करने की उसमें (श्रद्धा) पूर्ण क्षमता है। विश्वासमयी रागात्मिका वृत्ति रूपी श्रद्धा का जैसा विकास कामायनी में हुआ है प्रसाद के किसी अन्य नारी चरित्र में नहीं हुआ है।[3] श्रद्धा के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता उसका लोककल्याणकारी स्वरूप है। मनु ने स्पष्ट स्वीकार किया है —

हे सर्वमंगले ! तुम महती,

सबका दुख अपने पर सहती,

---

१ वही दर्शन सर्ग पृ० २४०

२ डा० देवेन्द्र ठाकुर प्रसाद के नारी चरित्र पृ० ४०८

३ डा० विजयेन्द्र स्नातक—कामायनी दर्शन पृ० १६२

कल्याणमयी वाणी कहती,
तुम क्षमा निलय मे हो रहती।"[1]

कवि ने स्वय कामायनी को काव्यान्त मे जगत की मगल कामना कहा है—

"वह कामायनी जगत की
मगल कामना अकेली।"[2]

इस प्रकार नारी के आदर्श रूप मे जितने दिव्य गुणों की कल्पना की सकती है, श्रद्धा के चरित्र मे वे सभी सहज रूप म प्राप्य है। हिन्दी के महाकाव्यो की चरित्र भूमि में श्रद्धा का व्यक्तित्व और मनोभावो के अन्तर्गत व्यक्त उसका स्वरूप अपने आप मे अद्वितीय है।[3] प्रसाद काव्य के एक समीक्षक का मत है कि "हिन्दी की साहित्यिक परम्परा मे कामायनी का यह उदात्त, महान चित्राकन एक नवीन प्रयोग है।"[4] कामायनी की श्रद्धा उस आदर्शमयी शाश्वत नारी का प्रतीक है जो युगो तक नारी जाति की प्रेरणा का स्रोत रहेगा।

इडा—कामायनी महाकाव्य के घटना चक्र में इडा का प्रवेश यद्यपि नवम् सर्ग से होता है तथापि महत्वपूर्ण कथासूत्रो के विकसित करने मे उसका योगदान उल्लेखनीय है। इसलिए 'इडा' कामायनी की प्रमुख पात्र सृष्टि के अन्तर्गत ही समाहित की जाती है। मनु और श्रद्धा की भाति इडा का भी ऐतिहासिक एव प्रतीकात्मक व्यक्तित्व है। साकेतिक दृष्टि से वह बुद्धि तत्त्व की प्रतीक है। इडा के ऐतिहासिक व्यक्तित्व की पुष्टि के लिए प्रसाद जी ने 'कामायनी' के 'आमुख' म महत्वपूर्ण सकेत दिये हैं। ऋग्वेद के अनुसार वह प्रजापति मनु की पथ-प्रदर्शिका, मनुष्यो का शासन करने वाली कही गई है। "ऋग्वेद मे इडा को धी बुद्धि का साधन करने वाली, मनुष्य को चेतना प्रदान करने वाली कहा है। बुद्धि का विकास राज्य-स्थापना इत्यादि इडा के प्रभाव से ही मनु ने किया।[5] किन्तु 'कामायनी' के 'आमुख' में प्रसाद ने उसके (इडा) ऐतिहासिक अस्तित्व का परिचय देने के लिये शतपथ ब्राह्मण, ऋग्वेद तथा अमर कोष के जो सकेत दिये है उनका उपयोग इडा के चरित्र विकास मे उन्होने नही किया है। वे सकेत केवल इडा के अस्तित्व का इतिहास से सम्बन्ध मात्र जोडते है, इसके सिवा उनकी और

---

१ कामायनी, दर्शन सर्ग पृ० २४९
२ वही , आनन्द सर्ग, पृ० २९०
३ डा० श्यामसुन्दर व्यास—हिन्दी महाकाव्यो मे नारी चित्रण, पृ० १०८
४ डा० प्रेमशकर—प्रसाद का काव्य, पृ० ४०८
५ कामायनी, आमुख, पृ० ८, ९

कोई उपयोगिता नहीं।'[१] वास्तव मे प्रसाद जी ने इडा के चरित्र म आधुनिक युग की बौद्धिक क्षमता से युक्त एक ऐसी सबल नारी का व्यक्तित्व खडा किया है जो आज के वैज्ञानिक युग की समस्त शक्तिमत्ता एव दुबलता का एक साथ पूरा पूरा आभास देने मे समय है आधुनिक युग की नारी जिसे हम 'मल्ट्रा माडन' के विशेषण स विभूषित करते हैं, और जो अपनी बौद्धिकपूर्णता के साथ पुरुष के साथ रहकर छलना करती है, इडा के व्यक्तित्व मे कुछ कुछ देखी जा सकती है।[२] इडा का बुद्धिवादी रूप नारी श्रद्धा के चरित्र का एक प्रकार से पूरक भी है।

इडा सारस्वत प्रदेश की रानी है। वह 'नयन महोत्सव की प्रतीक' एवं अम्लान नलिन की नवमाला के समान दृष्टिगोचर होती है।[३] उसकी तकजाल सी बिखरी अलकें, शशिखण्ड के समान स्पष्ट भाल अनुराग विराग ढालते पद्म पलाश चषक के समान दृग, त्रिगुणात्मक त्रिवली, चरणों की ताल भरी गति एवं वक्षस्थल पर एकत्र ससृति के सब विज्ञान ज्ञान अरुण आलोक वसन लपेटे वह एक ओर बुद्धिवाद के अतिरेक की प्रतीक है तो दूसरी ओर आधुनिका (नारी) के समान दिखाई देती है।[३] इडा प्रतिभा प्रसन्न मुख से क्लेश सह रहे मनु का स्वागत करती हुई वह सारस्वत प्रदेश का शासन प्रबन्ध सौंप देती है। वह मनु को बुद्धि और विज्ञान के द्वारा सारस्वत प्रदेश का शासन करने को कहती है।

इडा ने केवल प्रदेश की भौतिक समृद्धि के लिए ही मनु को प्रेरित नहीं किया वरन् आसव के चषक पिला कर उस विलासोन्मुख भी किया—

> इडा ढालती थी वह आसव जिसकी बुझती प्यास नहीं
> तृषित कठ को पी पी कर भी जिसम है विश्वास नहीं।[४]

यहाँ तक हम इडा के चरित्र म बौद्धिकता का अतिरेक पाते हैं। उसके रूप सौन्दय से आकर्षित होकर अतृप्त, विलासी मनु उसस बलात्कार करना चाहते हैं जिसके परिणामस्वरूप जन विद्रोह हो जाता है। सघष के पश्चात इडा ग्लानि भाव म पूरित होकर विगत बातो पर विचार करने लगती है कि मनु का स्नेह

---

१ डा० विजयेन्द्र स्नातक कामायनी दशन, पृ० १६३

२ डा० नगेन्द्र नाथ मिश्र द्वारा सकलित—जयशकर प्रसाद चिन्तन व कला, पृ० १०१

३ कामायनी इडा सग पृ० १६८

४ वही स्वप्न सग पृ० १८३।

उसके लिए अन्य नही रह पाया । [1] उपकारी मनु मा न अपराधी हैं [2] इडा विचित्र उलझन में पड जाती है कि जिसे वह दण्ड देने बैठी है उसी की रखवाली कर रही है । [3] इडा इसी मानसिक द्वन्द्व मे पडी थी कि मनु को ढूढती हुई श्रद्धा आ पहुची । उसे देखकर इडा का हृदय भी द्रवीभूत हो गया —

'इडा आज कुछ द्रवित हो रही,
दुखियो को देखा उसने
पहुँची पास और फिर पूछा
तुमको बिसराया किसने ?' [4]

यहा से इडा के चरित्र म नारी सुलभ स्वभाव परिवतन होता है । मनु के पुन चले जाने पर इडा अपने को सबसे अधिक अपराधी समझती है । [5] श्रद्धा के जीवन को दु खमय बनाने मे अपना योग मानकर वही दु खी होती हुई श्रद्धा से क्षमायाचना भी करती है ,—

तिस पर मैंने छीना सुहाग । हे देवि ! तुम्हारा दिव्य राग,
मैं आज अकिंचन पाती हू । अपने को नही सुहाती हू । [6]

इडा के जीवन म परिवतन आता है । वह श्रद्धा के आदेश पर कुमार के साथ अपने हृदय में कोमल वत्तियों का विकास करके सारस्वत प्रदेश के शासन सूत्र को सभाल कर नगर की अपूव वमव वद्धि करती है। अन्त मे कुमार और प्रजा सहित श्रद्धा और मनु के दर्शनों के लिए वह कलासगिरि की यात्रा करती है। वहा पहुच कर इडा वसुधव कुटुम्बकम् के भाव को ग्रहण करती है ।

"हे देवी ! तुम्हारी ममता, बस मुझे खींचती लायी ।
\+ \+ \+
हम एक कुटुम्ब बनाकर यात्रा करने हैं आये ।" [7]

वास्तविकता का ज्ञान होने पर इडा स्वाथ और भौतिकता कीं सकुचित सीमाओं का अतिक्रमण कर आनन्द की अधिकारिणी बन जाती हैं ।

---

१ कामायनी, निर्वेद सग, पृ० २०८
२ वही पृ० २१०
३ वही, पृ० २११
४ वही पृ० २१३
५ वही, पृ० २३०
६ कामायनी, दशन सग, पृ० २४०
७ वही, आनन्द सग, पृ० २८६/२८७

इस प्रकार इडा के चरित्र म एक ओर विप्लव और संघर्ष है तो दूसरी ओर त्याग और प्रम। श्रद्धा के सम्पर्क मे आने से उसके चरित्र म निखार आ जाता है। प्रतीकात्मक दृष्टि स इडा व्यवसायिरिमका बुद्धि का प्रतिनिधित्व करती है। इडा के चरित्र से प्रमाणित हो जाता है कि श्रद्धारहित बुद्धि सकट और सघप म उलझती है, श्रद्धा समन्वित होने पर ही बुद्धि को सफलता मिलती है। इडा के चरित्र के माध्यम से कवि ने नारी चरित्र की जिन रेखाओ को अ कित करना चाहा है वह पूणत नही उभर पाई है क्योकि इडा के व्यक्तित्व की पूण व्यजना काव्य म नही हुई है। हा, इडा क चरित्र स प्रसाद की इस भावना का पूण अभिव्यक्ति अवश्य मिल गई है कि केवल प्रबुद्ध मस्तिष्क लेकर ही समाज की कल्याणमयी भूमिका की नीव सुदृढ नही की जा सकती।[१] समष्टि रूप म 'प्रसाद जी ने इडा क चरित्र चित्रण मे आधुनिक युग की बौद्धिक क्षमता से युक्त एक एसी सबल नारी का व्यक्तित्व खडा किया है जो आज के वज्ञानिक युग की समस्त शक्तिमत्ता और दुबलता का एक साथ पूरा पूरा आभास देने म समथ है।"[२]

अन्य पात्र

श्रद्धा मनु पुत्र कुमार (मानव) के दशन हम स्वप्न सग म होते हैं। उसके चरित्र का विशेष विस्तार 'कामायनी' म उपलब्ध नही है। वह विपत्ति म मा का अवलम्ब है। मूच्छित पिता को देखकर उसके रोए खडे हो जाते हैं और वह मा से पिता को पानी देने के लिए कहता है।[3] कुमार के मन म अपनी मा (श्रद्धा) के प्रति अनन्य प्रेम हैं। मा की आज्ञा से वह इडा के साथ रहते हुए सारस्वत प्रदेश की श्री सम्पन्नता को बढाता है। मानव के चरित्र मे पिता मनु की मननशीलता, माता की उदारचेता वत्तियों और इडा के सहवास के कारण बौद्धिकता का अद्भुत सामजस्य हुआ है। आकुलि और किलात असुर पुरोहित है जो प्रतीक रूप म आसुरी वत्तियो के प्रतिनिधि है। 'कम' सग मे वे मनु को असद् परामश देकर उनके द्वारा श्रद्धा के पालित पशु की बलि करा देते हैं। सघष सग मे यही पुरोहित सारस्वत नगर की जनक्रांति का प्रतिनिधित्व करते हुए मनु के विरुद्ध हो जाते हैं। मनु के द्वारा इनका वध होता है।[४] कुमार आकुलि और किलात आदि पात्रो की चरित्र योजना का पूण विकास कामायनी' म नहीं हो पाया है।

---

१ डा० श्याम टाकुर–प्रसाद के नारी पात्र पृ० ३२४
२ डा० विजयेन्द्र स्नातक–कामायनी दशन, पृ० १६८
३ कामायनी निर्वेद सग पृ० २१५ २१६
४ वही सघष सग पृ० २०१

मूल्यांकन

(१) 'कामायनी' की चरित्र योजना का समष्टि प्रभाव निश्चय ही पुष्कल एव शुभ है। 'कामायनी' के मनु प्रथम बार स्वाभाविक ढग म सहज मानव के रूप मे चित्रित किये गये हैं। मनु के चरित्र मे भारतीय काव्य शास्त्र में उल्लिखित नायकोचित गुणो का यद्यपि अभाव है किन्तु जिन मानवीय दुर्बलताओ और सबलताओं का सघात उनका चरित्र बना है उसके कारण वह युग की परिभाषा में एक प्रमुख पात्र अवश्य है। "सहज मानव चेतना का प्रतीक होने के नाते मनु का चरित्र विकासशील है, धीरोदात्त गुणो से समन्वित विकसित चरित्र की सगति न कामायनी के कथानक के साथ बठ सकती है न उसके प्रतिपाद्य के साथ ही। अपनी विशिष्ट स्थिति के कारण मनु अहकार, स्वार्थ इन्द्रिय लिप्सा, अस्थिरता आदि अनगढ मानव चेतना की हीनतर मानव प्रवृत्तियो से मुक्त नही हो सकते थे, किन्तु क्रमश दुर्गुणो पर विजय प्राप्त करके वे पूर्णत समरस, मानवत्व, आध्यात्मिक शब्दावली में शिवत्व की सिद्धि करते हैं जहा वे धीरोदात्त स्थिति से भी ऊपर उठ जाते हैं।" श्रद्धा का चरित्र महाकाव्योचित गरिमा से सर्वथा पूर्ण है।

(२) कामायनी के चरित्र विश्लेषण का आधार मनोवैज्ञानिक होने के कारण काव्य क सभी प्रमुख पात्र (मनु, श्रद्धा, इडा) प्रतीक अर्थ और रूपक तत्त्व के सफल व्यजक रहे हैं।

(३) कामायनी के पात्रो मे इतिहास पुराण सम्मत व्यक्तित्व और प्रतीकात्मक चरित्र दोनो का सफल निर्वाह हुआ है। पौराणिक श्रद्धा और मनु को लोग भले ही कपोल कल्पित कहें पर कामायनी की श्रद्धा और मनु को पढकर उनकी सत्ता म कोई अविश्वास नही कर सकता। प्रसाद ने श्रद्धा और मनु का नवनिर्माण नही पुनर्निर्माण किया है, परन्तु उनके पुनर्निर्माण से पात्रो की पौराणिकता नष्ट नहीं हुई।[1]

(४) कामायनी का चरित्र चित्रण आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी पद्धति पर किया गया है। श्रद्धा का चरित्र तो आद्यान्त आदर्शपूर्ण है, किन्तु मनु और इडा यथार्थ जीवन गति स विकसित होने हुए भी अन्तत आदर्श की उपलब्धि में ही अपने व्यक्तित्व की सार्थकता का परिचय देते हैं।

(५) नारी चरित्र की पूर्ण महिमा के प्रतीक श्रद्धा और इडा के चरित्र हैं। 'कामायनी' की श्रद्धा म नारीत्व का सम्पूर्ण विकास व्यजित हुआ है। यह चरित्र

---

१ डा० नगेन्द्र—कामायनी के अध्ययन की समस्याए, पृ० २०।

युगों तक नारी चेतना के इतिहास में प्रेरणा का अमर प्रतीक बनकर स्थिर रहेगा।

कुरुक्षेत्र

हिंदी के आधुनिक महाकाव्यों में 'कुरुक्षेत्र' शिल्प की दृष्टि से एक अभिनव प्रयोग है। काव्य में कथा और पात्र की नहीं बल्कि चिंतन की प्रधानता होने के कारण यह एक विचार प्रधान महाकाव्य कहा जाता है। कथानक और घटना विधान की क्षीणता के कारण कुरुक्षेत्र में चरित्र विकास की सम्भावनाएं शून्य के बराबर हैं। काव्य में केवल दो ही पात्र हैं—युधिष्ठिर और भीष्म। जिनके संवादों के माध्यम से कवि ने युद्ध की समस्या पर विचार किया है। इन दोनों पात्रों के उपलब्ध स्वरूप को देखते हुए यह निर्णय करना कठिन है कि इनमें नायक कौन है? कुरुक्षेत्र के कुछ समीक्षक युधिष्ठिर को नायक मानते हैं किन्तु गम्भीरता से विचार करने पर न युधिष्ठिर नायक ठहरते हैं न भीष्म। वास्तव में कवि ने दोनों में से किसी भी पात्र को नायकत्व प्रदान नहीं किया है। काव्य के 'निवेदन' में कवि ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि उसके समक्ष मुख्य समस्या युद्ध की है जो कि मानव जाति की सारी समस्याओं की जड़ है। भीष्म और युधिष्ठिर को तो कवि ने इसी समस्या को प्रस्तुत करने के लिये आलम्बन रूप में ग्रहण किया है। अस्तु प्रतीक रूप से युद्ध की समस्या को ही कुरुक्षेत्र का नायकत्व प्रदान किया जा सकता है क्योंकि काव्य का कथानक विचारतत्त्व पात्र और जितनी दार्शनिक वृत्तियां हैं उन सबका ध्येय इसी समस्या को प्रस्तुत करना है। वैसे युद्ध की समस्या चिरंतन है, उसका सम्पूर्ण मानव जाति और जीवन से सम्बन्ध है। सृष्टि रचना के प्रारम्भ से लेकर आज तक यह भीष्म और दुर्दान्त समस्या के रूप में मानवता के समक्ष एक चुनौती के रूप में खड़ी रही है। अस्तु कुरुक्षेत्र का नायक प्रतीक दृष्टि से यदि युद्ध को स्वीकार किया जाय तो कोई असंगति नहीं लगती। इस प्रतीक का आकार स्वरूप युद्ध भूमि कुरुक्षेत्र को माना जा सकता है। डा० नगेन्द्र का विचार है कि इस काव्य में कुरुक्षेत्र का युद्ध प्रतीक है ...युधिष्ठिर अहिंसा के प्रतीक हैं जो युद्ध को किसी भी परिस्थिति में उचित नहीं समझते और भीष्म न्याय भावना के प्रतीक हैं जो अन्याय के दमन के लिए युद्ध को उचित ही नहीं वरन् आवश्यक भी मानते हैं।[1] वास्तव में नायकत्व का प्रश्न काव्य में प्रच्छन्न ही रह जाता है।

युधिष्ठिर और भीष्म के अतिरिक्त महाभारत के २६ अन्य पात्र सूक्ष्म रूप में आए हैं और उनमें से प्रायः सभी का आगमन वर्ण्य प्रसंग में एक विचित्र मार्मिकता

---

१ डा० नगेन्द्र—विचार और विश्लेषण, पृ० १२८।

का समावेश कर देता है। कृष्ण और व्यास आदि द्वारा भीष्म का अपनी बातो का समर्थन कराना, द्रोणाचार्य दुर्योधन, अभिमन्यु तथा भीष्म इत्यादि का इस धर्म युद्ध में अन्यायपूर्वक मारा जाना, अश्वत्थामा, शकुनि तथा भीम आदि के जघन्य कर्म, धृतराष्ट्र और गान्धारी की सन्तान हीनता आदि अनेक ऐसे प्रसग है जो भावोत्तेजना म निर्विवाद रूप से सहायक सिद्ध होते हैं। कवि का महत्व इस बात म है कि उसने इनकी महत्ता का मूल्य आका है और उनका सफल उपयोग किया ह।[1] जहा तक भीष्म और युधिष्ठिर के चरित्र का सम्बन्ध ह उनके व्यक्तित्व का स्वतन्त्र विकास बहुत कम हुआ ह। कुरुक्षेत्र के कथानक म घटनाचक्र की नगण्यता के कारण इन पात्रो के एतिहासिक व्यक्तित्व की चरित्रगत विशेषताओ की महत्वपूर्ण व्यजना नही हो पाई ह। यह दोनो पात्र कवि की चिन्तनधारा के सवाहक बनकर ही हमारे समक्ष प्रस्तुत होते हैं फिर भी इन दोनो पात्रो की कुछ ऐसी चारित्रिक विशेषताए अवश्य हम काव्य म पाते है जिनके आधार पर दिनकर के चरित्र चित्रण कौशल का परिचय प्राप्त होता ह।

युधिष्ठिर — 'कुरुक्षेत्र' के प्रथम सग के आरम्भ मे ही हम युधिष्ठिर को महाभारत के युद्ध के परिणामो की चिन्ता से ग्रस्त पाते है। उनकी चिन्ता का मूल कारण विजय के पीछे छिपा हुआ ध्वन्स और विनाश ह। युधिष्ठिर उस महान व्यक्तित्व से सम्पन्न पुरुष ह जो सारे पाडवो के हृष मे डूब जान पर भी विनाश के परिणाम सोचकर चिंतित और विकल ह।[2] उनके मन म एक अपार वेदना का भाव ह कि पाच ही असहिष्णु नरो के द्वेष के कारण पूरे देश का सहार हो गया।[3] वे सोचते हैं कि रक्त से सन राज्य का भोग वस कर सकूगा।[4] व भीष्म के पास जाते हैं। प्रथम परिचय म ही हम युधिष्ठिर को एक विचारवान व्यक्ति के रूप मे पात हैं जिसके हृदय मे युद्ध की भयकर स्मृतियो का अन्तर्द्वन्द्व व्याप्त ह।

---

१ श्री कान्ति मोहन शर्मा–कुरुक्षेत्र मीमासा, प० १६५
२६ पात्रो की सूची–
पुरुष पात्र– अभिमन्यु, अर्जुन अश्वत्थामा, कर्ण, कृतवर्मा, कृपाचार्य, जरासन्ध, दुशासन, द्रुपद, द्रोण, धृतराष्ट्र नकुल धृष्टद्युम्न भीम, राम, विदुर, व्यास, शकुनि, शिशुपाल श्रीकृष्ण, सहदेव, सात्यकि
स्त्री पात्र– उत्तरा गान्धारी, द्रौपदी, सीता
२ कुरुक्षेत्र, प्रथम सग, प० १३
३ वही पृ० १४
४ वही पृ० १५

भीष्म पितामह के पास जाकर वे मर्मस्पर्शी शब्दों में अपनी हृदय वेदना को प्रस्तुत कर देते हैं। युधिष्ठिर के हृदय का अन्तर्द्वन्द्व निम्नांकित शब्दों में व्यक्त हुआ है —

> "एक ओर सत्यमयी गीता भगवान की है,
> एक ओर जीवन की विरति प्रबुद्ध है,
> जानता हूँ, लडना पडा था हो विवश, किन्तु,
> लोहू—सनी जीत मुझे दीखती अशुद्ध है,
> ध्वंसजन्य सुख ? याकि, साश्रु दुख शान्ति जन्य ?
> ज्ञात नहीं कौन बात नीति के विरुद्ध है,
>
> जानता नहीं मैं कुरुक्षेत्र मे खिला है पुण्य,
> या महान पाप यहां फूटा बन युद्ध है।"[१]

यहीं से काव्य की मूल विचारधारा (युद्ध की समस्या) पर युधिष्ठिर और भीष्म में विचार विमर्श प्रारम्भ हो जाता है। भीष्म पितामह अनेक प्रकार की युक्तियों से युद्ध का समर्थन करते हैं किन्तु शान्ति और प्रेम के पुजारी युधिष्ठिर सन्तुष्ट नहीं हो पाते हैं। पितामह की बात सुनते सुनते पचम सर्ग पर आकर धर्मराज रो उठते हैं। महाराज युधिष्ठिर स्वयं पर नर-नाश का दायित्व ठहराते हैं। उन्हें दुःख है कि लोग यही कहेंगे कि युधिष्ठिर दम्भ के कारण साधुता का व्रतधारी बना रहा। उन्हें सुयोधन के समान ही युद्ध के विष-कीच में नहीं गिरना चाहिये था। इसी प्रकार के विचार संघर्ष मे वे इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि लोभ ही युद्ध का कारण है। अस्तु पचम सर्ग की अन्तिम पंक्तियों में वे लोभ से रण करने की ठानते हैं —

> यह होगा महारण राग के साथ
> युधिष्ठिर हो विजयी निकलेगा,
> नर संस्कृति की रण-छिन्न लता पर,
> शान्ति-सुधा-फल स्निग्ध फलेगा,
> कुरुक्षेत्र की धूलि नहीं इति,
> पंथ की मानव ऊपर और चलेगा,

---

१ कुरुक्षेत्र, द्वितीय सर्ग पृ० १८, १९

मनु का यह पुत्र निराश नहीं
नव-धर्म-प्रदीप अवश्य जलेगा ।' [1]

इस प्रकार युधिष्ठिर के चिन्तन क्रम मे जो महान् परिवर्तन आता है, वह उनके चरित्र की दृढ़ता का परिचायक है। युधिष्ठिर का आशावादी दृष्टिकोण काव्य के अन्तिम सर्गों म व्यक्त होता है, जहा भीष्म भी उनके हृदय के प्रेम और करुणा से पूर्ण भावा का समर्थन करते हुए युधिष्ठिर को लोककल्याणकारी उपदेश देते हैं। इस प्रकार युधिष्ठिर के चरित्र मे कवि ने उदात्त चिन्तन पक्ष को प्रतिष्ठित किया है। उनका अहिंसात्मक दृष्टिकोण गाधीवाद से प्रभावित है। युधिष्ठिर का चरित्र कवि के सहज मानवतावादी दृष्टिकोण का जीवन्त प्रतीक है।

भीष्म—भीष्म 'कुरुक्षेत्र' के ऐसे पात्र हैं जो कवि की चिन्तन-धारा के यथार्थवादी पक्ष का समर्थन करते हैं। भीष्म का चरित्र महान पराक्रमी दृढप्रतिज्ञ नीतिज्ञ एव तत्त्वज्ञानी का चरित्र है। 'कुरुक्षेत्र' म उनके चरित्र के तीन पक्ष हमारे सम्मुख आते हैं—वीर नीतिज्ञ और चिंतक। द्वितीय सर्ग के प्रारम्भ म कवि न उन्हें अजेय भीष्म कहा है जो मृत्यु योग का अवसर न आने के कारण मृत्यु को पास ही रोके रह-रहकर वाणा की शय्या पर लेटे हुए हैं। मृत्यु समीप ही विनीत भाव स खडी रहती है। [2] भीष्म पितामह म अपार शक्ति और शौर्य था। व अर्जुन के वाण से नही स्नेह से पराजित हुए थे। ऐसे पराक्रमी भीष्म के समक्ष युद्ध के भयकर परिणामा से भयाक्रान्त युधिष्ठिर अपनी मानसिक वेदना व्यक्त करते हैं। तब भीष्म पितामह कहते हैं कि—

'शूर धर्म है अभय दहकते अगारों पर चलना
शूर धर्म है शोणित असि पर धरकर चरण मचलना,
शूर धर्म कहते हैं छाती तान तीर खाने का
शूर धर्म कहते हैं हसकर हलाहल पी जाने को। [3]

भीष्म की दृष्टि म—

'सबसे वडा धर्म है नर का सदा प्रज्ज्वलित रहना
दाहक शक्ति समेट स्पर्श भी नहीं किसी का सहना।[4]

---

१ कुरुक्षेत्र, पचम सर्ग पृ० ९४
२ वही, द्वितीय सर्ग पृ० १६
३ वही चतुर्थ सर्ग, पृ० ६०
४ वही, पृ० ६१

भीष्म पितामह ऐसी शांति को त्याज्य समझते हैं जो क्लीवता और निर्जीवता को जन्म देती है। वे मानव की शक्ति पर विश्वास करते हैं। उनका मत है कि अत्याचार का दमन करना मानव का धर्म है। उनकी धारणा है कि पशुबल के आगे आत्मबल का वश नहीं चलता है—

> "कौन केवल आत्मबल से जूझकर,
> जीत सकता देह का संग्राम है?
> पाशविकता खड्ग जब लेती उठा
> आत्मबल का एक वश चलता नहीं।"[1]

उनकी यह भी मान्यता है कि पाप को स्वीकार करने वाला ही पातकी है।[2]

भीष्म पितामह में गांधीवादी युधिष्ठिर के विपरीत क्रांतिकारी विचारणा मिलती है। जब वे कहते हैं कि सहज में ही कोई किसी से लडना नहीं चाहता, न कोई किसी को मारना या स्वयं ही मरना चाहता है, किन्तु शान्ति प्रियता की नीति केवल मनुज को ही रोक सकती है, दनुज कभी भी शिष्ट मानव को नहीं पहचान सकता। विनय तो उसके लिये कायर की नीति है—

> दनुज क्या शिष्ट मानव को कभी पहचानता है।
> विनय को नीति कायर की सदा वह मानता है।"[3]

भीष्म पितामह के चरित्र की सबसे बडी विशेषता उनका मानवतावादी दृष्टिकोण है। वे कर्मयोगी है। भाग्यवाद की तो उन्होंने कटु भर्त्सना की है—

> भाग्यवाद आवरण पाप का,
> और शस्त्र शोषण का,
> जिससे रखता दबा एक जन
> भाग दूसरे जन का।'[4]

उनका दृढ विश्वास है कि मनुज ब्रह्मा से कुछ भी लिखाकर नहीं लाया है, अपने भुजबल से ही संसार में उसने सब कुछ प्राप्त किया है। भीष्म पिता सच्चे कर्मयोगी और लोककल्याण चिंतक हैं। युधिष्ठिर जब संन्यास की बात कहते हैं तो वे स्पष्ट कह देते हैं कि संन्यास की खोज कायरता है, मानव का धर्म वैयक्तिक सुख की उपलब्धि नहीं वरन् कोटि कोटि जनों को सुखी बनाना है—

---

१ वही द्वितीय सर्ग पृ० २८
२ वही चतुर्थ सर्ग पृ० ४७
३ वही पृ० ८६
४ वही, सप्तम सर्ग पृ० ११५

"धमराज सन्यास खोजना, कायरता है मन की,
है सच्चा मनुजत्व ग्रथियां, सुलझाना जीवन की
दुर्लभ नही मनुज के हित, निज वयक्ति क सुख पाना,
किन्तु कठिन है कोटि कोटि मनुजो को सुखी बनाना।"[1]

अ तत वे धमराज को गीता के कृष्ण की भाति कममाग म प्रवृत्त होने का ही उपदेश देते हैं। वे चाहते हैं कि धमराज असख्य नरो के जीवन की आशा बन कर दग्ध भूतल को पीयूष से अभिषिक्त करो।

युधिष्ठिर की भाति भीष्म पितामह के चरित्र मे भी कवि ने अ तद्व द्व की अवतारणा की है। उनके अ तर मे भी धम और स्नेह का सघष चला था। पाडवों से प्रेम करते हुए भी उ ह दुर्योधन का ही पक्षधर बनना पडा। ने धम और प्रेम दोनो का ही निर्वाह करना चाहते थे, किन्तु अ त मे विजय स्नेह की ही हुई, धम पराजित हुआ। वे अर्जुन से खुलकर युद्ध न कर सकने के कारण ही पराजित हो गये –

"धम स्नेह, दोना प्यारे थे, बडा कठिन निणय था,
अत एक को देह दूसरे को दे दिया हृदय था।

+ + +

धम पराजित हुआ, स्नेह का डका बजा विजय का
मिली देह भी उसे, दान था, जिसको मिला हृ दय का।
भीष्म न गिरा पाथ के सर से, गिरा भीष्म का वय था।"[2]

भीष्म पितामह के चरित्र निरूपण में कवि ने आदश और यथाथ गुणों का अद्भुत सम वय किया है। स्वय कवि ने उ हें ब्रह्मचय व्रती धम का महा स्तम्भ, बल का आगार, परम विरागी पुरुष कहा है। भीष्म के समान ससार में अ य कौन विक्रमी होगा, जि होने धम हित और प्रेम के कारण अपने प्राणो का विसजन कर दिया।[3]

इस प्रकार कुरुक्षेत्र के चरित्र चित्रण मे भारतीय इ तिहास के दो महान पात्रों का निता त नवीन रूप प्रस्तुत किया गया ह। कवि ने यद्यपि इन पात्रो को निजी विचार अभि यक्ति का माध्यम बनाकर ही उद्धृत किया ह किन्तु कही भी उनकी चरित्र गरिमा म यूनता नहीं आई ह। विशेषता यह ह कि हमारे युग की

१ कुरुक्षेत्र सप्तम सग, पृ० १२७
२ कुरुक्षेत्र, चतुथ सग, पृ० ६५ ६६
३ वही, पृ० ४

विचार वीथी म विचरण करते हुए भी ये पात्र इतिहास के माग से नही भटके हैं। का य म दोनो पात्रो के जीवन का एक अ श ही हमारे सामने आया ह कि तु वह इतना महत्वपूण ह कि उनके स्मपूण व्यक्तित्व की एक अमिट छाप पाठक के मन मस्तिष्क पर अ कित हो जाती ह। धमराज युधिष्ठिर और भीष्म पितामह के एतिहासिक व्यक्तित्व मनोविज्ञान और कल्पना के ससपश से 'कुरुक्षेत्र म निश्चय हा मौलिकता लिय हुए ह यही कुरुक्षेत्र के चरित्र निरूपण की प्रमुख विशेषता ह।

साकेत स त

साकेत स त चरित्र प्रधान महाकाव्य ह। जसा कि काव्य के नामकरण से विदित होता ह—साकेत के स त भरत का चरित्र निरूपण इस काव्य का मुख्य उद्देश्य ह। उपेक्षित पात्रो के चरित्र को लेकर वत्त मान युग म हिंदी म अनेक महाकाव्य लिख गय है। साकेत सत' भी उनमे स एक ह। भरत का चरित्र इतना उपक्षित तो नहा कहा जा सकता जितना उर्मिला का जिसको आधार बनाकर श्री गुप्त जी न साकेत' और श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन ने 'उर्म्मिला नामक महाकाव्यो की रचना की, और एक उपक्षिता के चरित्र का उद्धार किया। भरत के चरित्र का पर्याप्त विस्तार और विश्लेषण रामकाव्यो मे विशेष रूप मे तुलसी के मानस म हुआ ह कि तु भारत के महत चरित्र की प्रतिष्ठा महाका य के नायक के रूप म अद्यावधि किसी ने नही की थी। डा० बलदेव प्रसाद मिश्र ने साकेत स त म प्रथम बार भरत को नायक प पर प्रतिष्ठित किया ह। इस दृष्टि म उनका यह प्रयास सराहनीय ह। का य मे माडवी का चरित्र नायिका के रूप म प्रस्तुत किया गया ह। भरत और माडवी के अतिरिक्त ककयी क चरित्र में भी कुछ नवीनता का प्रदर्शन ह। अ य सब पात्र 'मानस के अनुरूप ही चित्रित किय गय हैं।

भरत—भरत साकेत स त महाकाव्य के नायक हैं। उनका चरित्र आदश गुणों का भण्डार ह। सव प्रथम हम उ ह प्रमी नवयुवक के रुप मे पाते हैं। भरत और माण्डवी नवविवाहित दम्पत्ति हैं जिनक जीवन में नयी उमग और उल्लास ह —

> 'नया परिणय था नयी उमग,
> माडवी का था नूतन सग
> नित्य नवरग नित्य नवतान
> नित्य उत्सव के नय विधान।[१]

---

१ साकेत सत प्रथम सग पृ० २०

भरत के चरित्र में अहिंसा, त्याग, दया, क्षमा, शील सेवा आदि उदार गुणों का ही आधिक्य ह। द्वितीय सग में ककय देश में मामा युधाजित के साथ वे आखेट खेलने जाते हैं जहा वे एक मृग पर शर प्रहार करते हैं। आहत मृग के समीप पहुचने पर उसकी दयनीय दशा से द्रवीभूत हो जाते हैं —

> कुछ एसी कातरता थी, मृग की आखो में व्यापी।
> शुद्धात्मा भरत कु वर की करुणा पूरित हो काषी ॥'[1]

इस अवसर का लाभ उठाकर युधाजित भरत को सत्ताधारी और नीति-परायण बनने को कहते हैं किन्तु भरत हिंसा और युद्ध की नीति का दृढता से विरोध करते हुए राज्य के प्रति भी उदासीनता का भाव दिखाते हैं। उनकी करुणा भाव पर बडी आस्था ह।[2] इसी सग में हम भरत के मन में प्रकृति के प्रति आकषण-भाव भी पाते हैं।[3]

भरत के चरित्र का उज्जवल स्वरूप उस समय प्रकट होता ह जब ननिहाल स लौटकर पिता के मरण और राम के वनगमन की सूचना पाकर उनका हृदय पश्चाताप की ज्वाला मे विदग्ध होने लगता ह। तृतीय-चतुथ और पचम सर्गों में भरत के मानसिक सताप और हृदयगत द्वन्द्व की बडा सुदर अभिव्यक्ति हुई ह। वस्तुस्थिति को समझन पर व ककेय की भूमि को धिक्कारते हैं। जिसने कुचक्र करन वाली मथरा के समान नागिनी को पाला[4] व अपन को कुटिल दुरधम, पापी और कालकेतु कहते हुए धिक्कारते ह वे कहते ह कि मुझम विषम हत्यारे स सप भी भय खाते हैं। मेर डर मे निशाचर भी भाग जायगे। मैं जगत का सचित पाप बनकर प्रकट हुआ हू क्योकि

> मेरे कारण ही अवध राम न छोडा
> मेरे कारण तनय पिता न तोडा।
> मेरे कारण यह दशा तुम्हारी माता
> दानव हू दानव विपुल व्यथा का दाता।'[5]

व कहते ह कि—

---

१ साकेत सत, द्वितीय सग प० ३२
२ वही द्वितीय सग छद सख्या ५९–६१
३ वही , वही , पृ० ४० ४२
४ वही , तृतीय सग, प० ४५
५ वही , तृतीय सग, प० ५१

'किस मुख से मांगू, क्षमा शराई क्या हूँ ?
किस तरह चीर कर हृदय तुम्हें दिखलादू ।'[1]

भरत के हृदय में यही कसक रह जाती है कि यदि वे कैकेय न जाते तो यह सब न होता—

न चलता यदि कैकेय का चक्र,
बोलती यदि न मथरा वक्र ।
न मां यदि सो देती सब ज्ञान,
न देते यदि नरेश वरदान ।
+ +
न मै ही यदि तजता यह देश
न रहता विपय क्लेश का लेश ।[2]

अतत भरत भाग्य को ही प्रबल मानकर दोष देते है किन्तु भाग्यवाद की मान्यता में वे कर्तव्य और पौरुष का परित्याग नहीं करते। क्योंकि उनका विश्वास है कि—

'यत्न ही हो जीवन का ध्येय,
कर्म की गीता सबकी गेय ।
भाग्य की बात भाग्य के हाथ,
पुरुष का है पौरुष से साथ ।[3]

सकटपूर्ण स्थिति में भरत यही निर्णय करते हैं कि पिता तो गये, वे तो लौट कर आ नही सकते । अत बन्धुओ को वन से बुलाकर राज्य सौंप दू । इस सम्बन्ध म निर्णय लेने के लिये उन्होने परिषद् की बैठक बुलवाई ।[4] यहा हम भरत के चरित्र मे धैर्य और विवेक का अपूर्व परिचय पाते हैं । सभा मे गुरु वशिष्ठ और मत्री आदि के परामर्श पर भी वे राम को वन से लौटाने के निर्णय पर दृढ़ रहते हैं । चित्रकूट की सभा म राम जब उनसे राज्यभार को ग्रहण करने के लिये पूछते हैं तो भरत किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर यही कहते हैं कि—

---

१ साकेत सत, पृ० ५१
२ वही, चतुर्थ सर्ग, पृ० ५९
३ वही, चतुर्थ सर्ग, पृ० ६२
४ वही , वही , पृ० ६४

'आया था अपनी इच्छा से, जाऊंगा प्रभु इच्छा लेकर।
मैंने क्या क्या आज न पाया, इस वन मे अपनापन देकर।
राज्य उन्ही का यहां वहां भी, मैं तो केवल आज्ञाकारी।'[१]

और भरत राम की आज्ञा को शिरोधार्य करके अवध लौट आते हैं। उनके चरित्र की महिमा से प्रभावित होकर राम कहते हैं कि—

बोले राम धर्म सकट से आज भरत ने जगत उबारा,
सब का दुख अपने मे लेकर सब को सुख का दिया सहारा।
× × ×
आज भरत खोकर भी जीते और जीतकर भी मैं हारा।'[२]

चौदह वर्षों की दीर्घावधि तक राम की आज्ञा का अनुपालन करते हुए भरत ने नन्दिग्राम मे तपस्वियो का सा जीवन विताया। इस प्रकार भरत के चरित्र मे त्याग के अनुपम आदर्श की महान अभिव्यजना हुई है। चौदह वर्षों की दीर्घावधि में राम और लक्ष्मण वन मे रहते हुए भी उस महत त्यागमय आदर्श के प्रतीक नही बन पाते हैं, जिसके भरत अयोध्या के भोगो मे रहकर भी योगी का सा जीवन विताते हुए बन जाते हैं। कवि ने उन्हे साकेत का सन्त उचित ही कहा है।

माडवी—भरत-पत्नी मांडवी इस काव्य की नायिका हैं। भरत के चरित्रोत्थान मे माडवी का योग महत्वपूर्ण है क्योकि भरत के त्याग और योगमय जीवन की सफलता माडवी के प्रयत्नो मे ही निहित है। वह आदर्श भारतीय नारी है। वह सती साध्वी है, जिसके जीवन का चरम ध्येय पति परायणा बनने मे ही है।

प्रथम सर्ग मे मिश्रजी ने माडवी के चरित्र का सुन्दर चित्र अकित किया है। वह अनिन्द्य सुदरी है, जिसके रूप पर रीझकर भरत प्रकृति की सम्पूर्ण सौन्दर्य सुषमा के उपमान उसके अग प्रत्यगो को बताते हैं, भरत उन्हे अवनि का प्यार, ऊषा तारकगति और नन्दनवन की पुनीत सुरभि कहते हैं।[३] माडवी कुल वधु की मर्यादा भली भाति जानती हैं। तभी तो वह कहती हैं—

'कुल वधु कब रहती स्वच्छन्द, उसे बस अपना भवन पसद।[४]

---

१ साकेत सत त्रयादेश सर्ग, पृ० १७७
२ वही त्रयादेश सर्ग, पृ० १७९ १८०
३ वही , प्रथम सर्ग, पृ० २६
४ वही प्रथम सर्ग, पृ० २२

भरत के प्रति माडवी का प्रणय निष्ठाभाव इन शब्दो म व्यक्त हुआ है --

'और मैं तुम्हें हृदय म धाप, बनू गी अध्य आरती आप।
विश्व की सारी कांति समेट करू गी एक तुम्हारी भेंट ॥'[1]

माडवी भरत के सुख दु ख की सममागिनी है। पति की व्यथित दशा को देखकर वह कह उठती है कि—

'नम्र स्वर म वह बोली 'नाथ' ! बटाऊ कम दु ख म हाथ,
बताओ यदि हो कही उपाय, टपाटप गिरे अश्रु असहाय। [2]

भरत ने उसे उर्मिला को धय बधाने का काय दिया। माडवी की दशा यद्यपि उर्मिला और सीता स कही अधिक व्यथित थी, किन्तु फिर भी पूर्ण निष्ठा एव धय के साथ पति की आज्ञा का पालन किया। राज भवन म रह कर भी उसने तपस्विनी का सा जीवन बिताया।[3] माडवी की दशा अवध परिवार के नारी पात्रो म सबसे अधिक दयनीय थी, क्योकि—

अहह ! माडवी को तो आहो का भरना भी वर्जित था। [4]

इस प्रकार माडवी के चरित्र म पति परायणता, सेवा भाव त्याग और तपश्चर्या के जीवन की सुन्दर भांकी कवि ने अ कित की है किन्तु नायिका के अनुरूप माडवी के चरित्र का स्वतत्र विकास नही हो पाया। माडवी का चरित्र भरत के चरित्र का पूरक बनकर पष्ठभूमि के रूप में ही अ कित हुआ है किन्तु माडवी तापसी जीवन के कारण एक विशिष्ट व्यक्तित्व को ग्रहण किय हुए है और इसलिये हिन्दी महाकाव्यो के नारी पात्रो के मध्य में उसे अलग से ही खोजा जा सकता है।[5]

अ य पात्र

अय पात्रा में राम और सीता के चरित्र-चित्रण में कवि ने विशेष नवीनता का परिचय नही दिया है। साकेत सत के राम बाल्मी कि रामायण

---

१ साकेत सत वही पृ० २६
२ वही चतुथ सग पृ० ५५
३ वही , चतुदश सग पृ० १९०
४ वही , चतुदश सग पृ० १८१
५ डा० श्याम सुदर व्यास—हिन्दी महाकाव्यो म नारी चित्रण पृ० ११५

के राम की भांति आदर्श मानव हैं। साकेत सन्त' के राम प्राय महाकृति के उच्च आदर्शों की प्रतिष्ठा, दलित वर्गों के उद्धार और देश की एकता की रक्षा के प्रयत्न में लगे हुए ह। इस दृष्टि से उनका चरित्र युग की प्रवृत्ति के अनुरूप कहा जा सकता है। सीता का उल्लेख काव्य में एकाध स्थल पर ही हुआ है। जस भरत मिलाप के अवसर पर भवन भोगों की अपेक्षा विपिन भोगों को श्रेष्ठ बताने एव भरत के जल-पान की व्यवस्था आदि करने म उनका नारी सुलभ रूप अकित हुआ है।[1]

काव्य म कौशल्या की चरित्र सृष्टि इसलिये उल्लेखनीय है कि उसके कथनो द्वारा भरत के चरित्र का उत्कर्ष होता है। कौशल्या के कोमल मातृ हृदय में भरत के प्रति भी राम के समान ही स्नेह भाव है। तभी तो वह कहती है—

'खींचा उनको ले गोद, हृदय लिपटाया,
बोली तुमको पा पुन राम को पाया।[2]

'साकेत सत' की नारी सृष्टि में कैकेयी के चरित्र सृजन म कवि ने नवीनता का परिचय दिया है। यद्यपि कैकेयी की चरित्र रचना पर श्री गुप्त जी के 'साकेत' का पर्याप्त प्रभाव है फिर भी कुछ अशो तक मौलिकता अवश्य है। कैकेयी के हृदय में अपने-पुत्र के प्रति असीम वात्सल्य भाव है। इसलिये वह अनिष्ट सहकर भी भरत के लिये राज्य प्राप्त करती है किन्तु भरत राज्य का ही तिरस्कार नही करते वरन् उसे डाकिन और कुटिल की आकृति भी कहते हैं।[3] भरत का मन्तव्य जान लेने पर कैकेयी को अपनी भूल ज्ञात होती है—

तेरे हित मैंने हृदय कठोर बनाया,
तेरे हित मैंने राम विपिन भिजवाया।
तेरे हित मैं बनी कलकिनी नारी
तेरे हित समझी गई महा हत्यारी।'[4]

मानसिक सताप की असह्य वेदना के कारण वह पति के साथ सती होने का निश्चय करती है। वह कहती है 'व्यथा म प्राण रखकर मैं क्या करू गी

१ साकेत सत, एकादश सर्ग, पृ० १३१
२ वही , तृतीय सर्ग, पृ० ५१
३ वही , वही , पृ० ४७ ४८
४ वही , वही , पृ० ४९

मरूगी पुत्र छोडो मैं मरूगी।'[1] किन्तु भरत के यह कहने पर कि हू आज तुम से धन्य माता[2] वह सती होने के निश्चय को त्यागती है। तदनतर कैकयी राम को वन से लौटा लाने का प्रयत्न करती है। चित्रकूट पहुचने पर आसुग्रो की धार बहाती हुई अवरुद्ध कठ से सिसकिया लेती हुई और ग्लानी की उष्मा म जलती हुई उसकी दशा बडी दयनीय है[3] राम को लौटाने के लिये भी वह प्रबल आग्रह करती है।[4] जब वह राम को लौटाने म सफल नही होती तो अयोध्या राज्य का पश्चिमी नाका साधने का भार स्वय ग्रहण कर लेती है।[5] वह किसी प्रकार अपने पाप का प्रायश्चित करना चाहती है।

इस प्रकार कैकेयी के चरित्र म कवि ने एक स्नेहशीला माता और परित्यक्ता नारी के रूप को भली प्रकार अकित किया है। 'साकेत सन्त' की कैकयी अयोध्या के पश्चिमी नाके को साधने की जो बात कहती है वह नितान्त नवीन है क्योकि मानस और साकेत' की कैकेयी भाति उसम केवल मानसिक सताप या पश्चाताप ही नही है। मिश्रजी की कैकेयी क्रियात्मक पश्चाताप द्वारा अपने कलक को धोकर चरित्र का परिष्कार करती है।

साकेत सन्त' की सम्पूर्ण पात्र सृष्टि मे केवल भरत का चरित्र ही पूर्ण विकसित और नवीन रूप मे प्राप्त होता है। काव्य के अन्य पात्र भरत के चरित्र को ही उत्कर्ष प्रदान करने म सहायक सिद्ध होते हैं।

दैत्यवश

दैत्यवश महाकाव्य की रचना महाकवि कालिदास के 'रघुवश' के आधार पर हुई है। रघुवश मे जिस प्रकार दिलीप अज, दशरथ राम अग्निवर्ण आदि राजाओं को नायक बनाया गया है उसी प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य मे श्री हरदयालु सिह ने हिरण्याक्ष हिरण्यकश्यपु विरोचन बलि बाणासुर और स्कन्द को नायक बनाया है। हिन्दी की महाकाव्य परम्परा मे श्री हरदयालु सिह प्रथम कवि हैं जिन्होने दैत्यो को महाकाव्य का नायकत्व प्रदान किया। वैसे मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देव और दानव दोनो मानवीय प्रवृत्तियो के प्रतीक हैं।

---

१ साकेत सत, षष्ठ सर्ग पृ० ८१
२ वही वही पृ० ८२
३ वही एकादश सर्ग पृ० १३३
४ वही त्रयोदश सर्ग पृ० १६२
५ वही , त्रयोदश सर्ग, पृ० १८२

'मानव का अविकसित रूप दत्य हैं और सुविकसित रूप देव हैं जिसमे शारीरिक बल प्रचुर मात्रा म मौजूद है, क्योंकि वह प्रकृति की सीधी देन है, परन्तु मस्तिष्क बल अधिक नही हैं। शारीरिक और मानसिक शक्तियां प्राय एक से अनुपात मे किसी वग मे नही पायी जाती हैं। विकास क्रम मे यह भी देखा गया है कि किसी वग में जैसे-जसे मस्तिष्कीय शक्तियां का विकास होता ह, शारीरिक बल का ह्रास भी होता ह। छल प्रपच धूतता, विश्वासघात आदि मस्तिष्क के विकास के अवश्यक परिणाम हैं। दैत्य शारीरिक बल में बढे चढे हैं तो उनमे सरल विश्वास, सत्य निष्ठा और सिधाई विद्यमान है। देवगण शरीर बल म निबल हैं पर चतुर अधिक हैं वे बात बात मे दत्यो को धोखा देत हैं और उनकी सरल प्रकृति से लाभ उठाकर उन्हें छल लेते हैं। दव और दत्य अर्थात मस्तिष्कीय और शारीरिक प्रवृत्तियो के सघष म मनुष्य की सहानुभूति देवो के प्रति होना स्वाभाविक है, क्योकि वह भी मस्तिष्क क बल पर ही शेष सृष्टि पर शासन करता है। और अपन लाभ के लिय सृष्टि के इतर प्राणियो पर किय गये अत्याचारा को नही गिनता।"[1]

इस प्रकार मानवतावादी दृष्टि से विचार करन पर देव और दत्या म कोई अन्तर दिखाई नहीं देता। महाकाव्य के चरित्र निरूपण का आधार मानवीय गुण और दोष होते हैं, जो दैत्यो के चरित्र मे देवा की अपक्षा किसी प्रकार कम नही हैं। जहा तक नायक के सद्वशीय होने का प्रश्न है—देव और दत्य दोना कश्यप ऋषि की सन्तान हैं। कश्यप ऋषि की पत्निया म दिति नाम की पत्नी की सन्तान दत्य कहलायी और अदिति की देव। देव सतोगुण एव दत्य तमोगुण प्रधान थे। इसलिये प्रारम्भ से ही दोनो म सघष और प्रतिद्वन्द्विता हो गई। महाकाव्यकार ने युग जीवन की व्यापक चिन्तन पद्धति का अपना कर दत्या के चरित्र म भी शालीनता, दानशीलता शौय, पराक्रम, तेजस्विता तपश्चर्या पूजाचन एव प्रशासकीय गुणो की प्रतिष्ठा की है।

प्रस्तुत महाकाव्य मे प्रमुख रूप से छ दत्य-वशीय राजाओ का वणन है किन्तु सवप्रमुख चरित्र राजा बलि का है। काव्य मे उसके क्रिया कलापो का विवेचन इतने व्यापक ढग से हुआ है कि बलि दत्य वश के अन्य नायको म सवप्रमुख बन जाते हैं। देवताओ की स्थिति इस काव्य म प्रतिनायक की ह।

बलि—बलि की स्थिति दत्यवश के नरेशा म सबसे प्रधान एव मध्य नायक की है। राज्यासीन होने के पश्चात ही बलि सनिक सगठन और प्रजाहित के लिय कार्य करना प्रारम्भ कर देता है। वह प्रजा के लिये स्वास्थ्य शिक्षा, कृषि आदि

---

१ दत्यवश, भूमिका लेखक उमेशचन्द्र मिश्र, पृ० ७

की सुविधाएं उपलब्ध कराता है। बलि ने अपने पौरुष और पराक्रम से सम्पूर्ण राज्य का विधिवत संगठन किया। उसने ९९ अश्वमेध यज्ञ किये।[1] विंध्यावली से उसके बाण नामक पुत्र हुआ।

बलि के राज्योत्कर्ष को देखकर देव मन ही मन खिन्न रहते थे। एक दिन वे सब मिलकर गये और बलि से संधि प्रस्ताव किया। यद्यपि शुक्राचार्य ने देवों की कुटिलता के रहस्य को समझकर संधि प्रस्ताव को अस्वीकृत करने का परामर्श दिया किन्तु बलि ने उदार हृदय से यही कहा कि—

> 'अभिलाष करि आये इते इनको निराश न कीजिये
> प्रस्ताव के अर्धांश को स्वीकार ही कर लीजिये।'[2]

बलि ने यह भी कहा कि देवों के संधि प्रस्ताव को स्वीकार करने से शत्रुता भाव दूर होगा और बंधु बन्धुओं से मिल जायेंगे। बलि के इस कथन में उसकी उच्चाशयता और उदार प्रकृति का स्पष्ट परिचय मिलता है।

सागरमंथन के पश्चात प्राप्त होने वाले अमृत को छलपूर्वक देवता अकेले ही पी गये। यद्यपि सागर मंथन में दैत्यों ने ही अधिक परिश्रम किया था। बलि ने इस घटना से क्रोधित होकर देवताओं से संग्राम किया। बलि अपनी वीरता और युद्ध कौशल से इन्द्र से भिड़ जाता है और अन्त में वही विजयी होता है। सुरलोक का सिंहासनाधिकारी नहुष को बनाकर स्वयं पुर को प्रस्थान करता है।[3] पुर आगमन पर विजयी बलि का शुक्राचार्य एवं प्रजा द्वारा भव्य अभिनंदन किया जाता है। शुक्राचार्य[4] और पिता[5] से उसे आशीर्वाद प्राप्त होता है।

बलि वीर सेनानी की भांति बलिदानी भी था। इन्द्रासन का अधिकारी बनने के लिए उसने सौवां अश्वमेध यज्ञ किया था। बाणासुर अश्व को लेकर चला ही था कि रावणपुत्र अक्षयकुमार ने अश्व को पकड़ लिया और मेघनाद युद्ध के लिए प्रस्तुत हो गया। सायंकाल का समय होने के कारण युद्ध स्थगित हुआ। उधर अदिति के पुत्र वामन जो विष्णु के अवतार थे, वटु का वेष बना कर बलि की यज्ञशाला में तीन पग पृथ्वी का दान लेने पहुँचे। शुक्राचार्य के समझाने पर भी बलि ने तीन पग पृथ्वी देना अस्वीकार नहीं किया। वामन ने दो पग में ही

---

१ दैत्यवंश त्रितीय सर्ग पृ० २६
२ वही चतुर्थ सर्ग पृ० ३२
३ वही पष्ठ सर्ग पृ० ७९
४ वही सप्तम सर्ग पृ० १२४
५ वही वही पृ० १३०

आकाश-पाताल और पृथ्वी को नाप लिया। तृतीय पग के लिये बलि ने अपना शरीर अर्पित कर दिया और हिमगिरि के समान उच्च और दर्पित शीश को झुका दिया। उसकी दानशीलता की आज तक प्रशंसा की जाती है।

इस प्रकार बलि के चरित्र में हम अनेक दिव्य गुण मिलते हैं। वह प्रजापालक, कुशल प्रशासक, शिवपूजक, गुरु भक्त पिता का आज्ञाकारी, योद्धा पराक्रमी, दानी और नीतिज्ञ था। बलि के चरित्र का विकास बड़े स्वाभाविक ढंग से हुआ है। दैत्य कुल में उत्पन्न होकर भी बलि का व्यक्तित्व उन महान गुणों से युक्त है जो उसके चरित्र को महाकाव्य के नायकत्व की गरिमा से मण्डित करते हैं।

बाणासुर—बलि के पश्चात बाणासुर दैत्यवंश का उल्लेखनीय नायक है। बाणासुर जब विश्व विजयी होकर लौटता है तो नगर को उजड़ा हुआ पाकर आश्चर्य करता है। जब उसे माता और गुरु से वामन के छल का पता लगता है तो वह आक्रमण करके सोनपुर नगर बसाता है जहां सभी दैत्य रहने लगते हैं। बाण के उषा नाम की असाधारण सुन्दर कन्या हुई, जिसका श्री कृष्ण-पुत्र अनिरुद्ध से विवाह हुआ।

पिता के समान बाण भी महान पराक्रमी और साहसी था। उसने अपनी शक्ति और साहस के बल पर ही अश्वमेध यज्ञ के सम्बन्ध में दिग्विजय यात्रा की और विजयी हुआ। बाण न्यायप्रिय था। युद्ध में षडानन को पराजित करने के उपरान्त भी वह उसके घर जाकर प्रेमपूर्वक मिला। अन्त में बाणासुर ने अपने पुत्र अस्कन्द कुमार को राज्य सौंप कर कठोर तप करते हुए शिव लोक गमन किया। अपने जीवन के अन्तिम काल में तप और साधना की प्रवृत्ति बाणासुर के चरित्र की उच्चता को प्रमाणित करती है क्योंकि यह तपश्चर्या बाण ने किसी भौतिक सुख की प्राप्ति के लिये नहीं की, जैसा कि प्रायः दैत्य और राक्षस किया करते थे। उसकी साधना शुद्ध और सात्विक थी। कठोर साधना के पश्चात उसे शिवत्व की प्राप्ति हुई[1]—

'यो तनु जोग की आगि में जारि,
गयो शिव धाम बना हर मेखी।'

अस्कन्द—दैत्यवंश के राजाओं में अस्कन्द का चरित्र भी महत्वपूर्ण है। अनेक पूर्वजों की भांति स्कन्द भी न्यायप्रिय, प्रजाहित रक्षक, वीर हुआ।

---

१ दैत्यवंश, सप्तदश सर्ग पृ० २५१

प्रजाहित के लिये उसने राज्य का भार मन्त्रियों को सौंपकर नगरों एवं ग्रामों का भ्रमण किया।[1] पशुओं और बीजों का वितरण किया तथा कृषि की उन्नति का भरसक प्रयास किया —

'खेती सारे ग्राम की, सब निरख्यो नर नाह।
कृषिकन की दुःख सुख सुन्यो मन में अमित उछाह॥'[2]

वन भाग में सिंह और वराह के वध में नृप के महान कौशल का भी परिचय मिलता है।[3]

अस्कन्द ने गुरुकुलों, यज्ञशालाओं, राजमार्गों, वन-वीथियों, समाज के व्यवसायी, कृषक एवं अन्य वर्गों के कार्यों का पर्यवेक्षण किया। वह शिव का भी उपासक था। इस प्रकार अस्कन्द के चरित्र में एक सफल नरेश के सभी गुण दिखाई देते हैं।

स्त्री पात्रों में यद्यपि दिति, दैत्य राजाओं की पत्नियों, शचि, सिन्धु, उषा चित्ररेखा आदि के नाम यथाप्रसंग आये हैं किन्तु उल्लेखनीय चरित्र केवल उषा का है।

उषा उषा बाण की पुत्री है। वह असाधारण सुन्दरी है। त्रयोदश सर्ग में वह एक भोली भाली बालिका रूप में मिलती है जो अंकों और अक्षरों का ज्ञान कर रही है।[4] कवि ने उषा के बाल स्वभाव का सुन्दर वर्णन किया है। वह समय बीतने पर गुरुपत्नी का शासन स्वीकार करती है। षोडशी होने पर उसके सौंदर्य का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है —

अंजन रंजन कीन्हों नहीं, चल काजर रेख लगी दरसं लागी।
बाल के आनन सों मुसकानि सुधा घनसार घनि बरस लागी।[5]

उसने चौदह कलाओं को अच्छी तरह सीखा। संगीत में दक्षता प्राप्त की। एक दिन स्वप्न में उसने कल्पित प्रिय को देखकर सखी चित्ररेखा से उसे प्राप्त

---

१ दैत्यवंश अष्टादश सर्ग पृ० २५२
२ वही पृ० २५५
३ वही अष्टादश सर्ग, पृ० २६०
४ वहा त्रयोदश सर्ग पृ० १९६
५ वहा, वही, पृ० १९६

करने को कहा । चित्ररेखा ने मन्त्रबल से अनिरुद्ध को द्वारिका बुला लिया । जहां वे दोनों प्रेम विहार करने लगे। अन्तत विधिपूर्वक उषा का अनिरुद्ध के साथ विवाह सम्पन्न होता है ।[1]

उषा के चरित्र म जहाँ राजकन्याओ का सा स्वभाव, चातुय एव विलास व्यजित हुआ है, वही उसके चरित्र का एक सबसे बडा दोष यह है कि उसने अविवाहित कुमारी होते हुए भी अनिरुद्ध का अपहरण कराकर प्रेम किया । यद्यपि अपहरण के लिये वैसे चित्ररेखा ही अधिक दोषी है ।

मूल्याकन

'दत्यवश' के चरित्र-विधान मे कवि को पर्याप्त सफलता मिली है । दत्य कहे जाने वाले पात्रो के चरित्र मे जिन मानवोचित गुणो का विकास कवि ने दिखाया है, वह सराहनीय है । एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि दत्यो के चरित्र निरूपण म कवि ने क्रातिकारी दृष्टिकोण का परिचय दिया है । राक्षसो और दत्यो को महाकाव्य के नायकत्व पद पर आसीन करना निश्चय ही प्रशसनीय है । वत मान युग की मा यताओ और आदर्शों का दृष्टि से भी यह बडा आवश्यक है कि इतिहास-पुराण के तिरस्कृत, कलकित एव उपेक्षित पात्रों का पुनर्मूल्याकन प्रस्तुत किया जाय । दत्यवश' मे कवि ने इस काय को बडी सफलता के साथ किया । दत्य नरेशो का चरित्र अ कित करत समय वह भावुक और पूर्वाग्रही नही है वरन् चरित्र विश्लेषण म उसकी दृष्टि बौद्धिक मनोवज्ञानिक और यथार्थवादी रही है । दत्यवश के पात्रों मे बलि का चरित्र मानवता के महान आदर्शों पर प्रतिष्ठित है । उसका दानवीरता भारतीय इतिहास के पष्ठो पर स्वर्णाक्षरो से अ कित करन योग्य है । दत्यकुल मे उत्पन्न होकर भी बलि ने जिस न्यायप्रियता और दानवीरता का परिचय दिया है तथा प्रजाहित किया है, उसके कारण हिन्दी महाकाव्यो मे महत्वपूर्ण नायक के रूप म उल्लेखनीय रहेगा ।

रश्मि थी

'रश्मिरथी चरित्र प्रधान महाकाव्य है जिसकी रचना का मुख्य उद्देश्य महाभारत के महान तेजस्वी पात्र कण के चरित्र का नवीन मूल्याकन करना है । कण के चरित्र को कवि ने मानवतावादी दृष्टि से निरूपित किया है । दिनकर जी के शब्दो म 'कण चरित्र का उद्धार एक तरह मे नयी मानवता की स्थापना का,

---

१ दत्यवश षोडस सग, पृ० २३६ ।

प्रयास है ।'[1] कर्ण के अतिरिक्त काव्य मे अर्जुन, कृष्ण और परशुराम के चरित्र पुरुष-पात्रो म तथा कुन्ती का स्त्री पात्रो म उल्लेखनीय है । इनके अतिरिक्त इन्द्र, भीष्म, धर्मराज, युधिष्ठिर और दुर्योधन आदि के चरित्र अपेक्षाकृत गौण हैं । इन पात्रो की रचना कथा प्रवाह को गति प्रदान करने और मुख्य पात्र के चरित्र को विकसित करने की दृष्टि से हुई है ।

प्रमुख पात्र

कर्ण—कर्ण प्रस्तुत काव्य का नायक है । उसके चरित्र म गुरु भक्ति, आदश मत्री, वीरता, महान त्याग और दानशीलता आदि उदात्त गुणो की सुन्दर व्यजना हुई है । महाभारत में पात्रो मे कर्ण अकेला पात्र है जो अपने पुरुषाथ और पराक्रम के बल पर यशस्वी बनता है । कर्ण की महानता सस्कार जन्य, सद्वशीय अथवा राजपुत्र होने के कारण नही, वरन् त्याग पुरुषाथ एव दानशीलता आदि मानवीय गुणो के कारण भी है । कर्ण का काव्य मे सवप्रथम प्रवश उस रगभूमि म होता है जहा अर्जुन अपनी धनुर्विद्या के प्रदशन द्वारा जन समूह को प्रभावित करके अपनी जय जय कार सुनता है । उसी अवसर पर कर्ण आगे बढकर अपने शौय तथा पराक्रम का अद्भुत परिचय देता है। वह अर्जुन को द्वद्व युद्ध के लिये भी ललकारता है । किन्तु कृपाचाय के नाम कुल, जाति आदि पूछने पर कर्ण वीरोचित स्वाभिमान के साथ उत्तर देता है कि—

> 'पूछो मेरी जाति, शक्ति हो तो मेरे भुजबल से,
> रवि-समान दीपित ललाट स, और कवच कुण्डल से ।
> पढो उसे जो झलक रहा है मुझम तेज प्रकाश,
> मेरे रोम-रोम म अकित है मेरा इतिहास ।'[2]

कर्ण के इस उत्तर म उसके चरित्र की दृढता और व्यक्तित्व की गरिमा का परिचय मिलता है । कर्ण जातिवाद की कटु निन्दा करता है और उसे केवल पाखडियो की पूजी मानता ह । कर्ण के साहस को देखकर दुर्योधन अगदेश का मुकुट उसके सिर पर रखकर अधिपति बना देता ह । दुर्योधन के इस स्नेह को देखकर कर्ण का हृदय द्रवित हो जाता ह और वह इस उपकार का बदला प्राणो की बाजी लगाकर चुकाता ह । तृतीय और पचम सर्गों म क्रमश कृष्ण और कुन्ती जन्म की बात बताकर उसे पाडवो से मिल जाने को कहते हैं पर कर्ण अपने वचन पर दृढ़ रहता है और स्पष्ट कहता है कि उसका रोम रोम दुर्योधन

---

१ रश्मिरथी भूमिका, पृ० घ

२ रश्मिरथी, प्रथम सग, प० ५

के प्रति ऋणी है।[1] वह सच्चे मित्र की भांति दुर्योधन के लिये सर्वस्व न्यौछावर करने को तयार ह—

'मित्रता बडा अनमोल रतन
कब इसे तोल सकता ह धन?
धरती की तो क्या बिसात?
आ जाय अगर बकुण्ठ हाथ,
उसको भी न्यौछावर करदू,
कुरुपति के चरणो पर धर दू।'[2]

कुंती को भी वह उसी प्रकार उत्तर देता ह—

'दे छोड भले ही कभी कृष्ण अर्जुन को,
मैं नही छोडने वाला दुर्योधन को।
कुरुपति का मेरे रोम रोम पर ऋण ह,
आसान न होना उससे कभी उऋण ह।'[3]

कर्ण के चरित्र की तीसरी विशेषता दानवीरता ह, जिसका परिचय काव्य के चतुथ सग म मिलता है। सूय की उपासना करते समय इन्द्र छद्मवेश मे आकर कर्ण से कवच और कुण्डल माग लेता है। कर्ण एक सच्चे दानवीर की भांति अपने शरीर के जन्मजात कवच और कुण्डलो को काट कर इन्द्र को दे देते हैं। उन्हें इसी मे गौरव है, क्योंकि—

'धन्य हमारा सुयश आपको खीच मही पर लाया,
स्वग भीख मागने आज, सच ही, मिट्टी पर आया।'[4]

दानी कर्ण की महिमा सुन कर कुंती भी अपने पुत्रो का जीवनदान मागने उसके पास जाती है। कर्ण उसे भी अर्जुन को छोड शेष चार पाडव पुत्रो का जीवन-दान देकर सन्तुष्ट करता है।

कर्ण की गुरु भक्ति का परिचय उस समय तक मिलता है, जब वह युद्ध विद्या की शिक्षा ग्रहण करने ब्राह्मण कुमार बन कर परशुराम के पास जाता है, जहा एक दिन परशुराम उसकी जघा पर सिर रखकर शयन कर रहे होते हैं

---

१ रश्मिरथी, तृतीय सग, पृ० ४०
२ वही, तृतीय सग, पृ० ५१
३ वही, पचम सग, पृ० ९९
४ वही, चतुथ सग, पृ० ६९

और उसी समय एक विष कीट के काटने पर जघा मे से रक्त प्रवाहित होने लगता है पर गुरु की निद्रा भग न हो, वह इस असह्य वेदना को सहता रहता है।[1] इस घटना के कारण कर्ण परशुराम का कोप-भाजन बनकर भी विश्व म महान कहलाने का वरदान प्राप्त करता है—

'अच्छा, लो वर भी कि विश्व मे तुम महान कहलाओगे,
भारत का इतिहास कीर्ति से और धवल कर जाओगे।'[2]

कर्ण का वीरत्व रूप हम प्रथम और अतिम दो सर्गो म पाते हैं। कर्ण के अद्भुत पराक्रम से पाडव सेना त्रस्त हो जाती है, युद्ध मे हाहाकार मच जाता है।[3] कृष्ण भी कर्ण के पौरुष और पराक्रम की मुक्तकठ से प्रशसा करते ह।[4] अतत अर्जुन अधम और अनीतिपूर्वक निशस्त्रावस्था मे कर्ण का वध करता है।

इस प्रकार 'रश्मिरथी' के कर्ण का चरित्र महान मानवीय गुणो का सघात दिखाई देता है। युधिष्ठिर भी मानता है कि विजय तो सौभाग्य से ही प्राप्त हुई है। यदि कर्ण की मृत्यु नहो होती तो न जाने समर म क्या होता ?[5] कर्ण के गुणो की प्रशसा करते हुए अत मे कृष्ण ने यह कहा —

'मगर जो हो मनुज सुवरिष्ठ था वह,
धनुर्धर ही नही धर्मिष्ठ था वह
तपस्वी सत्यवादी था व्रती था,
बडा ब्रह्मण्य था, मन से यती था।
+ +
बडा बेजोड दानी था, सदय था,
युधिष्ठिर! कर्ण का अद्‌भुत हृदय था
+ +
जगत के हेतु ही सर्वस्व खोकर
मरा वह आज रण मे नि स्व होकर।[6]

---

१ रश्मिरथी द्वितीय सर्ग पृ० १८
२ वही पृ० २४
३ वही षष्ठ सर्ग, पृ० १५०
४ वही, सप्तम सर्ग पृ०१८२-१८४
५ वही सप्तम सर्ग पृ० २००-२०१
६ वही पृ० २०२

श्रौर कर्ण का सम्मान द्रोण श्रौर पितामह की तरह करना चाहिये, क्योंकि-

'मनुजता का नया नेता उठा है,
जगत से ज्योति का जेता उठा है ।'[1]

कर्ण म जहा वीरत्व श्रौर पुरुषार्थ है, वही वह भाग्यवादी भी है। इन्द्र को कवच-कुण्डल देने के बाद वह कहता है कि—

'सबको मिली स्नेह की छाया, नई-नई सुविधाए,
नियति भेजती रही सदा पर, मेरे हित विपदाए ।'[2]

घटोत्कच के वध के समय वह अपने ही भाग्य को कोसता है—

'मन ही मन बोला कर्ण, पार्थ !
तू वय का बडा बली निकला।
या यह कि श्राज फिर एक बार
मेरा भाग्य ही छली निकला।'[3]

कर्ण के चरित्र म भाग्यवाद की प्रवचना एक असगति सी लगती है, पर भाग्य पर लाछना पूर्ण शब्द कर्ण के मुह से विशेष परिस्थितियो मे ही निकले हैं। इसी कारण उसका चरित्र सहज मानवीय है। श्री आनन्दकुमार ने अपने प्रबध काव्य 'अगराज' मे कर्ण के चरित्र को आदर्शवादी ढङ्ग से प्रस्तुत किया है। पर 'रश्मिरथी के कर्ण का चरित्र आदर्श श्रौर यथार्थ की समन्वित भूमिका पर प्रतिष्ठित है। दिनकर कर्ण के चरित्र की उस महाघता को उद्घाटित करने म सफल रहे हैं, जिसके कारण कर्ण का चरित्र महाकाव्य का विषय बन सका है।

कुन्ती—'रश्मिरथी' के स्त्री पात्रा मे केवल कुती का चरित्र ही उल्लेख-नीय है। कवि दिनकर कर्ण-चरित्र के पौरुष श्रौर पराक्रम का प्रदर्शन करने म इतने अधिक तल्लीन रहे कि उसके गृहस्थ जीवन का चित्र अकित करने के लिये, कर्ण की पत्नी के रूप मे किसी नायिका की कल्पना भी नही की है। 'महाभारत' के ऐतिहासिक कथानक में भी कर्ण के गहस्थ जीवन का कोई चित्र अकित नही किया गया है। रश्मिरथी' का प्रणेता चाहता, तो इस प्रकार की कल्पना कर सकता था, किन्तु उसने कथाकाव्य के एतिहासिक महत्व को कम करना उचित नही

---

१ रश्मिरथी, वही, पृ० २०३
२ वही, चतुर्थ सर्ग, पृ० ७२
३ वही, षष्ठ सर्ग, पृ० १४८

समझा। नारी चित्रण की दृष्टि से कुन्ती ही हमारे समक्ष आती है, जिसके चरित्र मे एक विवश माता की करुणा और अन्तर्व्यथा को व्यक्त करने का कवि ने प्रयास किया है।

कुन्ती एक मा है, जिसका पूर्ण मातृत्व काव्य के पचम सर्ग में चित्रित किया गया गया ह, जब कि वह छिपकर कर्ण के पास आकर उसके जन्म की सारी घटना बताती ह कि अपने कुमारी जीवन म ही सूर्य के प्रसाद से कर्ण का जन्म हुआ था। यह सामाजिक दृष्टि से एक भयकर अपराध था और वही कुन्ती के लिये अभिशाप बन गया। कुन्ती ने वज्र की छाती बनाकर अपने पुत्र को काष्ठ मञ्जूषा मे रखकर नदी की धारा मे प्रवाहित कर दिया था जिसका सूत-पत्नी राधा ने पालन-पोषण किया, इसलिये कर्ण 'सूतपुत्र और राधेय' कहलाया था। वस्तुत कर्ण कौन्तेय था। कुन्ती के जीवन मे इस घटना के कारण मानसिक अशान्ति और सघर्ष था, किन्तु अपनी विवशता किसके समक्ष व्यक्त करती? क्योंकि—

'बेटा धरती पर बडी दीन है नारी,
अबला होती सचमुच योषिता कुमारी।
है कठिन बन्द करना समाज के मुख को
सिर उठा न पा सकती पतिता निज सुख को।'[1]

महाभारत युद्ध मे अपनी ही कोख से उत्पन्न पुत्रो मे युद्ध देखकर उसका नारी हृदय समाज से विद्रोह करने को प्रस्तुत हो जाता है —

उस जड समाज के सिर पर कदम धरूगी
डर चुकी बहुत, अब और न अधिक डरूगी।'[2]

कुन्ती नही चाहती कि पाचो पाडवो का अग्रज कर्ण अपने ही पाचो अनुजो का सहार करे, पर कुन्ती की दीनता और करुण भावना कर्ण को कर्त्तव्य पथ से विचलित नहीं कर सकती। कुन्ती की दशा बडी विचित्र थी —

क्या कहे और यह सोच नही पाती थी,
कुन्ती कुरमा से दीन मरी जाती थी। [3]

और अन्त म वह अपने को पापिनी और सापिनी तक कहने लगती है —

---

१ रश्मिरथी पचम सर्ग पृ० ८६
२ वही पृ० ८७
३ वही, १००

'बेटा ! सचमुच ही, बडी पापिनी हूँ मैं,
मानवी-रूप मे विकट साँपिनी हूँ मैं।'[1]

पश्चाताप की अग्नि मे जलकर उसका हृदय कर्ण-जन्म के समय जितना कठोर था, वह अब उतना ही पवित्र एव कोमल बन जाता है। कुन्ती का मातृत्व उमड पडता है और वह कर्ण को छाती से लगा लेती है। कुन्ती की अब एक ही कामना शेष है कि ससार कर्ण को कुन्ती-पुत्र के रूप में पहचाने। कुन्ती के मातृत्व की विजय होती है, कर्ण परो पर गिर जाता है और अर्जुन के अतिरिक्त चारों पाडवो पुत्रो के जीवन का हरण नही करने का प्रण करता है।

इस प्रकार "रश्मिरथी" मे कुन्ती के चरित्र का स्वतत्र अस्तित्व है। यद्यपि कथा-विकास के क्रम म उसे काव्य म अपेक्षित स्थान नही मिल पाया है, तथापि मातृत्व का आदर्श स्थापन करने म कुन्ती 'रश्मिरथी' का महत्व पूर्ण चरित्र है।

अन्य पात्र

परशुराम एक आदर्श गुरु हैं। उनका बाह्य रूप जितना कठोर, उग्र और तेजस्विता से परिपूर्ण है, वहा अन्तस नवनीत के समान कोमल और दयार्द्र है। कवि के शब्दो मे-

'कहता है इतिहास जगत मे हुआ एक ही नर एसा
रण म कुटिल काल-सम क्रोधी तप मे महा सूर्य जसा।
मुख मे वेद, पीठ पर तरकस कर मे कठिन कुठार विमल
शाप और शर दोना ही थे, जिस महान् ऋषि के सम्बल।'[2]

यह ज्ञात हो जाने पर कि कर्ण सूतपुत्र है, वे उसे ब्रह्मास्त्र विद्या भूल जाने का शाप देते है किन्तु तुरन्त ही उन्हें अपने निर्णय पर खेद होता है और व एक विचित्र सघर्ष की स्थिति में पड जाते हैं। यहा उनके चरित्र म स्वाभाविक अन्तर्द्वन्द्व की योजना हुई –

---

१ रश्मिरथी, पचम सर्ग, पृ० १०१
२ वही, द्वितीय सर्ग, पृ० १२

'आह बुद्धि कहती कि ठीक था जो कुछ किया, परन्तु हृदय
मुझसे कर विद्रोह तुम्हारी मना रहा, जाने क्यो, जय ?
अनायास गुण, शील तुम्हारे, मन मे उगते आते हैं,
भीतर किसी अश्रु-गगा म मुझे बोर नहलाते है।'[1]

और परशुराम ने शापित कर्ण को भी विश्व मे महान् कहलाने का वरदान दिया। भारत का इतिहास उसकी कीर्ति से धवल होगा।[2] अर्जुन को कवि ने कर्ण के प्रतिद्वन्द्वी के रूप म चित्रित किया है। प्रथम और अतिम सर्गों म हम उसकी धनुर्विद्या और युद्ध कौशल को देखते हैं पर उसका चरित्र अशक्त एव निस्तेज है। कृष्ण को कवि ने कुशल राजनीतिज्ञ रूप म अ कित किया है। महाभारत के युद्ध को कूटनीतिज्ञ दृष्टि से परिचालित कराने और पाण्डवो को जयी बनाने म उनका महत्वपूर्ण योगदान है। स्वय कर्ण एक स्थान पर उनके लिये कहते हैं कि-

'स्वय भगवान मेरे शत्रु को ले चल रहे हैं,
अनेको भाति से गोविन्द मुझको छल रहे हैं।'[3]

विरोधी होते हुए भी कृष्ण युद्ध की समाप्ति पर युधिष्ठिर से कर्ण की मुक्त कठ से प्रशसा करते हैं।[4]

इस प्रकार रश्मिरथी काव्य के चरित्र विश्लेषण मे कर्ण और कुन्ती के चरित्र ही कवि की चरित्र कल्पना के उत्कृष्ट प्रतीक हैं। कर्ण के चरित्र को कवि ने मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाकर निरूपित किया है अत उसम युगानुरूपता और मौलिकता है।

ऊर्म्मिला

श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन रचित उर्मिला महाकाव्य एक चरित्र प्रधान रचना है। क्योंकि इस काव्य का मुख्य उद्देश्य उपेक्षिता उर्मिला के चरित्र को पूर्ण रूपेण प्रकाशित करना है। रामकथा पर आधृत होने के कारण इस काव्य म आवश्यक पात्रो का चरित्र ही उभरा है। शेष पात्रो का या तो पृष्ठभूमि के रूप म वर्णन हुआ है या उल्लेख मात्र।

---

१ रश्मिरथी द्वितीय सर्ग, पृ० २४
२ वही पृ० २४
३ वही सप्तम सर्ग पृ० १५६
४ वही पृ० २०२

उर्मिला' महाकाव्य के प्रमुख पात्रो मे उर्मिला, लक्ष्मण और राम-सीता हैं। गौण पात्रो मे सुमित्रा शान्ता जनक पत्नी, जनक, शत्रुघ्न, सुग्रीव एव विभीषण आदि है। अन्य पात्रा म कैकेयी, कौशल्या, रावण, भरत, माण्डवी, श्रुतिकीर्ति आदि का केवल उल्लेख मात्र हुआ है।

नायकत्व

'उर्मिला', प्रियप्रवास' और 'साकेत' की भाति नायिका प्रधान महाकाव्य है। इस काव्य म नायकत्व का पद ऊर्मिला को प्राप्त हुआ है। ऊर्मिला के चरित्र का इतनी प्रमुखता एव स्पष्टता से प्रतिपादन हुआ है कि नायकत्व के सम्बन्ध म कोई भ्राति उत्पन्न नही होती। ऊर्मिला-पति लक्ष्मण इस काव्य के नायक हैं। अपने चारित्रिक अस्तित्व की सार्थकता के लिये लक्ष्मण यहा पर्याप्त सक्रिय, साधनारत एव मुखर चित्रित किये गये हैं। 'साकेत' के लक्ष्मण की तरह वे राम के अनुयायी एव मात्र परोपजीवी पात्र नही हैं। सम्पूर्ण काव्य मे ऊर्मिला लक्ष्मण की ही कथा प्रमुख है। अन्य पात्र इन्ही के चरित्र-विकास मे सहायक हुए हैं।

ऊर्मिला-रामकाव्या की परपरा म श्री नवीन की उर्मिला सवथा नूतन चरित्र सृष्टि है। इस काव्य म प्रथम बार उर्मिला का स्वभाविक गति से स्वतत्र और पूर्ण चरित्र विकास हुआ है।

काव्यारम्भ उर्मिला की बाल्यावस्था की घटनाओ से होता है। बालिका उर्मिला चचल स्वभाव एव विनोदप्रिय प्रकृति की है। वह्न सीता के साथ उपवन मे खेलने कूदते एव कहानी सुनने सुनाने म वह आनन्दित दिखाई देती हैं। कपोत-कपोती की जो कहानी उर्मिला सीता को सुनाती है उसम उर्मिला के भावी जीवन का प्रत्यक्ष आभास मिल जाता है। जनक पत्नी बाल्यावस्था मे ही अपनी दोनो पुत्रियो को पतिव्रत धर्म की सुन्दर शिक्षा देती है। उर्मिला के चरित्र निर्माण म उसकी माता के स्नेह एव शिक्षाओ का विशेष महत्त्व है।

विवाहोपरान्त पतिगृह मे उर्मिला को हम गुणशालिनी राजवधू के रूप मे पाते हैं जिसका विनम्र व्यवहार रूप सौन्दय, वाक्चातुय मधुर हास-परिहास, एव लज्जाशील स्वभाव सहज मे ही पाठको को आकर्पित कर लेते हैं। अयोध्या की ललनाए, राजमाताए और ननद शान्ता सभी मुक्त कठ से उर्मिला की प्रशसा करती हैं।[1] लक्ष्मण और उर्मिला का पारस्परिक प्रम एक दूसरे को पूर्णता की ओर अग्रसर करता है। इस युगल का प्रेम शुद्ध, सात्विक और आत्मिक

---

१ ऊर्म्मिला, द्वितीय सर्ग, पृ० ८५

है। उसमे कही उच्छृंखल विलासिता और पार्थिवता की दुर्गन्ध नही है। तभी तो संयोग की अपूर्व वेला म उर्मिला लक्ष्मण से पूछती है कि—

> " प्रेम के शुद्ध रूप कहो—सम्मिलन है प्रधान या गौण ?
> कौन ऊँचा है ? भावोद्रेक ? या कि नत आत्म निवेदन मौन ?" [१]

लक्ष्मण ने बडे सुन्दर ढग से उर्मिला की जिज्ञासा को शान्त करते हुए कहा कि प्रेम के शुद्ध रूप मे पार्थिवता की चाह या कटु वियोग का दाह कहां है ? वहां तो ऐसा चिरकालीन मिलाप है जिसमे प्रेम-प्रेमी और प्रियतम सबका लोप होकर भेदभाव मिट जाता है। और—

> "इसी आदर्श प्राप्ति के लिये—
> उर्मिले मुझ मे तुम आ मिली
> प्रेम की मृदु पूजा के हेतु ,
> कली-सी तुम हिय मे खिली ,"[२]

उर्मिला चिंतनशील एवं चित्रकला प्रवीण है। अपनी गुण गरिमा के कारण वह राज्य परिवार के सभी सदस्यों का सहज स्नेह प्राप्त करने मे सफल होती है। लेकिन उर्मिला के संयोग सुख का क्रम एकदम रुक जाता है। राम-सीता के साथ लक्ष्मण का वनगमन उसके जीवन की दोपहरी म सध्या का आभास दे देता है। उर्मिला के स्नेह-सागर म वियोग की ज्वाला भडक उठती है, जिसके परिणाम स्वरूप—

> तड़फे प्राण-मीन अकुलाए—
> हिय-मन्दर, मन मथित हुआ ,
> प्यार-प्रशान्त-महासागर का
> विकल-विचल जल व्यथित हुआ,[३]
> \+ \+ \+
> शब्द दीनता रूद्ध कण्ठ ध्वनि ,
> हिचकी सिसक निराशा की ,

---

१ उर्मिला पृ० १३५
२ वही, द्वितीय सर्ग पृ० १४०
३ वही , तृतीय सर्ग, पृ० १७१

कल कण्ठा मे ये भर आई ,
लिए पीर गत आशा की , [1]

लेकिन फिर भी वह पति को वन जाने से रोकती नही —

'आग लगा, सुख-बाग जलाए-
राग सुहाग लुटाते से ,
मेरे प्रिय, तुम विपिन पधारो,
ममता मोह छुटाते-से ।' [2]

इसी अवसर पर वह अपने विवेक और वीरत्व से दशरथ के निर्णय की भी तक पूर्ण आलोचना करती है —

कह दो आज पिता दशरथ से
कि यह अधर्म नहीं होगा ,
कह दो, लक्ष्मण के रहते यह
यह घोर कुकर्म नही होगा ,
राज नहा कैकेयी का यह ,
दशरथ का न स्वराज्य यहा ,
जन-गण-मन-रजन कर्त्ता ही
होता है अधिराज यहा ।' [3]

उर्मिला के इसी कथन से मिलते-जुलते भाव 'साकेत' मे लक्ष्मण ने भी व्यक्त किये हैं। उर्मिला विवेकशील एव पतिपरायणा नारी होने के नाते पति के परामर्श को मानकर उन्हें वन-गमन की अनुमति देकर त्याग और भाव-समर्पण का आदर्श प्रस्तुत करती है।

चतुर्थ और पचम सर्ग मे उर्मिला के विरह की मार्मिक दशाओं का अनूठा चित्रण है। लक्ष्मण के वियोग म उसका प्रेम निखरता है। चौदह वर्षो की दीर्घावधि मे वह अपने प्रिय के साथ बिताये गये जीवन की मधुर स्मृतियो को सजोये पुनर्मिलन-वेला की धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करती है। वियोग की यह स्थिति उर्मिला को उच्चतम त्यागमयी भूमिका प्रदान करती है। कवि लक्ष्मण-उर्मिला के पुनर्मिलन

---

१ ऊर्म्मिला, तृतीय सर्ग, पृ० १८२
२ वही, पृ० २३५
३ वही, पृ० २४४

का दर्द तक अ कित नही कर पाता है, क्योकि 'यह मिलन नही पूर्ण आत्म दर्शन है और कवि के शब्दो मे "कल्पने असभव है दिखलाना हिय का स्पदन।" उर्मिला के उत्सर्ग पूर्ण जीवन की राम भी भूरि भूरि प्रशसा करते हैं। [1] सीता एव अन्य पात्रो ने भी उर्मिला के स्वभाव, शील एव त्याग की सराहना की है।

इस प्रकार 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य मे उर्मिला के चरित्र को अत्यन्त व्यापक फलक पर प्रस्तुत किया गया है। उसके बालिका, कुलवधू एव विरहिणी तीनो रूपो का अ कन करने म कवि को पूर्ण सफलता मिली है। उर्मिला के चरित्र निर्माण म नवीन जी ने साकेतकार से प्रभावित होकर भी नवीनता और मौलिकता का परिचय दिया है।

लक्ष्मण—लक्ष्मण धीरोदात्त नायक हैं। वे आदर्श पति कर्तव्यनिष्ठ पुत्र, आज्ञाकारी भाई एव तपस्यापूर्ण जीवन व्यतीत करने वाले रामभक्त के रूप मे इस काव्य मे प्रस्तुत किये गये हैं।

सर्व प्रथम हम लक्ष्मण को उर्मिला-पति के रूप म पाते हैं। उनका जीवन दाम्पत्य स्नेह की पीयूष धारा से आर्द्र है। उर्मिला को पाकर वे धन्य हैं। द्वितीय सर्ग मे उनका सौन्दर्य प्रेमी रूप अ कित है। लक्ष्मण के इस रूप म कही कही रोमास वादी भावनाए भी दिखाई देती हैं किन्तु उर्मिला के पूछने पर प्रेम के जिस स्वरूप का विश्लेषण वे करते हैं उसमे कवि का दृष्टिकोण दिखाई देता है। लक्ष्मण का प्रेम विलासिता की सीमा का सस्पर्श नही कर पाता। उसम अनुराग की वेगपूर्ण स्नेह सलिला ही प्रवाहित रहती है। उनका स्नेह मज कर सत्य, शिव, सुन्दरम् का अनूप रूप ग्रहण कर लेता है। [2] उर्मिला के ससर्ग से लक्ष्मण विदेह-अनग हो गये जिनकी कल्पना-मुरति उर्मिला हो गई। यही नही लक्ष्मण उर्मिलामय और उर्मिला सौमित्र रूप होजाती है —

> 'हुए यति-गति-रति-मति-पति लखन
> बनी अति गति-मति-यति उर्मिला,
> बन गये सखन विदेह अनत —
> बनी कल्पना मुरति ऊर्म्मिला।
> + + +

---

१ ऊर्म्मिला तृतीय सर्ग, पृ० २७८
२ ऊर्म्मिला, द्वितीय सर्ग पृ० १५२

ऊर्म्मिला–लक्ष्मण मय हो गई —
हुए ऊर्मिला–रूप सौमित्र ।[१]

लक्ष्मण, ऊर्म्मिला को समझा–बुझाकर वन–गमन की अनुमति प्राप्त करके जाने को उद्यत होते हैं । 'साकेत' के लक्ष्मण की भाति वे चुपचाप राम के अनुयायी बनकर वन को नही जाते । उनकी वनयात्रा का उद्देश्य आर्य सस्कृति और धर्म का प्रसार करना है । उनकी दृष्टि म प्रेम से कर्त्तव्य ऊचा है, तभी तो प्राण प्रिया को छोड़कर चौदह वर्षों के लिये निजन वन को वे प्रस्थान करते हैं। यहा कवि ने लक्ष्मण के मस्तिष्क म प्रेम और कर्त्तव्य के द्वन्द्व का सच्चा एव सजीव चित्र अकित किया है । वन म उर्मिला की स्मृति लक्ष्मण के हृदयपटल पर अकित है, फिर भी वे विरह वेदना से विदग्ध एव भ्रात नही हैं । उनकी धारणा है —

'नहीं ऊर्म्मिला हैं अब मेरी',
वह म एक स्वरूप हुआ ,
\+ \+ \+ \+
सीता–राम, ऊर्म्मिला–लक्ष्मण ,
एक रूप बन गये सभी ।"[२]

चौदह वर्षों की अवधि के उपरात अवध लौटते हुए लक्ष्मण और सीता के सम्वादो में लक्ष्मण की मानसिक वृत्तियो का सुदर स्वरूप देखने को मिलता है । प्रारम्भ के साधक लक्ष्मण – ऊर्मिला, प्रेम और कर्त्तव्य की साधना म सफल होकर सिद्ध बन जाते हैं —

अब जब मिले, सिद्ध थे दोनो,
प्रारम्भिक चांचल्य न था ।'[३]

इस प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य मे लक्ष्मण का केवल एक प्रेमी रूप ही चित्रित नही हुआ है ।[४] वे एक चिन्तक आदर्श पति रामभक्त तथा तपस्वी के रूप मे भी आते हैं ।[५] कवि की सब से बडी सफलता यह है कि लक्ष्मण के चरित्र के कतिपय पक्षो का स्वतत्र विकास दिखाने मे वह सफल रहा है । यही उसकी मौलिकता है ।

---

१ ऊर्म्मिला, पृ० १५२
२ वही, षष्ठ सर्ग पृ० ६०४
३ वही, पृ० ६१९
४ श्री जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव, 'नवीन और उनका काव्य पृ० ११२
५ डा० लक्ष्मीनारायण दुबे बालकृष्ण शर्मा नवीन, करण एव काव्य पृ०

राम—कवि की दृष्टि मुख्यत ऊर्म्मिला-लक्ष्मण के चरित्र-विकास पर केन्द्रित रहने के कारण राम और सीता के चरित्र का विकास इस काव्य म नहीं हो पाया है। फिर भी जिन कथा प्रसगो की उद्भावना कवि ने की है उनम वे प्रत्यक्ष और परोक्ष दोना रूप से सहायक हुए हैं।

राम का रूप आदश एव मर्यादा से युक्त है। यहा वे आय सस्कृति के रक्षक और प्रसार कर्त्ता चित्रित किये गये हैं। राम की वनयात्रा का उद्देश्य आय सस्कृति का प्रसार ही है और वे अपने उद्देश्य म सफल भी होते हैं। तृतीय सग म राम को कवि ने इस प्रकार से वर्णित किया है —

'राम,-नही नर, एक चिरन्तन
मनन-पुज हिन्दू मन का,
राम,-एक उत्कष-कल्पना
इक आदश आय जन का ,
राम,-सत्य, शिव, सुन्दर भावो-
की कल्याणमयी झाकी
राम,-सच्चिदानद-भाव की
छवि नयनाभिराम, बाकी ।

\+ \+ \+ \+

राम, – नित्यतामय, – मगलमय
सतत सुन्दरता – सचय ।

\+ \+ \+ \+

राम,-अखण्ड शक्ति वह, जिसकी
सत्ता फली हा – वहा'[1]

राम के सम्मुख काय के सभी पात्र श्रद्धावनत दिखाई देते हैं। कवि ने अपनी पूज्य भावना के फलस्वरूप राम को सब के सरक्षक के रूप मे चित्रित किया है। राम के उदात्त दृष्टिकोण का परिचय उस अवसर पर मिलता है जब वह लका का राज्य विभीषण को देते हुए कहते हैं —

विश्व-विजय की चाह नही थी
और न रक्त पिपासा थी ,

---

१ ऊर्म्मिला, तृतिय सग, पृ० २९५-२९६

केवल वृद्ध सेवा करने की
उत्कठित अभिलाषा थी ,
इतना था विश्वास कि हम हैं
लोकोत्तर धन के स्वामी
लोक हिताय बाँटना जिसका ,
धम हमारा निष्कामी ।'[1]

सीता—'ऊर्म्मिला' महाकाव्य की सीता उत्कृष्ट गुणो मे सम्पन्न हैं। सीता की चरित्र-सृष्टि की नवीनता यह है कि नवीन जी ने ऊर्म्मिला के साथ ही सीता के भी बाल्यकाल का निरूपण किया है। जब कि 'साकेत' म ऐसा नही हुआ है। सीता बाल्यावस्था से ही गभीर, दृढनिश्चयी एव कतव्यनिष्ठ दिखाई देती हैं। कवि की निष्ठास्वामिनी ऊर्म्मिला होने के कारण सीता का चरित्र विशेष उभरा नही है।

वनगमन के अवसर पर सीता जब ऊर्म्मिला के प्रति सवेदना प्रकट करती है उस समय माता सुमित्रा के मार्मिक उद्गारो म सीता के चरित्र की झाँकी मिलती है—

पति-परायणा, पतित पावना
भक्ति भावना मृदु तुम हो ,
स्नेहमयी वात्सल्यमयी, श्री-
राम-कामना मृदु तुम हो ।[2]

इसी प्रकार षष्ठ सर्ग मे विभीषण के द्वारा सीता की चरित्र-गरिमा स्पष्ट हुई है। उसके शब्दा सीता के अलौकिक मातृ रूप को देखकर राक्षस दानव न रहकर मानव बन गये हैं। लका पर विजय राम की नही जननि की हुई है। लका की रजनी आय-सास्कृतिक-सूर्योदय की जननी (सीता) रूपी प्रथम किरण से ही दूर हुई है। लका को राम सीता के ही सत और शील से विजित कर सके हैं।[3] इस प्रकार ऊर्म्मिला की सीता परम्परित गौरव से सम्पन्न हैं।

अन्य पात्र

महाराज जनक और सुनयना का चरित्राकन केवल प्रथम सग मे ही हुआ है। एक ओर सुनयना सती-साध्वी और मातृत्व के आदश गुणों से समन्वित हैं

---

१ ऊर्म्मिला, षष्ठ सग, पृ० ५३९
२ वही, तृतीय सग, पृ० ३२७
३ वही , षष्ठ सग, पृ० ५७७-७८

तो दूसरी ओर उन्ही के संरक्षण एव सद्‌शिक्षा के कारण ऊर्मिला और सीता शील-गुण सम्पन्न प्राय ललनाए बनी हैं। महाराज जनक का चरित्र परम्परागत ही है। वे करुण हृदय, चिंतक एव वात्सल्य से परिपूर्ण हैं।

अन्य स्त्री पात्रो मे लक्ष्मण की माता सुमित्रा का चरित्र सुन्दर बन पडा है। इस काव्य म सुमित्रा का चरित्र ऊर्मिला लक्ष्मण दोनो के पार्श्व म विकसित हुआ है। वे मातृत्व एव वात्सल्य की प्रतिमूर्त्ति हैं। राम ने उन्हें निष्ठुर जग की कोमलता स्नेह की दीपशिखा, वत्सलता, की स्रोतस्विनी, जीवन मगलाम्बिका और 'मा शब्द मूर्तिमती महिमा' तक कहा है।[1] 'ऊर्मिला' महाकाव्य के स्त्री-पात्रो म एक नवीन सृष्टि राम की बहिन शान्ता है। वह विनोदी स्वभाव की है। वह भाभी से व्यग्य विनोदपूर्ण वार्त्तालाप करके ऊर्मिला के गृहस्थ जीवन को सुखमय बनाने म योग देती है। काव्य के अन्य पात्रो म विभीषण, हनुमान, कैकेयी, कौशल्या, माण्डवी, श्रुतिकीर्ति आदि का उल्लेख मात्र हुआ है, उनका चरित्र विकास नही हो पाया है।

समष्टि रूप मे ऊर्मिला महाकाव्य की चरित्र योजना मे सबसे महत्वपूर्ण एव उल्लेखनीय लक्ष्मण ऊर्मिला का ही चरित्र है। वास्तव म कवि का उद्देश्य भी ऊर्मिला के पुनीत चरित्र का बखान करना है[2] और कवि को इस उद्देश्य की प्राप्ति मे पूर्ण सफलता भी मिली है। अन्य पात्रो मे लक्ष्मण के अतिरिक्त अन्य किसी पात्र का चरित्र पूर्णत अकित नही हो पाया है। सम्पूर्ण काव्य के कथा विकास एव चरित्राकन मे ऊर्मिला की ही महत्ता प्रतिपादित हुई है। काव्य की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि ऊर्मिला का ही चरित्र है, जो निश्चय ही नवीन, युगीन एव मौलिक है।

एकलव्य

महाभारत के असख्य पात्रो म निषाद पुत्र एकलव्य का चरित्र उपेक्षित प्राय है। डा० रामकुमार वर्मा ने इसी पात्र का महत्त्व प्रदर्शित करने के लिए प्रस्तुत काव्य की रचना की है। कवि के शब्दो म— राजनीति और समाज के अन्तराल म आचार्य द्रोण और शिष्य एकलव्य के चरित्र की व्याख्या बडी मनोवैज्ञानिक होगी इसी विचार से मैंने इस काव्य की रचना की।[3] 'एकलव्य' म न घटना बाहुल्य है और न पात्रो की अधिकता। उसमे कथा प्रसग के अनुसार पात्र सृष्टि अल्प है किन्तु चरित्र विश्लेषण की दृष्टि महत्वपूर्ण है। 'एकलव्य' मे प्रमुख चरित्र

---

१ ऊर्मिला, तृतीय सर्ग पृ० ३११

२ वही श्री लक्ष्मण चरणार्पणमस्तु पृ० 'क'

एकलव्य आमुख पृ० ६

केवल दो ही है—एकलव्य और आचार्य द्रोण। इनके अतिरिक्त एकलव्य के पिता निषादराज हिरण्यधनु अर्जुन और एकलव्य जननी के चरित्र भी उल्लेखनीय हैं।

एकलव्य—एकलव्य निषादराज हिरण्यधनु का पुत्र है। उसके चरित्र में निषाद जाति की वीरता, विनय सेवा आदि विशेषताए सहज रूप मे प्राप्य हैं। काव्य मे सवप्रथम हम उसे एक जिज्ञासु शिष्य के रूप में पाते हैं जो गुरु द्रोण से धनुर्वेद की शिक्षा पाने को समुत्सुक हैं। उसके जीवन की सबसे बडी आकांक्षा धनुर्वेद मे निपुणता प्राप्त करने की है, किन्तु निषाद पुत्र होने के कारण राजगुरू द्रोण उसे शिष्य बनाने के लिये तयार नही होते एकलव्य द्रोण की विवशता समझता है, अत मन मे बिना कोई दुर्भाव पदा किये वह निष्ठापूर्वक अपनी साधना में लग जाता है। लेकिन वर्ग भेद की व्यवस्था के प्रति उसके मन में आक्रोश अवश्य है। वह शूद्र भले ही हो, परन्तु अपने गुणों के कारण द्रोण को भी आकर्षित कर लेता है। उसके विषय मे द्रोण कहते हैं —

गुरु द्रोण चौंक उठे—यह शिष्य कसा है ?
है तो शूद्र, किन्तु जसे निष्कलंक द्विज है।
बालक निषाद का है, किन्तु तेजोमय है,
जसे मणिरत्न है विशाल विषधर का।
अन्य राजपुत्रों से विशेष श्रद्धावान है
जसे यह अंकुर है प्रस्तर के पार्श्व मे।[1]

एकलव्य के आकर्षक व्यक्तित्व का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि—

पारावत-पंख शीश मे विचित्र हैं कसे
लंबा जटाजूट श्याम मस्तक की शोभा है।
\+ \+ \+
है प्रशस्त भाल घने केश उठे भौंहो मे
बीच में मिले हैं जसे कंपित धनुष है
नासा-रेख उन्नत कपोल सौम्य, कर्ण मे
विलुलित हैं कुण्डल सुरम्य स्फटिक के।
सम्पुटित नील पद्म-जसे बन्द नेत्र हैं,
लीन जिनमे है दिव्य मूर्ति गुरु द्रोण की।
हृष्ट-पुष्ट विग्रह है, ब्रह्मचर्य-तेज से
कसा पीत वल्कल है, वल्लरी के रज्जु से।[2]

---

१ एकलव्य आत्मनिवेदन सर्ग, पृ० १२५
२ वही साधना सर्ग, पृ० १९४

तो दूसरी ओर उन्हीं के सहयोग एवं सहनिष्ठा के कारण ऊर्मिला और सीता शील-गुण सम्पन्न प्राय समान हो रही हैं। महाराज जनक का चरित्र परम्परागत ही है। वे करुण हृदय, विनय एवं वात्सल्य से परिपूर्ण हैं।

अन्य स्त्री पात्रों में लक्ष्मण की माता सुमित्रा का चरित्र सुन्दर बन पड़ा है। इस काव्य में सुमित्रा का चरित्र ऊर्मिला-लक्ष्मण दोनों के सम्बन्ध में विकसित हुआ है। वे मातृत्व एवं वात्सल्य की प्रतिमूर्ति हैं। राम ने उन्हें त्रिपुर जग की कोमलता स्नेह की दीपशिखा, करुणता की सारदिनी जीवन मंगलाधिष्ठात्री और 'मां धाम्य मुनिमनी महिमा' कह कहा है।[1] 'ऊर्मिला' महाकाव्य में स्त्री-पात्रों में एक नवीन सृष्टि राम की बहिन शान्ता है। वह विनोदी स्वभाव की है। वह भाभी से व्यंग्य विनोदपूर्ण वार्तालाप करके ऊर्मिला के गृहस्थ जीवन को सुखमय बनाने में योग देती है। काव्य में अन्य पात्रों में विभीषण हनुमान कैकेयी, कौशल्या, माण्डवी, श्रुतिकीर्ति आदि का उल्लेख मात्र हुआ है उनका चरित्र विकास नहीं हो पाया है।

समष्टि रूप में 'ऊर्मिला' महाकाव्य की चरित्र-योजना में सबसे महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय लक्ष्मण ऊर्मिला का ही चरित्र है। वास्तव में कवि का उद्देश्य भी ऊर्मिला के पुनीत चरित्र का बखान करना है[2] और कवि को इस उद्देश्य की प्राप्ति में पूर्ण सफलता भी मिली है। अन्य पात्रों में लक्ष्मण के अतिरिक्त अन्य किसी पात्र का चरित्र पूर्णत अंकित नहीं हो पाया है। सम्पूर्ण काव्य में कथा विकास एवं चरित्रांकन में ऊर्मिला की ही महत्ता प्रतिपादित हुई है। काव्य की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि ऊर्मिला का ही चरित्र है, जो निश्चय ही नवीन, युगीन एवं मौलिक है।

एकलव्य

महाभारत के असख्य पात्रों में निषाद पुत्र एकलव्य का चरित्र उपेक्षित प्राय है। डा० रामकुमार वर्मा ने इसी पात्र का महत्त्व प्रदर्शित करने के लिए प्रस्तुत काव्य की रचना की है। कवि के शब्दों में—'राजनीति और समाज के अन्तराल में आचार्य द्रोण और शिष्य एकलव्य के चरित्र की व्याख्या बडी मनोवैज्ञानिक होगी, इसी विचार से मैंने इस काव्य की रचना की।'[3] 'एकलव्य' में न घटना बाहुल्य है और न पात्रों की अधिकता। उसमें कथा प्रसंग के अनुसार पात्र सृष्टि अल्प है किन्तु चरित्र विश्लेषण की दृष्टि महत्वपूर्ण है। 'एकलव्य' में प्रमुख चरित्र

---

१ ऊर्मिला तृतीय सर्ग, पृ० ३११

२ वही श्री लक्ष्मण चरणार्पणमस्तु, पृ० 'क'

३ एकलव्य आमुख पृ० ६

केवल दो ही है—एकलव्य और आचार्य द्रोण। इनके अतिरिक्त एकलव्य के पिता निषादराज हिरण्यधनु, अर्जुन और एकलव्य जननी के चरित्र भी उल्लेखनीय हैं।

एकलव्य—एकलव्य निषादराज हिरण्यधनु का पुत्र है। उसके चरित्र में निषाद जाति की वीरता, विनय सेवा आदि विशेषताएं सहज रूप मे प्राप्य हैं। काव्य में सर्वप्रथम हम उसे एक जिज्ञासु शिष्य के रूप में पाते हैं जो गुरु द्रोण से धनुर्वेद की शिक्षा पाने को समुत्सुक है। उसके जीवन की सबसे बडी आकांक्षा धनुर्वेद में निपुणता प्राप्त करने की है, किन्तु निषाद पुत्र होने के कारण राजगुरू द्रोण उसे शिष्य बनाने के लिये तयार नही होते एकलव्य द्रोण की विवशता समझता है, अत मन में बिना कोई दुर्भाव पैदा किये वह निष्ठापूर्वक अपनी साधना मे लग जाता है। लेकिन वर्ग भेद की व्यवस्था के प्रति उसके मन में आक्रोश अवश्य है। वह शूद्र भले ही हो परन्तु अपने गुणों के कारण द्रोण को भी आकर्षित कर लेता है। उसके विषय में द्रोण कहते हैं —

> गुरु द्रोण चौंक उठे—यह शिष्य कैसा है ?
> है तो शूद्र किन्तु जैसे निष्कलंक द्विज है।
> बालक निषाद का है, किन्तु तेजोमय है,
> जैसे मणिरत्न है विशाल विषधर का।
> अन्य राजपुत्रों से विशेष श्रद्धावान है
> जैसे यह अंकुर है प्रस्तर के पार्श्व मे।[1]

एकलव्य के आकर्षक व्यक्तित्व का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि—

> पारावत-पंख शीश मे विचित्र हैं कसे
> लंबा जटाजूट श्याम मस्तक की शोभा है।
> \+ \+ \+
> है प्रशस्त भाल घने केश उठे भौंहो मे
> बीच मे मिले हैं जैसे कंपित धनुष है
> नासा—रेख उन्नत कपोल सौम्य, कर्ण मे
> विलुलित हैं कुण्डल सुरम्य स्फटिक के।
> सम्पुटित नील पद्म—जैसे बन्द नेत्र हैं,
> लीन जिनमें है दिव्य मूर्ति गुरु द्रोण की।
> हृष्ट-पुष्ट विग्रह है, ब्रह्मचर्य-तेज से
> कसा पीत वल्कल है, वल्लरी के रज्जु से।[2]

---

१ एकलव्य आत्मनिवेदन सर्ग, पृ० १२५
२ वही साधना सर्ग, पृ० १९४

एकलव्य का जीवन एकान्त साधक की साधना से परिपूर्ण है। गुरु द्रोण के मुख से 'धनुर्वेद' पवित्र शब्द सुनकर ही वह उसे दीक्षा मान लेता है और माता पिता तथा मित्र नागदत्त के मना करने पर भी वह धनुर्भ्यास की कठोर साधना करने का दृढ संकल्प कर निजन वन मे चल देता है। भयंकर परिस्थितियो के मध्य अपनी साधना के बल पर लक्ष्य प्राप्ति करने म वह अन्तत सफल होता है। अदम्य उत्साह एव धर्य उसके चरित्र के दो विशेष गुण हैं जिनके बल पर वह वन के सकटो का सामना करता है। गुरु द्रोण की मूर्ति उसकी प्रेरक शक्ति है। लेकिन उसकी साधना अर्जुन के लिये ईर्ष्या का कारण बनती है। एकलव्य के बाण विद्या-कौशल के सम्मुख अर्जुन हतप्रभ हो जाता है। द्रोण एव एकलव्य क लाघव की प्रशसा करते हुए कहते हैं —

> 'किन्तु जानता हूँ धनुर्वेद, कहता हूँ मैं
> तुम सा कुशल धन्वी दूसरा नही हुआ।
> \+ \+ \+
> और तुम आज के अजेय धनुधारी हो।'[1]

महान् त्यागी एकलव्य कठोर साधना से अर्जित कौशल को क्षण भर में ही गुरु दक्षिणा के रूप मे समर्पित कर देता है। पार्थ को धनुर्धर के रूप में अद्वितीयता प्राप्त कराने मे गुरू के प्रण की रक्षा हेतु वह धनुष बाण को फेंक देता है[2] और दक्षिणा स्वरूप अपना दाहिना अगुष्ठ काट कर गुरू के चरणो म रख देता है।[3]

इस प्रकार एकलव्य त्याग और बलिदान का एक उच्च आदर्श प्रतिष्ठित करता है जिसके कारण उसका चरित्र महाकाव्य के नायक की गरिमा से युक्त हो जाता है। उसके त्याग की महिमा से प्रभावित होकर द्रोण यहाँ तक कह देते हैं कि—

> 'तुम विप्र हो, हे शिष्य यह गुरु द्रोण क्षुद्र हैं।
> हा, तुम्हारी गुरुता म गुरु हुआ लघु है।'[4]

और अर्जुन ने भी क्षमा-याचना करते हुए कहा—

> 'क्षमा करो, गुरु-भक्ति सीखी आज तुम से।
> मैंने राजवश की अहम्-भावनाओ से।

---

१ एकलव्य दक्षिणा सर्ग, पृ० २८७
२ वही पृ० २९१
३ वही पृ० २९६
४ वही, दक्षिणा सग पृ० २९९

गुरु को था हीन माना । तुमने निषाद हो,
गुरु का महत्व सिखलाया इस विश्व को ।[१]

एकलव्य गुरुभक्त होने के साथ-साथ मातृभक्त भी है। अपने आत्मबल से उसे साधना मे सफलता मिलती है और वह भूमिपतियो की चुनौती का उत्तर देता हुआ कहता है —

'सावधान भूमिपति हम म भी शक्ति है,
+ + +
पशुबल कौशल तो सीमित तुम्हारा है
आत्मबल की हमारे पास सीमा है नही'[२]

निष्कर्ष रूप म एकलव्य में महाकाव्य के नायक के अधिकाश गुण विद्यमान है। वह अपने महत् गुणो के कारण ही पाठको की सहानुभूति प्राप्त करता है। प्रस्तुत महाकाव्य में 'एकलव्य के चरित्र का जितना उदात्त रूप आया है वह उसके प्रति युग युग की अटूट श्रद्धा सुरक्षित रखने वाला है।'[३] उसके चरित्र का अप्रतिम त्याग मानवता की अक्षय विभूति है।

द्रोणाचार्य—महर्षि भारद्वाज के पुत्र द्रोणाचार्य ने परशुराम से वेद वेदागो एव धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की थी। परशुराम से उन्हें दिव्य अस्त्र भी मिला था। उच्चकुल म जन्म लेकर, उच्च शिक्षा प्राप्त करके आचार्य द्रोण उच्च सस्कारो से सम्पन्न थे। कवि ने उनके व्यक्तित्व का अत्यत प्रभावशाली चित्र अकित किया है —

'श्वेत जटा, विस्तृत ललाट, कसी भौंहें हैं
नेत्र हैं विशाल, रक्तवर्ण, उठी नासिका
श्वेत श्मश्रु बीच ओठ जसे शुभ्र अभ्रों की
ओट सध्याकाल-मध्य दुग का कलश है।'[४]

---

१ एकलव्य, पृ० २९७
२ वही, सकल्प सग, पृ० १७७
३ डा० श्यामनन्दन किशोर—आधुनिक हिन्दी काव्यों का शिल्प विधान, पृ० २४१
४ एकलव्य दर्शन सग, पृ० १२

ऐसे तेजस्वी द्रोणाचार्य, आर्थिक अभाव के कारण राजा द्रुपद के पास धन के लिये जाते हैं, किन्तु उनका तिरस्कार ही होता है। पश्चात् वे भीष्म द्वारा युधिष्ठिर भीम, अर्जुन, दुर्योधन आदि राजपुत्रों को धनुर्विद्या एवं शास्त्रास्त्रों की शिक्षा देने हेतु नियुक्त किये जाते हैं। अर्जुन को वे अधिक सक्षम जानकर उसे शब्दवेध और दृष्टिबन्ध वध का भी अभ्यास कराते हैं। साथ ही वे राजकुमारों को शास्त्रों का ज्ञान कराकर रीति-नीति सहित धर्म और राजधर्म की दीक्षा देते हैं। एक स्थल पर वे अहंकार और द्वेष पर विजय पाने का भी वे उपदेश देते हैं।

एकलव्य शिक्षा के लिये गुरु द्रोण के पास आता है, किन्तु जातीय नियमों एवं राजधर्म की मर्यादा के कारण वे उसे शिष्य बनाना स्वीकार नहीं करते। साथ ही वे एकलव्य को युक्तिपूर्वक सन्तुष्ट भी करते हैं कि निषाद पुत्र के लिये धनुर्वेद की क्या उपयोगिता है। एकलव्य के निष्ठाभाव से प्रभावित होते हुए भी विवशतावश उन्हें यही कहना पड़ता है कि—

'किन्तु मेरे शिक्षण के वे ही अधिकारी
जो कि भूमि-पुत्र नहीं किन्तु भूमिपति हैं।
× ×
राजगुरु हूँ, विशेष पद की मर्यादा है।
शिक्षा-नीति राजनीति के पदों है चलती।
शारदा की वाणी यहाँ बोलती है स्वर्ण में।[1]

अन्ततः उन्हें यही कहना पड़ता है कि—

जाओ, हे निषादपुत्र! तुम हो अस्वीकृत।'

यहाँ हम द्रोण को मर्यादाओं के कठोर अनुपालनकर्त्ता राजगुरु के रूप में पाते हैं किन्तु द्रोणाचार्य के व्यक्तित्व में सहज मानवीय दुर्बलताओं का भी अंकन कवि ने किया है। आर्थिक अभाव के कारण जब वे अपने पुत्र के लिए एक घूँट दूध भी उपलब्ध नहीं करा पाते। तब उनका पुरुषत्व उन्हें धिक्कारता है—

कुत्सित रे द्रोण! सब तेरो शक्ति व्यर्थ है
मारे चन्द्रमंडल में एक बाण क्यों न तू।
चू पड़े सुधा की धार पुत्र पीले नाच के।[2]

---

१ एकलव्य, आत्मनिवेदन सर्ग, पृ० १२६

२ वही, परिचय सर्ग पृ० ३८

और दूसरी तरफ एकलव्य को शिष्यत्व प्रदान न करने के कारण उनके मन में एक द्वन्द्व उठता है कि शिक्षा तो सरस्वती की वह धारा है जो अनन्त और प्रशांत है और मैं केवल राज्यगुरु बनकर क्यों रहूँ ? अन्त में वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं —

> जाति भेद नहीं वर्ग-वंश भेद भी नहीं,
> शिक्षा प्राप्त करने के सभी अधिकारी हैं।[1]

उनका मानसिक द्वन्द्व इस सीमा तक पहुँच जाता है कि वे अपनी साधना में भी मिथ्यात्व का आभास पाते हैं —

> धिक् द्रोण ! तेरी सब साधनाएँ मिथ्या हैं,
> तेरा धनुर्वेद सूम की सम्पत्ति-जैसा है।[2]

वस्तुतः स्वप्न सर्ग में हम द्रोण के व्यक्तित्व का वास्तविक किंवा मानवीय रूप पाते हैं जो उनके चरित्र को निश्चय ही ऊँचा उठाता है।

लेकिन अन्त में अर्जुन के स्वार्थ के कारण वे एकलव्य से जो गुरु दक्षिणा स्वीकार करते हैं उसमें उनका चरित्र उच्चादर्शों से स्खलित हो जाता है। एकलव्य के द्वारा अंगुष्ठ समर्पण से वे हतप्रभ हो जाते हैं और मर्मव्यथा के भार को सहन न कर पाने के कारण तत्क्षण चले जाते हैं। द्रोणाचार्य के चरित्र में कवि ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अन्तर्द्वन्द्व की बड़ी भव्य योजना की है।

अन्य पात्र

काव्य के अन्य पात्रों में हिरण्यधनु, एकलव्य जननी और अर्जुन के नाम उल्लेखनीय हैं। हिरण्यधनु को कवि ने जातीय गुणों के अनुसार वीर और साहसी ही नहीं, एक कर्तव्यपरायण पिता के रूप में भी चित्रित किया है। उन्हें अपने जातीय गौरव का पूर्ण अभिमान है। एकलव्य की माता को कवि ने वीर जननी के रूप में चित्रित किया है। जिसके हृदय में वात्सल्य का अक्षय स्रोत विद्यमान है। धनुर्विद्या की साधना के लिये एकलव्य के निर्जन वन में चले जाने पर उसका हृदय व्याकुल हो उठता है। एकलव्य जननी के मातृत्व भाव की सुन्दर अभिव्यक्ति के

---

१ एकलव्य, स्वप्न सर्ग, पृ० २२२
२ वही , वही , पृ० २२३

लिये कवि ने महाकाव्य का 'ममता' नामक पूरा सर्ग ही समर्पित कर दिया है। वह अपने पुत्र की बाल सुलभ क्रीडाओं की स्मृति को सजोये उसके वियोग को सहती है, किन्तु उसकी भावनाए बडी उदात्त हैं —

'गुण कथन ही तो मेरा गान है।
+ +
लाल तुम्हारी कठिन तपस्या ही तो मेरा गुणगान है।'[1]

पुत्रवियोग की तीव्र वेदना को सहती हुई एकलव्य-जननी पुत्र की साधना की सफलता की सूचना पाकर आनंदित होती हुई वन मे पहुचती है, वहा पुत्र के खडित अगुष्ठ को देखकर उसका हृदय खड खड हो जाता है। वह द्रोणाचार्य से कहती है कि आपके विधान में यदि शिष्य माता से भी दक्षिणा लेने का नियम हो तो मैं भी अपने नेत्रो को आपकी सेवा म समर्पित करदू। एकलव्य जननी के इस मर्मस्पर्शी कथन को सुनकर सभी स्तब्ध हो गये। आकाश म श्यामता छा गई और दिशाए धूमिल हो गयी।[2] 'एकलव्य महाकाव्य मे अर्जुन का चरित्र बहुत गिरा हुआ दिखाया गया है। महाभारत के इस आदर्शवीर में यहां स्वार्थ की भावना ही अधिक दिखाई देती है। काव्य के प्रारम्भ म उसे हम एक निष्ठावान शिष्य पाते हैं। इसीलिये गुरू द्रोण उसे अद्वितीय धनुर्धारी बनाने का निश्चय करते हैं। वह तमवेध, शब्दवेध तथा दिव्यास्त्रो मे भी निपुणता प्राप्त करता है, जिसे देखकर जनसमुदाय विस्मय-विमुग्ध रह जाता है। गुरू के प्रति अर्जुन के मन म विनय और श्रद्धा का भाव है किन्तु दूसरी ओर एक महत्वाकाक्षी राजपुत्र होने के कारण वह अद्वितीय धनुधर होने के लोभ का सवरण भी नही कर सकता। यही महत्वाकाक्षा उसके चरित्र को हीन बना देती है। उसी के आग्रह पर एकलव्य को अपनी महान साधना का उत्सर्ग करना पडता है, यद्यपि एकलव्य के इस महान त्याग से अर्जुन को ग्लानि भी होती है। इसके अतिरिक्त नागदत्त, भीष्मपितामह, दुर्योधन अर्जुन के अतिरिक्त अन्य पाण्डव कुमारो के भी चरित्र यथाप्रसग उभरे हैं किन्तु ये सभी पात्र कथानक के घटनाचक्र को विकसित करने की दृष्टि से ही उल्लेखनीय हैं। चरित्र की दृष्टि स इनका कोई महत्व नही है।

इस प्रकार 'एकलव्य' महाकाव्य क चरित्र-चित्रण म कवि को पर्याप्त सफलता मिली है एकलव्य और द्रोण की चरित्र-सृष्टि मे तो कवि ने मौलिकता और नवीनता का भी परिचय दिया है। एकलव्य का चरित्र निषाद सस्कृति का उज्ज्वल प्रतीक बनकर काव्य मे चित्रित हुआ है। आचार्य द्रोण के चरित्र म जिस

---

१ एकलव्य, ममता सर्ग पृ० १६३
१ वही, दक्षिणा सर्ग, पृ० ३०४

अन्तर्बाहिद्वन्द्व की योजना कवि ने की है वह चरित्र-विश्लेषण की दृष्टि से बडी महत्वपूर्ण है। द्रोण इस काव्य का सबसे अधिक गतिशील चरित्र है। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो वास्तव मे "आचार्य द्रोण के मनोविज्ञान की कक्षा म ही एकलव्य रूपी उपग्रह भ्रमण करता है, द्रोण के अन्तर्द्वन्द्व की उष्ण रश्मियो में एकलव्य का चरित्र-कमल विकसित होकर अपनी सुगन्धि समस्त दिशाओ म व्याप्त कर रहा है। अन्तत —सघर्ष के अन्तराल में बहिर्द्वन्द्व की यह योजना महाकाव्यकार की अनोखी सूझ है।"[1] एकलव्य के चरित्र को कवि ने अपनी प्रतिभा और कल्पना शक्ति के द्वारा इतना सशक्त बनाया है कि वह एक अनुकरणीय आदर्श चरित्र बन गया है। एकलव्य मे जिस शील, गुरुभक्ति, साधना और त्याग आदि के गुण-समूह का सयोजन किया गया है, उसके कारण वह अनार्य होकर भी आर्य बन गया है। सद्वश में उत्पन्न न होने पर भी उत्तम महाकाव्य के नायक बनने की गरिमा और शक्ति आगयी है। कवि ने चरित्र नियोजन मे मनोवैज्ञानिक आधार को ग्रहण करते हुए भी पात्रो की भावगत मान्यताओ को महाभारत के सास्कृतिक दृष्टिकोण से भी समर्थित रखा है। यह 'एकलव्य' के चरित्र विश्लेषण की सबसे बडी सफलता है।

---

१ डा० मोहन अवस्थी "जीवन्त महाकाव्य एकलव्य" नामक लेख, वीणा, फरवरी १९६१

—

चतुर्थ अध्याय

रसयोजना तथा शिल्प तत्त्व

भूमिका—

इस अध्याय मे आलोच्य महाकाव्यो की रसयोजना तथा शिल्प तत्त्व का विवेचन किया गया है। यो तो साहित्य की प्रत्येक कृति का निश्चित शिल्प होता है जिसके आधार पर उसका रचयिता रचना को रूपाकृति प्रदान करता है। किन्तु महाकाव्य मे शिल्पविधि के तत्त्वो तथा रचनात्मक उपकरणो का स्वरूप वशिष्ट्य पूर्ण होता है। शिल्पगत वशिष्ट्य के लिये महाकाव्यकार को शिल्पविधायक तत्त्वो की योजना विशेष विधि से करनी पडती है। महाकाव्य के रचना विधान मे अन्तरग और बहिरग दोनो पक्षो की समृद्धि आवश्यक है।

प्रस्तुत शोधप्रबध की 'भूमिका' म महाकाव्य के बहिरग और अन्तरग से सम्बन्धित जिन उपकरणो और तत्त्वो का विवेचन किया गया है वे इस प्रकार है —

(१) वर्णन कौशल, जिसके अन्तर्गत प्रकृति वर्णन, मनोवज्ञानिक निरूपण और सौन्दर्य चित्रण का समाहार किया जाता है।

(२) रसपरिपाक और भाव चित्रण-कौशल।

(३) नामकरण सग सयोजन, भाषा-शैली अलकार विधान, छन्द-योजना आदि।

परन्तु उपयुक्त शीर्षको एव उपशीर्षको के अन्तर्गत ही आलोच्य महाकाव्यों म से प्रत्येक के शिल्प तत्त्व का मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है। इस मूल्यांकन म शिल्प तत्त्व का महाकाव्योचित गरिमा की दृष्टि से महत्वांकन करते हुये प्रत्येक महाकाव्य की शिल्पगत उपलब्धियो एव अभावो का विवेचन किया गया है।

प्रियप्रवास

१ प्रकृति वर्णन

प्रियप्रवास मे प्रकृति चित्रण कवि ने सकौशल किया है। प्रकृति के अनेक रूपो की सुदर झाकिया काव्य मे आद्यात विनित हैं। काव्य का प्रारम्भ ही सध्या वर्णन से हुआ है —

' दिवस का अवसान समीप था।
गगन था कुछ लोहित हो चला।
तरु शिखा पर थी अब राजती।
कमलिनी-कुल वल्लभ की प्रभा।।"[१]

प्रियप्रवास के अधिकाश सर्गों का प्रारम्भ प्रकृति वर्णन से ही हुआ है। नीचे सग क्रमानुसार प्रत्येक सग की प्रथम पक्ति उद्धृत की जा रही है —

सग १ — 'दिवस का अवसान समीप था।'
सग २ — 'गत हुई अब थी द्विघटी निशा।'
सग ३ — 'समय था सुनसान निशीथ का।
सग ५ — 'तारे डूबे तम टल गया छा गयी व्योम लाली।'
सग ७ — 'ऐसा आया एक दिवस जो था महामर्म भेदी।'
सग १० — 'त्रिघटिका रजनी गत थी हुई।
सग ११ — 'यक दिन छविशाली अर्कजा कूलवाली।'
सग १२ — 'सरस सुदर सावन मास था।' (द्वितीय पद्य)
सग १४ — कालिन्दी के पुलन पर थी एक कुजातिरम्या।'
सग १५ — छायी प्रात सरस छवि थी पुष्प औ पल्लवो म।'
सग १७ — विमुग्धकारी मधु मजु मास था।'

प्रकृति और मानव का आदि सम्बध है। मानवीय भावनाओ की अभिव्यक्ति के लिये प्रकृति से अधिक आकर्षण माध्यम क्या हो सकता है। प्रियप्रवासकार ने प्रकृति का चित्रण इस प्रकार किया है कि मानवीय भावनाओ की सफल अभियक्ति भी हुई है और प्रकृति सुदरी का रूपाकन भी। प्रकृतिचित्रण की प्राय समस्त प्रणालिया प्रस्तुत काव्य मे देखी जा सकती हैं।

(अ) आलम्बन रूप में-आलम्बन रूप म प्रकृति चित्रण दो प्रकार से किया जाता है-एक स्वतत्र रूप म जिसके अन्तर्गत बिम्बग्रहण प्रणाली का आश्रय लेकर प्रकृति के सश्लिष्ट चित्र अ कित किये जाते हैं। दूसरे अर्थ-ग्रहण प्रणाली जिसम प्राकृतिक वस्तुओं के नामो की केवल गणना मात्र ही करा दी जाती है।

---

१ प्रिय प्रवास, प्रथम सग पृ० १ (सवत २०१३)

हरिऔध जी ने दोनों ही प्रकार से प्रकृति-चित्रण किया है। बिम्ब ग्रहण प्रणाली द्वारा उन्होंने प्रकृति के भव्य और भयंकर रूप चित्रित किये हैं। जैसे–

अचल के शिखरों पर जा चढ़ा।
किरण पादप-शीश विहारिणी।
तरणि-बिम्ब तरोहित हो चला।
गगन-मण्डल मध्य शनैः शनैः ॥[1]
तिमिरलीन कलेवर को लिये।
विकट-दानव पादप थे बने।
भ्रममयी जिनकी विकरालता।
चलित थी करती पवि-चित्त को ॥[2]

परिगणन शैली का उदाहरण इस प्रकार है —

जम्बू अम्ब कदम्ब निम्ब फलसा जम्बीर औ आंवला।
लीची दाडिम नारिकेल इमली औ शिशपा इंगुदी।
नारंगी अमरूद बिल्व बदरी सागौन शालादि भी।
श्रेणी-बद्ध तमाल ताल कदली औ शाल्मली थे खड़े।[3]

हरिऔध जी ने आलम्बन रूप में ही ऋतुओं का भी सजीव वर्णन किया है जिनमें ग्रीष्म, वर्षा, शरद और बसन्त ऋतुओं के वर्णन प्रमुख हैं। ग्रीष्म ऋतु वर्णन एकादश सर्ग में छन्द ५६ से ९४ तक, वर्षा वर्णन द्वादश सर्ग में छन्द २ से ७१ तक, शरद वर्णन चतुर्दश सर्ग में छन्द ७० से १४१ तक और बसन्त वर्णन षोडश सर्ग में छन्द १ से २८ तक है।

(आ) उद्दीपन रूप में— प्रियप्रवास में वियोग की प्रधानता होने के कारण कवि ने प्रकृति को उद्दीपन रूप में भी चित्रित किया है। कृष्ण वियोग में राधा की वेदना को प्रकृति और भी अधिक उद्दीप्त करती है। इसी प्रकार बसन्त आदि की शोभा भी ब्रज के लिये प्रतिकूल प्रभावकारी है। यथा–

बसन्त शोभा प्रतिकूल थी बड़ी।
वियोग मग्ना ब्रज भूमि के लिये।

---

१ प्रियप्रवास, पृ० २
२ वही तृतीय सर्ग, पृ० २३
३ वही, नवम सर्ग पृ० १००

बना रही थी उसको व्ययामयी ।
विकास पाती वन-पादपावली ।।[1]

(इ) वातावरण निर्माणरूप मे—कवि ने आने वाली परिस्थितियो की पृष्ठभूमि के रूप में भी प्रकृति का चित्रण किया है । तृतीय सग के प्रारम्भ का प्राकृतिक वातावरण ब्रजमडल मे व्याप्त हो जाने वाली निराशा एव वेदना का ही सूचक है —

समय था सुनसान निशीथ का ।
अटल भूतल मे तम-राज्य था ।
प्रलय-काल समान प्रसुप्त हो ।
प्रकृति निश्चल, नीरव, शान्त थी । [2]

(ई) सवेदनात्मक रूप मे—ब्रजजनो के दुख मे प्रकृति को भी दुखी चित्रित किया गया है । जिस प्रकार गोपियो के पास कृष्ण नही आते उसी प्रकार चम्पा के पास भ्रमर नही आता —

चम्पा तू है विकसित मुखी रूप औ रगवाली
पाई जाती सुरभि तुझमे एक सत्पुष्प सी है ।
तो भी तेरे निकट न कभी भूल है भृग आता ।
क्या है ऐसी कसर तुझ मे न्यूनता कौन सी है ।[3]

(उ) मानवीकरण रूप में– 'प्रियप्रवास' में अनेक स्थलो पर प्रकृति को मानवोचित व्यापारो से युक्त करके चित्रित किया गया है । ब्रज के गोवर्द्धन पर्वत को निम्न प्रकार से चित्रित किया गया है —

ऊचा शीश सहर्ष शैल करके था देखता व्योम को
या होता गति ही सम्भव वह था सर्वोच्चता दर्प से ।
या वार्ता यह था प्रसिद्ध करता सामोद ससार मे ।
मैं हू सुन्दर मानदण्ड ब्रज की शोभामयी भूमि का । [4]

(ऊ) आलकारिक रूप में—कवि ने प्रकृति के उपमानो को कृष्ण के रूप सौन्दर्य के प्रतिमान बनाकर चित्रित किया है । उदाहरण के लिये उनके रूप सौन्दर्य का वर्णन करते हुए उन्हें जलद तन, वृषभ जसे सजीले कन्धों से युक्त, कलभ कर

---

१ प्रिय प्रवास षोडशसग, पृ० २३९
२ वही, तृतीय सग, पृ० २१
३ वही, पचदश सग , पृ० २१९
४ वही, नवम सग प० ९८

जसी भुजाओ वाले, कम्बुकण्ठ से सुशोभित, तारामा के बीच म चन्द्र की भाँति सुसज्जित कहा गया है। [1]

उपयुक्त प्रमुख प्रकृतिचित्रण की प्रणालियो के अतिरिक्त हरिऔध जी ने दूत दूती रूप म [2] उपदेशिका के रूप म [3] रहस्यात्मक एव प्रतीकात्मक रूप म [4] दार्शनिक रूप म [5] भी प्रकृति चित्रण किया है। यद्यपि चित्रण की नलियां अधिकांशत प्राचीन और परम्परितहै किन्तु जहां जहा कवि ने मानवो चित व्यापारा और भावनाओ के माध्यम के रूप म प्रकृति का निरूपण किया है वहा नवोनता और युगानुरूपता भी दिखाई देती है। प्रियप्रवास' के प्रकृति चित्रण का एक दोष यह है कि कविने प्रकृति चित्रण के लिये ही प्रकृति चित्रण न करक, अनेक सर्गों म स्थानापूर्ति और काव्य का कलवर वद्धि के लिय भी यह प्रयत्न किया है। दूसरे अधिकाश स्थला पर कवि न प्रकृति का बाह्य स्थूल रूप ही अ कित किया है उसम कवि के सूक्ष्म निरोक्षण एव अ तरगदर्शन के परिज्ञान का परिचय नहीं मिलता। वृन्दावन का वणन करते समय कवि ने कल्पना क आधार पर ही सागौन, शाल आदि क वक्षो का वणन कर दिया है। किन्तु करील क कु जा की चर्चा तक नही की है। फिर भी प्रकृति क अनेक रूपों का विभि न प्रणालियो द्वारा कवि ने जो निरूपण किया है वह निश्चय ही महत्त्वपूण है। प्रकृति के कारण प्रियप्रवास के महाकाव्यत्व की महिमा वद्धि भी हुई है। डा० धर्मे द्र ब्रह्मचारी के शब्दो म 'नवयुग खडी बोली हिन्दी काव्य के क्षेत्र म मानवेतर प्रकृति क चित्रण और निरूपण का दृष्टि से हरिऔध अग्रदूत समझे जायगे और प्रियप्रवास की गणना नवयुग हिन्दी साहित्य के इतिहास मे एक महत्व-पूण मील स्तम्भ के रूप म होगी।" [6] प्रियप्रवास म प्रकृति के विराट रूप को चित्रित करने का जो महत्वपूण प्रयास हरिऔध जी ने किया वह छायावादी कवियो के लिये भी अधिक मागदशक सिद्ध हुआ। [7]

२ मनोवैज्ञानिक निरूपण

हरिऔध जी न प्रियप्रवाम म यथास्थान मनोवज्ञानिक ढ ग से भी मानवीय मनोवत्तिया का निरूपण किया है। प्रियप्रवास के अ तिम सर्गों म राधा की वदना

१, प्रियप्रवास पचम सग छद ५६ से ६० तक
२ वही ,षष्ठ सग पृ० ६४
३ वही नवम सग, पृ० १०१
४ वही द्वितीय सग । २०
५ वही षोडश सग, प २५५ २५६
६ डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी महाकवि हरिऔध पृ० ९७ ९८
७ डा० द्वारिका सा सक्सेना - प्रियप्रवास म काव्य सस्कृति और दशन प १५३

जसी भुजाओ वाले, कम्बुकण्ठ से सुशोभित, ताराओ में बीच म चन्द्र की भांति सुसज्जित कहा गया है। [१]

उपर्युक्त प्रमुख प्रकृतिचित्रण की प्रणालियों के अतिरिक्त हरिऔध जी ने दूत दूती रूप मे [२] उपदेशिका के रूप म [३] रहस्यात्मक एवं प्रतीकात्मक रूप म [४] दार्शनिक रूप मे [५] भी प्रकृति चित्रण किया है। यद्यपि चित्रण की शलियों अधिकाशत प्राचीन और परम्परितहैं किन्तु जहां जहां कवि ने मानवो चित व्यापारो और भावनाओ के माध्यम के रूप म प्रकृति का निरूपण किया है वहा नवीनता और युगानुरूपता भी दिखाई देती है। 'प्रियप्रवास के प्रकृति चित्रण का एक दोष यह है कि कविने प्रकृति चित्रण के लिये ही प्रकृति चित्रण न करके, अनेक सर्गों म स्थानापूर्ति और काव्य का कलवर वद्धि के लिय भी यह प्रयत्न किया है। दूसरे अधिकाँश स्थलो पर कवि न प्रकृति का बाह्य स्थूल रूप ही अकित किया है उसम कवि क सूक्ष्म निरीक्षण एव अन्तरगदर्शन के परिज्ञान का परिचय नहीं मिलता। वृन्दावन का वणन करते समय कवि ने कल्पना के आधार पर ही सागौन, शाल आदि के वक्षो का वणन कर दिया है। किन्तु करील के कुजा की चर्चा तक नही की है। फिर भी प्रकृति क अनेक रूपो का विभिन्न प्रणालियो द्वारा कवि ने जो निरूपण किया है वह निश्चय ही महत्त्वपूर्ण है। प्रकृति के कारण 'प्रियप्रवास' के महाकाव्यत्व की महिमा वद्धि भी हुई है। डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी के शब्दो म 'नवयुग-खड़ी बोली हिन्दी काव्य क क्षेत्र मे मानवतर प्रकृति क चित्रण और निरूपण का दृष्टि से हरिऔध अग्रदूत समझे जायगे, और प्रियप्रवास की गणना नवयुग हिन्दी साहित्य के इतिहास मे एक महत्व-पूर्ण मोल स्तम्भ क रूप म होगी।'' [६] प्रियप्रवास म प्रकृति के विराट रूप को चित्रित करने का जो महत्वपूर्ण प्रयास हरिऔध जी ने किया वह छायावादी कवियो के लिय भी अधिक मागदर्शक सिद्ध हुआ। [७]

२ मनोवैज्ञानिक निरूपण

हरिऔध जी ने प्रियप्रवास मे यथास्थान मनोवज्ञानिक ढग से भी मानवीय मनोवत्तियो का निरूपण किया है। प्रियप्रवास के अन्तिम सर्गों म राधा की वेदना

१, प्रियप्रवास पचम सग छन्द ५६ से ६० तक
२ वही, षष्ठ सग प० ६४
३ वही, नवम सग, पृ० १०१
४ वही द्वितीय सग प २०
५ वही षोडश सग, प २५५ २५६
६ डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी महाकवि हरिऔध, प० ९७ ९८
७ डा० द्वारिका प्रसाद सक्सेना - प्रियप्रवास म काव्य सस्कृति और दशन, प १५३

का परिष्कार होकर उसकी व्यष्टि चेतना समष्टि का रूप ग्रहण कर लेती है। राधा का शोक भाव लोकसेवा मे परिणत हो जाता है और वह व्यक्तिगत दुःख को भूलकर समाज मे दुखी जनो के उद्धार मे लग जाती है। राधा की वृत्तिया इतनी उदात्त हो जाती है कि प्रकृति के प्रत्येक उपादान म एव सृष्टि के कण-कण मे उन्हे प्रियतम का स्वरूप दिखाई देने लगता है। उसे कालिन्दी में प्रियतम के गात की स्यामता रजनी म श्याम तन रग, आदित्य म बरवदन का आप, खजना और मृगा म आखो की मुछवि, दाडिमा म दाता की झलक, गुला मे मुस्का का सी ललित सुषमा दृष्टिगोचर होती है। वे सम्पूर्ण विश्व का वस्तुओ मे अपने प्यारे कृष्ण के ही अमित रूपरग को देखती हैं —

> भू में शोभा, सुरस जल मे, वह्नि म दिव्य आभा
> मेरे प्यारे-कुवर वर सी प्रायश है दिखाती।।[1]

और इसी कारण उनके हृदय में विश्व का प्रेम जाग्रत होता है।[2] इस प्रकार राधा की मानसिक वृत्तिया और लोकाकुल भावनाओ का परिष्कार करके जिस उदात्त रूप म उन्हें अकित किया गया है, वह मनोवैज्ञानिक परिवर्तन ही कहा जायेगा। इस परिवर्तन को भी कवि ने आकस्मिक रूप से प्रस्तुत न कर, परिस्थितिया एव वातावरण के सन्दर्भ म स्वाभाविक ढग मे उपस्थित किया है।

३ रस-परिपाक और भाव चित्रण —

प्रियप्रवास' विप्रलम्भ शृगार रस प्रधान महाकाव्य है। काव्य का मुख्य विषय राधा की विरह व्यथा का ही निरूपण है। अन्य रसो म सयोग शृगार, करुण भयानक वीर रौद्र, अद्भुत रसो एव वात्सल्य भाव की सुन्दर व्यजना प्रसगानुकूल हुई है।

राधा की विरह दशा का वर्णन करते हुए कवि ने विप्रलम्भ शृगार का सुन्दर चित्र अकित किया है —

> रो रो चिन्ता-सहित दिन को राधिका थी बिताती।
> आखो को थी सजल रखती उन्मना थी दिखाती।
> शोभा वाले जलद-वपु की हो रही चातकी थी।
> उत्कण्ठा थी परम प्रबला वेदना वर्द्धिता थी।[3]

---

१ प्रियप्रवास षोडश सर्ग पृ० २५१
२ वही, वही पृ० ७ ,४
३ वही षष्ठ सर्ग पृ० ६३

राधा के अतिरिक्त अन्य गोपियों की भावनाओं के निरूपण में भी विप्रलम्भ शृंगार का चित्रण हुआ है।[१]

काव्य के आरम्भ में ही संयोग शृंगार के दृश्य कवि ने अंकित किये हैं, उदाहरण के लिये —

> बहु विनोदित थी व्रज बालिका।
> तरुणियां सब थी तृण तोड़ती।
> बलि गई बहु बार वयोवती।
> छवि विभूति विलोक व्रजेन्दु की।[२]

इसी प्रकार गोकुल ग्राम की जन मण्डली मुदित मन होकर कृष्ण की मुख छवि को इस प्रकार निरखती थी जैसे तृषित चातक घन की घटाओं को देखता है।[३] कृष्ण की बाल लीलाओं में वात्सल्य का सुन्दर वर्णन हुआ है। —

> ठुमुकते गिरते पड़ते हुए।
> जननि के कर की उँगली गहे।
> सदन में चलते जब श्याम थे।
> उमड़ता तब हर्ष-पयोधि था।[४]

वात्सल्य रस का सजीव एवं मार्मिक चित्रण उस समय हुआ हैं, जब नंद मथुरा से अकेले लौट आते है यशोदा विलाप करती हुई कहती है—

> 'प्रिय पति वह मेरा प्राण प्यारा कहां है,
> दुःख जलधि निमग्ना का सहारा कहां हैं।[५]

कृष्ण के लोकोपकारक उत्साह पूर्ण कार्यों में वीर रस का सुन्दर परिपाक हुआ है। कवि ने उन्हें युद्धवीर दयावीर, दानवीर और धर्मवीर के रूप मे चित्रित किया है। इसके अतिरिक्त कालिय नाग—दमन दावानल दमन, गोवर्द्धन धारण प्रसंग व्योमासुर आदि राक्षसों के संहार की घटनाओं में वीर रस का ही निरूपण हुआ है। कालिय नाग के दमन में रौद्ररस की भी अभिव्यक्ति हुई है। त्रयोदश सर्ग में भयानक सर्प को देखकर गोपमण्डली के भयभीत होने में भयानक रस है।[६] यशोदा

---

१ प्रियप्रवास पंचदश पृ० २२५–२६
२ वही पृ० ६
३ वही पृ० ५
४ वही पृ० ९१
५ वही पृ० ७५
६ वही पृ० १७८

के शोकाकुल हृदय की व्यजना म करुण रस की निष्पत्ति हुई हैं। कृष्ण के लौटने की आशा न देख यशोदा शोक म डूब जाती है —

> ऐसी आशा ललित लतिका होगई शुष्क प्राय ।
> सारी शोभा सु छविजनिता नित्य है नष्ट होती ।
> जो आवेगा न अब ब्रज मे श्याम मत्कान्तिशाली ।
> होगी हा के विरम वह तो सवथा छिन्न मूला ।[१]

इस प्रकार प्रियप्रवास मे वियोग शृगार की प्रधानता होने हुई भी अन्य रसा का निर्वाह अपेक्षित रूप म यथा स्थान हुआ है।

कलापक्ष

नामकरण 'प्रियप्रवास के नामकरण के सम्बन्ध मे हरिऔध जी ने लिखा है कि मैंने पहले इस ग्रथ का नाम 'व्रजागना विलाप रखा था, किन्तु कई कारणो से मुझको यह नाम बदलना पडा, जो इस ग्रथ के समग्र पढ जाने पर आप लोग स्वय अवगत होगे।[२] वस्तुत 'व्रजागना विलाप' नाम महाकाव्योचित नही है। इस नाम से ध्वनित होता है कि मानो काव्य म व्रज की किसी अगना के ही विलाप का वणन होगा। दूसरे इस शीषक से रातिकालीन काव्य विषया की व्यजना ही अधिक होती है प्रियप्रवास नाम अपेक्षाकृत व्यापक और जिज्ञासावद्धक भी है। सभवत काव्य का प्रियप्रवास नामकरण होन के कारण ही कवि को कृष्णज म से लेकर प्रवास काल तक की समस्त घटनाओं का वणन करना पडा है, जिसके कारण विप अवस्तु व्यापक बनगयी है। अस्तु वण्य विषय से सम्बन्धित एव आकषक होने के कारण प्रियप्रवास का नामकरण सवथा उपयुक्त है।

सग सयोजन प्रियप्रवास' म २७ सग हैं। यद्यपि सर्गों का सयोजन कथाविकास की दृष्टि से किया गया है किन्तु कामायनी की भाति सर्गों का नाम करण नही हुआ है। प्रथम स पचमसग तक की कथा का सम्बन्ध गोकुल से हैं, जिसके अ तगत अक्रूर कृष्ण को लेकर मथुरा चले जाते हैं और ब्रजवासी वियोग मे डूब जाते हैं। षष्ठ सग मे त्रयोदश सग तक ब्रजजनो के वियोग की दशा का मार्मिक वणन है। चतुदश से अ तिम अर्थात सप्तदश सग तक उद्धव द्वारा कृष्ण के सन्देश का प्रसारण हैं। कथानक के सूत्रो और कथा विकास की गति को सयोजित करने की दृष्टि से 'प्रियप्रवास' की सग योजना सफल रही है। प्रत्येकसर्ग में पूर्वापर अन्विति विद्यमान है।

---

१ प्रियप्रवास दशम सग, पृ० १३२

२ वही, भूमिका, पृ० २

१ १ [illegible]

भाषा शैली

[illegible] को खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य होने के नाते भाषा की [illegible] है। प्रियप्रवास जिन वर्णिक वृत्तो म लिखा गया है, [illegible] खड़ी बोली ही उपयुक्त भी थी। भाषा के इस रूप को [illegible] के हरिग्रौध जी का विशिष्ट दृष्टिकोण भी था, जिसे स्वय 'भूमिका म [illegible] हुए उन्होने लिखा है कि—" कुछ सस्कृत वृत्ता के कारण और [illegible] मेरी रुचि से इस ग्रन्थ की भाषा सस्कृत गर्भित है। क्योकि अन्य प्रातवाला [illegible] होगा तो ऐसे ही ग्रन्थो का होगा। भारतवर्ष भर म सस्कृत भाषा [illegible] है। [illegible] स्पष्ट है कि प्रिय प्रवास की भाषा के स्वरूप निर्माण के पीछे एक [illegible] विचारधारा काय रत रहा है।

वास्तव म 'प्रियप्रवास' की भाषा के दो रूप हैं। एक तो शुद्ध सस्कृतनिष्ठ रूप और दूसरा साधारण बोलचाल की भाषा का। प्रथम का उदाहरण निम्न पक्तियो म द्रष्टव्य है —

रूपोद्यान प्रफुल्ल प्राय-कलिका राकेन्दु बिम्बानना।
तन्वगी कल हासिनी सुरसिका क्रीडा-कला पुत्तली।
शोभा वारिधि की अमूल्य मणि सी लावण्य-लीला मयी।
श्रीराधा मृदु भाषिणी मृगदृगी माधुर्य की मूर्ति थी।[२]

इन पक्तियो मे दीर्घ समासमयी और सधियुक्त पद योजना के कारण भाषा का रूप सहज एव बोधगम्य नही। इस प्रकार की समास बहुला किलष्ट पदावली के प्रयोग के कारण भाषा के स्वाभाविक रूप को आघात भी पहुचा है। किन्तु ऐसे स्थल काव्य मे बहुत कम है। अधिकतर स्थलो पर भाषा का रूप सहज एव बोधगम्य है। यथा—

सब पथ कठिनाई नाथ हैं जानते ही।
अब तक न कही भी लाडिले हैं पधारे।
मधुर फल खिलाना दृश्य नाना दिखाना।
कुछ पथ दु ख मेरे बालको को न होवे।[३]

भाषा का यह रूप सरल, सहज एव बोलचाल के निकट है। भाषा को सरस एव रोचक बनाने के लिये हरिऔधजी ने सभी प्रयास किये हैं। मुहावरे एव

१ प्रियप्रवास भूमिका पृ० ९
२ वही चतुर्थ सर्ग पृ० ३६
३ वही पचम सर्ग पृ ५३

लोकोक्तियो के प्रयोग से भाषा मे पर्याप्त सरसता आई है। उदाहरण के लिये निम्नांकित पंक्तियां द्रष्टव्य हैं —

१, "हां ! हा मेरे हृदय पर यों साप क्या लोटता है।'
२ ' प्रियतम ! अब मेरा कठ म प्राण आया।'
३ 'जी हाता है विकल मुहको आ रहा है कलजा।
४, "मै आऊगा कुछ दिन गय बाल होगा न बाका।

भाषा को शक्ति प्रदान करने के लिए सुभाषितो और सूक्तियो का भी प्रयोग किया गया है। 'प्रियप्रवास' की भाषा म लोक प्रचलित उर्दू-फारसी शब्दो का भी प्रयोग हुआ है जैसे गरीबिन, जुदा, ताव आदि। ब्रजभाषा के शब्दो का भी प्रयोग कम नही है। कही-कही सस्कृत वृत्तो के उपयुक्त सगठन के लिये कवि ने शुद्ध शब्दो को तोडा मरोडा भी है। जसे 'मम' का मरम, समय का समै और 'यद्यपि' का 'यदपि' आदि। छन्द आयोजन के लिए दीर्घान्त शब्दो का ह्रस्व ह्रस्व को दीर्घ तो अनेक स्थानो पर किया गया है।

'प्रियप्रवास की शैली प्रवाह पूर्ण है। सस्कृतमयी शैली होने के कारण कही कही दुरूहता और कृत्रिमता अवश्य आ गई है। किन्तु प्रियप्रवास की शैली कही भी समास बहुला होने के कारण व्यजना शक्ति म अक्षम नही है। सम्प्रेषणीयता तो इस काव्य की शैली का विशेष गुण है। प्रियप्रवास मे काव्य शैलियो के तीन रूप मिलते हैं–सरल शैली अलकृत शैली और गुम्फित शैली। अतिम शैली म अवश्य कही कही जटिलता दिखाई देती है किन्तु शब्द शक्तियो की समुचित व्यजना भाषा के सुन्दर प्रयोगो एव मुहावरेदार पदावली आदि के कारण शैली आकर्षक एव प्रवाहपूर्ण बनी रही है।

इस प्रकार भाषागत कतिपय दोषो के होते हुए भी प्रियप्रवास भाषा शैली की दृष्टि स सफल एव सक्षम रचना है। 'प्रिय प्रवास' की भाषा का माधुर्य और लावण्य पाठक को बरबस आकर्षित कर लेता है। चित्रोपमता, व्यजना प्रसगानुकूलता, सम्प्रेषणीयता आदि 'प्रियप्रवास' की भाषा शैली की उल्लेखनीय विशेषताए हैं।

अलकार विधान

'प्रियप्रवास' म शब्दालकार एव अर्थालकार दोनो का ही प्रयोग हुआ है। अधिकतर कवि न प्राचीन अलकारो का ही प्रयोग किया है। अलकार प्रयोग

कवि कही भी प्रयत्न-साध्य दिखाई नहीं देता। इसके अतिरिक्त अलकारो के प्रयोग से का य के भाव सौन्दय म कहीं भी व्याघात उत्प न नही हुआ है। हरिऔध जी की अलकार योजना काव्य की सरसता एव स्वाभाविकता के रक्षण मे विशेष सहायक रही हैं। विशेष रूप से अनुप्रास, यमक, श्लेष, उपमा उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलकारो का ही अधिक प्रयोग हुआ है। कुछ प्रमुख अलकारो के उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं। –

अनुप्रास –

विमुग्ध– कारी मधु मजु मास था।
वसु धरा थी कमनीयता-मयी ।
विचित्रता - साथ विराजिता रही ।
वसत वासतिकता वना त म ।।[1]

यमक –

विलसित उर म जो है सदा देवता सा।
वह निज उर मे ठौर भी क्या न देता।
नित वह कलपाता है मुझे का त हो क्यो।
जिस बिन कल पाते है नही प्राण मेरे ।

यहा कलपाता' और 'कलपाते' शब्द समान होते हुए भी भि न अर्थों के द्योतक हैं।

उपमा — 'नीले फूले कमल दल सी गात की श्यामता है।'

रूपक — 'रूपोद्यान प्रफुल्ल-प्राय –कलिका राकेन्दु-बिम्बानना
त वगी कल हासिनी सुरसिका क्रीडा– कला पुत्तली।'[2]

उत्प्रेक्षा — 'क्षितिज निकट कसी लालिमा दीखती है।
वह रुधिर बहा है कौनसी कामिनी का ?
विहग विकल हो हो बोलने क्यो लगे हैं ?
सखि! सकल दिशा म आग सी क्यो लगी है ?[3]

अप हुति विपुल नीर बहाकर नेत्र से।
मिस कालि द कुमारी–प्रवाह के
परम कातर हो रह मौन ही।
रूदन भी करती व्रज की धारा।

---

१ प्रियप्रवास षोडश सग पृ० २३७
२ वही, चतुर्थ सग पृ० ३६
३ वही पृ० ४४

इसी प्रकार स्मरण, दृष्टांत, सन्देह, भ्रांतिमान, प्रतीप, स्मरण, परिकर, निदर्शना, व्यतिरेक आदि अलंकारों के प्रयोग भी 'प्रियप्रवास' में हुए हैं। अलंकारों के प्रयोग से 'प्रियप्रवास' के कलात्मक सौन्दर्य की अभिवृद्धि ही हुई है।

छन्द योजना

'प्रियप्रवास' वर्णिक छन्दों में लिखा गया अतुकान्त एवं अन्त्यानुप्रास-हीन काव्य है। 'प्रियप्रवास' में विशेषरूप से द्रुतविलंबित, मालिनी, मन्दाक्रान्ता, वसन्ततिलका, वंशस्थ और शिखरणी आदि छंदों का प्रयोग हुआ है। छन्द विधान की दृष्टि से हरिऔधजी की सबसे बड़ी सफलता यह है कि उन्होंने वर्णिक वृत्तों की दुरूहता को उपयुक्त प्रसंगों के अनुरूप प्रयुक्त करके सुगम बनाया है। संस्कृत वृत्तों में एक सफल महाकाव्य की रचना हरिऔध जी ने ही की है। छंदों का प्रथम और द्वितीय सर्गों के अतिरिक्त सर्गान्त में छन्द परिवर्तन भी हुआ है, जो महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षणों के अनुरूप है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वर्णन-कौशल प्रकृति चित्रण, रस परिपाक, भाषा शैली, अलंकार विधान, छन्द योजना आदि सभी दृष्टियों से 'प्रियप्रवास' का शिल्प समुन्नत है।

साकेत

१ प्रकृति-वर्णन

'साकेत' में गुप्त जी ने महाकाव्य की प्रकृति चित्रण परम्परा का सफल निर्वाह किया है। प्रकृति का स्वतन्त्र रूप में चित्रण कम होने हुए भी प्रसंगानुसार इनमें सजीवता एवं मार्मिकता का समावेश है।

(अ) आलम्बन रूप में—प्रथम सर्ग में अयोध्या नगरी का वर्णन करते हुए कवि ने आलम्बन रूप में प्रकृति का चित्रांकन किया है —

है बनी साकेत नगरी नागरी
और सात्त्विक भाव से सरयू भरी।
पुण्य की प्रत्यक्ष धारा बह रही,
कर्ण-कोमल कल कथा सी कह रही।[1]

---

[1] साकेत, प्रथम सर्ग, पृ० २२

चित्रकूट का वर्णन करते समय कवि ने प्रकृति के संश्लिष्ट रूप की झांकी प्रस्तुत की है —

> मूंदे अनन्त ने नयन धार वह झांकी,
> शशि खिसक गया निश्चिन्त हँसी हँस बांकी।
> द्विज चमक उठे हो गया नया उजियाला,
> हाटक-पट पहन दीख पड़ी गिरिमाला।[1]

परिगणन प्रणाली के द्वारा भी गुप्त जी ने प्रकृति चित्रण किया है। यथा —

> नाचो मयूर, नाचो कपोत के जोड़े,
> नाचो, कुरंग, तुम लो उड़ान के तोड़े।
> गाओ दिवि, चातक, चटक, भृंग भय छोड़े।[2]

गुप्त जी ने आलम्बन रूप से प्रकृति चित्रण करते हुए ग्रीष्म,[3] वर्षा, शरद,[4] हेमन्त[5] शिशिर[6] और बसंत[7] आदि षटऋतुओं का भी वर्णन किया है।

(आ) उद्दीपन रूप में—उर्मिला के विरह का निरूपण करते समय प्रकृति के उन चित्रों को भी अंकित किया गया है, जो उसकी भावनाओं को उद्दीप्त करते हैं। उर्मिला की वियोगावस्था में पक्षी भी उड़ान भूल जाते हैं।

> विहग उड़ना भी ये हो बद्ध भूल गये, अये
> यदि अब उन्हें छोड़ूँ तो और निर्दयता दये।[8]

उर्मिला की मानसिक दशा का चित्रण करते हुए कवि कहता है —

> लिखकर लोहित लेख, डूब गया है दिन अहा !
> व्योम सिन्धु सखि, देख तारक बुद्‌बुद दे रहा।[9]

---

१ साकेत, अष्टम सर्ग पृ० २६४
२, वही पृ० २२५
३ वही नवम सर्ग पृ० २८७
४ वही पृ० २९९
५ वही, पृ० ३०४
६ वही पृ० ३०९
७ वही पृ० ३१२
८ वही पृ० २७९
९ वही पृ० २८१

(इ) अलंकार रूप में—चित्रकूट में सीता के सौंदर्य निरूपण करते समय कवि ने प्रकृति का उल्लेख आलंकारिक रूप में किया है—

अंचल-पट कटि में खोस, कछोटा मारे,
सीता माता थीं आज नई ध्वज धारे।
+ +
मुख घर्म बिंदु-मय ओस भरा अम्बुज-सा,
पर कहाँ कंटकित नाल सुपुलकित भुज-सा?
+ +
तनु गौर केतकी-कुसुम-कली का गाभा,
थी अंग-सुरभि के संग तरंगित आभा।[1]

(ई) संवेदनात्मक रूप में—उर्मिला की विरह वेदना को देखकर प्रकृति को भी कवि ने संवेदनात्मक रूप में अंकित किया है। उर्मिला के दुःख में बसन्त भी दुःखी होकर क्षीण हो रहा है—

ओहो! मरा वह वराक बसंत कैसा?
ऊँचा गला रुँध गया अब अन्त जैसा।
देखो, बढ़ा ज्वर, जरा जड़ता जगी है,
लो, ऊर्ध्व साँस उसकी चलने लगी है।[2]

(उ) मानवीकरण रूप में—प्रथम सर्ग में ही कवि रात्रि का मानवीकृत रूप चित्रित करते हुए कहता है कि—

सूर्य का यद्यपि नहीं आना हुआ।
किन्तु समझो, रात का जाना हुआ।
क्योंकि उसके अंग पीले पड़ चले
रम्य रत्नाभरण ढीले पड़ चले।
+ +
वेषभूषा साज उषा आ गई,
मुख कमल पर मुस्कराहट छा गई।[3]

---

१ साकेत, अष्टम सर्ग, पृ० २२१ २२२
२ वही, नवम सर्ग, पृ० २८६
३ वही, प्रथम पृ० २४

उपयुक्त प्रमुख रूपो के अतिरिक्त कवि ने प्रतीकात्मक रूप म, दूत-दूती रूप मे, उपदेशिका रूप म तथा परम्परागत रूप म भी प्रकृति का चित्रण किया है। 'नवम सग का प्रकृति चित्रण परम्परागत एव रूढ़िवादी अधिक है, मौलिक और नवीन कम। छायावाद युग की काव्य रचना में प्रकृति चित्रण की जो सश्लिष्ट योजना एव नवीन प्रयोगो की अपेक्षा की जा सकती है उसका साकेत' म प्राय अभाव है।

२ विरह वर्णन

साकेत' की रचना का एक उद्देश्य उपेक्षित उर्मिला के जीवन की झांकी प्रस्तुत करना है। लक्ष्मण के वन गमन के पश्चात् उर्मिला का जीवन विरह का ही जीवन है। इस दृष्टि से विचार करने पर उर्मिला का विरह साकेत की सबस महत्वपूर्ण घटना है।[1]

'साकेत' म उर्मिला के विरह का आरम्भ उस अवसर पर होता है, जब उसके पति धम और कत्तव्य पालन के लिय राम और सीता के साथ वनगमन करते हैं। निरालम्ब उर्मिला अपनी मम व्यथा किससे कहती ? उस तो अपन कत्तव्य का पालन करना ही था–तभी तो उसने कहा —

> 'कहा उर्मिला न–हे मन !
> तू प्रिय पथ का विघ्न न बन।'[2]

उसके समक्ष स्वाथ और त्याग का सघष है। उसकी दयनीय दशा को देखकर सीता भी कहती है —

> 'आज भाग्य है जो मेरा
> वह भी हुआ न हा ! तेरा।'[3]

और लक्ष्मण के चले जाने पर उर्मिला की दशा बडी कातर हो जाती है —

> 'मुख–कांति पडी पीली–पीली,
> आखें अशांत नीली–नीली।
> क्या हाय ! यही वह कृष काया,
> या उसकी शेष सूक्ष्म छाया।[4]

---

१ डा० नगेन्द्र–साकेत एक अध्ययन पृ० ४२
२ साकेत चतुथ सग पृ० ११०
३ वही पृ० १२१
४ वही षष्ठ सग पृ० १६१

चित्रकूट के क्षणिक मिलन मे उर्मिला की कृशकाया देखकर लक्ष्मण निश्चय नही कर पाते कि वह उर्मिला ही है या उसकी छाया-मात्र। लक्ष्मण को इस स्थिति मे देखकर उर्मिला ही अन्तत कह उठती है —

'मेरे उपवन के हरिण, आज वनचारी,
मैं बाध न लूगी तुम्हे तजो भय भारी।'[1]

मिलन के समय वह अपने पति से कुछ भी नही कह पाती, यह भी कर्मो का दाव स्वीकार करती है। कवि के शब्दो मे —

मानस मन्दिर मे सती, पति की प्रतिमा थाप,
जलती-सी उस विरह मे, बनी आरती आप।
आखों मे प्रिय-मूर्ति थी भूले थे सब भोग,
हुआ योग से भी अधिक उसका विषम वियोग।[2]

उर्मिला के लिये अब खाने-पीने और पहनने मे कोई रस नही रह गया था। वह केवल अवधि-अर्णव को किसी प्रकार तर रही थी।[3] कभी उसे चित्रकूट मे मा की भाकी मिलती थी तो कभी उसे यह पीडा होती थी कि चित्रकूट मे—

न कुछ कह सकी अपनी
न उन्हीं की पूछ मैं सकी भय से।[4]

बाल्यकाल और प्रिय मिलन की स्मृतिया उसे भकभोर देती हैं और वह विस्मृतावस्था मे प्रलाप भी करने लग जाती है। उसकी आहो से आकाश मे फफाले पड जाते हैं, तालवन्त की हवा से उसकी विरह ज्वाला भडकती है उसके विरह विदग्ध शरीर का स्पर्श कर मलयानिल भी लू मे परिणित हो जाता है और जल की बूदें उसके विरह ताप से भाप बन जाती हैं। ऐसे अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णनो मे रीतिकालीन प्रभाव स्पष्ट है। किन्तु गुप्त जी ने उर्मिला के विरही जीवन के मार्मिक चित्र भी कम अकित नही किये हैं। उसके विरह मे प्रकृति के कण-कण की सहानुभूति है। उर्मिला सूर की गोपियों या 'पदमावत' की नागमती की भाति प्रकृति के सौन्दय को देखकर ईर्ष्यालु नहीं बनती और न ही वह प्रकृति को कोसती

---

१ साकेत, अष्टम सर्ग, पृ० २६५
२ वही, नवम सर्ग पृ० २६८-२६९
३ वही, वही, पृ० २७२
४ वही नवम सर्ग, पृ० २७३

है। प्रकृति के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हुए वह कहती है —

> 'सींचे ही बस मालिनें, कलश ले, कोई न ले कर्तरी,
> शाखी फूले फलें यथेच्छ बढ़ के, फैलें लताएं हरी।' [१]

उर्मिला औरो को अपने दुःख से दुःखी न कर नगर की अन्य दुःखनियों के दुःख मे भी समभागिनी होना चाहती है। [२] वेदना भी उसे भली लगती है।

नवम सर्ग के निम्न गीतो मे उर्मिला की उदात्त भावनाएं अभिव्यक्त हुई हैं —

१ वेदने, तू भी भली बनी। [३]
२ विरह संग अभिसार भी,
भार जहां आभार भी। [४]
३ दोनो ओर प्रेम पलता है। [५]
४ मेरी ही पृथ्वी का पानी। [६]
५ सखि, निरख नदी की धारा। [७]
६ अब जो प्रियतम को पाऊं। [८]

उर्मिला की भावनाओ का निरंतर परिष्कार होता जाता है। अंत में वह विरह के अभिशाप को भी भगवान का वरदान मानती है —

> सिर माथे तेरा यह दान,
> हे मेरे प्रेरक भगवान।
> \+ \+
> दहन दिया तो भला सहन क्या होगा तुझे अदेय।
> प्रभु की ही इच्छा पूरी हो, जिसमे सबका श्रेय।

---

१ साकेत, वही, , पृ० २७०
२ वही वही , पृ० २७६
३ वही , पृष्ठ २८०
४ वही पृ० २८०
५ वही , पृ० २८१
६ वही पृ० २९२
७ वही , पृ० ३०२
८ वही , पृ० ३३४

यही रुदन है मेरा गान
हे मेरे प्रेरक भगवान।[१]

इस प्रकार उर्मिला कवि के शब्दों मे अवधि की शिला का गुरु भार हृदय पर रखे हुए दृगो मे जलधार बहाती हुई तिल तिल समय को काट रही थी। उर्मिला का यह विरह 'साकेत' की विभूति है। विरह की वेदना मे विदग्ध होकर उर्मिला का चरित्र कचन हो जाता है। आचार्यों ने विरह की जो दस अवस्थाए (अभिलाषा, चिन्ता स्मृति, गुण-कथन उद्वेग, प्रलाप, उन्माद व्याधि, जडता और मरण) स्थिर की हैं और विरह वर्णन की जो प्रणालिया साहित्य शास्त्रियो ने उल्लिखित की हैं, उन्हे भी कवि ने यथास्थान निरूपित किया है। वर्णनो मे कही कही अतिशयोक्ति होते हुए भी साकेत का विरह वर्णन ऊहात्मक नही हुआ हैं। उर्मिला के विरह म एक गरिमा है और वह है उदात्त भावनाओ की। विरह की वेदना उर्मिला के सहानुभूति और प्रेम का भाव जाग्रत करती है। उसे उन्मादिनी और ईर्ष्यालु नही बनाती। साकेत के विरह वर्णन की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि डा० नगेन्द्र के शब्दो मे उर्मिला के विरह मे मानवता की पुकार है।[२]

रस परिपाक और भाव चित्रण

'साकेत' के प्रधान रस के सम्बन्ध मे विद्वानो के दो मत हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार साकेत म न करुण रस प्रधान है न विप्रलम्भ शृंगार ही। किन्तु विप्रलभ ही 'उत्तर रामचरित' की भाति इस काव्य का अंगीरस है।[३] डा० प्रतिपालसिंह के अनुसार इस काव्य म शृंगार तथा करुण रस प्रधान है।[४] डा० श्यामनन्दन किशोर के अनुसार साकेत म शृंगार और करुण रस की प्रधानता है।'[५]

वास्तव मे 'साकेत' म विप्रलम्भ शृंगार ही प्रधान है। काव्य में करुण रस की प्रधानता सम्भवत समीक्षकों ने साकेत' के नवम सर्ग की निम्न पक्तिया के आधार पर स्वीकार की है —

---

१ साकेत, पृ० ३४०

२ डा० नगेन्द्र–साकेत एक अध्ययन, पृ० ६०

३ डा० कमला कांत पाठक, मैथिलीशरण गुप्त–व्यक्ति और काव्य पृ० ४९५ से उद्धृत

४ डा० प्रतिपालसिंह–बीसवी शताब्दी के महाकाव्य, पृ० १४४–

५ डा० श्यामनन्दन किशोर–आधुनिक हिन्दी महाकाव्यो का शिल्प विधान पृ० ५७

'करुणे, क्यों रोती है ? उत्तर में और अधिक तू रोई—
मेरी विभूति है जो, उसको 'भवभूति' क्यों कहे कोई ?'[1]

विप्रलंभ शृंगार के अतिरिक्त साकेत में वीर, रौद्र, करुण हास्य, अद्भुत शांत आदि रसों की भी यथास्थान निष्पत्ति हुई है ।

विप्रलम्भ शृंगार

इधर उर्मिला मुग्ध गिरी कहकर 'हाय' धड़ाम गिरी ।
लक्ष्मण ने दृग मूंद लिए सबने दो दो बूंद दिये ।

+ + +

'बहन ! बहन !'' कहकर सीता, करने लगी व्यजन सीता ।
आज भाग्य जो है मेरा वह भी हुआ न हा ! तेरा ।'[2]

करुण रस

दशरथ मरण के अवसर पर काव्य में साकेत का परिवार शोक में डूब जाता है —

'अर्द्धांग रानियां शोकहता मूर्च्छिता हुई या अर्द्ध मृता ?

+ + +

'हा स्वामी , कह ऊंचे रव से, दहके सुमन्त्र मानो दव से ।

+ + +

उर्मिला सभी सुध बुध त्यागे, जा गिरी कैकेयी के आगे ।[3]

वीर रस

वीर रस का सुन्दर परिपाक राम रावण युद्ध के अवसर पर हुआ है । इसके अतिरिक्त द्वादश सर्ग में उर्मिला के ओजस्वी स्वरों में तथा शत्रुघ्न की प्रतिज्ञा में भी वीर रस के सुन्दर चित्र मिलते हैं —

'घनन घनन बाज उठी गरज तत्क्षण रण भेरी ।
कांप उठा आकाश, चौंक कर जगती जागी,
छिपी क्षितिज में कहीं, सभय निद्रा उठ भागी ।

+ + +

---

१ साकेत, नवम सर्ग पृ० २६७
२ वही चतुर्थ सर्ग पृ० १२०–२१
३ वही, अष्टम सर्ग, पृ० १७८–१७९

घरर भरर खुल गये अरर बहु रवस्फुटो से,
क्षणिक रूद्ध थे तदपि विकट भर उर-पुटो से,
बाधे थे जन पाच पाच आयुध मन भाय,
पचानन गिरी-गुहा छोड ज्यो बाहर आये।
+ + +
चचल जल-थल बलाध्यक्ष निज दल सजते थे
भनभन घनघन समर वाद्य बहु विध बाजते थे।[1]

उपयु क्त रसो के अतिरिक्त 'साकेत' के प्रथम सग मे लक्ष्मण उर्मिला के प्रेमपूर्ण वार्तालाप म सयोग शृ गार, अष्टम सग म जावालि मुनि और राम के वार्तालाप म व्यग्य और विकृत वाणी द्वारा हास्य की व्यजना तथा सप्तम सग मे शा तरस की व्यजना हुई है। गुप्त जी की भक्ति भावना के माध्यम से भक्तिरस और कौशल्या के कथनो म वात्सल्य रस की भी अभिव्य ित हुई है।

रस-परिपाक के साथ काव्य मे अनेक ऐसे मार्मिक एव भावपूर्ण स्थलो की योजना भी हुई है, जिनके द्वारा कवि के भाव चित्रण-कौशल का पूण परिचय मिलता है। एसे प्रसगो मे दशरथ मरण, चित्रकूट म राम भरत मिलन, उर्मिला की विरह-वेदना साकेतवासियो की रण सज्जा और काव्यात मे लक्ष्मण उर्मिला पु िमिलन आदि उल्लेखनीय हैं।

कलापक्ष

नामकरण–'साकेत की रचना उर्मिला के चरित्रोत्थान के लिए हुई है। सवप्रथम कवि ने इस काव्य का नाम 'उर्मिला काव्य' अथवा 'उर्मिला उत्ताप' रखा था।[2] किन्तु कुछ समय पश्चात् गुप्त जी ने इस महाकाव्य का नाम साकेत रखा। कवि उर्मिला के साथ अपने इष्टदेव राम के महत्व को भी गौण बनाना नही चाहता। साकेत के नामकरण का आधार काव्य की कथावस्तु ए ा घटनाए हैं। काव्य की सम्पूर्ण घटनाओ का के द्र अयोध्या को ही बनाया गया हैं। लेकिन इनके साथ साथ उर्मिला का सम्पूर्ण विरही जीवन भी साकेत म घटित हुआ है। राम कथा के अ य प्रसगो को उर्मिला के मुख से ही सूयवशी राजाओ की यशगाथा, सीता और राम की बाल क्रीडाए धनुष यज्ञ एव विवाहादि का वर्णन करा दिया हैं। इसके आगे की कथाए, जसे–पचवटी में खरदूषण से युद्ध आदि शत्रुघ्न के मुख से कहलवाई हैं। लक्ष्मण आदि से सम्ब ित सभी प्रसग हनुमान कहते हैं और राम रावण युद्ध

१ साकेत, द्वादश सग, पृ० ४६३–६४,६५
२ डा० द्वारिकाप्रसाद–साकेत मे काव्य, सस्कृति और दशन, पृ० ५१

सभा पुष्पक विमान पर राम के पुनरागमन आदि वशिष्ट जी योग शक्ति के द्वारा साकेत मे खडे ही साकेतवासियो को देखा देते हैं। इस प्रकार काव्य की सम्पूर्ण घटनाओ का सम्बन्ध साकेत से है। केवल चित्रकूट की कुछ घटनाए अयोध्या स बाहर घटित हुई हैं जिनके सम्बन्ध म कवि ने स्वय कहा है कि—

> 'सम्प्रति साकेत समाज वही है सारा
> सवत्र हमारे राम स्वदेश हमारा।'[1]

सग योजना

सम्पूण काव्य १२ सर्गों म विभक्त है। सर्गों का सयोजन इस प्रकार किया गया है कि काव्य की कथावस्तु समान रूप से विभाजित होकर विकसित हो। केवल नवम सग के अतिरिक्त सभी सग आकार की दृष्टि से प्राय समान हैं। साकेत के सग सयोजन की विशेषता यह है कि उनके द्वारा सम्पूण काव्य की कथावस्तु समन्वित और सुव्यवस्थित है। एक सग की समाप्ति पर कथा जिस सीमा पर पहुँचती है आगामी सग के प्रारम्भ म वह उस सीमा से सुसम्बद्ध होती हुई आगे बढती है। नवम सग के अतिरिक्त सग क्रम की दृष्टि से साकेत की कथा वस्तु म कहीं भी कोई व्याघात नही आया है। रामचरित मानस' 'कामायनी एकलव्य आदि महाकाव्यो की भाति साकेत के सर्गों का नामकरण भी नही हुआ है वरन् सर्गों की केवल सख्या ही दी गई है।

भाषा शैली

'साकेत' की रचना शुद्ध खडी बोली मे हुई है। कवि ने भाषा के स्वरूप को आद्यात परिष्कृत एव तत्सम बनाये रखने का पूण प्रयास किया है। वास्तव मे भाषा विषयक आदर्शों की प्रेरणा गुप्त जी को अपने काव्य गुरु आचाय महावीर प्रसाद द्विवेदी से मिलती रही थी। साकेत मे भाषा पर कवि का पूण अधिकार दिखाई देता है। यद्यपि सस्कृत के शब्दो का भी प्रचुरता से प्रयोग हुआ है तो भी भाषा क्लिष्ट और कृत्रिम नही हुई। साकेत' की भाषा का सबसे बडा गुण उसकी सप्रेषणीयता है। साधारणतया भाषा का रूप सरल एव प्रसाद गुण सम न्वित है। साकेत' की भाषा मे जो विशेष गुण मिलते हैं, वे इस प्रकार हैं —

भाषा म भावो क अनुरूप ही शब्दो का प्रयोग हुआ है। गभीर भावो की अभिव्यक्ति के समय कवि ने भाषा म समस्त पदो की योजना म साथक शब्दो के

---

[1] साकेत अष्टम सग पृ० २२०

प्रयोग का आश्रय लिया है और सामान्य स्थलो पर भाषा का रूप अपेक्षाकृत स्वाभाविक एव गतिशील है। भाषा का प्रथम रूप चित्रकूट सभा मे भरत के कथनो मे एव प्रथम सर्ग मे अयोध्या नगरी के वर्णन मे दूसरा रूप देखा जा सकता है। शब्दो की उचित योजना के द्वारा कवि ने भाषा की चित्रोपमता, लाक्षणिकता, दृश्य विधान एव प्रतीकात्मकता का भी परिचय दिया है।

भाषा मे सजीवता उत्पन्न करने के लिए लोकोक्तियो एव मुहावरो का भी प्रयोग हुआ है। उदाहरण के लिए 'लगे इस मेरे मुह मे आग', [1] 'कौन छेड़े ये काले साप'[2], 'हाय! छाती फट रही है हाय!' [3] 'करके मीन मेख सब ओर' [4] 'किसने सोता हुआ यहा का साप जगाया' [5] आदि द्रष्टव्य हैं।

साकेत' की भाषा मे प्रान्तीय एव ब्रजभाषा के चलते शब्दो का भी प्रयोग हुआ है। जसे–धाड धडाम, हिडकार, पेट, लेखना, हेरना आदि। सस्कृत के कुछ अप्रचलित शब्दो का भी प्रयोग गुप्त जी ने यत्र-तत्र किया है। जसे–अरुन्तुद, आज्य जिष्णु, लाक्षमण्य आदि। कुछ शब्दो का निर्माण गुप्त जी ने स्वय भी किया है किन्तु वे व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध प्रतीत होते हैं। जसे–पात्रता, औदास्य राहित्य, उत्कर्णता आदि। जुदा' और 'खुदा' जसे फारसी शब्द भी आगये हैं–

मूर्तिमय विवरण समेत जुदे जुदे।
ऐतिहासिक वृत्त जिनमे है खुदे-खुदे।[6]

लम्बे-लम्बे समास वाले पदो का भी प्रयोग गुप्त जी ने किया है, जो सस्कृत भाषा की दृष्टि से तो उचित है, किन्तु हिन्दी भाषा की प्रकृति के अनुकूल नही है। जसे–

'नव भावाम्बु तरग-भूमि म।[7]
अथवा,
'कवि की मानस-कोष विभूति विहारिणी।[8]

---

१ साकेत, द्वितीय सर्ग, पृ० ४६
२ वही वही पृ० ६१
३ वही सप्तम सर्ग, पृ० २०३
४ वही, नवम सर्ग पृ० ३०७
५ वही द्वादश सर्ग पृ० ६३
६ वही, प्रथम सर्ग पृ० २१
७ वही, दशम सर्ग पृ० ३७४
८ वही, पचम सर्ग, पृ० १४४

अथवा

"तनु लता-सफलता स्वादु आज ही आया।"[१]

गुप्त जी की भाषा का एक दोष उनका तुकान्तता के प्रति व्यामोह है। तुकबंदी के लिए गुप्त जी ने शब्दों का ऐसा चयन किया है कि कविता के प्रवाह में आघात उत्पन्न हो गया है। जैसे–

अयि दयामयि देवी सुखद, सारदे
इधर भी निज वरद-पाणि पसारदे।[२]

अथवा

तम फूट पड़ा नही अटा,
यह ब्रह्माड फटा फटा फटा।[3]

अथवा

अहा! समाई नहा अयोध्या फूली फूली,
तब तो उसमें भीड़ अमाई ऊली ऊली।[४]

वसे गुप्त जी ने शब्द शक्तिया, रीतियो, वृत्तियो एव माधुर्य, ओज प्रसाद आदि गुणो के उचित प्रयोग द्वारा भाषा म सजीवता उत्पन्न करने का पूर्ण प्रयास किया है।

साकेतकार ने काव्य की शैली को सुसज्जित करने मे अनेक उपायो को अपनाया है। डा० नगेन्द्र के अनुसार साकेत की शैली और उसके प्रसाधन इस प्रकार हैं–वस्तु-वर्णन कथा वर्णन म वाक सयम, कथावर्णन के उपकरण इतिवृत्ति रोचकता एव उत्सुकता, नाटकीय विषमता घटनाओ की सकारणता और पूर्वापर सम्बन्ध अभिव्यक्ति कौशल, प्रसग गर्भत्व आदि।[५]

वस्तुत जिन गुणो का ऊपर उल्लेख किया गया है उनके कारण 'साकेत' की शैली म एक आकर्षण अवश्य दिखाई देता है। आधुनिक युग के नवीनतम काव्यो की तुलना म यद्यपि 'साकेत' की शैली प्रभावकारी और उत्कृष्ट नही दिखाई देती किन्तु जिस युग म साकेत लिखा गया था उस दृष्टि से 'साकेत' की शैली सर्वोत्कृष्ट है। शैली के स्वरूप को गुप्त जी ने नाटक और गीत-तत्वो से सज्जित

---

१ साकेत अष्टम सर्ग पृष्ठ २२३
२ वही प्रथम सर्ग पृष्ठ १७
३ वही, पंचम सर्ग पृष्ठ ३४४
४ वही द्वादश सर्ग पृष्ठ ९३
५ डा० नगेन्द्र–साकेत एक अध्ययन पृ० १४४ से १५६

किया है। प्रसाद गुण एव कोमलकात पदावली के कारण शली मे लालित्य भी है। भावपूर्ण स्थला एव उन मार्मिक प्रसगा में जहा सवादा की आयोजना करते हैं (जसे--ककेयी-मथरा सवाद चित्रकूट सभा म ककयी भरत और राम के सवाद एव द्वादश सग मे उर्मिला के आह्वान पर साकेतवासिया की सनिक साज सज्जा के वरणन मे) शैली का रूप शक्तिमत्ता एव प्राणवत्ता पूर्ण हो गया है।

साकेत की सवाद-योजना के कारण भी शली म गत्यात्मकता, प्रवाह एव गभीरता आई है। वास्तव मे जिन कलात्मक उपकरणा के द्वारा शली परिपक्व गभीरतापूर्ण एव सजीव बनती है गुप्त जी न उन सभो का 'साकेत म प्रयोग किया है। शैली की दृष्टि स विचार करते हुए यह उल्लखनीम है कि—' साकेत की शली का महत्व इस रूप म देखा जायेगा कि वह अपने युग की सर्वोत्कृष्ट शली है। पुनरुत्थान युग की शलीगत देन है साकेत का रचना विधान।" [1]

अलकार–विधान

'साकेत म शब्दालकार एव अर्थालकार दोनो का ही प्रयोग हुआ हैं। साकेत' की अलकार योजना के द्वारा काव्य के कलापक्ष के सौदय की अभिवृद्धि हुई है। साकेतकार ने अलकारों का प्रयोग प्रयत्न सा॰य होकर नहीं किया है सावेत' मे अलकार कलापक्ष की पुष्टता के अतिरिक्त भाषा म सजीवता उत्पन्न करन और भावाभिव्यजना मे भी सहायक हुए हैं। का॰य शास्त्रीय अलकारो के अनेक उदाहरणो मे स कुछ प्रमुख निम्नाकित प्रकार हैं —

अनुप्रास—भंकि झिल मिल भोल रहे ये दीप गगन के
खिल खिल, हिल हिल खेल रहे ये दीप गगन के। [2]

रूपक—सखि, नील नभस्सर मे उतरा, यह हस अहा! तरता तरता,
अब तारक मौक्तिक शेष नही, निकला जिनको चरता-चरता,
अपने हिमबिन्दु बचे तब भी चलता उनको धरता धरता
गड जाय न कटक भूतल के कर डाल रहा डरता-डरता। [3]

श्लेष—उस रुदन्ती विरहिणी के रुदन रस के लेप स
और पाकर ताप उसके प्रिय विरह विक्षेप स,

---

१ डा० कमलाकात पाठक—मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ० ५१५
२ साकेत, द्वादश सर्ग, पृष्ठ ४६२
३ वही, नवम सग पृष्ठ २८६

वर्ण-वर्ण सदैव जिनके हों विभूषण कर्ण के,
क्या न बनते कविजनों के ताम्रपत्र सुवर्ण के ? [१]

मुद्रा—करुणे, क्यों रोती है ? उत्तर में और अधिक तू रोई—
'मेरी विभूति है जो उसको भवभूति' क्या कहे कोई ?' [२]

यमक—मंगराज पुराणनाम्रों के धुले,
रंग देकर नीर में जो हैं धुले। [३]

उपमा—निरख सखी, ये खंजन आये
फेरे उन मेरे रंजन ने नयन इधर मन भाये। [४]

उत्प्रेक्षा—मेरी दुर्बलता क्या, दिखा रही तू मेरी तुझे दर्पण में ?
देख निरख मुख मेरा, वह तो धुंधला हुआ स्वयं ही क्षण में ? [५]

भ्रांति—नाक का मोती अधर की कांति से बीज दाड़िम का समझ कर-भ्रांति से।
देखकर सहसा हुआ शुक मौन है, सोचता है अन्य शुक यह कौन है ? [६]

अतिशयोक्ति—ठहर अरी, इस हृदय में लगी विरह की आग,
तालवृंत से और भी धधक उठेगी जाग। [७]

अपह्नुति—पाकर विशाल कच भार एड़ियां धंसती,
तब नखज्योति मिष मृदुल अंगुलियां हंसती। [८]

विरोधाभास—हो गया निर्गुण सगुण-साकार है,
ले लिया अखिलेश ने अवतार है। [९]

मानवीकरण—अरुण संध्या को आगे ठेल देखने को कुछ नूतन खेल,
सजे विधु की बेंदी से भाल यामिनी आ पहुंची तत्काल। [१०]

---

१ साकेत पृष्ठ २६९
२ वही, नवम सर्ग, पृ० २६७
३ वही प्रथम सर्ग पृ० २१
४ वही, नवम सर्ग, पृ० २९९
५ वही वही , पृ० ३०६
६ वही प्रथम सर्ग, पृ० २९
७ वही नवम सर्ग पृ० २९०
८ वही, अष्टम सर्ग, पृ० २२१
९ वही प्रथम सर्ग, पृ० १८
१० वही, द्वितीय सर्ग, पृ० २१

व्यतिरेक—स्वर्ग की तुलना उचित ही है यहा
किन्तु सुर सरिता कहा, सरयू कहाँ ?
वह मरा को मात्र पार उतारती,
यह यही से जीवता को तारती।[1]

उपयुक्त अलकारा के अतिरिक्त दृष्टात, निदर्शना, विभावना, विषम अर्थान्तरन्यास, समासोक्ति आदि का भी 'साकेत' म प्रयोग हुआ हैं।

छन्द योजना

महाकाव्य मे शास्त्रीय परम्परानुसार 'साकेत के प्रत्येक सग म एक प्रमुख छन्द का प्रयोग हुआ है और सग के अन्त मे छन्दपरिवतन भी किया गया है काव्य के नवम सग म विभिन्न छन्दा का प्रयोग किया गया है। 'साकेत' के प्रथम सग म विभिन्न छन्दा का प्रयोग किया है। 'साकेत' के प्रथम सग म पीयूप वष, द्वितीय म शृगार, तृतीय म सुमेरु चतुथ मे हाकलि पचम म त्रिलोकी, पष्ठ म पादापुलक नामक छन्दो का प्रयोग हुआ है। सप्तम सग मे एक नवीन छन्द का प्रयोग हुआ है जा पीयूप वष के ही समान है। अष्टम सग म 'राधिका छन्द को अपनाया है। नवम सग म एक ओर हिन्दी के दोहा, सोरठा कवित्त सवया जम छन्दा का प्रयोग हुआ है तो दूसरी ओर सस्कृत के मन्दाक्राता द्रुतविलबित शादूल विक्रीडत, वसत तिलका, शिखरिणी मालिनी आदि वर्णिक छन्दा का भी प्रयोग हुआ है। साकेत क दशम सग मे वियोगिनी एकादश सग म वीर तथा द्वादश सग मे रोला नामक छन्द का प्रयोग हुआ हैं। निष्कष रूप म कहा जा सकता है कि कवि का छन्दो के प्रयोग पर पूर्ण अधिकार है। साकेत' म छन्दा का प्रयोग लय और गीत के पूर्णत अनुरूप है।

इस प्रकार साकेत का शिल्प वर्णन-कौशल चित्रण पद्धति भाषा-शली विपयक आयोजन छद विधान, सगबद्धता आदि सभी दृष्टिया से प्रौढ, पुष्ट एव महत्वपूर्ण है।

कामायनी

प्रकृति वर्णन

कामायनी छायावाद की एक सर्वोत्तम कृति है। छायावाद की एक प्रमुख विशेपता प्रकृति निरूपण है। प्रसाद जी प्रकृति के चतुर चितेरे कलाकार हैं।

---

१ साकेत प्रथम सग, पृ० ३१

यद्यपि कुसुमन काल (छायावाद) के कवियों में पंत को ही प्रकृति का कवि कहा जाता है किन्तु पंत प्रकृति के कोमल और सुकुमार रूपों के ही कलाकार हैं प्रसाद जी प्रकृति के भव्य और भयंकर निर्माणकारी और विनाशकारी सूक्ष्म और विराट् सभी क्षेत्रों के कवि हैं। वस्तुतः 'प्रकृति' प्रसाद साहित्य की निजी संस्कृति है लगता है जैसे उनका सारा साहित्य इसी प्रकृति संस्कृति में ढलकर निकला हो।[1] कामायनी में प्रकृति चित्रण की काव्य प्रचलित सभी प्रणालियों के अतिरिक्त कवि ने कितने ही नए रूपों में भी प्रकृति चित्रण किया है जो उनके मौलिक प्रकृति दर्शन प्रदर्शन का परिचायक हैं।

(अ) आलम्बन रूप में–आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण की दो प्रणालियाँ हैं–बिम्ब ग्रहण प्रणाली तथा नाम परिगणन प्रणाली। प्रसाद जी ने 'कामायनी' में प्रथम को ही अधिकांशतः ग्रहण किया है। आलंबन रूप में उन्होंने प्रकृति के विकराल और रम्य दोनों रूप अंकित किये हैं। काव्य के प्रथम सर्ग में प्रकृति का भयंकर रूप अंकित हुआ है। यथा—

हा हा कार हुआ क्रंदनमय
कठिन कुलिश होते थे चूर
हुए दिगंत बधिर, भीषण रव
बार बार होता था क्रूर
\+ \+
धसती धरा, धधकती ज्वाला
ज्वाला मुखियों के निश्वास,
और संकुचित क्रमशः उसके
अवयव का होता था ह्रास।[2]

प्रकृति के सुरम्य रूप का चित्रण भी हुआ है—

वह विवर्ण मुख त्रस्त प्रकृति का
आज लगा हसने फिर से
वर्षा बीती, हुआ सृष्टि में
शरद विकास नये सिर से
नव कोमल आलोक बिखरता
हिम संसृति पर भर अनुराग

---

१ डा० केदारनाथ सुतीन्द्र कामायनी दिग्दर्शन, पृ० १८४
२ कामायनी, चिंता सर्ग, पृ० १३,१४

सित सरोज पर क्रीडा करता
जसे मधुमय पिंग पराग ।[1]

(आ) उद्दीपन रूप मे—

सध्या नील सरोरुह से जो श्याम पराग बिखरते थे,
शल–घाटिया के अचल को वे धीरे से भरते थे,
तृण गुल्मो से रोमाचित नग सुनते उस दुख की गाथा
श्रद्धा की सूनी साँसो से मिलकर जो स्वर भरते थे।[2]

(इ) आलकारिक रूप मे—

नील परिधान बीच सुकुमार, खुल रहा मृदुल अधखुला अग,
खिला हो ज्यो बिजली का फूल, मघ–वन बीच गुलाबी रग ।[3]

(ई) मानवीयकरण रूप मे—

उषा सुनहले तीर बरसती, जय-लक्ष्मी-सी उदित हुई
उधर पराजित काल– रात्रि भी, जल म अ तर्निहित हुई।[4]

(उ) उपदेश रूप मे

जीवन तेरा क्षुद्र अ ग है, व्यक्त नील घनमाला मे,
सौदामिनी-सधि-सा सु दर, क्षण भर रहा उजाला म ।[5]

उपयु क्त प्रमुख रूपो के अतिरिक्त प्रसाद जी न प्रकृति को सवेदनात्मक, प्रतीकात्मक, दार्शनिक, रहस्यात्मक एव पृष्ठभूमि के रूप मे भी चित्रित किया है। कामायनी' मे रीतिकालीन रूढ़ि के अनुसार कवि ने न तो षटऋतु एव बारहमासा के रूप मे प्रकृति का चित्रण किया है और न दूत-दूती के रूप मे। आशा सग के अन्त मे केवल एक स्थल पर कवि ने अवश्य रजनी को सबोधित करत हुए कहा है कि मेरी प्रम भावना, वेदना या भ्राति तुझ कभी मिल जाय तो या ही मत लौटाना क्योकि तुझे भी तेरा भाग अवश्य मिलेगा।[6]

---

१ कामायनी आशा सग, पृ० २३
२ वही, स्वप्न सग पृ० १७६
३ वही श्रद्धा सग प० ४६
४ वह आशा सग पृ० २३
५ वही, चिता सग पृ० १६
६ वही, आशा सग, पृ० ४० ४१

सारांश यह है कि 'कामायनी' में प्रकृति का केवल सौन्दर्य निरूपण ही नहीं हुआ है, वरन् प्रस्तुत और अप्रस्तुत विधान द्वारा कवि ने मानवीय चेतना और अनुभूति को भी प्रकृति के उपादान प्रतीकों द्वारा व्यंजित किया है। काव्य का प्रारम्भ प्रकृति वर्णन से हुआ और उसका अन्त भी प्रकृति की गोद में ही होता है। काव्य के चरम उद्देश्य अर्थात् आनन्द एवं समरसता की प्राप्ति भी प्रकृति के पुनीत प्रांगण कैलाश में ही हुई है।

२ सौन्दर्य चित्रण

प्रसाद जी ने प्रकृति, पुरुष, पदार्थ और आत्मा सभी के सौन्दर्य को अनुभूति और चेतना की दृष्टि से देखा है। इसलिए 'कामायनी' में स्थूल और सूक्ष्म दोनों ही दृष्टियों से सौन्दर्य का चित्रण हुआ है।

(अ) मानवीय रूप सौन्दर्य—जहाँ तक व्यक्ति सौन्दर्य का प्रश्न है प्रसाद जी ने श्रद्धा और मनु के व्यक्तित्व चित्रण में बाह्य सौन्दर्य दृष्टि का परिचय दिया है। श्रद्धा के शारीरिक संगठन का वर्णन करते हुए प्रसाद ने उसे हृदय की बाह्य अनुकृति कहा है। उसके मुखमंडल की शोभा इस प्रकार दिखाई देती है जैसे सायंकाल के समय नीलम के पहाड़ की चोटी पर वासर रजनी में एक लघु दग्ध लपटों वाला ज्वालामुखी हो। श्रद्धा के लम्बे घुंघराले बालों का मुख पर गिरना ऐसा प्रतीत होता है जैसे नीचे मेघ शावक चन्द्रमा की सुधा का पान करने आये हों उसकी मुस्कान बालारुण की उज्ज्वल रश्मि के समान विश्राम करती हुई प्रतीत होती है। ऐसी श्रद्धा नक्षत्र की आशा किरण और कोमल हृदय कवि की कांति के समान कल्पना की दिव्य लघु लहरी बनकर मानस की हलचल को शांत कर रही थी।[1] प्रसाद जी ने श्रद्धा के सौन्दर्य निरूपण में आध्यात्मिक एवं अपार्थिव सौन्दर्यदृष्टि का परिचय दिया है। श्रद्धा का सौन्दर्य निरूपण हिन्दी साहित्य में अद्वितीय है। इसी प्रकार मनु को भी पराक्रमी तेजस्वी बलिष्ठ रूप में अंकित किया है, जो आदि मानव के प्रजय रूप का परिचायक है।[2] मनु पुत्र मानव को भी कवि ने तेजस्वी किशोर के रूप में चित्रित किया है।[3]

(आ) प्राकृतिक रूप-सौन्दर्य—प्रकृति के रूप सौन्दर्य को अंकित करते हुए प्रसाद जी ने मनोहर रम्य और संश्लिष्ट भाव चित्र खींचे हैं। चिन्ता सर्ग में

---

१ कामायनी श्रद्धा सर्ग पृ० ४६–५०
२ वही चिन्ता सर्ग पृ० ४
३ वही, आनन्द सर्ग पृ० २३३

सागर के प्रलयकालीन रूप का कुछ ही छदों मे ऐसा रूप प्रसाद जी ने अ कित किया है, जो प्रकृति के विकराल स्वरूप को स्पष्ट करता है। सिन्धु मे लहरिया व्याल के समान फन फलाये चली जा रही हैं विलास के आवेग के समान जल सघात बढने लगता है। यह कच्छप सी धरणी ऊम चूम होकर विचलित हो जाती है। उदधि मर्यादाहीन होकर धरा को डुबा देता है। करका क्रन्दन होता है और सम्पूण सृष्टि म पचभूत के ताडव नृत्य का दृश्य दिखाई देता है।[1]

इसी प्रकार का सश्लिष्ट चित्र आशा सग' मे हिमालय पवत का कवि ने अ कित किया है। उसे विश्व कल्पना के समान उन्मत सुख सीतलता एव सतोष का निधान द्रवती हुई अचला का अवलम्बन और मणिरत्न-निधान कहा है। उसके चरणो मे नीरवता की विमल विभूति है भरनो की धारा मे जीवन की अनुभूतिया बिखर रही हैं और पवत की शिला-सधियो से टकरा कर पवन गुन्जार कर रहा है जो ऐसा प्रतीत होता है माना चारण-कवियो की भाति हिमालय की दुर्भेद्य अचल दृढता का प्रचार कर रहा है। सायकालीन घनमालाओ के बीच की गगनचुम्बी श्रेणिया ऐसी दिखाई देती हैं कि मानो वे पवतराज हिमालय की रानिया हैं, जो तुषार किरीट धारण किये बादलो की रग बिरगी छीट के वस्त्र ओढे हैं।[2]

(ङ) भाव सौन्दर्य—भाव सौदय का अ कन करने मे भी कवि सिद्धहस्त है। इस दृष्टि स 'लज्जा' का रूप विधान अ यतम है। लज्जा नारी के अ तस के आकषण विकषण से युक्त प्रवृत्तिमूलक भाव है। उसका भाव चित्र अ कित करत हुए कवि ने कहा है कि—लज्जा के कारण नारी म स्पश की हिचक और दखते समय पलका पर आखें झुक जाती हैं। परिहास की गू ज अधरो तक सहम कर रुक जाती है। सकेत की भाषा बनकर वह हृदय की परवशता के समान नारी के सौन्दर्य पर नियन्त्रण करती है। लज्जा को कवि न रति की प्रतिकृति कहा है। नारी के चचल और किशोर सौन्दय की सरक्षिका कहा है। वह चेतना का उज्ज्वल वरदान है। लज्जा का एक सु दर भावचित्र द्रष्टव्य है—

> लाली बन सरल कपोलो म आखों म अ जन सी लगती
> कु चित अलका सी घु घराली, मन की मरोर बनकर जगती।
> चचल किशोर सु दरता की मैं करती रहती रखवाली
> मैं वह हल्की-सी मसलन हूँ, जो बनती कानो की लाली।[3]

---

१ कामायनी, पृ० १४–१५
२ वही, आशा सग पृ० २९ ३०
३ वही, लज्जा सग, पृ० १०३

लज्जा के अतिरिक्त 'चिन्ता सर्ग' में चिन्ता का और 'वासना सर्ग' में वासना का चित्रांकन करते समय कवि ने भाव सौन्दर्य चित्रण का अद्भुत कौशल प्रदर्शित किया है। इन सूक्ष्म अमूर्त भावों को सुन्दर प्रतीकों के द्वारा मानवीय मूर्त रूपों में प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार प्रकृति, प्रकृति और भाव-सौन्दर्य का मध्य चित्र विधान कवि की सूक्ष्म सौन्दर्य चेतना अनुभूति एवं अन्तर्दृष्टि का परिचायक है।

३ मनोवैज्ञानिक निरूपण

कामायनी की कथावस्तु में रूपक तत्व का प्रतिष्ठा होने के कारण काव्य के नायक मनु मन के, श्रद्धा हृदय की तथा इडा बुद्धि का प्रतीक है। इस काव्य में पात्रों की मनोवृत्तियों के रूप में चित्रित करने तथा कथानक को तदनुरूप संयोजित करने में 'कामायनी' में मनस्तत्व का विवेचन स्वाभाविक रूप से हो गया है। कामायनी के मनोवैज्ञानिक निरूपण को निम्न रूपों में उल्लिखित किया जा सकता है —

१ सर्ग क्रम में

२, पात्रों के मानसिक वृत्तियों के रूप में चित्रण में

३ घटनात्मक नियोजन में

'कामायनी' के सम्पूर्ण सर्गों का नामकरण मानसिक वृत्तियों के आधार पर हुआ है। काव्य में उनका क्रम भी इसी प्रकार आयोजित है जिस प्रकार मानव के मन में वृत्तियों का जन्म होता है। प्रथम सर्ग में प्रलयकाल की भयंकर प्रतिक्रियाओं के कारण मनु का मन चिंतित है। अतएव इस सर्ग का नाम चिन्ता रखा गया है। 'चिन्ता' के पश्चात हृदय में 'आशा' नामक भाव का उदय होता है। आशा' से जीवन में प्रेरणा जाग्रत होती है और मन हृदय के प्रतीक रूप श्रद्धा को कोमल वृत्ति के रूप में पाकर 'काम और वासना' के अधीन होता है हृदय की प्रतीक श्रद्धा वासनाजन्य उच्छृंखलता के कारण लज्जा' का अनुभव करती है किन्तु वासना से उत्तेजित मनु का मन वासना तृप्ति के लिये कर्म जगत में प्रवेश करता है। मनु ईर्ष्यावश श्रद्धा को छोड़ बुद्धि (इडा) के पाश में बंध जाते हैं। इडा' के पश्चात स्वप्न सर्ग का आयोजन है जिसमें श्रद्धा आपदाग्रस्त मनु की दशा को देखती है। यह हृदय के उस भाव का लक्षण है जिसमें वह मन का साथ पूरी तरह नहीं छोड़ पाता। बुद्धि के विरोध के फलस्वरूप संघर्ष उत्पन्न होता है। संघर्ष में परास्त होने पर मनु के मन में 'निर्वेद भाव उत्पन्न होता है। श्रद्धा के पुन सम्पर्क से मनु का व्याकुल मन आनन्दलोक के दर्शन हेतु

न्यग्र होता है, इच्छा, ज्ञान ग्रौर क्रिया के त्रिपुर रहस्य को समझ लेने पर मनु को 'ग्रान द' की प्राप्ति होती है। सर्गों के नामकरण ग्रौर उपयु क्त सयोजन क्रम से स्पष्ट है कि कवि ने मनोवैज्ञानिक ग्राधार पर ही सर्गों के शीर्षक ग्रौर क्रम का ग्रायोजन किया है।

'कामायनी' के मुख्य पात्र हैं—मनु, श्रद्धा ग्रौर इडा। कामायनी' के मनु मन के प्रतीक हैं। भारतीय विचारधारा के ग्रनुसार मन को भौतिक रूप प्रदान किया गया है। उसे चचल दृढ एव शक्तिशाली इन्द्रिय के रूप मे भी माना गया है। वह सम्पूर्ण इन्द्रियो का राजा है जिसका काय सकल्प-विकल्प का मनन करना है। भारतीय विचारानुसार शुद्ध, शात एव नियत्रित मन ही ग्रान द की प्राप्ति कर सकता है। पाश्चात्य विचारधारा के ग्रनुसार मनु को एक ठोस द्रव्य माना गया है जो सम्पूर्ण सचेतन प्राणियो मे विद्यमान रहता है। फ्रायड के ग्रनुसार मन के चेतन व ग्रचेतन दो रूप है। इनम ग्रचेतन मन को ही ग्रधिक महत्त्व दिया गया है। क्योकि उसके द्वारा काम नामक प्रवत्ति का सचालन होता है। सक्षेप में मन शरीर का सचालक नियामक एव प्रेरक है। प्रसाद जी न 'कामायनी मे मन के प्रतीक मनु क चरित्र को जिस रूप म विकसित किया है। उसम उपयु क्त दानो दृष्टिकोण का किसी न किसी रूप म समावेश होते हुए भी मन के सम्ब ध म उनकी निजी धारणा रही है, जो उनके साहित्य म (कामायनी के ग्रतिरिक्त भी) व्यक्त हुई है।

भारतीय विचारधारानुसार प्रसाद जी ने मन ग्रर्थात मनु के हृदय ग्रौर बुद्धि (श्रद्धा ग्रौर इडा) से सचालित माना है। मात्र बुद्धि का ग्रनुसरण करके मन भटक सकता ह। हृदय का सबल पाकर ही वह वास्तविक ग्रान द की उपलब्धि कर सकता है। ग्रत मनु सम्पूर्ण सकल्प-विकल्प से मुक्त होन के लिये श्रद्धा का सबल चाहते हैं।

> यह क्या ? श्रद्धे बस तू ले चल उन चरणों तक, दे निज सबल
> सब पाप-पुण्य जिसमे जल-जल, पावन बन जाते हैं निमल ॥[1]

श्रद्धा हृदय की प्रतीक है।[2] इस दृष्टि से मन (मनु) पर उसका प्रभाव स्पष्ट ही है। वह मानसिक वत्तियो के सचालन म महत्वपूर्ण योगदान देती है। इडा को कवि ने बुद्धि का प्रतीक माना है।[3] कामायनी' की इडा के चरित्र

---

१ कामायनी दशन सग पृ २५४
२ हृदय की ग्रनुकृति बाह्य उदार' —कामायनी श्रद्धा सग, पृ० ४६
३ 'बिखरी ग्रलकें ज्यो तक जाल —कामायनी, इडा सग, पृ० १३८

मे तर्क–वितर्क और ज्ञान विज्ञान से सम्बन्धित भौतिक उपलब्धियाँ आदि जो भी मस्तिष्क या बुद्धि के गुण हैं, विद्यमान है। मनु पुत्र कुमार नव मानव का और किलात आकुली तामसी वृत्तियो के प्रतीक हैं। इनके अतिरिक्त लज्जा और काम जैसी मनोवैज्ञानिक वृत्तियो को अशरीरी पात्रो के रूप मे अंकित किया है। भारतीय ग्रंथो मे काम का विभिन्न रूपो मे उल्लेख मिलता है। यजुर्वेद म काम को एकदेवता के रूप म, उपनिषदो म आध्यात्मिक शक्ति वात्सायन के कामसूत्र मे जीवन की अनिवार्य प्रवृत्ति, पुराणो मे वासना के प्रतीक एव शैवागमो म सौन्दर्य एव प्रेम के प्रतीक रूप मे उल्लिखित किया गया है। फ्रायड ने काम को 'लिबिडो' कहा है, जो वासना का ही प्रतीक नही वरन् व्यापक प्रेम का भी प्रतीक है। संक्षेप म काम के तीन रूप मिलते हैं —

१ आध्यात्मिक
२ सृजनात्मक
३ वासनात्मक

प्रसाद जी ने कामायनी मे मुख्य रूप से सृजनात्मक काम का ही वर्णन किया है —

'काम मगल से मंडित श्रेय सर्ग, इच्छा का है परिणाम
तिरस्कृत कर उसको तुम भूल, बनाते हो असफल भव धाम।[1]

प्रसाद जी की काम सम्बन्धी विचारधारा अत्यन्त व्यापक है, क्योकि यहा काम का स्वरूप अशरीरी एव धर्म अविरुद्ध है।

इस प्रकार कामायनी म मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी सुन्दर चित्रण हुआ है। प्रसाद जी ने बडे कौशल से काव्य और मनोविज्ञान का समाहार किया है। प्रस्तुत काव्य म मनोविज्ञान का इतना सूक्ष्म एव गूढ विवेचन है कि डा० नगेन्द्र प्रभृति विद्वान कामायनी' को मनोविज्ञान का ट्रीटाइज कहते हैं।[2] इस उक्ति म 'कामायनी' की गहन दार्शनिकता और प्रगाढ मनस्तत्व की ही व्यंजना होती है। वस्तुत कामायनी म–'मनोविज्ञान मे काव्य और काव्य मे मनोविज्ञान एक साथ दिखाई देते हैं। मानस (मन) का ऐसा विश्लेषण और काव्यात्मक निरूपण हिन्दी म शायद शताब्दियों क बाद हुआ है।[3]

---

१ कामायनी, श्रद्धा सर्ग, पृ० ५३
२ डा० नगेन्द्र साकेत-एक अध्ययन पृ० १५६
३ श्री नन्ददुलारे वाजपेयी–आधुनिक साहित्य पृ० ११३

४ रसपरिपाक और भाव-चित्रण

भारतीय साहित्य-शास्त्रियो के अनुसार महाकाव्य म सभी रसा की निष्पत्ति होनी चाहिये और ग गार वीर एव शात रस म से किसी एक की प्रमुखता होनी चाहिये । क्योकि महाकाव्य का एक लक्ष्य रस-सिद्धि भी होनी है । कामायनीकार ने जीवन के व्यापक धरातल को लेकर समस्याओ का समाहार करते हुए जहा भाव-निरूपण किया है वही रस निष्पत्ति हुई है । 'कामायनी' म श्र गार और शात दोनो रसो की प्रधानता दिखाई देती है । वास्तव म काव्य की प्रस्तुत कथा म श्र गार रस की एव अप्रस्तुत कथा मे शात रस की प्रधानता है । इनके अतिरिक्त करुण, रौद्र भयानक, वीर वात्सल्य आदि रसो को भी काव्य म योजना हुई है ।

सयोग शृगार

श गार रस के सयोग और वियोग दोनो रूप कामायनी मे मिलते हैं । श्रद्धा और मनु के मिलन प्रसग म शृ गार-रस के सयोग पक्ष को सुन्दर व्यजना हुई है । यथा—

> झुक चली सव्रीड वह सुकुमारता के भार,
> लद गई पाकर पुरुष का नममय उपचार ।
>
> \+ \+
>
> मधुर व्रीडा मिश्र चिन्ता साथ ले उल्लास
> हृदय का आनन्द कूजन लगा करने रास ।
> गिर रही पलकें, झुकी थी नासिका की नोक,
> भ्रू-लता थी नाक तक चढती रही बे टोक ।
> स्पर्श करने लगी लज्जा ललित कर्ण कपोल
> खिला पुलक कदब सा था भरा गदगद बोल ।[1]

वियोग शृगार

श्रद्धा को त्यागकर मनु जब चले जाते हैं, तो उनके हृदय की आकुलता के निरूपण म विप्रलम्भ का वर्णन हुआ है । वह कहती है कि –

> वन बालाओ के निकु ज सब भरे वेणु के मधु-स्वर से
> लौट चुके थे आने वाले सुन पुकार अपने घर से,

---

१ कामायनी, वासना सर्ग, पृष्ठ ९४

किंतु न आया वह परदेसी युग छिप गया प्रतीक्षा में,
रजनी की भीगी पलकों से तुहिन-बिंदु कण-कण बरसे।[1]

वीर रस

'संघर्ष सर्ग' में सारस्वत प्रदेश की प्रजा के विद्रोह कर देने पर किलात और आकुलि नामक पुरोहितों से युद्ध करते समय मनु के वीररस भाव की व्यंजना हुई है —

यों कह मनु ने अपना भीषण अस्त्र सम्हाला,
देव 'आग' ने उगली त्यों ही अपनी ज्वाला।
छूट चले नाराच धनुष से तीक्ष्ण नुकीले,
टूट रहे नभ धूम केतु अति नीले-पीले।
+ +
तो फिर आओ देखो कैसे होती है बलि,
रण यह,यज्ञ पुरोहित ! ओ किलात औ आकुलि।
और धराशायी थे असुर पुरोहित उस क्षण
इडा अभी कहती जाती थी 'बस रोको रण।[2]

वीभत्स रस

'कर्म सर्ग' में मनु द्वारा श्रद्धापालित पशु की यज्ञ में बलि देने के अवसर पर वीभत्स का दृश्य मिलता है —

यज्ञ समाप्त हो चुका तो भी, धधक रही थी ज्वाला
दारुण दृश्य ! रुधिर के छींटे, अस्थि खंड की माला।
वेदी की निर्मम प्रसन्नता, पशु की कातर वाणी।
मिलकर वातावरण बना था, कोई कुत्सित प्राणी।[3]

भयानक रस

स्वप्न सर्ग की इन पंक्तियों में भयानक रस द्रष्टव्य है—
आलिंगन फिर भय का क्रंदन ! वसुधा जैसे कांप उठी।
वह अतिचारी, दुर्बल नारी परित्राण पथ नाप उठी।

---

१ वही स्वप्न सर्ग पृ० १७८
२ कामायनी, संघर्ष सर्ग पृष्ठ २००-२०१
३ वही , कर्म सर्ग, प० ११६

अंतरिक्ष म हुआ रुद्र हुकार भयानक हलचल थी,
अरे आत्मजा प्रजा । पाप की परिभाषा बन शाप उठी ॥[1]

करुण रस

कामायनी के चिन्ता सग के प्रारम्भ मे देव जाति के विनाश को देखकर मनु की दशा बडी करुणाजनक है —

निकल रही थी मम वेदना
करुणा विकल कहानी सी ।[2]

चिन्ताग्रस्त मनु सोच रहे थे कि—

चि ता करता हूँ मैं जितनी, उस अतीत की उस सुख की ।
उतनी ही अनन्त मे बनती जाती रेखाए दुख की ।[3]

वात्सल्य रस

'ईर्ष्या सग म गभवती श्रद्धा भविष्य के सु दर स्वप्नो मे उलझी हुई मातृत्व की प्रतिमूर्ति बनकर वात्सल्यपूर्ण भावो की व्यजना करती है—

मैं उसके लिए बिछाऊ गी, फूलो के रस का मृदुल फेन ।
झूले पर उसे झुलाऊ गी, दुलरा कर लू गी वदन चूम ।
मेरी छाती से लिपटा इस, घाटी मे लेगा सहज घूम ।[4]

शान्त रस

शात रस का स्थायी भाव निर्वेद है । प्रसाद ने काव्य का बारहवा सग (निर्वेद) इसी के लिए लिखा है । निर्वेद का सु दर उदाहरण मनु के निम्न कथन मे द्रष्टव्य है—

विश्व कि जिसमे दुख की आधी पीडा की लहरी उठती,
जिसम जीवन मरण बना था बुदबुद की माया नचती ।
वही शात उज्जवल मगल सा दिखता था विश्वास भरा,
वर्षा के कदम्ब कानन सा सृष्टि विभव हो उठा हरा ।[5]

कामायनी स्वप्न सग, पृ० १८५
२ वही , चिन्ता सग, पृ० ४
३ वही वही , पृ० ६
४ वही, ईर्ष्या सग पृ० १५२
५ वही, निर्वेद सग, पृ० २२३

उपर्युक्त रसों के अतिरिक्त 'कामायनी' के 'संघर्ष' सर्ग में रौद्र रस का, रहस्य' और 'आनन्द' सर्ग के त्रिपुर मिलन और नटराज शिव के तांडव नर्तन में अद्भुत रस का भी आभास मिलता है। हास्य रस का 'कामायनी' में अभाव ही है। इसका कारण कवि का चिन्तनशील एवं गंभीर स्वभाव है। इस प्रकार 'कामायनी' में रस गांभीर्य एवं उन्नत भाव सृष्टि का परिचय स्थान स्थान पर मिलता है। 'कामायनी' की रस निष्पत्ति के लिए अनेक स्थलों पर तो विभाव अनुभाव संचारी भावों आदि रस अवयवों की कवि ने आवश्यकता ही अनुभव नहीं की है। प्रसाद जी जैसे रससिद्ध कवि हैं कि अनेक स्थानों पर मात्र आलम्बन, उद्दीपन आदि विभावों अथवा संचारी भावों की सम्यक् योजना से ही रस व्यंजना हो गयी है। उदाहरण के लिए 'लज्जा' नामक संचारी भाव का कवि ने इतने मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया कि वह अकेला ही रसोद्रेक में समर्थ दिखाई देता है। कामायनी की रस निष्पत्ति इतनी प्रखर और पुष्ट है कि कवि की अनुभूतियों से पाठक का सहज में ही साधारणीकरण हो जाता है।

कलापक्ष

नामकरण– कामायनी' का नामकरण पात्रगत आधार पर हुआ है। कामायनी महाकाव्य की नायिका श्रद्धा है। श्रद्धा काम की पुत्री होने के कारण कामायनी कही गई है। जैसा कि प्रसाद जी ने स्वयं लिखा है– कामगोत्रजा श्रद्धा नामर्षिका श्रद्धा कामगोत्र की बालिका है इसलिए श्रद्धा नाम के साथ उसे कामायनी भी कहा जाता है।[1] यद्यपि काव्य के नायक मनु हैं किन्तु उनके चरित्र को सामान्य कोटि के एक मानव के रूप में ही चित्रित किया गया है। श्रद्धा का चरित्र बहुत ऊंचा है वह मनु का ही नहीं वरन् सम्पूर्ण मानव जाति की प्रेरणा का स्रोत है अस्तु श्रद्धा के चरित्र की प्रमुखता और महत्ता की दृष्टि से काव्य का नामकरण 'कामायनी' सर्वथा उपयुक्त है। इसके अतिरिक्त काव्य में सर्वत्र श्रद्धा शब्द का प्रयोग होते हुए भी कवि ने 'कामायनी' नामकरण इसलिए भी किया कि कामायनी शब्द से श्रद्धा की अपेक्षा अधिक कमनीयता रमणीयता और नवीनता का परिचय मिलता है। इस सम्बन्ध में प्रसाद जी के पुत्र श्री रत्नशंकर ने लिखा है कि– कुछ लोग कहते हैं कि प्रसाद जी ने इस काव्य का नाम पहले श्रद्धा रखा था ऐसा नहीं। पाण्डुलिपि के मुखपृष्ठ पर कामायनी (श्रद्धा) अंकित है। श्रद्धा के नाना स्वरूपों में उसका काम गोत्रिय स्वरूप ही कवि को अभिहित रहा इसलिए यह गोत्रवाची नाम कामायनी विहित हुआ है सृष्टिमूल काम के वंतिमचार समग्रता का निदर्शन पर्यालोचन जैसा कि काव्य में हुआ है कामायनी द्वारा ही शक्ति हो सकता था।

---

[1] कामायनी आमुख पृ० ७

ग्रन काम काव्य' का नाम कामायनी' कवि की दृष्टि मे उसकी कल्पना के साथ ही साकार हुआ, कि तु 'कामायनी की तत्त्व नवित श्रद्धा है अतएव कोष्ठक म श्रद्धा लिखा गया।''[1] इस प्रकार काव्य का नामकरण पात्र एव काव्य की मूल भावना पर आधृत होने के कारण सवथा उपयुक्त है।

२ सग सयोजन

'कामायनी' की सम्पूण कथा १५ सर्गों म विभक्त है। प्रत्येक सग का नाम करण मनोवनानिक प्रवत्तियो के आधार पर किया गया है जस चि ता, आशा, श्रद्धा काम वासना लज्जा, कम, ईर्ष्या इडा स्वप्न निर्वेद, दशन, रहस्य और ग्रान द। 'कामायनी के सग-क्रम की एक मह वपूण विशेषता यह है कि उनके द्वारा कथानक के रूपक तत्त्व का विकास बडी सफलता स हुआ है। प्रत्यक सग का मनोवनानिक आधार होते हुए भी कवि ने उनकी पूवापर अन्विति को बनाय रखा है। कथा का जो सूत्र एक सग मे समाप्त होता है उसी का विकसित रूप आगामी सर्गों म मिलता है। प्रवत्तिमूलक विकास की दृष्टि से तो सर्गों का क्रम और भी अधिक उपयुक्त दिखाई दता है। सर्गों के नामकरण और सयोजन के प्रति 'कामायनी' का रचयिता कितना सजग रहा है इसका अनुमान इस बात से ही लगाया जा सकता है कि कवि ने सर्गों के नाम निश्चित करने के उपरा त भी उनम परिवतन किया था। उदाहरण के लिए 'कामायनी के कम 'सघष और 'निर्वेद' सर्गों के पूव नाम थे क्रमश 'यन', 'युद्ध' और स्वीकृति' (स धि)।[2] इस परिवतन मे निश्चय ही कवि का कुछ उददेश्य रहा होगा। जसे यन शब्द कम काण्ड का बोधक है और उसका एक सीमित अथ ही लगाया जा सकता है अत कवि ने यन के स्थान पर व्यापक भाव वाले 'कम श द का प्रयोग किया। इसी प्रकार 'युद्ध' शब्द वाह्य व्यापार का ही परिचायक है जब कि 'सघष शब्द के द्वारा अ तर बाह्य दोनो प्रकार के सघर्षों की व्यजना होती है। युद्ध की परिणति सधि म होती है इसलिये सभवत कवि ने पहले 'स्वीकृति या सन्धि' नाम रखा था किन्तु काला तर मे उसने सोचा होगा कि सघष' की समाप्ति के पश्चात मानव जिस शाति भाव से पूरित होता है उसके आधार पर 'स धि की अपेक्षा निर्वेद नाम ही उपयुक्त है। 'कामायनी' की सग सख्या काव्यशास्त्रीय दृष्टि स भी उचित है।

---

१ जनभारती, वष १२, अ क १, स० २०२१, पृ० ५

२ जनभारती (त्रमासिक) वष १२ अ क १ मे श्री रत्नाकर प्रसाद का लेख 'कामायनी म सर्गों का नामपरिवतन, पृष्ठ ४

३ भाषा-शैली

'कामायनी' में भाषा और शैली का उदात्त रूप मिलता है। 'कामायनी' की भाषा सम्पूर्ण काव्य गुणों से अलंकृत और शास्त्रीय दृष्टि से सम्पन्न है। उसमें गम्भीर भावों और अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने की पूर्ण शक्ति और सामर्थ्य है। 'कामायनी' में प्रसाद जी की भाषा का प्रौढ़तम रूप मिलता है। प्रसादजी ने शब्दों के सुन्दर चयन, अलंकारों के उचित प्रयोग, व्यंजनाशक्ति की सार्थक अभिव्यक्ति और शैली की रमणीयता आदि के द्वारा भाषा को सब प्रकार से सुन्दर और सशक्त किया है। प्रसाद जी की भाषा की कतिपय विशेषताएँ इस प्रकार हैं —

कामायनी की भाषा का मुख्य गुण उसकी लाक्षणिकता है। इसके अतिरिक्त ध्वन्यात्मकता, चित्रमयता, गीतात्मकता, आलंकारिता आदि अन्य विशेषताएँ भी विद्यमान हैं। 'कामायनी' की भाषा में मूर्त भावों के अमूर्त चित्र अंकित करने की अपूर्व क्षमता है, उदाहरण के लिये रजनी को इन्द्रजाल जननी, चिन्ता के लिए अभाव की चपल बालिका आदि विशेषण पुण प्रयोग भाषा सौन्दर्य की अभिवृद्धि करते हैं। छायावादी भाषा-पद्धति के अनुकूल प्रतीकात्मक प्रयोग भाषा की व्यंजना शक्ति की अभिवृद्धि में सहायक हुए हैं। यथा—

> मधुमय वसंत जीवन वन के, वह अंतरिक्ष की लहरों में।
> कब आये थे तुम चुपके से रजनी के पिछले पहरों में।
> तुम्हें देखकर आते यों मतवाली कोयल बोली थी।
> उस नीरवता में अलसाई कलियों ने आँखें खोली थी।'

का भी प्रयोग किया गया है, जसे गल, बयार दाग पिछला पहर परछाई आदि। कुछ शब्दों को मधुर बनाने के लिये उनके रूप को भी विकृत किया है जो तीर का तारे मुस्कान का मुसक्यान, आलस्य का आलस और निबल का निबल आदि। लोकोक्तियाँ और मुहावरों के प्रयोग द्वारा भाषा मे सजीवता उत्पन्न करने का कामायनीकार ने प्रयास किया है जन-जीवन का दाव हार बठना बीत गया खटका मच जावगी फिर अधेर उसके रोए खडे हुए छूट गया हाथ से थाह तीर आदि।

कामायनी म विदेशी शब्द प्रयोग का एकदम अभाव है। केवल आशा सग म 'जीवन की छाती के दाग नामक पक्ति म फा सी के दाग' शब्द का प्रयोग हुआ है। कहीं कहीं कामायनी की भाषा क्लिष्ट भी हो गई है। ऐसा वहीं हुआ है जहा कवि को गूढ भावों की रहस्यमय अभिव्यक्ति के लिए नवीन और अपरिचित प्रतीकों का प्रयोग करना पडा है। कामायनी की भाषा का विशिष्ट गुण उसकी भाव-सम्प्रेषण शक्ति है। सम्पूर्ण काव्य म कहीं भी भाषा शिथिल नहीं हुई है। 'कामायनी की भाषा प्रसादजी की ही नहीं सम्पूर्ण छायावाद की भाषा शक्ति एव सामर्थ्य का प्रतिनिधित्व करती है।

भाषा की भाति कामायनी की शैली म छायावादी काव्य शैली की प्राय सभी विशेषताए विद्यमान हैं। प्रसाद जी की शैली म अलकारों का बाहुल्य है किन्तु उनके कारण शैली कहीं क्लिष्ट नहीं हुई है क्योंकि लाक्षणिक प्रयोगों के कारण शैली म सजीवता आई है और मधुर शब्दों ने उसम चमत्कार उत्पन्न किया है। कहीं कहीं कामायनी म गुम्फित लम्बे लम्बे एव सयुक्त वाक्यों का भी प्रयोग है जसे लज्जा' सग की ५० पक्तिया मिलकर एक वाक्य का निर्माण करती हैं। इन स्थलों पर अर्थबोध म बाधा उपस्थित होती है। प्रसाद जी ने प्रसगों के अनुरूप ही विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया है। चिन्ता सग मे यदि गुम्फन शैली है तो लज्जा सग म अलकृत, और इडा सग मे शैली का रूप प्रगीतात्मक हो गया है। 'कामायनी की शैली की उल्लेखनीय विशेषता उसकी अभिव्यजना प्रणाली है कामायनीकार सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुभूतियों को सरलता के साथ अभिव्यक्त कर सका है। इसी म कामायनी की भाषा-शैली की सफलता का रहस्य निहित है। निष्कर्ष रूप म कहा जा सकता है कि कामायनी की भाषा-शैली प्रसाद जी की स्वय की शैली है। उन्होंने किसी परम्परागत काव्य शैली या पद्धति का अनुसरण न करके अपनी प्रतिभा और सामर्थ्य के बल पर शैली को भव्य उदात्त एव गरिमापूर्ण बनाया है। डा० प्रेमशकर के शब्दों म 'भाषा-शैली सभी म कामायनी एक मौलिकता म अनुप्राणित है। उसकी काव्यात्मक शैली म छायावाद की समस्त विभूतियाँ को कवि ने एक महान कलाकार की भाति

समन्वित कर दिया। वह उस युग का प्रतीक बन गई, जो कला और जीवन के सामजस्य मे प्रयत्नशील रहा है।'[1]

४ अलकार योजना

कामायनी' की भाषा-शैली के प्रसाधनो म अलकारो का महत्वपूर्ण स्थान है। कामायनी म विभिन्न प्रकार के शब्दार्थालकारो का प्रयोग हुआ है। कामायनीकार ने अलकारो का प्रयोग केवल बाह्य सौन्दर्य की वृद्धि के लिये नही किया, अपितु अपनी गूढ सौदर्यानुभूतियो को अभिव्यक्ति देने के लिए ही किया है। कुछ प्रमुख अलकारो के उदाहरण निम्न प्रकार हैं —

अनुप्रास

> क्षितिज-भाल का कुकुम मिटता मलिन कालिमा के कर से,
> कोकिल की काकली वृथा ही अब कलियो पर मडराती।[2]

यमक

> तुम फूल उठोगी लतिका सी कम्पित कर सुख-सौरभ तरग,
> मे सुरभि खोजता भटकू गा, वन वन बन कस्तूरी-कुरग।[3]

श्लेष

> इन्द्रनील मणि महा चषक था, सोमरहित उल्टा लटका,
> आज पवन मृदु सास ले रहा जैसे बीत गया खटका।[4]

उपमा

> उषा सुनहले तीर बरसती
> जय लक्ष्मी सी उदित हुई।[5]

उत्प्रेक्षा

> बार बार उस भीषण रव से, कपती धरती देख विशेष
> मानो नील व्योम उतरा हो आलिगन के हेतु अशेष।[6]

---

१ डा० प्रेमशकर-प्रसाद का काव्य, पृ० ४०५
२ कामायनी, स्वप्न सर्ग, पृ० १७५
३ वही, ईर्ष्या सर्ग पृ० १५३
४ वही, आशासर्ग पृ० २४
५ वही वही पृ० २३
६ वही, चिता सर्ग पृ० १४

रूपक

सध्या घनमाला सी सु दर ओढे रग बिरगी छीट,
गगन चुम्बिनी शल श्रे णिया, पहन हुए तुषार किरीट ।[1]

विरोधाभास

लाली बन सरल कपोलाम, आखो म अ जन सी लगती [2]

अथवा

जागत था सौन्दय यद्यपि वह, सोती थी सुकुमारी ।[3]

मानवी करण

मृत्यु अरी चिर निद्रे ! तेरा अक हिमानी सा शीतल [4]

अथवा

वह विवरण मुख त्रस्त प्रकृति का, आज लगा हमने फिर स ।[5]

उपयुक्त अलकारो के अतिरिक्त सदेह दृष्टात विषम उल्लेख वीप्सा आदि अनेक अलकारों का प्रयोग काव्य मे हुआ है। मूत्त के लिये अमूत्त और अमूत्त के लिये मूत्त उपमान भी कामायनीकार ने प्रस्तुत किये हैं। 'कामायनी' के अलकारो म कही भी कृत्रिमता नही है। वे रमणीय सरस और काव्य के कला पक्ष की अभिवृद्धि म सहायक हैं।

५ छन्द–विधान

कामायनी' म प्राचीन और नवीन दोनो प्रकार के छ दो का प्रयोग हुआ है। प्राचीन छन्दो म ताटक, पादाकुलक, रूपमाला सार रोला आदि छन्दो का प्रयोग हुआ है। 'कामायनी' का सबसे प्रमुख छन्द ताटक है। 'चिन्ता' 'आशा' स्वप्न और निर्वेद सर्गों म इसी का प्रयोग हुआ है। श्रद्धा' सर्ग मे शृ गार

---

१ कामायनी आशा सर्ग, पृ० ३०
२ वही , लज्जा सर्ग, पृ० १०३
३ वही कर्म सर्ग, पृ० १२५
४ वही , चिंता सर्ग पृ० १८
५ वही आशा सर्ग, पृ० २३

तथा काम और लज्जा' सग म पादाकुलक छन्द का प्रयोग हुआ है। 'वासना' मे रूपमाला, सघर्ष' म रोला तथा कम म सार छ द का प्रयोग है। कुछ सर्गों म मिश्रित छन्दो का भी प्रयोग है। उदाहरण के लिये ईर्ष्या' सर्ग के प्रथम चरण म पादाकुलक और द्वितीय चरण मे पद्धरि छ द का प्रयोग हुआ है। पादाकुलक और पद्धरि दोनो म सोलह मात्राए होती हैं और दोनो के सयोग म प्रसाद जी ने मिश्रित छ द का निर्माण किया है। जसे

> पल भर की उस चचलता ने खो दिया हृदय का स्वाधिकार।
> श्रद्धा की अब वह मधुर निशा फलाती निष्फल अधकार।[1]

आनन्द सर्ग म प्रसाद जी के आगु काव्य का भाति एक सगीतात्मक छन्द का प्रयोग हुआ है। इसम कुल मिलाकर २८ मात्राए होती हैं जिनम १४-१४ के अ तर का विराम दिया जाता है। जसे

> चलता था धीरे धीरे वह एक यात्रियो का दल
> सरिता के रम्य पुलिन म गिरि पथ स ले निज सम्बल।[2]

'कामायनी' के छ द विधान म प्रसाद जी ने सामान्यत प्राचीन मधुर छन्दो को प्रयोग म लिया है। प्रसाद जी ने प्रत्यक सग के अ त म छन्द परिवतन करने की शास्त्रीय पद्धति का अनुपालन नही किया है। उनके छन्द विधान की विशेषता यह है कि वह भाषा भाव एव विषयानुरूप है। आलकारिक भाषा के कारण अनेक स्थलो पर छदो म सगीतात्मकता के गुण का भी समावेश हो गया है।

निष्कर्ष

निष्कष रूप म शिल्प तत्त्व की दृष्टि स कामायनी सम्पूर्ण हिंदी काव्य-धारा की श्रेष्ठतम काव्यकृति है। कलात्मक उपलब्धियो की दृष्टि से उसे हिन्दी की या भारतीय काव्य कृतियो म ही नहा वरन् विश्व-काव्य की श्रेष्ठ कृतियो के साथ रखकर देखा परखा जा सकता है। सर्ग-सयोजन वस्तु-वणन, भाव-चित्रण सौदय निरूपण, प्रकृति-चित्रण भाषा-शैली की रूप सज्जा, मनस्तत्त्व की प्रतिष्ठा अलकार योजना छद विधान आदि सभी दृष्टियो से कामायनी के शिल्प तत्त्व का सुन्दर सगठन हुआ है। कलात्मक काव्य सौष्ठव की व्यापकता

---

१ कामायनी ईर्ष्या सर्ग पृ० १३९

२ वही आनन्द सर्ग, पृ० २७७

ग्रौर महत्ता के कारण 'कामायनी' महाकाव्या के इतिहास म एक सवथा नवीन एव स्मरणीय ग्रध्याय जोडती हुई विश्वकाव्य की सीमा म प्रवेश करती है।[1]

'कामायनी' का कला शिल्प इतना उन्नत ग्रौर उदात्त है कि वह कभी भी धूमिल नहीं हो सकता। प्रसाद जी ने काव्य की विस्तृत पट भूमि पर उस विराट सधी तूलिका से ग्रपने (कामायनी क) चित्र ग्राके है जिनके रग न कभी धुधले हो सकते है ग्रौर न कभी रेखाए ही मिट सकती हैं।[2]

ग्रस्तु कहा जा सकता है कि कामायनी के समान काव्य-गौरव ग्रौर कलात्मक गरिमा लेकर रची जाने वाली काव्य-कृति की हिन्दी म ग्राज भी प्रतीक्षा है।

कुरुक्षेत्र

प्रकृति-चित्रण

कुरुक्षेत्र' एक विचार प्रधान महाकाव्य है। प्रस्तुत काव्य का समस्त भावात्मक सौन्दय उसकी विचार कल्पना को ही लेकर है। काव्य म प्रकृति चित्रण किसी विशेष पद्धति या प्रणाली को ग्राधार बनाकर नहीं हुग्रा है। न ही प्रकृतिनिरूपण कवि का ध्येय ही है। प्रसगवश काव्य में प्रकृति के कतिपय चित्र ग्रवश्य ग्रागये हैं जिनम कवि के प्रकृति-चित्रण-कौशल का साकेतिक परिचय ग्रवश्य मिल जाता है। काव्य म चित्रित प्रकृति का स्वरूप भीषण ग्रौर शक्तिमय ही है। द्वितीय सग म भीष्म पितामह युधिष्ठिर से झभा (तूफान) के प्रलयकारी रूप का वणन निम्नाकित शब्दो म करते हैं —

'ग्रौ' युधिष्ठिर से कहा—तूफान देखा है कभी ?
किस तरह ग्राता प्रलय का नाद वह करता हुग्रा,
काल-सा वन मे द्रुमो को तोडता झकझोरता
ग्रौर मूलाच्छेद कर भू पर सुलाता क्रोध से
उन सहस्रा पादपों को जो कि क्षीणाधार हैं ?
रुग्ण शाखाए द्रुमो की हरहरा कर टूटती
टूट गिरते शावको के साथ नीड विहग के
ग्रग भर जाते वनानी के निहित तरु, गुल्म से,
छिन्न फूलो के दलो से पक्षियो की देह से।[3]

१ गगाप्रसाद पाडे—बीसवीं शती की श्रेष्ठतम काव्य-कृति कामायनी, पृ० २५
२ शची रानी गुर्टू—वचारिकी, पृ० ११६
३ कुरुक्षेत्र द्वितीय सग पृ० २१

पचम सग के प्रारम्भ म कवि न प्रकृति क रौद्र रूप का एक और चित्र प्रस्तुत किया है —

पर हाय यहाँ भी धधक रहा अम्बर है
उड रही पवन म दाहक लोल लहर है,
कोलाहल सा आ रहा काल गह्वर स,
वाडव का रोर कराल क्षुब्ध सागर स ।
सघष नाद वन दहन काष्ठ का भारी,
विस्फोट वह्नि गिरि का उग्र त भयकारी ।'[1]

प्रकृति के सवदनात्मक रूप का भी चित्रण कवि न किया है। महाभारत के युद्ध की समाप्ति पर पृथ्वी और आकाश दोनों विपण्ण हैं। दिशाओं म गम्भीर उदासी है —

रण शान्त हुआ पर, हाय अभी भी
धरा अवसन्न डरी हुई है
नर नारियों क मुख दश प नाश की
छाया सी एक पडी हुई है,
धरती नभ दोनो विपण्ण उदासी
गभीर दिशा मे भरी हुई है
कुछ जान नहा पडता धरणी यह
जीवित है कि मरी हुई है । [2]

'कुरुक्षेत्र' म दिनकर जी ने प्रकृति के चित्रण की अपेक्षा उसकी शक्ति का वणन अधिक किया है। एक प्रकार से प्रकृति नियति का ही दूसरा रूप है। वह मानव कल्याण के सम्पूण वभव को एक कोष की भाति सयोजित किये हुये हैं। मानव सभ्यता की प्रारम्भिक अवस्था मे प्रकृति की सम्पूण देन नि शुल्क रूप स सभी को प्राप्त थी। भूमि भी उसी प्रकार सभी को सुलभ थी जस आज जल और अनिल निर्विघ्न प्राप्त है।[3] कि तु मनुष्य प्रकृति पर अधिकार करता गया और आज स्थिति यह है कि वारि विद्युत वायु ताप सब पर उसका अधिकार है

---

१ कुरुक्षेत्र पचम सग पृ० ७५

२ वही पचम सग, प० ८४

३ वही, सप्तम सग, पृ० ११८

'प्रकृति पर सर्वत्र है विजयी पुरुष आसीन
है बंधे नर के करों में वारि, विद्युत, भाप,
हुक्म पर चढ़ता उतरता है पवन का ताप।
है नहीं बाकी कहीं व्यवधान,
लांघ सकता नर सरित्, गिरि, सिन्धु एक समान।'[1]

यही नहीं आज पृथ्वी का प्रत्येक उपकरण मनुष्य की पहुंच में है —

'यह मनुज,
जिसका गगन मे जा रहा है यान,
कांपते जिसके करों को देख कर परमाणु।
खोल कर अपना हृदय गिरि, सिन्धु भू आकाश
है सुना जिसको चुके निज गुह्यतम इतिहास।

× × ×

एक लघु हस्तामलक यह भूमि मंडल गोल,
मानवों ने पढ लिए सब पृष्ठ जिसके खोल।'[2]

सप्तम सर्ग में प्रकृति के अनन्त कोष का वर्णन करते हुये कवि ने कहा है कि प्रकृति मे वैभव का अनन्त कोष है। प्रकृति सम्पदा का निरन्तर उपभोग करने पर भी वह कभी समाप्त नहीं हो सकती। पृथ्वी से आकाश तक जल, प्रकाश और पवन न कभी घटते हैं न सिमटते हैं। पृथ्वी अन्न, धन, फल, फूल और रत्न उगलने वाली है, पर्वतों में रत्न भरे हुये हैं। समुद्र में मुक्ता, विद्रुम और प्रवाल बिखरे हुये हैं, उनका उपभोक्ता केवल मानव है —

'यह धरती फल फूल अन्न, धन, रतन उगलाने वाली,
यह पालिका मृगय जीव की अटवी सघन निराली।
तुंगशृंग ये शैल कि जिनमे हीरक रत्न भरे हैं,
ये समुद्र, जिसमें मुक्ता, विद्रुम प्रवाल बिखरे हैं।'[3]

इस प्रकार कुरुक्षेत्र में प्रकृति के सुन्दर सश्लिष्ट चित्र भी हैं किन्तु बहुत कम। इन चित्रों में दिनकर जी के प्रकृति चित्रण कौशल का परिचय तो मिलता ही है साथ ही प्रकृति के सम्बन्ध में उनकी विचारधारा का भी परिचय मिल जाता है।

---

१ कुरुक्षेत्र, षष्ठ सर्ग, पृ० ९६
२ वही वही पृ० ९९
३ वही, सप्तम सर्ग पृ० ११२–१३

रस परिपाक

कुरुक्षेत्र में सुनिश्चित प्रबन्ध योजना का अभाव होने के कारण यह कहना बहुत कठिन है कि काव्य में प्रधान रस कौन-सा है। वस्तुतः कुरुक्षेत्र में किसी न किसी भाव की योजना प्रत्येक काव्य खण्ड में होती गयी है, यही 'भाव प्रधान रस' बनते गये हैं। 'कुरुक्षेत्र' में सभी रस तो नहीं, हाँ वीर, वीभत्स, भयानक, रौद्र, करुण और शान्त रसों की व्यंजना अवश्य उल्लेखनीय है। सम्पूर्ण रसों की स्थिति पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया जाय तो काव्य में वीर रस की एक अविच्छिन्न धारा दिखाई देती है। जिसके आधार पर काव्य में वीर रस की प्रधानता एक सीमा तक स्वीकार की जा सकती है।

वीर रस

भीष्म पितामह और युधिष्ठिर के संवादों में अनेक स्थलों पर वीर रस की सुन्दर व्यंजना हुयी है। भीष्म पितामह का निम्नांकित कथन द्रष्टव्य है —

'कायरा-सी बात कर मुझको जला मत आज तक,
है रहा आदर्श मेरा वीरता बलिदान ही
जाति मन्दिर में जलाकर शूरता की आरती
जा रहा हूँ विश्व से चढ़ युद्ध के ही यान पर।'[1]

वीभत्स रस

'रुधिर सिक्त, अंचल में नर के खण्डित लिए शरीर,
मृतवत्सला विपण्ण पड़ी है धरा मौन, गम्भीर।
सड़ती हुई विपाक्त गन्ध से दम घुटता-सा जान,
दबा नासिका निकल भागता है द्रुतगति पवमान।"[2]

करुण रस

द्वितीय सर्ग के आरम्भ में भीष्म पितामह के समक्ष युधिष्ठिर अपने बन्धु बान्धवों के निधन पर जो शोक भाव व्यक्त करते हैं उसमें करुण रस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है —

वीर गति पाकर सुयोधन चला गया है,
छोड़ मेरे सामने अशेष ध्वंस का प्रसार
छोड़ मेरे हाथ में शरीर निज प्राणहीन,
व्योम में बजाता जय दुन्दुभि सा बार बार,

---

१ कुरुक्षेत्र द्वितीय सर्ग पृ० २७
२ वही, पंचम सर्ग पृ० ८१ ८२

और यह मृतक शरीर जो बचा है शेष
चुप चुप मानो पूछता है मुझ से पुकार—
विजय का एक उपहार मैं बचा हूँ बोलो,
जीत किसकी है और किसकी हुई है हार ?'[1]

शान्त रस

काव्य के पंचम सर्ग में युधिष्ठिर के मन में जिस निर्वेद भाव की जागृति होती है अर्थात सांसारिक वासनाओं के प्रति जो विरक्ति का भाव उत्पन्न होता है उसमें शान्त रस की सुन्दर अभिव्यंजना है—

यह होगा महारण राग के साथ युधिष्ठिर हो विजयी निकलेगा
नर संस्कृति रण छिन्न लता पर शान्ति सुधा फल दिव्य फलेगा।
कुरुक्षेत्र की धूल नहीं इति पथ की मानव ऊपर और चलेगा
मनु का यह पुत्र निराश नहीं नव धर्म प्रदीप अवश्य जलेगा।'[2]

वात्सल्य रस

काव्य के चतुर्थ सर्ग में भीष्म पितामह जहाँ यह कहते हैं कि युद्ध भूमि में वे अर्जुन के बाण से गिर गये थे। वे पुत्र वत स्नेह के अधीन थे। उनके इस कथन में वात्सल्य भाव की सुन्दर झाँकी दिखाई देती है—

प्रेम अधीर पुकार उठा मेरे शरीर में मन से—
लो अपना सर्वस्व पार्थ, यह मुझको मार गिराओ
अब है विरह असह्य, मुझे, तुम स्नेह धाम पहुँचाओ।'[3]

शृंगार अद्भुत और हास्य नामक रसों का कुरुक्षेत्र में अभाव है। कुरुक्षेत्र में किसी एक रस के पूर्ण परिपाक के अभाव में भी काव्य में स्थान स्थान पर इतने अधिक भावमय स्थल हैं कि प्रस्तुत काव्य विचार प्रधान होते हुए भी पाठक को रससिक्त किए रहता है। कुरुक्षेत्र की रस-योजना में वीर रस की प्रमुखता है। महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षणों की दृष्टि से वीर शान्त या शृंगार में किसी एक रस की प्रधानता होनी चाहिए।

---

१ कुरुक्षेत्र द्वितीय सर्ग पृ० १७
२ वही पंचम सर्ग, पृ० ९८
३ वही चतुर्थ सर्ग पृ० ६७

भाषा शैली

कुरुक्षेत्र' में साहित्यिक खड़ी बोली का प्रयोग किया गया है। उसकी भाषा के स्वरूप-निर्माण में सुंदर शब्द-चयन, लोकोक्तियाँ एवं मुहावरों के प्रयोग, चित्रोपमता, लाक्षणिकता आदि का विशेष योगदान रहा है।

कुरुक्षेत्र की भाषा में एक ओर वलय, नास्ति, ग्रस्त, त्यास, लेलिह, ऋचा, मयूष आदि संस्कृत शब्दों का प्रयोग है तो दूसरी ओर सिवा, सनसनी, लबालब, लाचार, तूफान, निशान, तस्वीर, दाग, मंजिल आदि उर्दू के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। इनमें से कतिपय को छोड़कर शेष शब्द प्रचलित हैं और उनका प्रयोग भाषा के स्वरूप को सशक्त बनाने के लिए ही किया गया है।

शब्द-चयन की सुंदर और उपयुक्त योजना द्वारा कवि ने भाषा को सुगठित एवं शक्तिशाली बनाया है। कुरुक्षेत्र में कोमल और कठोर दोनों प्रकार के भावों की व्यंजना हुयी है। तदनुसार ही भाषा का प्रयोग हुआ है। कवि को जहाँ जिस प्रकार के भाव व्यक्त करने हैं उसी प्रकार की भाषा का प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिए निम्न दो स्थल द्रष्टव्य हैं—

> "तप्त होता क्षुद्र अंतर्व्योम पहले व्यक्ति का
> और तब उठता धधक समुदाय का आकाश भी
> क्षोभ से दाहक घृणा से गरल ईर्ष्या द्वेष से।[१]

अथवा

> "वहीं न कोमल वायु कुंज, मन का था कभी न डोला
> पत्तों की झुरमुट में छिपकर विहग न कोई बोला।[२]

उपर्युक्त उद्धरणों में भाषा के दोनों रूप द्रष्टव्य हैं।

ओज कुरुक्षेत्र की भाषा का प्रमुख गुण है। सम्पूर्ण काव्य में ओज की स्रोतस्विनी सी प्रवाहित दिखाई देती है। यथा प्रसंग भाषा शैली सहज और प्रसाद गुण सम्पन्न भी है। भाषा में चित्रोपमता भी है, जैसे—

> "शरों की नोक पर लेटे हुए गजराज जैसे,
> थके, टूटे गरुड़-से स्रस्त पन्नगराज जैसे,

---

१ कुरुक्षेत्र, द्वितीय सर्ग पृ० २२

२ वही, चतुर्थ सर्ग पृ० ६७

मरण पर वीर-जीवन का अगम बल भार डाले
दवाते काल को मायाम सत्ता को सभाल। [1]

'कुरुक्षेत्र' के कवि ने शब्दों की आवृति द्वारा भी भाषा की शक्ति को बढाया है जैसे—

शूर धर्म हैं अभय रक्त अगारा पर चलना
शूर धर्म है शोणित असि पर घर कर चरण मचलना।
शूर धर्म कहते हैं छाती तान तीर खाने को
शूर धर्म कहते हँस कर हालाहल पी जाने को। [2]

अथवा

'एक शुष्क कंकाल मृतों के स्मृति दंशन का शाप
एक शुष्क कंकाल जीवितों के मन का सताप।
एक शुष्क कंकाल युधिष्ठिर की जय की पहचान
एक शुष्क कंकाल महाभारत का अनुपम दान।'[3]

काव्य में कतिपय स्थलों पर भाव शक्ति को उद्दीप्त करने वाले प्रसग गर्भत्व के भी अच्छे उदाहरण मिल जाते हैं, जैसे —

भीष्म हो अथवा युधिष्ठिर या कि हो भगवान,
बुद्ध हो कि अशोक गाधी हो कि ईसु महान'[4]

लोकोक्तियों एव मुहावरों के प्रयोग से भी 'कुरुक्षेत्र' की भाषा में सजीवता उत्पन्न की गई है। जैसे—

१ 'दात अपने पीस अपने तम क्रोध म।
२ ध्वस अवशेष पर सिर धुनता है कौन।
३ सबकी सुबुद्धि पितामह हाय मारी गयी।
४ आगया हो द्वार पर ललकारता।

'कुरुक्षेत्र' में अनेक शैलियों का प्रयोग हुआ है। जैसे—प्रश्न शैली' दृष्टान्त शैली तर्क शैली मनोवैज्ञानिक शैली तुलनात्मक शैली पुनरावृत्ति शैली

---

१ कुरुक्षेत्र, पृ० ४६
२ वही पृ० ६०
३ वही पचम सर्ग पृ० ८३
४ वही, षष्ठ सर्ग पृ० ९५

वर्णनात्मक शैली नाटकीय शैली आदि। इनमें से कतिपय के उदाहरण प्रकार हैं –

प्रश्न शैली—

इसी शैली का काव्य में सबसे अधिक प्रयोग हुआ है –
'किस नात या खेल खेल में यह विनाश छाएगा
भारत का दुर्भाग्य छत पर चढ़ा हुआ आएगा।'[1]

अथवा

'जन्मा है वह जहाँ आज जिस पर उसका शासन है
क्या है यह घर वही ? और यह उसी व्यास का धन है।'[2]

दृष्टांत शैली—

हिंसा का आघात तपस्या ने कब कहाँ सहा है ?
देवों का दल सदा दानवों से हारता रहा है।'[3]

तर्क शैली–

सप्तम सर्ग में भीष्म पितामह ने भाग्यवाद का खण्डन करते हुए अनेक प्रस्तुत किए हैं। साथ ही कर्मवादी मनुष्य के परिश्रम के समर्थन में प्रमाण भी दिए हैं वहां इस शैली का प्रयोग हुआ है जैसे–

पूछो किसी भाग्यवादी से यदि विधि-अंक प्रबल है,
पद पर क्यों न देती स्वयं वसुधा निज रतन उगल है ?

+ + +

नर समाज का भाग्य एक है वह श्रम वह भुज बल है
जिसके सम्मुख झुकी हुई-पृथिवी, विनीत नभ तल है।'[4]

---

१ कुरुक्षेत्र चतुर्थ सर्ग पृ० ५५
२ वही, सप्तम सर्ग पृ० ११५
३ वही तृतीय सर्ग पृ० ३५
४ वही, सप्तम सर्ग पृ० ११५ ११६

मनोवैज्ञानिक-शैली

कवि ने जिन स्थलो पर भीष्म पितामह और धमराज युधिष्ठिर के मानसिक सघष को अभिव्यक्त किया है वहा इस शैली का प्रयोग हुआ है, भीष्म का कथन है कि–

'समझा था मिट गया द्वन्द्व, पाकर यह न्याय विभाजन
ज्ञात न था है कहीं कम मे, कठिन स्नेह का बन्धन।'[1]

तुलनात्मक शैली

तृतीय सग मे वास्तविक और बनावटी शान्ति का निरूपण करते समय इस शैली का प्रयोग किया गया है।

पुनरावृत्ति शैली

कहीं कहीं एक वाक्यांश की अनेक बार आवृत्ति करके इस शैली का कवि ने परिचय दिया है।[2]

नाटकीय एव वर्णनात्मक शैलिया का प्रयोग काव्य में बहुत कम हुआ है। नाटकीय शैली मे, जसे–पचम सग की अन्तिम पक्तियो मे धमराज युधिष्ठिर कहते हैं –

'मनु का यह पुत्र निराश नहीं, नव धम प्रदीप अवश्य जलेगा।'[3]

षष्ठ सग के प्रारम्भ म कवि उन्हीं शब्दों की आवत्ति करते हुए प्रश्न करता है –

'धम का दीपक, दया का दीपक,
कब जलेगा, कब जलेगा, विश्व के भगवान।[4]

इस प्रकार कुरुक्षेत्र मे विभिन्न-शैलिया के प्रयोग द्वारा काव्य के उत्कर्ष मे तो वद्धि हुयी ही है। साथ ही शक्तियों की प्रचुरता एव सम्पन्नता को देखते हुये यह भी ज्ञात होता है कि, "कुरुक्षेत्र का कवि शैलिया का धनी है।"[5]

---

१ कुरुक्षेत्र, चतुथ सग, पृ० ६५, ६६
२ वही पचम सग, पृ० ८३
३ वही पृ० ४९
४ वही पृ० ९५
५ कुरुक्षेत्र, मीमासा, पृ० २०३

अलंकार-योजना

'कुरुक्षेत्र' में अर्थालंकार एवं शब्दालंकार दोनों का ही प्रयोग हुआ है। विशेषरूप से अर्थालंकारों की योजना 'दिनकर' के काव्य-कौशल की परिचायक है। अलंकारों के प्रयोग से भाषा के रूप-सौन्दर्य में तो अभिवृद्धि हुयी है साथ ही वे भाव व्यंजना में भी सहायक हुए हैं। कुछ प्रमुख अलंकारों के उदाहरण इस प्रकार हैं —

उपमा

'शरों की नोंक पर लेटे हुए गजराज जैसे,
थके टूटे गरुड़ से स्रस्त पन्नगराज जैसे।'[1]

रूपक

नर नारियों के मुख देश पर नाश की,
छाया सी एक पड़ी हुई है।'[2]

अथवा

नर संस्कृति की रश्मि छिन्न लता पर,
शान्ति सुधा फल दिव्य फलेगा।[3]

उत्प्रेक्षा

'बाहर में भाग कक्ष में जो छिपता हूँ कभी
तो भी सुनता हूँ अट्टहास क्रूर काल का,
और सोते-जागते में चौंक उठता हूँ मानो
शोणित पुकारता हो अर्जुन के लाल का।[4]

सन्देह

ऋत्विक पढ़ते हैं वेद कि ऋचा दहन की?
प्रशमित करते या ज्वलित वह्नि जीवन की?
है कपिश धूम प्रतिमान जयी के यश का?
या धुंधुआता है क्रोध महीप विवश का?[5]

---

१ कुरुक्षेत्र पृ० ४६
२ वही पृ० ८४
३ वही पृ० ९४
४ वही पृ० १९
५ वही पृ० ७६

अतिशयोक्ति

'बात पूछने को विवेक से जभी वीरता जाती,
पी जाती अपमान पतित हो, अपना तेज गवाती।'[१]

अपनह्नुति

'भरी सभा म लाज द्रौपदी की न गई थी लूटी,
वह तो यही कराल आग थी निभय होकर फूटी।'[२]

असगति

'ज्यो-ज्यों साडी विवश द्रौपदी, की खिचती जाती थी,
त्यो-त्या वह आवृत, दुरग्नि यह नग्न हुई जाती थी।'[3]

उपयु क्त अलकारो के अतिरिक्त कुरुक्षेत्र' म और भी बहुत से अलकारो के (जसे, विरोधाभास, दृष्टान्त, विशपोक्ति सहोक्ति एव उल्लेख आदि सु दर प्रयोग है। अर्थालकारो म कहा कही अनुप्रास और वक्रोक्ति का प्रयोग अवश्य मिलता है कि तु बहुत कम। मानवीयकरण जसे नवीन अलकारा के प्रयोग भी काय मे मिल जाते हैं। पचम सग मे विजय का मानवीयकरण करते हुए कवि ने इस अलकार का सुन्दर उदाहरण उपस्थित किया है —

'अयि विजय ! रुधिर से कलन वसन है तेरा ?
यम-दष्ट्रा से क्या भिन्न दसन है तेरा ?
लपटो की भालर भलक रही अचल मे,
है धुआ ध्वस का भरा कृष्ण कुतल म।'[४]

प्रतीक-विधान

दिनकर जी ने कुरुक्षेत्र म अनेक सुन्दर प्रतीका का प्रयोग किया हैं जो कोमल और कठोर भावो की अभिव्यक्ति मे पूणत सहायक है। जसे—

पर, हाय यहाँ भी धधक रहा अम्बर है
उड रही पवन मे दाहक, लोल लहर है,
कोलाहल-सा आ रहा काल-गह्वर से,
वाडव का रोर कराल क्षुब्ध सागर स।[५]

---

१ कुरुक्षेत्र, पृ० ६१
२ वही, चतुथ सग पृ ५६
३ वही वही, पृ० ५७
४ वही, पचम सग' पृ० ७९
वही, वही, पृ० ७५

यहा काल गह्वर, मत्यु और वाडव भयकर भ्रमण के प्रतीक हैं।

कोमल प्रतीको की भी काव्य म योजना हुयी है। जसे–छठे सग म निम्नांकित काव्यांश द्रष्टव्य है।

"चाहिए उनको न केवल, गान, देवता है मांगते कुछ स्नेह कुछ बलिदान
मोम–सी कोई मुलायम चीज, ताप पाकर जो उठे मन म पसीज पसीज
प्राण के झुलसे विपिन मे फूल कुछ सुकुमार,
ज्ञान के मरू म सुकोमल भावना की धार,
चादनी की रागिनी, कुछ भोर की मुस्कान
नीद मे भूली हुई कहती नदी का गान
रग मे घुलता हुआ खिली कली का राज
पत्तियो पर गूजती कुछ ओस की आवाज
आसुओ मे दद की गलती हुई तस्वीर,
फूल की रस मे बसी–भीगी हुई, जजीर।"[1]

यहा 'चादनी की रागिनी' भोर की मुस्कान आदि कोमल भावनाओ के सुन्दर प्रतीक हैं।

छन्द विधान

कुरक्षेत्र म विभिन्न प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है। अधिकतर मात्रिक छन्दो को ही दिनकर जी ने प्रस्तुत रचना मे प्रयुक्त किया है। जसे सार, रूपमाला, आनन्दवद्धक राधिका, सरसी वीर आदि। इनके अतिरिक्त सवया, दुमिल कुन्दलता, रूप घनाक्षरी कवित्त एव दोहा आदि छन्दो का भी काव्य मे प्रयोग हुआ है।

कुरुक्षेत्र के तृताय, चतुथ और सप्तम सर्गों मे सार नामक छन्द का प्रयोग किया गया है, जसे—

'पापी कौन ? मनुज से उसका न्याय चुराने वाला,
या कि न्याय खोजते विघन का, शीश उडाने वाला।'[2]

रूपमाला छन्द का प्रयोग कवि ने षष्ठ सग मे किया है जस—

'व्योम से पाताल तक सब कुछ इसे है श्रेय
पर, न यह परिचय मनुज का, यह न उसका श्रेय।'[3]

---

१ कुरक्षेत्र षष्ठ सग पृ० ९७
२ वही, तृतीय सग, पृ० ४५
३ वही, षष्ठ सग प० १०१

कवित्त और सवयो का प्रयोग द्वितीय तृतीय, पचम एव सप्तम सर्गों म हुआ है। सम्पूर्ण काव्य मे एक दोहे का प्रयाग सप्तम सग म हुआ है।

दिनकर जी ने उन्ही छदो का प्रयोग किया है जो काव्य के प्रवाह एव गति को बनाये रखन मे सक्षम हैं। वर्णिक वत्तो का प्रयोग भी काव्य-भाषा के प्रवाह म साधक हुआ है। कही कही कवि ने मुक्तक छन्द का भी प्रयोग किया है। जसे काव्य के प्रारम्भ म ही—

'वह कौन रोता है वहा,
इतिहास के अध्याय पर,

जिसम लिखा है नौजवानो के लहू का मोल है
प्रत्यय किसी बढे कुटिल नीतिज्ञ क व्यवहार का,
जिसका हृदय उतना मलिन जितना कि शीष वलभ है।"[1]

उपयु क्त काव्य-पक्तियो म यद्यपि मात्राम्रा या तुकाततो का काइ नियम नही है किन्तु लय के कारण ही छद की सृष्टि हुयी है। 'कुरुक्षेत्र के कवि ने प्रसग और भाव के अनुरूप विविध छदो का प्रयोग किया है। जो काव्य क छद विधान की सफलता का परिचायक है।

नामकरण

'कुरुक्षेत्र' का नामकरण स्थान की दृष्टि से हुआ है। उसी प्रकार ज साकेत, आर्यावित्त एव हल्दी घाटी आदि महाकाव्यो के नाम स्यानो स सम्बन्धित हैं कुरुक्षेत्र कुरु प्रदेश का कहते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से कुरुक्षेत्र वह स्थान है जहा कौरवो और पाण्डवो का विश्व विख्यात युद्ध हुआ था। प्रस्तुत काव्य का मूल प्रतिपाद्य युद्ध, कुरुक्षेत्र का युद्ध ही है। काव्य म जिन विचारधाराम्रा एव तथ्यो की व्यजना हुयी है वे सब भी कुरुक्षेत्र के युद्ध को ही आधार बनाकर। इस दृष्टि स काव्य का नामकरण उपयुक्त ही है। महाराज भीष्म पितामह भी युद्ध क्षेत्र मे ही शरशय्या पर लेटे हुये हैं और वहीं धमराज युधिष्ठिर उनस वार्तालाप करते हैं। इस दृष्टि मे काव्य का सम्पूर्ण विधान कुरुक्षेत्र की भूमि पर हा होता है। अस्तु काव्य के प्रतिपाद्य एव विधान दोनों ही दष्टियो से यह नाम उपयुक्त है।

---

१ कुरुक्षेत्र षष्ठ सग पृ० १०१

सर्ग-विधान

सम्पूर्ण काव्य सात सर्गों में विभाजित है। सर्गों का नामकरण न करके केवल उनकी संख्या ही दी गयी है। छठे सर्ग के अतिरिक्त शेष सभी सर्गों की वस्तु योजना प्रासंगिक दृष्टि से पूर्वापर नियोजित एवं सुसम्बद्ध है। छठे सर्ग का प्रतिपाद्य और विषय कुछ पृथक सा प्रतीत होता है। किन्तु वैचारिक दृष्टि से इस सर्ग को अन्य सर्गों से सम्बन्ध स्पष्टतः नियोजित किया जा सकता है

निष्कर्ष रूप में कुरुक्षेत्र के शिल्प तत्त्व पर यदि विचार किया जाय तो उसे प्रबन्ध कविता न कहकर सफल प्रबन्ध काव्य कहना पड़ेगा जिसमें वैचारिक एवं भावात्मक सौन्दर्य की इतनी समृद्ध और उदात्त सृष्टि हुयी है कि उसे महाकाव्य मानने को बाध्य होना पड़ता है। 'कुरुक्षेत्र' का काव्य सौन्दर्य चमत्कार या पाण्डित्य प्रदर्शन में नहीं वरन् गम्भीर भावों की सहज अभिव्यक्ति में है। वस्तुतः भाव विचार और कला का संतुलित सामंजस्य 'कुरुक्षेत्र' की सफलता का एक मात्र रहस्य है"[1] कुरुक्षेत्र के सम्पूर्ण उपकरणों में चाहे वे छन्द हों, अलंकार हों भाषा या शैली से सम्बंधित हों सभी में सरलता है। यह सरलता कुरुक्षेत्र की लोकप्रियता और उत्कृष्टता दोनों का कारण बनी है। शिल्प की सरलता का कला की दृष्टि से भी कम महत्त्व नहीं है। डा० नगेन्द्र के शब्दों में — कुरुक्षेत्र में आकर दिनकर की कला में एक स्तुत्य प्रौढ़ता आ गयी है। उन्होंने यहाँ विस्तृत काव्य सामग्री का बिना आयास के प्रयोग करते हुये विराट और कोमल चित्र उपस्थित किए हैं उसमें कहीं भी काट छाँट, जड़ाव या बनाव —शृंगार प्रयत्न नहीं। और इसका कारण उसकी सबल अनुभूति ही है जो अनायास ही वाग्धारा में फूट उठती है।

साकेत-सन्त

प्रकृति-वर्णन

'साकेत-सन्त' में प्रकृति को सामान्यतः परम्परित रूप में ही चित्रित किया किया गया है। कहीं कहीं मानवीयकरण-प्रणाली द्वारा भी प्रकृति के चित्र अंकित किये गये हैं। काव्य में प्रयुक्त प्रसंगों के अनुरूप पर्वत(हिमालय) प्रातः संध्या रात्रि वसन्त ग्रीष्म वर्षा ऋतुओं का वर्णन करके मिश्र जी ने अपनी प्रकृति पर्यवेक्षण-शक्ति का परिचय दिया है।

---

१ प्रो० शिव बालक — दिनकर पृ० २३०
२ डा० नगेन्द्र — विचार और विश्लेषण पृ० १३४

काव्य के द्वितीय सग म हिमालय का वणन आकषक है। वहाँ की प्रकृति म सुहावने वन, मधुर ऋतुए और रगरगीली इद्रधनुषी माया मा क वातावरण प्रस्तुत करते है –

ऐसा सुहावना वन है मधु ऋतु की एमा वला।
× × ×
लतिकाए लगती म नो किन्नरियां थिरक रही है
द्रुम देख यही दिखता है न्दन द्रुम यहीं कहीं हो ॥
रत्नो की चित्रित भाकी सुमना से भाक रही है।
अवनी निज उर की सुषमा, अम्बर पर आक रही है ॥
प्रति तरु पर इद्रधनुष की, है रगरगीली माया।[1]

माण्डवी के रूप सौन्दय का वणन करते समय कवि न प्रकृति को आलकारिक रूप म चित्रित किया है –

'तुम्हारी इस छवि पर है मात हिमालय का महिमामय गात।
+ + +
कहीं जो खिली अधर मुस्कान, पिघल जाए गे हिम पाषाण।
+ + +
तुम्हारे चरणो पर बलिहार, रत्नगभा का सब शृ गार।
दस कटि, क धा, वक्ष विशाल, कौर वृक्ष वन पशु क हाल ॥'[2]

उषा का वणन मानवीयकरण-पद्धति पर किया गया है–

जीवन की नूतन रेखा जाग्रत हो जग म आई।
जब जरा उनीदी होकर रजनो ने ली अ गडाई ॥
दिग्बाला क गालो पर लज्जा के भाव निहारे
होकर विभोर मस्ती म मु द चले गगन दग तारे ॥[3]

कवि न मानवीय काय-व्यापारो और चेष्टाओ का आरोपण भी प्रकृति म बडे सु दर ढग से किया है। यथा–

मानक मधु स भर भर कर फूलो की प्यारी प्याला।
इतराती है मस्ती मे वास ती वभव वाली ॥[4]

आलम्बन पद्धति के आधार पर प्रकृति के रौद्र रूप का भी चित्रण हुआ है–

१ साकत सन्त द्वितीय सग पृ० ४०
२ वही प्रथम सग पृ० २३-२५
३ वही, द्वितीय सग पृ० ३० ३१
४ वही, वही छद ६८

भय को भी भयभीत बनाने, प्रकृति लगी आँखें दिखलाने
क्षितिज ओर से बढ़ी बिजलियां, चमचम करती तेग तान ।
तड़ित तिमिर के ओर द्वन्द्व मे-पल पल पर पलटी जयमाला ।
जो जाता वह भी भीषण था, अन्धकार हो या कि उजाला ।।'[1]

मानवीय भावनाओं को भी प्रकृति मे प्रतिबिम्बित किया गया है-

लगी आग जल उठी चिता वह
भड़का कर उर उर की आग ।
डूबे शोक सिन्धु मे दिन मणि,
लपट गई क्षितिज तक भाग ।'[2]

इसी प्रकार चित्रकूट यात्रा मे भरत की कातर दशा देखकर यमुना-विरह विदग्धा चित्रित की गई है[3] कहीं कहीं प्रकृति को रहस्यात्मक सत्ता के रूप मे भी चित्रित किया गया है । यथा-

दो बाहों का मृदु आलिंगन मिलते थे मरण और जीवन ।
दोनो हरि हर श्यामल उज्ज्वल यमुना का जल गगा का जल ।।
बद्ध, जीव ब्रह्म मे लीन हुआ, खोकर अस्तित्व विहीन हुआ ।
धुल गया श्याम होकर निमल रहा गया एक गगा का जल ।।[4]

इस प्रकार मिश्र जी ने प्रकृति के रमणीय और भयंकर दोनो रूपो का चित्राङ्कन किया है यद्यपि प्रकृति-चित्रण का सभी पद्धतियो को कवि ने अपनाया है तथापि सूक्ष्म निरीक्षण का अभाव ही दिखाई देता है ।

रसपरिपाक और भावचित्रण कौशल

साकेत-सन्त मुख्यत भरत के जीवन से सबधित होने के कारण शान्त रस प्रधान महाकाव्य है । शान्तरस का स्थायी भाव निर्वेद है । वैराग्य भाव की इसम प्रधानता है । सासारिक सुखो के प्रति अनासक्ति ही वैराग्य है । अनासक्ति भाव का चरम निदर्शन भरत के चरित्र म हुआ है । इसलिये काव्य म अनेक स्थलो पर शान्तरस की सुन्दर व्यजना हुई है । पचम सग म नृपति मन्त्रणागार म राज्य-परिवार के सभी सदस्यो एव पुरजनो को वशिष्ट जी का उपदेश निर्वेद भाव मे पूर्ण है ।[5] इसी प्रकार महाराज दशरथ के दाह सस्कार के अवसर पर कही गई निम्नांकित पंक्तियो मे शान्तरस की परिपक्वता द्रष्टव्य है-

---

१ साकेत संत, षयोदश सर्ग पृ० १५८
२ वही पञ्चम सर्ग पृ० ८३
३ वही, दशम सर्ग पृ० ११९
४ वही प्रथम सर्ग पृ० १०३
५ वही पचम सर्ग पृ० ६६

उदधि मे एक बुद्बुद था, ढला वह,
हवा का एक झोंका था चला वह।
रहा कब विश्व पर अधिकार उसका
न अपनी साँस पर अधिकार जिसका।
उड़ा पछी रहा तृण जाल बाकी,
पड़ा बम, खाल स कंकाल बाकी।
मगर वह भी चला नि शेष होने,
अजानी राह पर अस्तित्व खोने॥"[1]

करुण

करुण रस से ओतप्रोत काव्य के अनेक प्रसग हैं। महाराज के मरण एव चिता आदि के दृश्यो मे करुण का पूर्ण उद्रेक है।[2] इसी प्रकार चित्रकूट मे भरत की शोकाकुल दशा को देखकर धरा भी करुणार्द्र दिखाई देती है —

'पड़े छाले व्यथा के अश्रु धारे,
सहारा दे रह काटे विचारे।
धरा करुणार्द्र थी वे बूद पाकर,
उसासे ले रही उनको छिपाकर॥"[3]

वीर

वीर के स्थायी भाव उत्साह की काव्य मे बडी भव्य झाकिया हैं। भरत सेना सहित राम से मिलने जा रहे हैं। मार्ग म गुह निषाद और अन्य लोगो के मन म यह सन्देह होता है कि भरत कही राम का अनिष्ट तो नही करने जा रहे है। सब लोग उत्साह म भर कर भरत से मुकाबला करना चाहते हैं —

,बालक बूढ़े भी जोश भरे
चढ गये तुरत ही रोष भरे।
कुछ ने झट छेडछाड कर दी,
सेना म कुछ बिगाड कर दी॥"[4]

इसी अवसर पर निषाद का यह कथन भी उल्लेखनीय हैं —

---

१ साकेत सन्त, षष्ठ सर्ग पृ० ७८
२ वही वही पृ० ८३
३ वही दशम् सग पृ० १२०
४ वही, सप्तम सग, पृ० ९८

"सब नाके साधो, लडो, अडो,
लडकर सेना पर टूट पडो।
वे खा न सकें, वे सो न सकें,
वे हस न सकें, वे रो न सकें,
\+ \+ \+
हम तो नर हैं, नर हैं, नर हैं,
फिर हम उनसे कम क्यो कर हैं ?"[1]

शृगार

"साकेत-सन्त" मे केवल सयोग शृगार का ही निरूपण हुआ है। प्रथम सर्ग मे भरत-माण्डवी के दाम्पत्य जीवन की झाकियो मे सयोग शृगार की अद्भुत छटा है। भरत और माण्डवी का नया परिणय था, नई उमग थी नित्य नय रग थे और नित्य नय उत्सवो के विधान होते थे।[2] इसी उत्सव बेला की एक निशा मे भरत माण्डवी का मिलन हुआ–

हजारो दीप हुए अनुकूल करोडो महक उठे शुचि फूल॥
भरत खिल उठे, बढ उठे हाथ कहा, लो! जीवित प्राण साथ।
मिले फिर से रति और अनग सजे फिर घन विद्युत का सग॥
\+ \+ \+
अधर पर एक मधुर मुस्कान लोल सी लहरा गई अजान॥[3]

वीभत्स

'उडा पछी रहा तृण जाल बाकी
मढा बस खाल स कगाल बाकी।
\+ \+
गये उड गिद्ध और शृगाल भागे,
सडी सी लोथ चौथी छोड आगे।[4]

उपर्युक्त रसो की योजना के अतिरिक्त भरत माण्डवी के व्यग्य विनोद मे हास्य का छटा दिखाई देती है।[5]

---

१ साकेत सन्त प्रथम सर्ग, पृ० २६
२ वही वही पृ० ९७
३ वही, प्रथम सर्ग, छन्द ९
४ वही पृ० २१
५ वही षष्ठ सर्ग पृ० ७८ ७९

भाषा शैली

'साकेत सन्त' की रचना खड़ी बोली मे हुई है। काव्य मे खड़ी वोली के प्रौढ और प्राजल रूप का प्रयोग हुआ है। यद्यपि संस्कृत के तत्सम शब्दो का काव्य मे अत्यधिक प्रयोग हुआ है किन्तु उनके कारण भाषा दुर्बोध नही हुई है। मिश्र जी ने सस्कृत के सुगम शब्दो का ही उपयोग किया है। यथा—

"तुम मे बद्ध हुई आ आकर,
ऋषियो की वाणी कल्याणी।
हुए अनाय्य आयसम्मानित,
तरी पतित नारी पाषाणी॥"[1]

मिश्र जी ने लघु सामासिक शब्दावली का भी कही कही प्रयोग किया है। जसे

'विश्व बन्धुत्व व्यवस्था बने।'[2]
अथवा
'देखा यवग्नि-वपम्य मृगी भीता ने।'[3]

अरबी फारसी और उर्दू के भी कुछ प्रचलित शब्दो का काव्य म प्रयोग हुआ है। जसे—ताज, तमाशा, बेहाल, बाजी, हरदम आदि। लौकिकितयो एव मुहावरो के प्रयोग स भाषा सजीव और शली भावमय बनी है। जसे—

तुम्हारा लखकर केशकलाप,
अचल उर पर लोटेंगे साप।[4]
अथवा
जिसके हाथो है लाठी
वह भस हांक ही लेगा।[5]
अथवा
पैरों पर तूने आप कुल्हाडी मारी।[6]
\+ \+ \+

---

१ साकेत सन्त त्रयोदश सग, पृ० १६७
२ वही, द्वादश सग पृ० १५२
३ वही एकादश सग पृ० १३४
४ वही, प्रथम सर्ग, पृ० २४
५ वही, द्वितीय सग, पृ० ३५
६ वही, तृतीय सर्ग, पृ० ५०

राम का यह बाल भी बाधा हुआ।[1]

+ + ×

अग जग की आँखों का तारा।[2]

मिश्र जी ने पात्रो के अनुसार भाषा का प्रयोग किया है। वशिष्ठ जी की भाषा का रूप तत्सम् परिनिष्ठित है।[3] जब कि गुह निषाद की भाषा साधारण और बोलचाल की है।[4] शब्द-शक्तियों और गुण रीतियों के प्रयोग का मिश्र जी को पूर्ण ज्ञान है। लाक्षणिक प्रयोगो के कारण 'साकेत सन्त' की भाषा सजीव है। सामान्यत साकेत सन्त' की भाषा प्रसाद गुण सम्पन्न है। कही कही भाषागत प्रयोग व्याकरण सम्मत नही हैं। कुछ स्थलो पर क्रियापदो का प्रयोग बडा विचित्र है। जस–

उसी रात दु स्वप्न भयंकर, दिख भरत को विविध प्रकार।[5]

+ + +

आज दिखते थे निपट उदास।[6]

+ + +

दुख देख यही दिखता ह।'[7]

साकेत-सन्त की भाषा शैली का सबसे बडा गुण प्रवाह और सम्प्रेषणीयता है।

अलंकार-योजना

साकेत-सन्त' की भाषा-शैली को सुन्दर और काव्य के कलापक्ष की समृद्धि के लिये मिश्र जी ने विविध अलंकारो का प्रयोग किया है। कुछ प्रमुख अलंकारो के उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं –

अनुप्रास

लघु लघु लहराती लहर लहर
छवि छवि छाती छहर छहर[8]

---

१ साकेत सन्त सप्तम सर्ग, पृ० ८७
२ वही त्रयोदश सर्ग, पृ० १८२
३ वही पंचम सर्ग, पृ० ६६
४ वही अष्टम सर्ग पृ० ९७
५ वही द्वितीय सर्ग पृ० ४३
६ वही चतुर्थ सर्ग पृ० ५४
७ वही, द्वितीय सर्ग पृ० ४०
८ वही अष्टम् सर्ग, १०२।

अथवा

'नव भावना म भारतीयता का भव्य रूप
भर कर भारत भरत गुण गाता है।'[1]

यमक

'भयानक था रजनी का राज
प्रसाद-रहित प्रासाद-समाज।'[2]
सुना पाकर काल काल ने छापा मारा
अन्त्य कृत्य का भी न रहा कुछ शेष सहारा।[3]

उपमा

हृदय यह जसा शिव अधिवास,
कहाँ होगा वसा कलाश।[4]

रूपक

दिग्वाला के गालो पर, लज्जा के भाव निहारे।
होकर विभोर मस्ती मे मु द चले गगन दृग तारे।'[5]

अपन्हुति

'घर सबके घर नही घाट हैं काल नदी के।
सम्ब धी हैं जहा बस जुडे, दो ही क्षण के।'[6]

उत्प्रेक्षा

लतिकाए लगता मानो किन्नरिया थिरक रही हैं।[7]

विरोधाभस

'भयानक पर विरति-जननी भली थी,
अपावन पर परम पावन थली थी।'[8]

उपयु क्त परम्परागत अलकारा के अतिरिक्त साकेत सन्त' मे कही कही नय अलकारा क प्रयोग भी दिखाई देते हैं। उदाहरणाथ विशेषण विपयय का प्रयाग —

---

१ साकेत सन्त उपक्रम, पृ० १७
२ वही, चतुथ सग, पृ० ५४
३ वही, पचम सग पृ० ६४
४ वही प्रथम सग, पृ० २५
५ वही, द्वितीय सग पृ० ३१
६ वही, पचम सग पृ० ६८
७ वही, द्वितीय सग, पृ० ४०
८ वही षष्ठ सग, पृ० ७९

विहगों की मधुर ध्वनि से गुंजरित है उसकी नगरी।
मूर्च्छना श्रवण कर जिसकी मूर्छित बाला बांसुरियाँ। १

नामकरण

'साकेत संत' का नामकरण पात्रगत आधार पर हुआ है। नामकरण की सार्थकता इस बात में है कि कवि ने नाम के अनुरूप काव्य के नायक भरत को 'संत' के रूप में चित्रित किया है। मिश्र जी ने काव्यारम्भ (निवेदन) में भी भरत जी को संत' के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। इसके अतिरिक्त 'साकेत संत' नाम रोचक आकर्षक साहित्यिक एवं व्यंजना प्रधान भी है।

सर्ग-संयोजन

साकेत संत' में चौदह सर्ग हैं। सर्गों का नामकरण न करके उन्हें संख्याक्रम से विभाजित किया गया है। सर्गों का संयोजन कथाक्रम के अनुसार किया गया है। इतिवृत्त-क्रम की दृष्टि से प्रत्येक सर्ग में पूर्वापर अन्विति है।

इस प्रकार साकेत संत रचनात्मक उपकरणों एवं शिल्प तत्व की दृष्टि से सफल रचना है। साकेत संत की रचना-विधि के अन्तरंग और बहिरंग दोनों ही पक्ष महाकाव्योचित गरिमा से युक्त हैं।

दैत्यवंश

दैत्यवंश' में प्रकृति के अनेक मनोरम चित्र अंकित हैं। महाकाव्य की परिपाटी के अनुसार दैत्यवंश में सूर्योदय, चन्द्रोदय समुद्र मानसरोवर पर्वत, ग्रीष्म, शरद्, वर्षा हेमन्त-बसंत आदि ऋतुओं का वर्णन हुआ है। सभी प्राकृतिक वर्णनों में मानसरोवर का वर्णन चित्ताकर्षक है। कवि के शब्दों में हिमालय के अंक में वह सरोवर प्रकृति की सुषमा से सम्पन्न है। शिलाओं से घिरा हुआ वह सरोवर लघु सिन्धु सा दिखाई देता है। उसकी तुंग तरंगें आनंदित करने वाली हैं।[२] उसके तट का दृश्य भी बड़ा मनोहर है —

राज मरालनि की अवली, तट पै जहां केलि करै मदमाती।
त्यों चकई चकवा के वियोगनि ह्वै रही हैं विरहानल तातीं।
+ + +
चन्द्रिका पान करै है चकोर मयंकहि दीठि लगाय निहारी।
त्यों घट माहि भरे अति चाव सो चन्द्रकला अंजुरीनि सों प्यारी।[३]

कवि ने मानवीय संवेदनाओं का आरोपण प्रकृति में किया है। दूसरे शब्दों में मनुष्य के सुख दुख में प्रकृति भी दुखी—सुखी दिखाई देती है। वामन के जन्म पर प्रकृति सर्वत्र उत्साह पूर्ण दिखाई देती है —

---

१ साकेत संत

२ दैत्यवंश सप्तम सर्ग पृ० १०८

३ वही पृ० २११

सुठि सीतल मद सुगन्ध समीर
नई प्रमदा मम डोलन लगी।
तिमि देव नदी भरि भायनि सों
सुख-बीचिन मंजु कलोल लगी।
सुर पादप की चढ़ि डारनी प
वह स्याम असीमहि बोलै लगी।
निज मंजु मंजूषा सिंगारनि को
प्रकृति मुद मानिक खोलन लगी ॥[1]

यही प्रकृति राजा बलि के बांध कर पाताल भेजे जाने पर उदासीन अंकित की गई है —

वह नमदा दूवरी पीरी परी, बलिराज के या विरहानल तायक।
हरियाली मिटी तरु वृन्दन की न प्रसून खिले खरो सोग मनायक।
सुक सारी बुलाये न बोले कहू पुर के जन कोऊ मिल नहि घायक।
करुनारस की मनो सन सद्म, नगरी म निवास कियो इत आय क ॥ [2]

कहीं-कहीं परिगणन शैली मे भी प्रकृति चित्रण हुआ है। यथा—

"पनगी मोर मृगा गज केहरि सग रहे अरि भाव बिसारत।
पकज चन्द्र चकोर अमा औ मराल मृनाल मनो हिय हारत।
बिम्ब अनार न खात कबो सुक बवलिया मन्त्रनि काट न डारत।
चम्पक औ अलि, राहु ससि, अरु तारहू ढक पहारनि धारत ॥"[3]

काव्य के अतिम सग म वर्षा [4] शरद [5], हेमन्त [6] शिशिर [7], बसन्त [8] आदि ऋतुओं का भी वर्णन हुआ है। दत्यवंश म प्रकृति चित्रण के अनेक स्थल हैं। किन्तु उनमे मौलिक सूझ बूझ का अभाव ही दिखाइ देता है। हा प्रकृति चित्रण मे रमणीयता की कमी नहीं है।

---

१ दत्यवंश दशम् सग पृ० १४५
२ वही, त्रयोदश सग पृ १८८
३ वही चतुथ सग पृ० ५८
४ वही अष्टादश सग, पृ० २६८
५ वही, वही , पृ० २६९
६ वही वही , पृ० २७०
७ वही वही पृ० २७०
८ वही, वही पृ० २७१

रस-परिपाक और भाव चित्रण

दैत्यवंश में महाकाव्य की शास्त्रीय परम्परा के अनुसार शृंगार और वीर नामक रसों की प्रधानता है। इसके अतिरिक्त बीभत्स, रौद्र, भयानक, करुण, वात्सल्य हास्य आदि का भी सफल निर्वाह हुआ है।

संयोग शृंगार

स्वयंवर के प्रसंग में जब सिन्धुसुता भगवान विष्णु को जयमाला डालना चाहती है तो उसके हृदय में रति भाव की सुन्दर व्यंजना हुई है —

> देखि अचानक ओर की ओर,
> सकोचि मधूक की माल सवारी।
> त्यों दुओ कम्पित हाथ उठाय,
> दियो पुरुषोत्तम के गर डारी।
> साजन बोलि सकी न कछू
> कृस देह भई पै रोमांचित सारी।
> औ सखियानि के संग समोद
> बिनोद भरी निज गेह सिधारी॥'[१]

वियोग शृंगार

अनिरुद्ध के वियोग में उषा की दशा —

> 'परयंक प लोटे विहाल उषा,
> मुरझाय गई मानो फूलछरी।
> घनसार उसीर को लप कियो
> सित कुंकुम लौं सो परो बिखरी।
> बिजना करते रही सौंसिहु लाइ,
> गुलाब की नाइ दई सिगरी।
> बनि धूम उड्यो सोई, फूट्यो हरा,
> बिरहानल मैं इमि जात जरी॥'[२]

वीर रस

देवताओं और असुरों के संग्राम में कुमार कार्तिकेय तारकासुर बाणासुर आदि के अदम्य उत्साह और पराक्रम का वर्णन है। वामन के निम्नांकित कथन में

---

१ दैत्यवंश चतुर्थ सर्ग पृ० ५५
२ वही त्रयोदश सर्ग प० २०१

वीररस की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है —

'तोरि धरो दिग दन्तिन-दन्त कही भुज ठोकि सुमेर हलाऊ।
सारे सुरारि समूहनि को अग्रही रन अगन में बिचलाऊ।
रावरो आयसु पाऊ जु प बपुरा बलि को अब बाँधि ल आऊ।
जो न करा इतो कारज तो, तोहि लौटि न आनन मातु दिखाऊ॥' [१]

करुण रस

पताल लोक जाते समय पिता की सवा से वचित होन के कारण बलि के मन अपार शोक की व्यजना उसके निम्नाकित कथन म व्यजित है —

"तात तुम्हारे पुण्य प्रभावनि इन्द्रहि समर हरायो।
औ कस्यप-कुल कलित ध्वजा वह नभ मण्डल फहरायो॥
दान सब बसुधा को द क हरि को हाथ नवायो।
प विरधापन माहि रावरे पद सवन नहिं पायो॥" [२]

भयानक रस

'जमधार सी आवत सन निहारि,
भई भयभीत तिया बिलखानी।
निज अक सिसून को ल गमनी,
कितो अतर-गेह मे जाय लुकानी।
किती नन्दन कानन भागि गई,
मति मूढ भई किती गैल भुलानी।' [३]

रौद्र रस

काल की मूरति या रुद्रवक्र कौ,
देख्यो प्रचण्ड त्रिसूल घुमावत।
बारिदनाद क बार ही बार,
धरा को चलै बरबड नवावत।

---

१ दैत्यवंश दशम् सग, पृ० १६२
२ वही, द्वादश सग, प० १८६
३ वही, दशम् सग प० १५४

कदरा सो मुख बाय बढे रद,
खग सी वा रसना लपरावत ।
चन्द्र ग्रस जिमि राहु चल
तिमि सौध के द्वार लख्यो तेहि आवत ।।'[१]

हास्य रस

चतुर्थ सर्ग म शारदा सिन्धु सुता को साथ लेकर स्वयवर म आये हुय प्रत्येक देव दानव का परिचय देती होती सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा का परिचय निम्नांकित प्रकार देती है —

तीनहू लोक के ये करता अरु चारहू बेद बनावन वारे।
दाढी भई सन सी सिगरी सिर प कहू केस न दीसत कारे।
नारद सौं इनके है सपूत तिहुपुर ज्ञान सिखावन हारे।
प्रम की पास मैं बाधन को तुम्हे बूढे बबा इत है पगु धारे ।। '[२]

वात्सल्य रस

दशम् सर्ग मे वामन की बाल क्रीडाग्रो और वामन के प्रति माता के अनुराग भाव के निरूपण म वात्सल्य की बडी सुन्दर सृष्टि हुई है ।[३]

वीभत्स रस

जोगिनी भूत पिसाच पिसाची, मास काटु धुनि बोलहि नाची ।।
मच्छहि मास रुधिर पुनि पीवहि । ग्रासिख दही बीर दोउ जीवहि ।।
कोऊ हार आतन क धारत। कोऊ करेजो फारि निकारत ।।
कोऊ मुडन के माल बनावत । कोउ सचोप चरबी तन लावत ।। [४]

इस प्रकार दैत्यवश मे नव रसो का सुन्दर परिपाक हुआ है। काव्य म अनेक ऐसे स्थल हैं जहा किसी विशेष रस का पूर्ण परिपाक तो नहीं हुआ किन्तु स्थायी भाव को पुष्ट करने वाले विभाव अनुभाव और सचारी भावो का चित्रण अत्यन्त हृदयग्राह्य रूप म हुआ है । सिन्धुसुता–स्वयवर प्रसग म

१ दैत्य वश छन्द–३१ ।
२ वही चतुर्थ सर्ग पृ० ५२
३ वही दशम् सर्ग पृ० १४७
४ वही षष्ठ सर्ग पृ ७९

भगवान विष्णु को देख कर सिंधुसुता के मन म लज्जा, वितक, हष आदि नाना भावा की सृष्टि एक साथ होती है जिसका कवि ने मनोहारी वणन किया है —

> "वन्दि तिन्ह मन मे सकुचायक, सिंधुजा आगे कछु पग धारी।
> कोटि मनोज लजावत जे पुरुषोत्तम पै निज दीठि को डारी।
> ठाढी जकी सी छिनक रही, कन यह्नु को न सकी निरधारी।'[1]

इसी प्रकार बाण तनया ऊषा की उन सभी बाल क्रीडाओ का वणन कवि ने किया है जो वात्सल्य रस की पोषक है।[2] यह कहना अत्युक्ति न होगा कि 'दत्यवश रस योजना की दृष्टि से सर्वांगीन सफल कृति है।

नामकरण

'दत्यवश' का नामकरण कालिदास कृत रघुवश नामक महाकाव्य की अनुकृति पर हुआ है 'दत्यवश में दत्य कुल क हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु विरोचन बलि, बाण, और स्कन्द नामक छ राजाओ की कथा है। अस्तु, नामकरण साथक है। हिंदी की महाकाव्य परम्परा म वणगत आधार पर केवल दत्यवश का ही नामकरण हुआ है।

सर्ग-विधान

'दत्यवश में २८ सग हैं। काव्य की अनुक्रमणिका में प्रत्येक सग के प्रतिपाद्य विषय का सकेत है। दत्यवश की सग-योजना का आधार काव्य की कथावस्तु है। सम्पूण सर्गो में पूर्वापर सम्ब ध निर्वाह विधिवत हुआ है।

भाषा-शैली

दत्यवश में ब्रजभाषा के परिमार्जित रूप का प्रयोग हुआ है। प्रसगानुकूल भाषा प्रसाद, माधुय एव ओजगुण सम्पन्न दिखाई देती है। भाषा भावानुवर्तिनी रही है। उदाहरणाथ शची के हृदय की आकुलता प्रकट करने के लिय कवि ने कोमलकात पदावली का प्रयोग किया है —

> 'चारु दुकूलनि त्यागि सची,
> तन प पहरी एक कारिये सारी।
> कक्न किंकिनी नूपर औ-
> पदकज सों पजनियानी उतारी।'[3]

---

१ दत्यवश चतुथ सग, पृ० ५३
२ वही त्रयोदश सग प० १९६
३ वही, दशम सग, प० १५५

मता के प्रस्थान का वर्णन करते समय भाषा ओजपूर्ण हो गई है —

बाजत मन सन पर डका । हान महारव और अतंका ॥
हाली धरा गग पत डोल । करि निस्तार दिग्ग बहु बोल ॥[1]

भाषा में सजीवता उत्पन्न करने के लिए कवि ने यत्र तत्र प्रसिद्ध सूक्तियों एवं लोकोक्तियों-मुहावरों का भी प्रयोग किया है । यथा—

जो गनत पौरुष के निधान हिय कूर मग में आनके ।
हय सावधान तथापि तेहि निरत काम प्रमाद के ॥[2]

अथवा

पूत कपूत वन सो पर तऊ मात कुमातु न कबो ताहु ।[3]

'दत्यवंश' में ब्रजभाषा का प्रयोग होते हुए भी उसमें अन्य भाषाओं के भी अनेक शब्दों का प्रयोग हुआ है । 'दत्यवंश' खड़ी बोली के गौरव काल की रचना है अस्तु उसके प्रभाव से कवि मुक्त नहीं रह पाया है । कहीं-कहीं राजस्थानी भाषा के 'पाछ' 'घाल्यो' आदि शब्द भी व्यवहृत हुए हैं ।[4]

दत्यवंश की शैली वर्णनात्मक है । दत्यवंश के रचयिता पर संस्कृत काव्य रचना का पूर्ण प्रभाव पड़ा है । अस्तु काव्य में शैली का रूप पौराणिक भी हो गया है । पौराणिक शैली के सुन्दर उदाहरण प्रथम सर्ग में ही द्रष्टव्य हैं ।[5]

अलंकार-योजना

दत्यवंश' की शैली के प्रसाधन अलंकार हैं । काव्य में शब्द और अर्था लंकारों की योजना सफलता पूर्वक की गई है । कतिपय प्रमुख अलंकारों के उदाहरण इस प्रकार हैं —

अनुप्रास

'विकस वनज वन वगरि बहार वारे
परिमल पाय भौंर भौंर भरि जात है । [6]

---

१ दत्यवंश, तृतीय सर्ग पृ० ३७
२ वही दशम सर्ग पृ० १६३
३ वही षष्ठ सर्ग पृ० ८९
४ वही प्रथम सर्ग पृ० ३
५ वही वही पृ० ८
६. वही पंचम सर्ग, पृ० ७०

अतिशयोक्ति

रिति मयदानव बुलाय बनवायो दिव्य
मंदिर छुवत जाके कलस अकास हैं ।
रथ टकराय टूटि जैहैं यह भीति मानि,
जात देत भरत न बाजि बाके पास है ।[1]

उपमा

वृपमनि मध्य लसत गज कैसे ।
जमुना मिली गंग महँ जैसे ।।[2]

अथवा

मूरति-सी करनारस की, पलका प परी लखी मातु अकेली ।
काटे गय तरु प ज्यो चढ़ी, मसली मुरझाई गिरी जनु वेली ।।[3]

उत्प्रेक्षा

प्रातहि नव जलधर वपुष, मनहुँ अपर नगराज ।[4]

अथवा

फारि बम हिय माहि समानी । जनु नागिन बिल माहि लुकानी ।[5]

विरोधाभास

है सीत याको नीर यद्यपि धरत यह बड़वागि है ।[6]

सन्देह

क कस्यप बर वश की, विमल ध्वजा फहरात ।
क वह बलि नृप को सुजस, कहन अमरपुर जात ।।[7]

उन्मीलित

जोरी मरालनि की तब लौं
मोतिया चुनिब तेहि ओर सिधारी ।

---

१ दत्यवंश, प्रथम सर्ग पृ० ८
२ वही , षष्ठ सर्ग, पृ० ८८
३ वही त्रयोदश सर्ग पृ० १८९
४ वही , षष्ठ सर्ग, पृ० ८५
५ वही , वही , पृ० ९९
६ वही , तृतीय सर्ग, पृ० ३५
७ वही , नवम सर्ग, पृ० १३५

प्रकृति निस्तब्ध थी यह हो गया क्या ?
हमारी गाँठ से कुछ खो गया क्या ?'[१]

रश्मिरथी में प्रकृति के रौद्र और रमणीय दोनों रूपों का चित्रण हुआ है।

रौद्र रूप में चित्रण

'झंझा की घोर झकोर चली, डालों को तोड़ मरोड़ चली,
पेड़ों की जड़ टूटने लगी, हिम्मत सबकी छूटने लगी,
ऐसा प्रचंड तूफान उठा, पर्वत का भी दिल प्राण उठा।[२]

रमणीय रूप में चित्रण

उषा का चित्र इस सन्दर्भ में द्रष्टव्य है —

'सभाले नील पर आलोक मंडल, दिशाओं में उड़ाती ज्योतिरंचल।
किरण में स्निग्ध आतप फेंकती सी शिशिर कंपित द्रुमों को सेंकती सी।
खगों का स्पर्श से कर पंख मोचन कुसुम के पोंछती हिमसिक्त लोचन।
दिवस की स्वामिनी आई गगन में उड़ा कुंकुम, जगा जीवन भुवन में ॥[३]

प्रकृति के अनेक संश्लिष्ट चित्र काव्य में यत्र तत्र बिखरे हुये हैं। प्रकृति का मानवीयकृत रूप में चित्रण तो सर्वत्र उपलब्ध हैं।

रसपरिपाक

दिनकर जी मूलतः वीररस के कवि कहे जाते हैं। 'रश्मिरथी' में कर्ण चरित्र के अनुरूप वीर रस की प्रधानता है। कर्ण केवल युद्धवीर ही नहीं वरन् दानवीर, धर्मवीर और कर्मवीर के रूप में भी अंकित किया गया है।

वीर रस

सप्तम सर्ग में कर्ण के निम्नांकित कथन में वीर रस की अपूर्व झाँकी है—

मही का सूर्य होना चाहता हूँ।
विभा का तूर्य होना चाहता हूँ।
× × ×
भुजा की थाह पाना चाहता हूँ।
हिमालय को उठाना चाहता हूँ।
× × ×

---

१ रश्मिरथी सप्तम् सर्ग पृ० १९९
२ वही षष्ठ सर्ग पृ० १३१
३ वही सप्तम सर्ग पृ० १५३

समूचा सिन्धु पीना चाहता हूं
धधक कर आज जीना चाहता हूं।[1]

कर्ण के निम्नांकित कथन में भी अदम्य उत्साह भाव दिखाई देता है—

'समर की शूरता साकार हूँ मैं।
महा मार्तण्ड का अवतार हूं मैं।
विभूषण वेद-भूषित कर्म मेरा,
कवच है आज तक का धर्म मेरा।
+ +
अरी ओ सिद्धियों की आग, आओ,
प्रलय का तेज बन मुझ में समाओ।'[2]

रौद्र

तृतीय सर्ग में संधि प्रस्ताव लेकर कृष्ण दुर्योधन के पास आते हैं। वह जब उन्हें बांधने का प्रयत्न करता है तो कृष्ण अपने विराट रूप का प्रदर्शन करते हैं, जिसमें रौद्ररस की व्यंजना है—

'हरि ने भीषण हुंकार किया,
अपना स्वरूप विस्तार किया,
डगमग डगमग दिग्गज डोले
भगवान कुपित होकर बोले—
जंजीर बढ़ा कर साध मुझे,
हां हां दुर्योधन! बांध मुझे।'[3]

भयानक—

टकरायेंगे नक्षत्र निकर,
बरसेगी भू पर वह्नि प्रखर,
फण शेषनाग का डोलेगा,
विकराल काल रण खोलेगा।'[4]

बीभत्स—

'कट कट कर गिरने लगे क्षिप्र,
रुण्डों से मुण्ड अलग होकर,

---

१ रश्मिरथी सप्तम् सर्ग, पृ० १५६
२ वही, —सप्तम् सर्ग पृ० १५८
३ वही —तृतीय सर्ग पृ० ३१
४ वही —वही, पृ० ३४

यह पतो मनुज के हाथिन का,
सारा पशुओं के गण भार।'[1]

करुण—

कर्ण द्वारा घटोत्कच के वध पर सम्पूर्ण पाण्डव भूमि में हाहाकार का वातावरण है जिसमें करुण रस का उद्रेक है।[2]

वात्सल्य—

पंचम सर्ग में कर्ण और कुन्ती के मिलन प्रसंग में कुन्ती के ममत्व की व्यंजना में वात्सल्य की सृष्टि करने में कवि सफल रहा है।[3]

शृंगार

रश्मिरथी में शृंगार रस का अभाव है। काव्य में केवल एक ही स्थान पर सूर्य और कुन्ती को क्षण भर के लिये आमने सामने लाकर स्मृति नामक संचारी भाव की सृष्टि की गई है।

नव रसों में वीर रस का परिपाक ही प्रस्तुत महाकाव्य की सफलता का प्रमाण है।

नामकरण

प्रस्तुत महाकाव्य का नामकरण वशिष्टपूर्ण है। रश्मिरथी शब्द जहाँ एक ओर स्पष्ट है वहीं दूसरी ओर ध्वन्यात्मक और कलात्मक भी है। रश्मिरथी का अर्थ है—किरणों के रथ पर आरूढ़ व्यक्ति। कर्ण को रश्मिरथी कहना सर्वथा सार्थक है। वह सूर्य के अंश से उद्भूत ही नहीं वरन् सूर्य की भाँति ही तेजोमय एवं ओजपूर्ण भी है। काव्य के अन्तिम सर्ग में कर्ण की मृत्यु पर कवि ने आलोक-स्पन्दन के रूपक द्वारा रश्मिरथी शब्द की सार्थकता प्रस्थापित की है।[4]

सर्ग-योजना

'रश्मिरथी' में सात सर्ग हैं। सर्गों का विभाजन कथाविकास के आधार पर किया गया है। सर्गों का नामकरण न करके उनका विभाजन संख्यागत आधार पर किया गया है। प्रत्येक सर्ग में पूर्वापर सम्बन्ध और अन्विति है।

---

१ रश्मिरथी षष्ठ सर्ग पृ० १३४
२ वही वही, पृ० १५०
३ वही पंचम सर्ग पृ० ८५
४ वही सप्तम सर्ग पृ० १६७

भाषा–शैली

रश्मिरथी' की रचना खड़ी बोली हिन्दी में हुई है। काव्य में खड़ी बोली के प्रचलित एवं सहज रूप का प्रयोग किया गया है। वीररस प्रधान कृति होने के कारण भाषा ओजमयी है। अनेक स्थलों पर भाषा प्रसादगुण सम्पन्न भी है। दिनकर जी ने संस्कृत गर्भित शब्दावली और समासपूर्ण पदरचना का प्रयोग न करके स्वाभाविक लाक्षणिक पदों की योजना, लोकोक्तियों एवं मुहावरों के प्रयोग, अलंकार-विधान एवं शैलीगत प्रसाधना द्वारा भाषा को आकर्षक बनाया है। प्रसंगानुकूल भाषा का रूप कहीं तत्सम, कहीं तद्भव और देशज शब्द प्रयोगों से युक्त है। उदाहरणार्थ भाषा का तत्सम रूप निम्नांकित पंक्तियों में द्रष्टव्य है —

'चिंता प्रभूत, अत्यल्प हास,
कुछ चाक्चिक्य कुछ क्षण विलास। १

अथवा

हेषा रथादव की चक्र रार, दन्तावल का बृंहित अपार,
टंकार धनुर्गुण की भीषण, दुर्मद रणशूरों की पुकार।'२

भाषा का ओजमय रूप तो काव्य में कहीं भी देखा जा सकता है। मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा की शक्ति बढ़ी है। यथा —

गुन्डी में रखती चुन चुन कर बड़े कीमती लाल।३
'कोई न कहीं भी चूकेगा सारा जग मुझ पर थूकेगा।'४
धिक्कार नहीं तो मैं क्या और सुनूंगी ?
'कांटे बोये थे कैसे कुसुम चुनूंगी ?५

'रश्मिरथी' में हिन्दी से इतर भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। यथा—

संस्कृत के — गरवर, विल्विष विभ्राट हेषा, बृंहित आदि।
उर्दू के – शाबाश, रोज, कुर्बानी, आखीर खातिर आदि।

इसी प्रकार समां, बिमात अवसेर जैसे तद्भव शब्दों का प्रयोग हुआ है। 'रश्मिरथी' की शैली में प्रवाह६ और प्रसंग गर्भत्व७ दोनों गुण विद्यमान हैं।

---

१ रश्मिरथी तृतीय सर्ग पृ० ५३
२ वही सप्तम सर्ग पृ० १६३
३ वही प्रथम सर्ग पृ० १६
४ वही तृतीय सर्ग पृ० ४८
५ वही पंचम सर्ग १०२
६ वही, तृतीय सर्ग पृ० ४९
७ वही, चतुर्थ सर्ग पृ० ६१

अलकारा के स्वाभाविक प्रयोग से भी 'रश्मिरथी' की भाषा आकर्षक और भाषा सजीव बनी है।

अलकार-विधान

'रश्मिरथी' म अलकारो का प्रयोग भाषा की शक्ति सवर्धित करने के लिए हुआ है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं –

अनुप्रास —

सोने के दो कलश शिखर–सम सुगठित सुघर सुवर्ण।[1]
जगत से ज्योति का जेता उठा है।[2]

उपमा

'वन्य कुसुम सा खिला कण जग की आँखों से दूर[3]

अथवा

'कटि तक डूबा हुआ सलिल म किसी ध्यान म रत सा
अम्बुधि म आकटक निमज्जित कनक–खचित पवत सा।[4]

उत्प्रेक्षा

'चमक रहा तण-कुटी-द्वार पर एक परशु आभाशाली
लौह दड पर जडित पडा हो मानो अध अशुमाली।'[5]

अन्योक्ति

'प्रासादो के कनकाभ शिखर,
होते कबूतरो के ही घर ,
महलो म गरुड न होता है ,
कचन पर कभी न सोता है।

बसता वह कही पहाडो मे
शैला की फटी दरारो मे।[6]

---

१ रश्मिरथी प्रथम सग पृ० ६
२ वही सप्तम् सग पृ० २०३
३ वही प्रथम सग पृ० २
४ वही द्वितीय सग पृ० ६३
५ वही प्रथम सग पृ० ११
६ वही तृतीय सग पृ० ५४

अर्थान्तरन्यास

पर जानें क्या नियम एक अद्भुत जग म चलता है
भोगी सुख भोगता तपस्वी और अधिक जलता है।
हरियाली है जहा, जलद भी उसी खण्ड के वासी
मरु सी भूमि मगर रह जाती है प्यासी की प्यासी।''[1]

विरोधाभास

जन्मा लेकर अभिशाप हुआ वरदानी।
आया बन कर कगाल कहाया दानी।'[2]

दृष्टांत

पर समझ गई वह मुझको नही मिलेगा
बिछुडी डाली पर कुसुम न आन खिलगा। [3]

अतिशयोक्ति

तिलभर भी भूमि न कही, खडे
हों जहा लोग सुस्थिर क्षण भर
सारी रण–भू पर बरस रहे
एक ही कण के बाण प्रखर। [4]

रूपक अलकार के सुन्दर प्रयोग अन्तिम सग म दृष्टव्य हैं।[5]

इस प्रकार नाना अलकारा की सफल योजना कवि दिनकर की कला शक्ति का जीवत प्रमाण है। काव्य म भाषा की प्रकृति और प्रसग के अनुरूप सार पादाकुलक रूपमाला आदि छन्दो का प्रयोग हुआ है शिल्पविधि की दृष्टि स रश्मिरथी सफल महाकाव्य है। उसका अन्तरग (भावपक्ष) और बहिरग (कलापक्ष) दोनो समृद्ध हैं।

ऊर्म्मिला

प्रकृति-चित्रण

ऊर्म्मिला महाकाव्य के प्रत्येक सग म प्रकृति का किसी न किसी रूप म चित्रण हुआ है। प्रथम सग मे जनकपुरा का वणन करते हुए कवि न पुर का प्राकृ-

---

१ रश्मिरथी चतुथ सग पृ० ५८
२ वही, पचम सग पृ० ९३
३ वहा वही पृ० १००
४ वही षष्ठ सग पृ० १४६
५ वही सप्तम सग पृ० १९८

तिक छटा का अकन किया है। जनकपुरी रम्य उद्यानो एव वाटिकाओ स सजी हुई एसी प्रतीत होती है माना कोई मोद मुग्धा नवल तरुणी हो।[1] वहा की पुर वाटिका की डालो डालो मधुर स्वर से गूँज रही ह। प्रोस बिन्दुओं स युक्त टहनि या मद्य स्नाता सद्य लग रही हैं।[2] काव्य म प्रकृति चित्रण की सभी प्रणालिया को नवीन जी न अपनाया ह। यथा –

आलम्बन रुप मे

गाधार देश की प्राकृतिक सुषमा का वणन करत हुय जनकनन्दिनी कहती है —

> रगमच गाधार दश था चिर नत्त की प्रकृति का,
> जहा खल होता रहता था प्रकृति नटी का कृति का,
>
> + + +
>
> पवत पादस्था उपत्यका शोभित यो होती थी
> आरोहण की लय अवरोहण मे माना सोती थी,
> ऊपर स भरन गाते थे नीचे से सब पक्षी,
> माना लगा रहे थे प्राणो के पण प्रान विपक्षी[3]

सवेदनात्मक रूप मे

नवीन जी ने प्रकृति और मानव हृदय का सामजस्य निरुपित करते हुये प्रकृति को सवेदनात्मक रुप म चित्रित किया है। जसे—

> सन्ध्या की थपकी दे के चुपके से गोद सुलाती
> आती है करुण तमिस्रा निज अ चल छोर डुलाती
> निशि के अ धियारे म है, सचित दुख की परछाई,
> इस घनी कालिमा म हैं, चिर विप्रयोग की झाई।[4]

उद्दीपन रुप मे

इस पद्धति द्वारा द्वितीय सग मे प्रकृति–चित्रण हुआ है। लक्ष्मण–उर्मिला के मिलन के अवसर पर सम्पूण प्राकृतिक वातावरण मादक दिखाई देता है –

> पवन डगमग पग धरतो वही सकुचित कलिया कुछ हिल उठी,
> हृदय म धारे रेणु पराग ऋतुमती के रज सी खिल उठी,

---

१ उर्म्मिला प्रथम सग पृ० १५
२ वहा वही पृ० १६
३ वही प्रथम सग प० ३४
४ वही चतुथ सग पृ० २६३

चहकने लगे विहगम व द महक उटठे नव कालिका गुच्छ,
दहकन लगी हृदयकी आग भस्म हो चला काम वह तुच्छ।'[१]

आलकारिक रुप मे

'प्राची दिशा वधूटी के सम श्री ऊर्म्मिला वधू के लोचन
कुछ कुछ उन्मीलित हैं, उनम छाए हैं लक्ष्मण रवि रोचन
अभी मास के ओभल हैं व यथा प्रात से पूव दिवाकर
आ पहुचा आलोक ऊर्म्मिला के कपाल के फुल्ल कमल पर।[२]

उपयु क्त पद्धतियो के अतिरिक्त पष्ठभूमि का निर्माण करन वाली शक्ति के रुप म भी प्रकृति चित्रित की गई है। प्रकृति का रौद्र रूप काव्य म अ कित नहीं हुआ है।

रसपरिपाक और भावचित्रणकौशल

उर्म्मिला श्र गारस प्रधान महाकाव्य है। उर्म्मिला के विरह की प्रधानता के कारण श्र गार के अ तगत भी विप्रलम्भ पक्ष को प्रधानता मिली है। श्र गार के सयोग–वियोग पक्षो के अतिरिक्त काव्य म करुण, वात्सल्य हास्य वीर, रौद्र आदि रसो का भी यथाप्रसग परिपाक हुआ है।

सयोग श्र गार

काव्य के प्रथम और द्वितीय सर्गो म सयोग श्र गार के सु दर चित्र हैं। लक्ष्मण–उर्मिला के मिलन मे रति–भाव की सु न्दर व्यजना हुई है। यथा–

'रखा लक्ष्मण न मस्तक आन–उर्म्मिला की जघा पर और
मू द कर नत्र बढा दी भुजा प्रियतमा की ग्रीवा की ओर,
डोर अरुभा क्रीडा की रम्य, रमण के सुरफ गये सब तार
थकित क्रीडा रस भुक रही मेघ ज्यो भुक आय दा चार।[३]

उपयु त प्रसग म लक्ष्मण उर्म्मिला आश्रय और आलबन हैं। प्राकृतिक वातावरण और रूप–सौ दय उद्दीपन विभाव हैं लज्जा और हष आदि सचारी भाव हैं। मस्तक जघा और भुजा का ग्रीवा की ओर ले जाना अनुभाव है। य सब मिलकर रति नामक स्थायी भाव को पुष्ट करते हैं।

---

१ उर्म्मिला, द्वितीय सग पृ० १२४
२ वही द्वितीय सग पृ० ९७
३ वही, द्वितीय सग, पृ० १२९

वियोग शृ गार

ऊर्म्मिला की विरह वेदना काव्य के पचम सग म व्यक्त हुई है। इस सग क प्रत्येक दोहे म विप्रलम्भ शृ गार की रससिक्ता है। प्रिय के वियोग म ऊर्म्मिला की दशा का चित्र द्रष्टव्य है —

> झुलसत हिय, दहकत हृदय, आशा बरि बरि जात
> तडपत मन सूखत अधर रोम रोम मुरझात।[1]

करुण

विप्रलम्भ और करुण परस्पर सहयोगी रस है। वियोगिनी ऊर्म्मिला की शोकाकुल दशा का चित्रण कवि ने इस प्रकार किया है —

> यो उमड रही है करुणा ऊर्म्मिला बहु के आगन,
> हिय म निदाघ रहता है नयनों मे बसता सावन,
> इस विरहज य तडपन म नि सीमित करुण उमडो,
> पीडा छाई जनपद मे वन बसा, अयोध्या उजडी[2]

वात्सल्य

ऊर्म्मिला और सीता के बाल्यकाल की भाकिया प्रस्तुत करते हुये कवि ने वात्सल्य रस का निरूपण किया है। दोनो बालिकाओ के प्रति जनक-पत्नी सुनयना के मन म वात्सल्य का अमित भाव विद्यमान है।

> अपनी दोनो ललियो की सुन बातें प्यारी प्यारी
> उस रानी ने अपनी सुध बुध सभी बिसारी,
> दोनो को दोना हाथा से खीच लिया गोदी म
> दोनो ने मिलकर जननी का नेह पिया गोदा मे।[3]

हास्य

ऊर्म्मिला महाकाव्य मे हास्यरस के दो स्थल हैं। प्रथम ऊर्म्मिला शत्रुघ्न का सवाद द्वितीय सग म[4] और लक्ष्मण सीता सवाद अ तिम सग म। पुष्पक विमान म बटकर लका स लौटते हुय देवर लक्ष्मण को चुपचाप बठे देखकर सीता ठिठोली करती हुई कहती हैं कि कसे खाय खोये से हो रहे हो कोई वनबाला तो मन मे महा बस गई। तभी लक्ष्मण ने कहा —

---

१ ऊर्म्मिला पचम, सग, ४३७
२ वही चतुथ सग पृ० ३८७ ३८८
३ वहा प्रथम सग पृ० ६१
४ वही द्वितीय सग, पृ० १००

"भाभी, यदि ऐसी ही भोली, होती ये विदह ललिया,
यदि या सहज छोड देती य, रघुकुलजा का हिय ग्रासन,
तो क्यों ग्राज लका म होता, वधु विभीषण का शासन ?
वाव दाशरथिया का रखती, हैं विदह की नदिनिया,
बडी चतुर हो तुम मैथिलिया, हो तुम सबमायाविनिया।"[1]

इसी प्रकार शान्ता ननद ग्रौर ऊर्मिला के पारस्परिक सवाद म भी हास्य की सुदर छटा है।[2]

वीर

गाधार देश की राजकुमारी के उद्बोधनात्मक कथन म वीररस के स्थायी भाव उत्साह का व्यजना हुई है —

'कहे न कोई ग्राय देश की ललनाए कायर हैं
दिखला दो तुम हृदय तुम्हारे मृदु हैं पर पत्थर हैं।
कस लो वेणी, कटि पट बाघा, ल लो घ वा भाले,
चलो, करो ऐसे प्रहार जो ग्ररि के हिय मे शाल।[3]

इस प्रकार ऊर्मिला महाकाव्य म विप्रलम्भ शृगार की प्रधानता होते हुये भी ग्रय रसा का समुचित ग्रनुपात मे परिपाक हुग्रा है।

नामकरण

'ऊर्मिला' महाकाव्य का नामकरण पात्रगत ग्राधार पर हुग्रा है। ऊर्मिला प्रस्तुत महाकाव्य की नायिका है। काव्य की रचना उसी के चरित्र की महत्ता क प्रतिपादन हतु हुई है। गुप्त जी के 'साकेत' की रचना भी यद्यपि ऊर्मिला के चरित्रोद्धार की प्ररणा से हुई थी किन्तु वहा काव्य क नामकरण ग्रौर चरित्र दोनो मे ही ऊर्मिला को वह प्रामुख्य नही मिला है जो नवीन कृत ऊर्मिला महाकाव्य मे प्राप्य है। ग्रस्तु, काव्य रचना के उद्देश्य ग्रोर प्रतिपादन दोनो ही दृष्टिया स प्रस्तुत महाकाव्य का नामकरण सार्थक है।

सर्ग योजना

'ऊर्मिला' महाकाव्य छह सर्गों म विभक्त है। प्रत्यक सग म कलात्मक प्रसगा के ग्रनुरूप उपशीर्षक भी दिये गये हैं जस प्रथम सग मे—प्रोत्साहन, प्रार्थना, ध्यान, पुरप्रदक्षिणा जनकपुर प्रवेश, प्रासाद प्रागण ग्रादि। प्रत्येक सग का पृथक से नाम

---

१ ऊर्मिला षष्ठ सग, पृ० ५९३
२ वही द्वितीय सग पृ० ११३ ११४
३ वही, प्रथम सग पृ० ४०

करण नहीं किया गया है किन्तु चतुर्थ और षष्ठ सर्गों के शीर्षक क्रमश 'विरह मीमांसा' और 'पूर्ण प्रणाम' दिए गये हैं। सर्ग योजना यद्यपि क्रमानुक्रम से की गई है तथापि सर्ग योजना में जिस प्रबन्धात्मकता की अपेक्षा की जाती है उसका 'ऊर्मिला' महाकाव्य में अभाव है।

भाषा शैली

'ऊर्मिला' महाकाव्य में संस्कृत गर्भित खड़ी बोली का प्रयोग हुआ है। काव्य के पंचम सर्ग में ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है। 'ऊर्मिला' महाकाव्य की भाषा प्रसंग के अनुरूप अलंकृत दिखाई देती है। उदाहरणार्थ द्वितीय सर्ग में भाषा का रूप प्रसाद गुण सम्पन्न है। यहां लक्ष्मण ऊर्मिला के मिलन प्रसंगों को अंकित किया गया है। जैसे—

'मिलूं मैं तुम में। मुझ में आन घुलो तुम ज्यों कि सिता की कनी,
पल्लवित हो मम पादप प्राण, खिलो उसमें तुम कलिका बनी।"[1]

किंतु जहां कवि का लक्ष्मण ऊर्मिला के महामिलन का चित्र अंकित करता है वहां भाषा का रूप गाम्भीर्य से बोझिल हो गया है —

'निम्नगा वृत्ति हुई म्रियमाण,
ऊर्ध्व आकृष्ट हो गये प्राण,
हुए रज तम के कुण्ठित बाण
हो गया लखन ऊर्मिला त्राण।[2]

संस्कृत के प्रचलित अप्रचलित शब्दों का प्रयोग ऊर्मिला के कवि ने स्वतन्त्रता-पूर्वक किया है। जैसे क्वासि, यः कश्चित, अच्छेद्य, मम त्वम् आदि। अनेक स्थलों पर संस्कृत पदों का यों का त्यों प्रयोग हुआ है। यथा—

'सेवा धर्म परम गहनो योगिनामप्य गम्य'[3]
स्वर्गादपि गरीयसी,[4] एकोऽहं सोऽहम्[5] आदि।

ब्रजभाषा में पंचम सर्ग लिखा ही गया है। साथ ही ब्रजभाषा के अनेक शब्द जैसे लल्ला, निरी, कोऊ, होले होले आदि काव्य में अन्यत्र भी व्यवहृत हुये हैं। उर्दू के प्रचलित शब्द जैसे खास, तड़प, मंज़िल, कंजूस आदि का भी प्रयोग हुआ है। भाषा में रोचकता लाने के लिये प्रचलित लोकोक्तियों एवं मुहावरों का

१ ऊर्मिला द्वितीय सर्ग पृ० १४१
२ वही द्वितीय सर्ग पृ० १५४
३ वही प्रथम सर्ग पृ० १९
४ वही द्वितीय सर्ग पृ० ४१
५ वही द्वितीय सर्ग पृ० १४८ २६६

भी प्रयोग हुआ है। 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य की भाषा का सबसे प्रमुख गुण उसकी व्यजना शक्ति है।

ऊर्म्मिला काव्य की शैली मे नवीनता और प्राचीनता का समन्वय है। काव्य म गीति, नाट्य, सलाप आदि विभिन्न शलियो का प्रयोग हुआ है। प्रथम से तृतीय सग तक सवध शलो है। चतुथ और पचम सर्गों म गीत शला है। पचम सग म दोहा, सोरठा आदि का प्रयोग प्राचीनता का प्रतीक हैं।

'ऊर्म्मिला महाकाव्य की भाषा शली के प्रसाधन अलकार हैं। काव्य म अलकारो का प्रयोग सौन्दर चित्रण और भाव-सयोजन म सहायक है मुख्य रूप से उत्प्रेक्षा, उपमा, सन्देह रूपक आदि अलकारो का स्वाभाविक और सशक्त प्रयोग है। सर्वाधिक प्रयोग उत्प्रेक्षा अलकार का हुआ है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है —

> "सद्य स्नाता सदृश, टहनी बिन्दुओ से भरी है,
> मानो धीरा अचल वसुधा अघ्य लेके खडी है।'[1]

नवीन उपमायें कवि की कल्पना प्रवणता की प्रतीक हैं। उदाहरणाथ प्रथम सग म ऊर्म्मिला की दोना वेणियो की उपमा अनेक उपमाना से दी है।[2]

'ऊर्म्मिला महाकाव्य के प्रत्येक सग म अलग छन्द का प्रयोग किया गया है। दोहा, सोरठा और शादूल विक्रीडित छन्दो का प्रयोग प्रसगानुकूल है। चतुष्पदी मात्रिक छन्दो का प्रयोग एकाधिक सर्गों म हुआ है। सर्गांत छद परिवतन नियम का अनुपालन भी कतिपय सर्गों में हुआ है।

समष्टि रूप मे प्रौढ भावपूण और अलकृत भाषा, विराट कल्पना वभव और रससिक्तता जहा ऊर्म्मिला' महाकाव्य की शिल्पगत उपलब्धिया हैं वही प्रबध त्व–निर्वाह म शथिल्य, भाषा के दो रूपा का और तुकांतता का आग्रह कतिपय अभाव भी हैं।

एकलव्य

प्रकृति-चित्रण

'एकलव्य' महाकाव्य मे प्रकृति का सजीव चित्रण हुआ है। काव्य म प्रात, सन्ध्या, रात्रि, ऋतु वन, उपवन आदि के चित्रण साथ मानवीय मनोभावो एव प्रकृति के सामजस्य का निरूपण करने में भी एकलव्यकार सफल सिद्ध हुआ है।

काव्य के द्वितीय सग से ही प्रकृति के सुन्दर चित्र दृष्टिगत होने लगते हैं। हस्तिनापुरी का वणन कवि ने कानन कुसुम के रूप मे किया है। इसी प्रकार वहा की

---

१ ऊर्म्मिला प्रथम सग पृ० १६
२ वही वही पृ० २५

राजसभा का चित्रण प्रकृति प्रतीकों के माध्यम से किया है।[1] कुरुराज, धृतराष्ट्र, द्रोण, भीष्म पितामह आदि के व्यक्तित्व का निरूपण भी प्राकृतिक उपमाओं द्वारा किया गया है।[2]

पंचम सर्ग में प्रकृति के अनेक रमणीय चित्रण हैं। इस सर्ग के प्रारम्भ में सूर्योदय वर्णन है —

दिवस-सरोरुह की एक खुली पखुड़ी
पद्मराग-जैसी रवि कोर दिखी प्राची में।

+ + +

फूल खिले मानो वे स-हास खिले मुख हैं
पहत सुगंधि के है छन्द अली कंठ से।

+ +

रवि-रश्मियाँ उठीं ज्यों सूचों-मख तीर हो
छूटने ही वाले हो जो क्षितिज के चाप से।[3]

अष्टम् सर्ग में एकलव्य-जननी की पुत्र-वियोग-जन्य वेदना का वर्णन करते हुये षडऋतु वर्णन का अवकाश कवि को मिल गया है।[4] संकल्प और साधना नामक सर्गों में एकलव्य की साधना भूमि वन्य प्रदेश का वर्णन करते हुये वर्मा जी ने प्रकृति का मानवीय रूप में चित्रित किया है। कवि के शब्दों में निर्जन अरण्य भूमि अन्धी वृद्धा के समान है जो शून्य में विवश एकान्त बैठी हुई है। वहाँ के पेड़ अष्टावक्र के समान हैं जो जनक-विदेह की सभा में शास्त्रार्थ हेतु ध्यान मुद्रा में खड़े हैं। झाड़ियाँ के झुंड जैसे वीतरागी सन्त हैं जो शीश झुकाकर चिन्तन में लीन हैं। भूमि में छिपे हुये अपार कुश कंटक उदासीन माता के उद्दण्ड बालकों के समान हैं जो चुपचाप लोगों के पैरों में चुभकर कष्ट देते हैं।[5] इसी क्रम में प्रकृति का अलंकृत रूप में भी चित्रण हुआ है। यथा—

और ये शिला के खंड फल हुए ऐसे हैं
जैसे कष्ट पुंजीभूत होके यहाँ बैठा है।

---

१ एकलव्य परिचय सर्ग पृ० ८ २९
२ वही वही पृ० ३० ६१
३ वही प्रदर्शन पृ० ९७
४ वही, ममता पृ० १५६ से १६०
५ वही नवम् सर्ग संकल्प पृ० १७४

अथवा शोभाग्नि के अंगार हैं बुझे हुए
या कि भूमि–भाग्य के ये कठिन कुम्भ क हैं।"[१]

परिगणन प्रणाली द्वारा भी एकलव्य मे प्रकृति वर्णन हुआ है। यथा–

कुरवक, यूथिका, रसाल मंजरी सजे,
मौलश्री, अशोक कामदेव के विशिख हैं।[२]

स्वप्न सर्ग मे प्रकृति के उग्र रूप का भी चित्रण है–

'प्रकृति म क्रांति है। अशान्त आधी रात है।
झोंके झूमते हैं। तरु – पत्र हाहाकार में
+ + +
अंधकार की असीम कालिमा क क्रोड म
क्रूरता का कोश लिए घन घिर आये हैं
+ +
नभ म प्रचंड ध्वनि जसे चूर – चूर हो
छिटक गई ह दूर दूर की दिशाओं म।
जसे नभ खंड खंड होके टूटता सा ह
विद्युत – तड़प म दरार दीख जाता है।[३]

काव्य के अंतिम (दक्षिणा) सर्ग मे प्रकृति को उपदेशात्मक रूप मे चित्रित किया गया ह।

इस प्रकार एकलव्य म प्रकृति को उसका सम्पूर्ण रूपों म अंकित किया गया ह। प्रस्तुत महाकाव्य क प्रकृति चित्रण की उल्लेखनीय विशेषता यह है कि वातावरण और पृष्ठभूमि के निर्माण म प्रकृति का महत्वपूर्ण योगदान रहा ह

रसपरिपाक और भावचित्रण कौशल

चिंतन तत्त्व की प्रधानता होने हुये भी एकलव्य' म भावो की सुंदर व्यंजना हुई है। भावनाओं का काव्य म मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रतिपादन हुआ है। एकलव्य भक्तिरस का महाकाव्य है। प्रारम्भ से अंत तक एकलव्य की गुरुभक्ति भावना का काव्य मे अक्षुण्ण प्रवाह है।

काव्यशास्त्र' मे जिन नवरसो का उल्लेख किया गया है, उनम 'भक्ति' रस को सम्मिलित नही किया गया है। वहा रति नामक भाव के तीन रूप माने गय

---

४ एकलव्य नवम् सर्ग-संकल्प पृ० १७४
१ वही, साधना सर्ग पृ० २०१
२ वही स्वप्न सर्ग पृ० २१५
३ वही, दक्षिणा सर्ग पृ० २७६

हैं—प्रथम प्रियविषयक रति जो शृंगाररस का स्थायी भाव है। दूसरी पुत्र विषयक रति जो वात्सल्य भाव (रस) का स्थायी भाव है। तीसरी देव या गुरु विषयक रति जिसे श्रद्धा या भक्ति-भाव कहते हैं। भक्ति इतना महत्वपूर्ण भाव है कि कालान्तर में इसे स्वतन्त्र रस के रूप में स्वीकृति प्रदान की गई। काव्यशास्त्र के अनेक आचार्यों ने भक्तिरस की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार की है।[1]

एकलव्य का चरित्र गुरुभक्ति का देदीप्यमान प्रतीक है। राजगुरु द्रोण द्वारा शिष्य-रूप में अस्वीकृत किये जाने के पश्चात भी एकलव्य ने द्रोणाचार्य को निष्ठापूर्वक गुरु रूप मे वरण कर लिया। द्रोणाचार्य की मृण्मयी प्रतिमा बनाकर अहर्निश साधना कर अभूतपूर्व धनुर्विद बना। किन्तु अन्त में गुरु के इस प्रण की पूर्ति के लिये कि अर्जुन अद्वितीय धनुर्धर रहे, एकलव्य ने अपना दक्षिणांगुष्ठ काट कर समर्पित कर दिया और गुरुभक्ति का अनुपम आदर्श प्रस्तुत किया। एकलव्य' महाकाव्य के दक्षिणा सर्ग में भक्तिरस की स्रोतस्विनी प्रवहमान है। एक अंश द्रष्टव्य है —

गुरु का हृदय खड-खड हो असाव।
दक्षिणांगुष्ठ ही हो खड खड मेरा जो कि
पार्थ को बना दे अद्वितीय धन्वी विश्व में।
गुरु प्रणपूर्ति करे सब काल के लिये,
जय गुरुदेव ! यह रही मेरी दक्षिणा।'[2]

एकलव्य का दक्षिणांगुष्ठ-समर्पण उसकी सम्पूर्ण जीवन साधना का समर्पण था। इससे बड़ी गुरु दक्षिणा की कल्पना की नहीं जा सकती। इस प्रकार सम्पूर्ण काव्य मे भक्तिरस का सुन्दर परिपाक हुआ है।

वात्सल्य—एकलव्य जननी के माध्यम से काव्य में वात्सल्य रस की व्यंजना हुई है। काव्य का अष्टम् अर्थात् 'ममता' सर्ग वात्सल्य रस का ही उदाहरण है। सम्पूर्ण सर्ग में 'स्मृति' नामक संचारी भाव के द्वारा एकलव्य जननी के मातृत्व-भाव की अभिव्यक्ति हुई। यथा—

'मैं भी साथ तुम्हारे जाती।
उषा-काल में तुम्हें उठाने,
मधुर प्रभाती गाती।
तुम उठते करते प्रणाम,
मैं उर से तुम्हें लगाती॥[3]

---

१ डा० गोविंद त्रिगुणायत—शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत, भाग १ पृ० १९८
२ एकलव्य-दक्षिणा सर्ग, पृ० २९६
३ वही —ममता सर्ग, पृ० १४९

वीर

एकलव्य के अदम्य उत्साह की व्यंजना म वीर रस के उदाहरण द्रष्टव्य हैं। इस दृष्टि से साधना सर्ग[1] तथा लाघव और द्वन्द्व नामक सर्गों के कतिपय स्थल उल्लेखनीय हैं।

रौद्र

नीचे एक अंश उद्‌धृत है जिसमे द्रोणाचार्य के उग्र रूप मे रौद्र रस की अभिव्यक्ति हुई है —

"दात वज्र जसे संधि हीन कसे मुख म,
ओठ भूमि-कप से फटे हुये शिखर से
जीभ जसी सर्पिणी सी ऐंठी निज बाबी में,
स्वेद ज्से आग की नदी बही हो सिर से।
शब्द विष की प्रचंड ज्वाला में बुझे हुए,
\+ \+ \+
द्रोण धूमकेतु जस अग्निमय हो उठे।[2]

करुण

'ममता' सर्ग मे एकलव्य जननी की शोकाकुल दशा के चित्रण में करुण रस की व्यजना हुई है।[3]

उपर्युक्त रसो के अतिरिक्त अद्‌भुत[4] और शात रस के निर्वेद स्थायी भाव[5] का निरूपण यथा प्रसग काव्य में उपलब्ध है। शृगार रस का 'एकलव्य' में अभाव है। 'एकलव्य महाकाव्य की रस व्यजना की विशेषता यह है कि उसमे विभिन्न भावो की प्रसगानुकूल मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। चाहे वे भावरस दशा तक कही कही न भी पहुँचे हो। इन भाव दशाओं की योजना मनोवैज्ञानिक ढग से हुई है।

नामकरण

एकलव्य' महाकाव्य का नामकरण पात्रगत आधार पर हुआ है। नामकरण में यद्यपि कोई नवीनता नही है तथापि काव्य के उद्देश्य, कथाविधान एव चरित्र तत्त्व की दृष्टि मे नामकरण सार्थक है।

---

१ एकलव्य, साधना सर्ग, पृ० १८९, १९०
२ वही , परिचय सर्ग, पृ० ५०, ५१
३ वही , ममता सर्ग, पृ० १६६ १६७
४ वही , परिचय सर्ग, पृ० ११
५ वही , साधना सर्ग, में

सर्ग योजना

एकलव्य में चौदह सर्ग हैं। प्रथम सर्ग से पूर्व 'स्तव' है जिसमें कवि ने शिव का स्तवन किया है। यह सामान्यतः मंगलाचरण का ही दूसरा रूप है। सर्गों की संख्या भी दी गई है और प्रत्येक सर्ग का नामकरण भी किया गया है। सर्गों के नामकरण में आकर्षण और नवीनता है। सर्गों का क्रम कथाविन्यास के अनुरूप है।

भाषा शैली

एकलव्य की भाषा तत्सम, अलंकृत, विषयानुकूल एवं प्रवाहपूर्ण है। सामान्यतः एकलव्य की भाषा प्रसाद गुण सम्पन्न है। भाषा में भावाभिव्यक्ति की पूर्ण सामर्थ्य है। काव्य के गहन विषयों को भी सुगम शैली एवं सरल भाषा के माध्यम से प्रस्तुत करने में एकलव्यकार सफल रहा है। जहाँ कहीं एकलव्य की तेजस्विता एवं दर्प का वर्णन करना है वहाँ भाषा ओजगुण सम्पन्न हो गई है। ममता सर्ग में एकलव्य जननी के हृदयोद्गारों की व्यंजना में भाषा माधुर्य गुण सम्पन्न भी दिखाई देती है। अलंकारों के समुचित प्रयोग, शैली की सजीवता, नाटकीयता एवं सम्प्रेषणीयता आदि गुणों के कारण एकलव्य की भाषा सजीव और सशक्त है।

एकलव्य में सबसे अधिक नाटकीय शैली का प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त वर्णनात्मक, सबोधन सूचक, आत्मकथात्मक तथा संवादात्मक शैलियों का भी प्रयोग हुआ है। अष्टम सर्ग में गीत शैली का प्रयोग हुआ है। काव्य की शैली में कवि की गूढ़ से गूढ़ कल्पनाओं को अभिव्यक्ति देने की क्षमता है।

अलंकार-योजना

एकलव्य की भाषा शैली के प्रसाधन अलंकार हैं। एकलव्य में सभी प्रकार के अलंकारों का प्रयोग हुआ है। कुछ प्रमुख अलंकारों के उदाहरण निम्नांकित प्रकार हैं —

उपमा

> श्याम वर्ण किन्तु है प्रदीप्त मुख उनका।
> जैसे श्याम तारिका में कांतिमयी दृष्टि है।[1]
> आश्रम था हीन जैसे चन्द्र का ग्रहण हो।[2]

रूपक

> आधी रात बीती। निद्रा जैसे एक माता है
> जग शिशु को सुलाए स्वप्न सेजें अंक में।

---

१ एकलव्य परिचय सर्ग पृ० ३१

२ वही वही पृ० ३७

उसको निहारती है, शात मौन भाव से,
अपन सहस्र नेत्र–तारको की दृष्टि से ।'[१]

श्लेष

'किन्तु परिहास के विवादी स्वरालाप से,
विकृत न होगा उठा उर म जो राग है ।'[२]

मानवीकरण

भूमि भाति भाति के सु–छत्र ।कये धारण,
राजमहिषी की भाति राजती थी राग से,
स्वण मच मानों अलकार ये सुदेश म ।
प्रेक्षागार चन्त्रित भुजग सा पडा हुआ' ।[३]

एकल-य' म उपयु क्त उल्लिखित अलकारा के अतिरिक्त अपनुहुती विभावना और व्यतिरेक के भी उदाहरण मिलते हैं ।

छन्द–विधान

एकलव्य मे अष्टम (ममता) सग को छोड कर शेष सर्गो मे १५ वर्णों वाले अभिताक्षर छ-द का प्रयोग किया गया है । यह सस्कृत का ही एक प्राचीन छ-द है जिसम १५ वण होते हैं । इस छन्द की विशेषता यह है कि एक पूरा वाक्य एक पक्ति मे भर जाता है लघु –गुरु और तुक आदि का प्रतिबध न होने के कारण इस छ-द के द्वारा गति का कवि स्वेच्छानुसार द्रुत या म-थर कर सकता है । जस –

घाषणा के साथ ही प्रविष्ट पाथ हो गये ।'[४]
'आधी रात बीती । निद्रा जसे एक माता है ।[५]

प्रत्येक सग के अ त मे कवि ने चार चरणो को तुकात रूप दिया है जिसके कारण सग की अ तिम चार पक्तिया उसी सग की शेष पक्तिया से अलग हो जाता

१ एकलव्य, सकल्प प० १७३
२ वही, धारण प० १३३
३ वही, प्रदान सग, प० ९९
४ वही, वही, पृ० १०८
५ वही सकल्प सा पृ० १७३

हैं। इस परिवतन से जहा एक ओर सगीत छन्द परिवतन की परम्परा का निर्वाह हो जाता है वही अ तिम छन्द प्रभावशाली भी प्रतीत होता है और सगीतात्मक सौन्दय मे वृद्धि भी होती है। 'एकलव्य' के सप्तम (धारणा) सग म तुकात अभिताक्षर छद का प्रयोग किया गया है। ममता' सग म गीता का रचना की गई है। इसलिये वहा मात्रिक छन्द का प्रयोग है। उसम सभी छन्द १६मात्राओ वाले हैं।

इस प्रकार 'एकलव्य' शिल्प-विधान की दृष्टिसे सफल रचना है। एकलव्य मे शिल्प तत्व के अ तरग बहिरग दोनो पक्ष समृद्ध और महाकाव्योचित गरिमा स पूण हैं।

पचम अध्याय

जीवन-दर्शन

भूमिका

इस अध्याय मे आलोच्य महाकाव्यों मे प्रतिपादित जीवनदर्शन का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यहा यह उल्लेखनीय है कि 'जीवनदशन' शब्द 'दशन' शब्द की अपेक्षा व्यापक है। 'जीवनदशन' से अभिप्राय कवि के सम्पूर्ण चिन्तनक्रम तथा काव्य के यथार्थिक पक्ष से है। दूसरे शब्दों में महाकाव्यकार का वह दृष्टिकोण जो दार्शनिक, सांस्कृतिक एव आध्यात्मिक सन्दर्भो से कृति मे प्रतिफलित होता है, 'जीवन-दशन' अभिधान से अभिहित किया जाता है। अस्तु, प्रस्तुत प्रकरण में जीवनदशन विषयक विवेचन करते समय सवप्रथम प्रत्येक महाकाव्य की सृजन प्रेरणा और रचना-उद्देश्य की महत्ता एव साम्यक्य पर विचार किया गया है। इस विवेचन मे यह मुख्य रूप से चिन्तनीय रहा है कि आलोच्य महाकाव्यो मे जिन सास्कृतिक, आध्यात्मिक एव दार्शनिक आदर्शों (सिद्धान्तों) की पुनप्रतिष्ठा की गई है वे कहाँ तक परम्परागत है और कहाँ तक प्रगतिशील अर्थात युगीन हैं। इसी क्रम मे महाकाव्यकारो की जीवन दृष्टि को प्रभावित करने वाली महत्त्वपूर्ण समकालीन विचारधाराओ के आदान का भी विवेचन किया गया है। तदनन्तर प्रत्येक महाकाव्य में प्रतिष्ठित चिरतन मानवीय जीवन मूल्यो का सधान किया गया है। जीवनदर्शन सम्बन्धी उपलब्धियो का मूल्यांकन भी मानवतावादी चिंतनधारा की प्रस्थापन विधि के आलोक में किया गया है।

प्रियप्रवास

महत् उद्देश्य और सृजन प्रेरणा

महाकाव्य के स्थायीतत्त्वों मे सवप्रमुख स्थान महान् उद्देश्य और महती प्रेरणा का है[1] आलकारिको ने महाकाव्य का उद्देश्य चतुवग की प्राप्ति कहा है। किन्तु धम अथ, काम मोक्ष आदि की प्राप्ति ही आज महत्वपूर्ण नही है। प्रत्येक महाकाव्य की रचना के मूल मे कोई न कोई महत प्रेरणा कायरत रहती है, जो सम्पूर्ण महाकाव्य के कलेवर म प्राण शक्ति के समान आदि से अन्त तक परिव्याप्त

---

1 डा० शम्भुनाथसिंह हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० २८४

रहती है। 'प्रियप्रवास' की रचना विश्वबंधुत्व की भावना और सार्वभौम आदर्श की स्थापना को लक्ष्यगत करके हुई है। स्वयं कवि की 'भूमिका' में प्रियप्रवास की रचना के सम्बन्ध में विभिन्न उद्देश्यों का उल्लेख किया गया है। सर्वप्रथम इस महाकाव्य की रचना खड़ी बोली में महाकाव्य लेखन की अभाव पूर्ति के रूप में हुई। जैसा कि कवि ने स्वयं कहा है—'खड़ी बोली में छोटे छोटे कई ग्रन्थ अब तक लिपिबद्ध हुए हैं परन्तु उनमें से अधिकांश सौ दो सौ पद्यों में ही समाप्त हैं।

इसलिए खड़ी बोलचाल में मुझको एक इस ग्रन्थ की आवश्यकता देख पड़ी, जो महाकाव्य हो ... अतएव मैं इस न्यूनता की पूर्ति के लिए कुछ साहस के साथ अग्रसर हुआ और अनवरत परिश्रम करके इस 'प्रियप्रवास' नामक ग्रन्थ की रचना की।'[1] इसके अतिरिक्त मातृभाषा हिन्दी की सेवा के लिए भी कवि ने इस काव्य का प्रणयन किया। 'प्रियप्रवास' की रचना का एक उद्देश्य यह भी था कि हिंदी के कवि और लेखक मातृभाषा हिन्दी को महाकाव्यों की रचना से सम्पन्न करें। हरिऔध जी ने स्वयं यह स्पष्ट किया है कि महाकाव्य का आभास स्वरूप यह ग्रन्थ १७ सर्गों में इस उद्देश्य से लिखा गया है कि इसको देखकर हिन्दी साहित्य के लब्ध प्रतिष्ठित सुकवियों और मुख्यों का ध्यान इस त्रुटि के निवारण करने की ओर आकर्षित हो।[2] 'प्रियप्रवास' की रचना के द्वारा हरिऔध जी ने इस तथ्य का भी स्पष्टीकरण किया है कि संस्कृतमयी खड़ी बोली ही राष्ट्रभाषा बनने के योग्य है उन्होंने काव्य की भूमिका में सतर्क प्रमाणित किया है कि संस्कृत गर्भित भाषा भारत वर्ष के अहिन्दी भाषी प्रान्तों के लिए सहज सुगम है क्योंकि—भारतवर्ष भर में संस्कृत भाषा आदृत है। बंगला, मरहठी, गुजराती वरन् तमिल और पंजाबी तक में संस्कृत शब्दों का बाहुल्य है।'[3] हरिऔधजी के इस कथन से स्पष्ट है कि वे 'प्रियप्रवास' जैसे ग्रन्थ की रचना द्वारा खड़ी बोली को राष्ट्रभाषा के गौरव से सम्मानित करना चाहते थे। 'प्रियप्रवास' के कवि की इच्छा यह भी थी कि संस्कृत वृत्तों में खड़ी बोली के माध्यम से काव्य की रचना की जाय।[4] इन सब कारणों के अतिरिक्त 'प्रियप्रवास' की रचना पौराणिक कथाओं की बौद्धिक व्याख्या के लिए भी हुई। पुराणों में वर्णित जिन कथाओं और अवतारों को लोग कपोल कल्पित कहकर त्याज्य मानते थे उन्हें कवि ने तर्क सम्मत एवं बुद्धि ग्राह्य रूप में प्रस्तुत करके तथा श्रीकृष्ण को महापुरुष के

---

१ प्रियप्रवास की भूमिका—काव्य भाषा, पृष्ठ २

२ वही, वही,—विचार सूत्र पृ० १

३ वही वही, पृ० २

४ वही, भूमिका—भाषा शैली, पृष्ठ ९

रूप म अ कित करके पौराणिकता की रक्षा की है[1] उपयु क्त विवरण स स्पष्ट है कि प्रियप्रवास की रचना खडी बोली के गौरव की प्रतिष्ठा, राष्ट्रभाषा प्रम पौराणिकता के प्रति वज्ञानिक दृष्टिकोण और कृष्ण के महत्त्व को महापुरुष के रूप म अ कित करन की दृष्टि स हुई है।

प्रियप्रवास' की रचना के जिन कारणो का ऊपर उल्लख किया गया है वे स्थूल एव बाह्य है। वस्तुत महाकाव्य की रचना महान् सास्कृतिक अनुष्ठान के रूप मे होती है। प्रत्यक महाकाव्य की रचना किसी महत उद्देश्य की प्राप्ति अथवा किसी महत्वपूर्ण सन्देश के प्रसारण के लिए होती है। प्रियप्रवासकार का मूल उददेश्य वतमान मानव के रिक्त एव आस्थाहीन हृदय को चरित्र एव विश्वास का बल प्रदान कर, सामाजिक जीवन के मूल्यगत सक्रमण और पतनान्मुखी प्रवत्तियो का लोक-कल्याण,परहित, एव कतव्यनिष्ठा की भावना द्वारा विरोध करना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कवि न एक ओर कृष्ण और राधा के पौराणिक स्वरूप का यथेष्ट रूप मे परिमाजन करके उन्हें लोकोपकारक एव लोक-सेविका के रूप म अ कित किया है तो दूसरी ओर राष्ट्र प्रम जातीय-गौरव लोकमगल विश्व-कल्याण एव उत्सग से पूर्ण युग की उन्नत विचार धाराओ एव जीवन पद्धतिया का निरूपण भी किया है। व्यक्ति के स्वार्थो को समाज के लिए बलिदान कर देन की भावना, विश्वबन्धुत्व के महान आदश एव स्वजातीय गौरव की जिन भावनाओ मे अनुप्रेरित होकर 'प्रियप्रवास' का सृजन हुआ है वह निश्चय ही काव्य के महत उददेश्य एव बलवती सजन प्रेरणा के द्योतक हैं।

२ सन्देश

'प्रियप्रवास मानवतावादी जीवन मूल्यो की प्रतिष्ठा और युगीन जीवनादर्शों की स्थापना के आग्रहों को पूर्ण करन के प्रयास म लिखा गया है। 'प्रियप्रवास के कवि न बौद्धिकता की अति मे आक्रान्त स्वार्थी विषयग्रस्त अनास्थावान एव स्वच्छन्द मानव समाज का परहित परोपकार, आस्था सयम कत्तव्यनिष्ठा एव स्वदेश प्रम का सन्देश दिया है। काव्य म स्वाथ की अपेक्षा परमाथ को भोगो की अपेक्षा त्याग को व्यक्तिगत हित की अपेक्षा जातीय एव राष्ट्रीय हितो को श्रेयस्कर बताया गया है। कृष्ण और राधा की चरित्र सृष्टि क माध्यम म सच्चे लोकसेवी एव कत्तव्य परायण व्यक्तित्व की महानता का प्रतिपादन किया है। प्रियप्रवास' के सन्देश का प्रसारण काव्य का नायिका राधा के मुख स कवि न षोडश सग की निम्न पक्तियो मे कराया है—

---

१ प्रियप्रवास भूमिका—ग्रन्थ का विषय, पृष्ठ २९-३०

हो जाने से हृदयतल का भाव ऐसा निराला,
मैंने न्यारे परम गरिमाधाम दो लाभ पाये।
मेरे जी मे हृदय विजयी विश्व का प्रेम जागा,
मैंने देखा परम प्रभु को स्वयीय प्राणेश ही मे ,'[१]

राधा के हृदय का यह उदात्त भाव विश्वप्रेम का जनक है। इस भावदशा के कारण राधा के समान मानव की आ तरिक वृत्तिया इतनी दिव्य और महान् बन जाती है कि प्राणी मात्र म उसे ब्रह्म का साक्षात्कार होने लगता है। इस उदात्त भावना के फलस्वरूप ईशोपासना एव भक्ति विषयक आदर्शों म परिवर्तन हो जाता है। ससार के प्राणिमात्र को विश्व आत्मा का रूप समझकर उनकी यत्न पूवक सम्मान एव सेवा ही भक्ति हो जाती है। इस प्रकार प्रियप्रवास के कवि ने समाज कल्याण, जातीय हित राष्ट्रीय गौरव एव विश्व माल की भावना का शाश्वत स देश प्रस्तुत काव्य के माध्यम से प्रसारित किया है।

३ सास्कृतिक निरूपण

महत स देश एव बलवती प्रेरणा से अनुप्राणित होने के कारण 'प्रियप्रवास की रचना का सास्कृतिक महत्व भी कम नही है। जिन व्यापक मा यताओ, युगीन जीवनादर्शों चिरन्तन मानवमूल्यो पौराणिक आस्थाओ और आध्यात्मिक निष्ठाओ को लेकर 'प्रियप्रवास' की रचना हुई। उनके कारण उसमे मानव सस्कृति के उन्नत स्वरूप का निदर्शन हुआ है। स्थूल रूप से भारतीय सस्कृति दो रूपो मे विभक्त दिखाई देती है—

१ दवीय सस्कृति तथा
२ म नवीय सस्कृति

'प्रियप्रवास' मे मानवीय सस्कृति का निरूपण हुआ है। काव्य की विषय वस्तु का पौराणिक आधार होने के कारण प्रियप्रवास म निरूपित सस्कृति का स्वरूप यद्यपि हिन्दू है किन्तु काव्य मे प्रतिपादित अवधारणाओ का सम्ब ध विश्व जनीन सास्कृतिक परम्पराओं से स्थापित करना है। प्रस्तुत प्रसग मे हम सस्कृति के सीमित और व्यापक दोनो ही रूपो को देखने का प्रयास करेंगे।

४ प्रियप्रवास मे भारतीय सस्कृति का निरूपण

सहस्राब्दियो पूव आर्यों और दूसरी जातियों के मिलन स भारत म जिस सामासिक सस्कृति के स्वरूप का निर्माण हुआ है। उसे "भारतीय सस्कृति अभिधान दिया जाता है। इस सस्कृति की प्रमुख विशेषतायें हैं उदारता,

१ प्रियप्रवास षोडश सग, पृ० २५४

३

समन्वयवाद, आध्यात्मिकता, धमपरायणता, वर्णव्यवस्था, आश्रमव्यवस्था आदि।

'प्रियप्रवास' मे कवि ने कृष्ण और राधिका के चरित्र म भोग और त्याग, प्रवृत्ति और निवृत्ति का सुन्दर समन्वय चित्रण किया है। व्रजमण्डल मे गोप एव गोपिकाओ के साथ रास–लीलाओ और आनन्द–क्रीडाओ म मग्न रहने वाले कृष्ण व्रजवासियो को भयकर आपदाओ मे छुडाने मे त्यागमय जीवन का परिचय देते हैं। वही कृष्ण मथुरा म राजसी सुखों का उपभोग करते हुए भी जगत हित के कार्यो म निष्काम भाव से निमग्न रहकर निवृत्ति मार्गी प्रवृत्ति का परिचय दत है।[1] 'प्रियप्रवास' की राधा के जीवन मे कवि ने प्रेम और त्याग, भक्ति और ज्ञान, कत्तव्य और ब्रह्मचर्या आदि परस्पर विरोधी भावनाओ का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है। विचारधारा के क्षेत्र म आध्यात्मिकता और भौतिकता, भोग और त्याग तथा सत और असत का भी सुन्दर समन्वय हुआ है। राधा का वह दृष्टिकोण जिसके अन्तगत वह ब्रह्म को जगत के प्रत्येक प्राणी म और जगत पति को श्याम मे देखती हैं, वह जगत और ब्रह्म की स्थितिया का ही समन्वय है।[2]

'प्रियप्रवास' में आध्यात्मिक भावना को सर्वोपरि महत्ता प्रदान की गई है। भौतिक सुख सुविधाओ से आत्मिक सुख को श्रेष्ठ बताया गया है। ऊधो ने गोपिकाओं को समझाया भी है कि ससार का विपुल सुख जगतहित के सामने तुच्छ है।[3] इसलिये मन को योगा द्वारा सम्हाल कर स्वार्थमयी वत्तिया को जगतहित मे त्याग देना चाहिये। वासनाओ मे मोहित न होने पर ही दुःख का शमन और शान्ति की प्राप्ति सम्भव है।[4]

धम परायणता और भक्ति भावना को भी काव्य मे यथेष्ठ महत्व दिया गया है सास्कृतिक दृष्टि से धम परायणता के दो अथ हैं एक तो लौकिक और दूसरा अलौकिक या पारमार्थिक। लौकिकता के अन्तर्गत कमकाड पूजा पद्धति ईशाराधना व्रत –नियम आदि आते हैं। पारमार्थिक रूप के अन्तगत मानसिक शुद्धि आचारवादिता सत्य– अहिंसा–युक्त आचरण, अपरिग्रह का भाव एवं आस्तिकता की भावना का उल्लेख किया जाता है। प्रियप्रवास' म धम–परायणता के दोनो ही रूपों की प्रतिष्ठा हुई हैं। 'प्रियप्रवास' की यशोदा देवी–देवताओ की श्रद्धापूवक पूजा प्राथना करती हैं। कुमारी राधा श्रीकृष्ण को पतिरूप मे प्राप्त करने के लिये भवानी देवी को पूजती एव देवताओ को मनाती हैं। वृन्दावन को पुण्य–तीर्थ–स्थान के रूप मे

१ प्रियप्रवास, चतुदश सग २२ से २५
२ वही षोडश, सग छन्द ११२
३ वही, चतुदश सर्ग – २२
४ वही, वही, – छन्द ३९

ही अंकित किया गया है। विभिन्न पर्वों उत्सवों के रूप में प्राचीन भारतीय संस्कृति का स्वरूप आज भी रक्षित है। कृष्ण के जन्मोत्सव के उपलक्ष में ब्रज मण्डल के आमोद-प्रमोद पूर्ण जीवन का चित्रण किया गया है। द्वार सुंदर वन्दनवारों से सजाये गये। नवीन-आम्र पल्लवों के तोरण आंगन में बांधे गये। गृह, गली, द्वार मन्दिर और चौराहा पर ध्वजाएं लगाई गयीं जो सुरलोक को भी ब्रजप्रदेश के आनंद की सूचना दे रही थीं। द्वारों पर जलपूर्ण कुंभ सुशोभित थे, गलियों में पुष्पों की गंध थी। सम्पूर्ण गोधन वसनाभूषणों से अलंकृत एवं सुसज्जित किया गया था। ग्वालिन मधुसिक्त कंठ से पुलकित होकर गायन कर रही थीं। याचक-वृन्द को धन-रत्न दिया जा रहा था। सुंदर वस्त्रा-भूषण धारण किये ग्राम वधूटियां विनोदित एवं बिहंसती हुई नंद नृप के घर आ रही थीं[1] इन वर्णनों में भारतीय संस्कृति का उत्सवपूर्ण एवं उल्लासमय रूप बड़ी सजीवता से वर्णित किया गया है।

पारलौकिक दृष्टि में सत्य और अहिंसा की प्रतिष्ठा की गई है। 'प्रियप्रवास' के कृष्ण हिंसा को निद्यकर्म कहते हैं। वे मनुष्य तो क्या एक पिपीलिका के वध को भी उचित नहीं मानते।[2] किंतु उनकी यह भी धारणा है कि —

'समाज उत्पीडक धर्म्म विप्लवी। स्व जाति का शत्रु दुरन्त पातकी।
मनुष्य द्रोही भव प्राणि पुंज का न है क्षमा योग्य वरंच बध्य है।
क्षमा नहीं है खल के लिये भली। समाज उत्सादक दण्ड योग्य है।
कु-कर्म कारी नर उबारना। सुकर्मियों को करता विपन्न है॥[3]

प्रियप्रवास' के कृष्ण सत्य और नीति के सर्वत्र समर्थक रहे हैं। वे अनीतिपूर्ण कार्य से खिन्न होते थे और छोटे को सदैव सत्याचरण की ही शिक्षा देते थे।[4] अपरिग्रह और त्याग की महिमा का तो हरिऔध जी ने काव्य में सर्वत्र ही आख्यान किया है। राधा का जीवन तो अपरिग्रह का आदर्श ही है। इसके अतिरिक्त प्राचीन सांस्कृतिक विश्वासों यथा भाग्यवाद[5] और शकुन[6] आदि का भी यत्रतत्र उल्लेख हुआ है।

भारतीय संस्कृति में परिवार और समाज को विशेष महत्व दिया गया है। क्योंकि सांस्कृतिक परम्पराओं का संरक्षण यही संस्थाएं अनादिकाल से कर रही हैं। प्रियप्रवास में ब्रज धराधिप नंद का परिवार छोटा होते हुये भी आदर्श है।

---

१ 'प्रियप्रवास' अष्टम सर्ग,— ३ से १६
२ वही त्रियोदश सर्ग ७८ ७९
३ वही १३।८०-८१
४ वही १२।८४ ८५
५ वही १३।२१
६ वही सर्ग ६ छंद ८

द परिवार के सदस्य हैं—माता यशोदा और पुत्र कृष्ण। कवि ने माता-पिता और पुत्र के स्नेह-सौजन्य पूर्ण सम्बन्ध की सुन्दर व्याख्या की है। माता-पिता का पुत्र के प्रति स्नेह और कृष्ण की माता-पिता के प्रति पूज्य भावना का सुन्दर रूप चित्रित है। ब्रजमण्डल के समाज का स्वरूप भी मधुर सम्बन्धों और पारस्परिक सम्मान, एकता एवं समानता की भावना पर आधारित दिखाया गया है।

इस प्रकार हरिऔध जी ने प्रियप्रवास में भारतीय संस्कृति के आदर्श रूप को अंकित किया है।

नवीन संस्कृति (मानवतावादी सांस्कृतिक आदर्शों की स्थापना)

'प्रियप्रवास' की रचना उस समय हुई जब भारतवर्ष में ब्रिटिश शासन की प्रभुसत्ता थी। अंग्रेजी शिक्षा और पाश्चात्य सभ्यता के सम्पर्क एवं प्रभाव से भारतीय सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन में पुनरुत्थानवादी विचारधारा का सूत्रपात हो चुका था। प्राचीन विश्वासों, आस्थाओं एवं परम्पराओं को नई दृष्टि से देखने का प्रयास प्रारम्भ हो गया था। उस समय भारतवर्ष में आर्य समाज, ब्रह्मसमाज प्रार्थना-समाज थियोसोफीकल सोसाइटी, रामकृष्णमिशन जैसी अनेक सांस्कृतिक संस्थाएं अनेक सुधारवादी आन्दोलनों एवं विचार परम्पराओं को जन्म दे चुकी थीं। हरिऔधजी का इन संस्थाओं से एक सजग साहित्यकार एवं बुद्धिजीवी होने के कारण प्रत्यक्ष-परोक्ष सम्बन्ध अवश्य था। निस्सन्देह तत्कालीन धार्मिक और सामाजिक क्रान्तियों ने भी अप्रत्यक्ष रूप से उन पर प्रभाव डाला।
हरिऔधजी पर उस समय की सामाजिक धार्मिक और राजनीतिक परिस्थितियों का भी प्रभाव पड़ा।[1] अस्तु 'प्रियप्रवास' में उस नवीन संस्कृति की व्यंजना भी हुई है जिसका निर्माण पाश्चात्य विचारधाराओं से प्रभावित होकर हुआ है। इसे मानवतावादी संस्कृति कहना अधिक उपयुक्त होगा, क्योंकि नवीन संस्कृति के सिद्धान्तों, उद्देश्यों एवं प्रमुख विचारधाराओं का सम्बन्ध किसी कल्पित अज्ञात सत्ता या शक्ति से न होकर मानव से है।

जिन नवीन सांस्कृतिक आदर्शों की स्थापना प्रियप्रवास में हुई, वे हैं—कर्मवाद लोकसेवा लोकहित ब्रह्म से अधिक मानव महत्व की स्वीकृति, नारी की महत्ता, लोकहित की भावना और राष्ट्रीयता आदि। यहां यह उल्लेखनीय है कि नवीन मानवतावादी संस्कृति के जिन आधारभूत सिद्धान्तों एवं आदर्शों का उल्लेख ऊपर किया गया है उनका भारतीय संस्कृति से कहीं-कहीं तात्विक भेद अवश्य है, किन्तु विरोध कहीं भी नहीं है। उदाहरण के लिये— भारतीय संस्कृति में राम को बारह कलाओं का और कृष्ण को सोलह कलाओं का पूर्ण अवतार कहा जाता

---

1 डा० मुकन्ददेव शर्मा—हरिऔध और उनका साहित्य पृ० २२।

है।"[1] कृष्ण को विष्णु का अवतार प्राचीन भारतीय एवं हिन्दू संस्कृति के अन्तगत स्वीकार किया गया है। किन्तु नवीन सांस्कृतिक आदर्शों के अनुसार कृष्ण पुरुष हैं। उन्हें महापुरुष अवश्य कहा जा सकता है। इस प्रकार से नवीन सांस्कृतिक आदर्शों का प्रभाव हरिऔध जी पर पड़ा भी है उन्होंने स्वीकार किया है कि— काल पाकर मेरी दृष्टि व्यापक हुई मैं सोचने विचारने और शास्त्र के सिद्धान्तों को मनन करने लगा। उसी के फलस्वरूप मेरे पश्चताद्वर्ती और आधुनिक काव्य हैं। भगवान कृष्णचन्द्र में मुझको श्रद्धा है किन्तु वह श्रद्धा अब संकीर्णता एकदेशिता और अकर्मण्यता दोषदूषिता नहीं है। मानवता का चरम विकास ही ईश्वरत्व की प्राप्ति है—यही अवतारवाद है। अवतारों का सम्बल मानवता का आदर्श ही था अतएव उसको उसी रूप में देखने की आवश्यकता है, जो उसका मुख्य रूप है और यही कारण है कि आजकल का मेरा परिवर्तित मत यही है।[2]

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि अवतारवाद के सम्बन्ध में कवि ने नवीन सांस्कृतिक किंवा मानवतावादी दृष्टिकोण को ही अपनाया है। प्रियप्रवास में नवीन सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना कवि के व्यापक सांस्कृतिक दृष्टिकोण की परिचायक है।

प्रियप्रवास में भाग्यवाद के स्वर के साथ साथ कर्मवाद को कहीं भी विस्मृत नहीं किया गया है। अपने मित्र उद्धव को ब्रज भेजते हुये कृष्ण यही कहते हैं कि मैं कार्य व्यस्त हूं। —

'मेरे जीवन का प्रवाह पहले अत्यन्त उन्मुक्त था।
पाता हूं अब मैं नितान्त उसको आबद्ध कर्त्तव्य में।।'[3]
राधा ने भी उद्धव से कृष्ण के प्रति सन्देश भेजते हुये यही कहा है कि—
प्यारे जीवें जगहित करें गेह चाहे न आवें।[4]

इसी प्रकार लोकहित एवं लोकसेवा की भावनाओं को काव्य में महत्व प्रदान किया गया है। कृष्ण ने कहा है कि —

---

१ डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना—प्रियप्रवास में काव्य, संस्कृति और दर्शन, पृष्ठ २६२
२ श्री गिरिजा दत्त शुक्ल गिरीश —महाकवि हरिऔध, पृ० १७३ १७४
३ प्रियप्रवास नवम सर्ग —३
४ वही षोडश सर्ग —९८

जी मे प्यारा जगत हित औ' लोक सेवा जिसे है।
प्यार सच्चा अवनि-तल मे आत्म-त्यागी वही है।[1]

प्रियप्रवास मे नारी की महत्ता को भी स्वीकार किया गया है। यशोदा और राधा के माध्यम से क्रमश मातृत्व और पत्नीत्व रूप की व्यजना हुई है। काव्य के अ तिम सर्ग म नारी के समाज सेविका विश्व प्रेमिका दया-मूर्ति मगलकारिणी आदि अनेक रूपो का चित्रण किया गया है। राधा जैसी सामान्य नारी को हरिऔध जी ने दैवी गुणो स मडित करके उसका चरित्रोत्कर्ष किया है। प्रियप्रवास की राधा परम्परा स भिन्न एक प्रगतिशील विचारो की नारी के रूप म चित्रित हुई है।

नवधा भक्ति के स्वरूप निरूपण म आर्त-उत्पीडितो की सहायता, पतितो के उन्मेष गिरती जातियो के उत्थान कगालों, विवश विधवाओ और अनाथाश्रितो को त्राण देने की जो बात कही गई है वह भी नवीन दृष्टिकोण की परिचायक है। आत्म-निवेदन भक्ति प्रकार का विवेचन करते हुए राधा ने कहा है कि —

विपद सिन्धु पडे नर वृन्द के।
दुख निवारण औ हित के लिये।
अरपना अपने तन प्राण को।
प्रथित आत्म निवेदन भक्ति है।।[2]

इस प्रकार नवीन सास्कृतिक जीवन मूल्यो की प्रतिष्ठा का काव्य म पूर्ण आग्रह दिखाई देता है। प्रियप्रवास की सास्कृतिक पृष्ठभूमि प्राचीन और अर्वाचीन विचारधाराओं एव मान्यताओ म पुष्ट ह। उसमे भारतीय सस्कृति के पुरातन और नवीन दोनो रूपो का सुदर चित्रण हुआ ह।

दार्शनिक पृष्ठ-भूमि

'प्रियप्रवास' की दार्शनिक पृष्ठभूमि का निर्माण मानवतावादी जीवन दर्शन की मान्यताओ स प्रेरित होकर हुआ है। हरिऔध जी ने किसी विशिष्ट दार्शनिक मतवाद या दर्शन प्रणाली का काव्य मे आग्रह प्रतिपादित नही किया है। यद्यपि प्रिय प्रवास मे उद्धव एव गोपिकाओ के सवादो म सूरदास नन्ददास आदि के भ्रमर गीत प्रसगो की भाति विशिष्ट दार्शनिक मान्यताओ की स्थापना का पर्याप्त अवकाश था किन्तु हरिऔध जी ने वैसा नही किया है। उन्होने भारतीय दर्शन की उन्ही विचारधाराओ को काव्य प्रतिपाद्य के रूप म स्वीकार किया है जो मानव-जीवन के मगल विधान की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

---

१ प्रियप्रवास षोडश सर्ग ४२
२ वही पृ० २५७

ब्रह्म की परिकल्पना और कृष्ण

वदान्त दशन म ब्रह्म एक है। वह निर्विशेष तत्त्व के रूप मे सवव्यापी और सचेतन है। ब्रह्म की सिद्धि क लिये किसी प्रमाण की आवश्यकता नही, क्योंकि वह स्वय सिद्ध एव स्व प्रकाशमय है। चत य को ही आत्मा या ब्रह्म कहते हैं। समस्त अज्ञाना से अविच्छिन्न चत य ईश्वर' है।'[1] हरिऔध जी भी भारतीय दशन की अद्व तवादी परम्परा से प्रभावित थे। इसलिए उन्होने ब्रह्म को अत्य त व्यापक रूप मे ग्रहण किया। उ होंने एक स्थान पर लिखा है कि ईश्वर एक दशीय नही है वह सवव्यापक और अपरिछिन्न है, इसकी सत्ता सवत्र वत्त मान हैं, प्राणी मात्र म उसका विकास है—सव खल्विद ब्रह्म नेह ना नास्ति किंचन[2] 'प्रियप्रवास म उनकी इसी धारणा का निरूपण हुआ है। षोडश सग मे राधा ऊधो मे कहती है कि शास्त्रो म प्रभु के असख्य शीशो और लोचनो की बात कही गई है। यह भी कहा गया है कि ब्रह्म मुख, नेत्र, नासिका आदि इन्द्रियो से रहित होकर भी छूता, खाता श्रवण करता दखता और सू घता ह। तात्विक दृष्टि स इसका रहस्य यह ह कि ससार के सारे प्राणी इसी ब्रह्म की मूर्तिया हैं। इसलिए अखिल जगत के असख्य प्राणियो के नेत्र आदि उसी विश्व आत्मा की इन्द्रिया हैं। सम्पूण ससार क इन्द्रजय काय ब्रह्म द्वारा हा परिचालित होत हैं। तारागण सूय अग्नि, विद्युत नाना रत्नो और विविध मणियो म उसी ब्रह्म की विभा प्रकाशमान ह। पृथ्वी, पवन जल आकाश पादपो और खगों मे उसी ब्रह्म की प्रभुता व्याप्त ह।[3] निष्कष रूप म राधा ने यही कहा ह कि ब्रह्म विश्व रूप ह —

वे बातें हैं प्रकट करती ब्रह्म ह विश्व रूपी।
व्यापी ह विश्व प्रियतम म विश्व मे प्राण प्यारा।।[4]

इस प्रकार हरिऔध जी ने ब्रह्म की व्यापक से व्यापक परिकल्पना की ह।

प्रियप्रवास' म कृष्ण को ब्रह्म नही माना गया ह। कवि ने उ हे मानव के रूप मे ही चित्रित किया ह। पुराणो म कृष्ण को विष्णु का अवतार माना गया है। कि तु प्रियप्रवास म उन्हे महापुरुष अथवा आदश मानव के रूप मे ही अ कित किया गया है। श्री गिरीजादत्त शुक्ल गिरीश के शब्दो म— प्रियप्रवास म हरिऔध जो ने श्रीकृष्ण की ईश्वरता को तो अस्वीकार किया है—कम से कम परब्रह्म रूप म तो उन्हें ग्रहण नही किया।[5] इस प्रकार कवि ने ब्रह्म के सम्ब ध म एक व्यापक और मानव कल्याणकारी आदश स्थापित किया है।

---

१ डा० उमश मिश्र–भारतीय दशन पृ० ३५९
२ गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश–महाकवि हरिऔध पृ० १७३
३ प्रियप्रवास षोडश सग–१०७ से ११०
४ प्रियप्रवास पृष्ठ २५५
५ महाकवि हरिऔध, पृ० १७४

जीव

शरीर के बन्धन में युक्त आत्मा को भारतीय दर्शनों में जीव की संज्ञा दी गई है। यह जीवात्मा अपने कर्मों के अनुसार भिन्न भिन्न शरीर धारण करता है। मृत्यु के पश्चात् स्थूल शरीर के समाप्त हो जाने पर भी सूक्ष्म शरीर से अपने कर्मों का फल भोगता है। जीवात्मा को बन्धन मुक्ति के लिए मोक्ष नाम की स्थिति का उल्लेख किया गया है। जीव की मोक्ष की स्थिति तत्त्वज्ञान का बोध हो जाने पर प्राप्त होती है। ब्रह्मत्व की प्राप्ति हो जाने पर जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं रहता। जीवात्मा और परमात्मा में भेद का कारण सांसारिकता का बन्धन है। अपने पाप-कर्मों के कारण ही जीव बन्धनों में जकड़ा रहता है। प्रियप्रवास में हरिऔधजी ने जीवात्मा और परमात्मा दोनों का निरूपण किया है। कंस, व्योमासुर, अघासुर, केशि, पूतना आदि ऐसे ही जीव हैं जो अपने पाप कर्मों द्वारा समाज को पीड़ित करते रहते हैं और अन्ततः दुर्गति को प्राप्त होते हैं। इसके विपरीत कृष्ण और राधा पुण्य आत्मा हैं जो अपने सत्कर्मों द्वारा समाज, जाति और विश्व का कल्याण करते हुए अनन्त सुख और शान्ति को प्राप्त करते हैं।

जगत

शंकराचार्य ने ब्रह्म और जीव की एकता की स्थापना करते हुए भी जगत को मायामय कहा है। वे 'ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या' सिद्धान्त के समर्थक थे। किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से जगत की सत्ता को वे भी अस्वीकार नहीं कर सके थे। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि "शंकर ने जगत की सत्ता को व्यावहारिक दृष्टि से सत्य मान कर दुःख से बचने के लिए अनेक विधान प्रचलित किये।"[1] हरिऔधजी ने विश्व को विश्वात्मा का ही रूप माना है उन्होंने संसार को परिवर्तनशील तो कहा है किन्तु उसके अस्तित्व को अस्वीकार नहीं किया है। वास्तव में प्रियप्रवासकार के जगत विषयक विचारों का सार यह है कि वे संसार को वेदान्तियों की भांति नश्वर, मिथ्या, क्षणभंगुर या असत्य नहीं मानते वरन् अच्छे कार्यों द्वारा संसार के जीवन को सुखमय बनाने की बात कहते हैं।

मोक्ष

भारतीय दर्शन में मोक्ष का अर्थ जीवात्मा का शारीरिक बन्धन से मुक्त होकर ब्रह्म में लीन हो जाना अर्थात आत्म साक्षात्कार करना ही मोक्ष है। मोक्ष के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा सांसारिक मोह है। यह मोह इतना प्रबल है कि मनुष्य

---

१ डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय-हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० ११६

अपने इष्टदेव का गुणगान करने के लिये कवि को 'साकेत' सृजन की प्रेरणा प्राप्त हुई।[1] 'साकेत की रचना के उद्देश्य की दृष्टि से विचार करें तो का योपेक्षिता उर्मिला' के चरित्रोद्धार की प्रेरणा ही प्रस्तुत काव्य के सृजन में सहायक हुई है। कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ टगोर के 'काव्यर उपेक्षिता' और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' नामक निबंधों से प्रेरणा पाकर भी गुप्त जी ने साकेत की रचना की है। काव्य के 'निवेदन' में आचार्य द्विवेदी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करते हुये गुप्त जी ने श्लेष द्वारा स्वीकार भी किया है —

'करते तुलसीदास भी कैसे मानस-नाद ?
महावीर का यदि उन्हें मिलता नहीं प्रसाद।'[2]

व्यक्तिगत रूप से श्री छोटेलालजी बार्हस्पत्य श्रीयुत श्री कृष्णदास, मुंशी अजमेरी जी, सियारामशरण जी आदि महानुभावों ने भी कवि को समय समय पर प्रोत्साहित करके सृजन के लिये प्रेरित किया, जैसा कि 'निवेदन' में स्वयं गुप्तजी ने स्वीकार किया है साकेत' महाकाव्य की महत्ता को देखते हुये यह भी प्रतीत होता है कि कवि के मन में ऐसी महत्वाकांक्षा भी थी कि वह कोई महान् ग्रन्थ लिखे जिसमें उसके जीवन की भावना का श्रेष्ठतम स्वरूप हो। इस ओर गुप्त जी ने संकेत भी किया है कि—"इच्छा थी कि सबके अन्त में अपने सहृदय पाठकों और साहित्यिक बन्धुओं के सम्मुख साकेत समुपस्थित करके अपनी धृष्टता और चपलताओं के लिये क्षमायाचना पूर्वक विदा लूंगा।'[3] इस कथन से प्रतीत होता है कि साकेत को कवि अपनी साहित्य साधना की इतिश्री अर्थात् अंतिम कृति के रूप में प्रस्तुत करना चाहता था। इसके अतिरिक्त भारतीय संस्कृति की महान् परम्पराओं जन जीवन की व्यापक अनुभूतियां युग की समस्याओं और नवीन प्राचीन विचारधाराओं एवं मानवतावादी जीवनदर्शों की स्थापना का साकेत में अभिनन्दनीय प्रयास हुआ है उसके आधार पर निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि साकेत का सृजन महत् प्रेरणा का परिणाम है।

महत् प्रेरणा के अनुरूप ही साकेत की रचना का उद्देश्य भी महान् है। साकेत की रचना का मूल उद्देश्य मानवतावादी जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा है। साकेत का वस्तु विधान पात्र घटनाचक्र परिस्थितियां और उनका निरूपण सब इसी उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक हैं। उर्मिला का चरित्र उत्सर्ग की महिमा का व्यंजक है तो साकेत के राम मर्यादा और पुरुषार्थ के प्रतिनिधि हैं। साकेत के राम

१ डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना—साकेत में काव्य संस्कृति और दर्शन पृ० ४०
२ साकेत—निवेदन पृ० २
३ वही वही पृ० १

ारी को स्वग बनाकर नर को ईश्वरत्व प्रदान करते है। यहा सीता परिश्रम की, ‚रत शील की और लक्ष्मण पराक्रम की महत्ता के सस्थापक ह। साकेत की रचना ारतीय स्वतन्त्रता सग्राम की वेला मे हुई थी। साकेतकार ने सच्चे काय सेनानी ी भाति भारतीय जीवन समाज और सस्कृति के विराट रूप को विशदता से चित्रित किया ह। जातीय स्वाभिमान और राष्ट्रीय गौरव की स्थापना भी कवि ने साकेत म की ह। साकेत के सृजन द्वारा भारतीय धम, अथ नीति, राजतन्त्र परिवार, व्यवहार और सदाचार के चित्रण म भी कवि सफल रहा है। इन सबके प्रतिरिक्त साकेतकार भारतीय अतीत के गौरव और युग धम की प्रतिष्ठा के जिन उदात्त लक्ष्यो को लेकर चला था, उसकी प्राप्ति म भी वह सफल रहा ह। अस्तु उद्देश्य की दृष्टि से 'साकेत' का स्थान राष्ट्रीय एव सास्कृतिक काव्यो म आता है।

सदेश

'साकेत' के माध्यम से गुप्त जी न महान् स देश प्रसारित किया है। का य का महानतम स देश राम क उन शब्दो म अभिव्यजित हुआ है, जहा व कहते हैं कि—

भव मे नव वभव व्याप्त कराने आया, नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।
स देश नही मैं यहा स्वग का लाया इस भूतल को ही स्वग बनाने आया।[1]

राम के उपयु क्त कथन म हमारे युग के सिद्धा ता विश्वासो, आशाओ, आकाक्षाओ, नीतियो एव आदर्शों की स्पष्ट घोषणा है। वतमान युग की सम्पूण विचारधाराओ का अ तिम उद्देश्य मानवता का अभ्युदय ही है। साकेतकार मानव को ईश्वरत्व प्रदान कराने का एक महत्वपूण अनुष्ठान राम के द्वारा सम्पन्न कराता है। समष्टि के लिए व्यष्टि के बलिदान असत का तिरस्कार कर सत की स्थापना और स्वाथ की अपेक्षा परमाथ की श्रेष्ठता का सन्देश काव्य क पात्रो के जीवन म चरिताथ हुआ है। कत्तव्य क लिए जीवन मरण और राष्ट्र के लिए सवस्व समपण का भाव साकेत का युगीन सन्देश है। यह आह्वान कितना महत्वपूण ह—

'भूल जयाजय और भूल कर जीना मरना,
हमको निज कत्तव्य मात्र ह पालन करना।
+ +
हाय मरण से नहा किन्तु जीवन म भीता,
राक्षसियो से घिरी हमारी दवी—सीता।
+ +

---

१ साकेत—अष्टम सग पृ० २३५

अबला का अपमान सभी बलवानो का है,
सती धर्म का मान मुकुट सब मानो का है।
मारो मारो जहा अरियो को तुम पाओ
मर मर कर भी उन्हे प्रेत होकर लग जाओ।'[1]

राष्ट्रीय प्रेम और जातीय स्वाभिमान की भावनाओ को उत्तेजित करने मे साकेत के अनेक स्थल उद्धरणीय हैं। साकेतकार ने जहा राष्ट्रीय आदर्शों पर बलिदान होने की प्रेरणा दी है, वही विश्व बधुत्व की भावना के प्रसार की चेष्टा भी की है। भारतीय संस्कृति के दिव्य गुणो और उच्चादर्शों की व्यजना मानव मूल्यो की प्रतिष्ठा मे निश्चय ही सहायक सिद्ध हुयी है। आर्य धर्म का आदर्श जन के सम्मुख धन को तुच्छ समझना, विवश, बलहीन दीन और अर्द्ध सभ्यो को सभ्य बनाना है। साकेत' के राम ने इस आदर्श को पूर्णत प्रतिष्ठित किया है। वास्तव मे साकेत की सार्थकता इस बात मे है कि उसके कवि ने प्राचीन भारतीय संस्कृति और जीवन दर्शन को नवीन जीवनादर्शों के आलोक मे प्रस्तुत किया है।

सांस्कृतिक निरूपण

गुप्त जी को राष्ट्र कवि होने का गौरव इसीलिए प्राप्त है कि उन्होने अपने काव्यो मे भारतीय संस्कृति के आदर्शों का पुनरुत्थान किया है। उनकी राष्ट्रीय भावनाओ की सर्वाधिक सफल व्यजना का क्षेत्र संस्कृति है। सांस्कृतिक दृष्टि से गुप्त जी के काव्यो मे साकेत' प्रतिनिधि ग्रन्थ है। 'साकेत मे जिन सांस्कृतिक आदर्शों और परम्पराओ की स्थापना हुयी है वे शुद्ध भारतीय हैं किन्तु अपने व्यापक आधार और परिवेश के कारण उनका महत्व विश्वजनीन है। साकेत के सांस्कृतिक निरूपण की सर्वप्रथम विशेषता उसकी समन्वयवादिता है।

समन्वयवाद

भारतीय संस्कृति का स्वरूप ही समन्वय प्रधान है। साकेत' मे ये समन्वय विचारो, सिद्धान्तो, धारणाओ एव मान्यताओ के माध्यम से व्यक्त हुआ है। राम और सीता लक्ष्मण और उर्मिला भरत और माण्डवी के जीवन मे भोग और त्याग का समन्वय है। इसके अतिरिक्त साकेत मे भक्ति और ज्ञान, धर्म और राजनीति प्रवृत्ति और निवृत्ति भावुकता एव कर्त्तव्य परायणता मृदुता एव कठोरता कर्म एव तपस्या, काम और मोक्ष आदि का समन्वय राम लक्ष्मण, भरत एव शत्रुघ्न के चरित्र द्वारा किया गया है। मानवता एव दानवता व्यक्ति एव हिंसा साधुता एव असाधुता सहृदयता एव अरसिकता पाडित्य एव मूर्खता आदि का समन्वय रावण कुम्भकरण मेघनाद आदि के चरित्रो द्वारा किया है। इसी तरह वनवासी जीवन

---

[1] साकेत द्वादश सर्ग पृ० ४७० ४७१

एव राजसी भोग सेवक एव राजा देश-द्रोह एव विश्व-प्रेम, रामभक्ति एव भ्रातृ-द्रोह आदि का सम वय विभीषण के जीवन म दिखाई देता है और इसे ही सयोग-वियोग, भौतिकता-आध्यात्मिकता, भोग एव त्याग, पतिपरायणता एव लोकसेवा, सुकुमारता एव पराक्रमशीलता आदि का समन्वय उर्मिला के जीवन म दृष्टिगोचर होता है।[1]

सिद्धा तो के अतिरिक्त व्यावहारिक जीवन म भी साकेत म सम वय वादिता दिखाई देती है। साकेत म नगर एव अरण्य जीवन म भी समन्वय दिखाया गया है। चित्रकूट म सीता, कोल किरातादि भिल्ल बालाओ म कहती हैं – कि मुझे मेरे करने के योग्य कोई काम बताओ और मेरे नागर भाव को स्वय भेट के रूप म स्वीकार करो।[2]

साकेत के लक्ष्मण स्वय भक्ति और मोक्ष के समन्वय की बात कहते है —

'साधो उसको और मनाओ युक्ति स
सखे ! समन्वय करो भक्ति का मुक्ति से।'[3]

साकेत की शासन व्यवस्था म राजतन्त्र है। किन्तु राज्य व्यवस्था मे कवि प्रजा का ही अधिक से अधिक योगदान उपयुक्त मानता है। भरत एक स्थान पर कहते हैं —

"विगत हो नरपति, रहे नर मात्र
और जो जिस काय के हो पात्र
व रहे उस पर समान नियुक्त
सब जीए ज्यो एक ही कुल मुक्त।[4]

साकेत म प्रवृत्ति मूलक समन्वय की चेष्टा भी दिखाई देती है। 'साकेत' का कवि रावणत्व (आसुरी वृत्तियो पर) राम की विजय द्वारा इसी सत्य को चरितार्थ करता है कि लोक-कल्याण दानवता मे नही मानवता म है।

पारिवारिक जीवन

साकेत का आदर्श परिवार भारतीय संस्कृति की सयुक्त परिवार प्रथा का सजीव प्रतीक है। इस परिवार के सदस्य अपने अपने कर्त्त य और दायित्व के प्रति पूर्णत सजग है। माता पिता पति पत्नी भाई भाई पिता पुत्र स्वामी-सेवक आदि के

---

१ डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना – साकेत म काव्य संस्कृति और दर्शन पृ० ३२९
२ साकेत अष्टम सर्ग पृ० २२७
३ वही पचम सर्ग पृ० १४२
४ वही, सप्तम सर्ग पृ० १०२

आदर्श सम्बन्धों का स्वरूप साकेत परिवार में सहज ही देखा जा सकता है। राम और उनके भाइयों की पत्नियाँ आदर्श कुलवधुएँ हैं जो पति के आदेश पर और स्वयं कर्त्तव्य की भावना से प्रेरित होकर बड़े से बड़ा त्याग करने को सदैव प्रस्तुत रहती हैं। उर्मिला और माण्डवी महलों में रह कर भी वनवासिनी का सा त्यागमय जीवन व्यतीत करती हैं। सीता पति परायणता के कारण ही राजसी वैभव को छोड़कर वन के संकटों को सहती है। महाराज दशरथ एक आदर्श पिता हैं जो सत्यनिष्ठा के लिए अपने प्राणों को उत्सर्ग कर देते हैं। कौशल्या और सुमित्रा आदर्श माताएँ हैं। *कैकेयी भी कालान्तर में मातृत्व के उच्चादर्श को प्राप्त कर लेती है।* राम में भ्रातृत्व भाव और भाइयों के प्रति सहज स्नेह है, सीता से एक स्थान पर कहते हैं —

> रहेगा साथ भरत का मन्त्र
> मनस्वी लक्ष्मण का बल तन्त्र
> तुम्हारे लघु देवर का धाम
> मात्र दायित्व हेतु है राम।'[१]

इस प्रकार रघु-परिवार के सभी सदस्य पारस्परिक व्यवहार और कर्त्तव्य द्वारा संयुक्त परिवार प्रथा के प्राचीन भारतीय आदर्श की सजीव झाँकी प्रस्तुत करते हैं।

आदर्श-समाज

साकेत में सामाजिक जीवन के आदर्श रूप का भी चित्रण हुआ है। साकेत के समाज का स्वरूप भारतीय है। भारतीय समाज के दो प्रमुख अंग हैं — वर्ण-व्यवस्था और आश्रम धर्म। साकेतकार ने समाजिक व्यवस्था के लिए वर्णाश्रम के महत्व को स्वीकार किया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्गों के लोग अपने वर्णाश्रम धर्म के अनुसार आदर्शों का पालन करते हुए जीवन व्यतीत करते हैं यद्यपि उच्च वर्गों का साकेतकार ने महत्त्व दिया है किन्तु निम्न वर्गों का जैसे-शूद्रों का तिरस्कार भी नहीं किया है। साकेत की सीता कोल-किरात और भिल्ल बालाओं के साथ सखि-भगिनियों के समान व्यवहार करती है"[२]

ब्राह्मण साकेत के समाज में पूज्य अवश्य हैं किन्तु उनके प्रति पूजनीय भाव केवल ज्ञान के लिए ही नहीं। परशुराम के प्रति उर्मिला का निम्न कथन द्रष्टव्य है —

———

१ साकेत नवम् सर्ग पृ० ५३
२ वही अष्टम सर्ग पृ० २२३

'द्विजता तव आततायिनी, वध में है क्या दोष दायिनी।'[1]

'साकेत' के राम भी सामाजिक जीवन की प्रत्येक मर्यादा और आदर्श को मानने वाले हैं। वे कहते भी हैं —

'मैं आया जिसमें बनी रहे मर्यादा,
बच जाय प्रलय में मिटे न जीवन सादा।'[2]

'साकेत' के समाज में सभी वर्गों के लोग परस्पर मिल जुलकर शिष्टतापूर्ण एवं सुसभ्य जीवन व्यतीत करते हैं। कवि ने सामाजिक जीवन की झांकी निम्न प्रकार से चित्रित की है —

'एक तरु के विविध सुमनों से खिले,
पौर जन रहते परस्पर हैं मिले।
स्वस्थ शिक्षित, शिष्ट उद्योगी सभी,
बाह्य भोगी, आन्तरिक योगी सभी।'[3]

साकेत के निवासी आधि-व्याधि की बाधाओं से मुक्त हैं। वहां का जीवन सुखी और सम्पन्न है। वहीं किसी को चोरी की चिन्ता नहीं। प्रत्येक आंगन में शिशु केलि-क्रीड़ाएं करते हैं। प्रत्येक घर में अश्व-शाला और गो-शाला है।[4]

साकेत निवासी भारतीय संस्कृति के प्रतीक सामाजिक रीति-रिवाजों, पर्व-उत्सवों को बड़े उत्साह से मनाते हैं। भारतीय समाज के जन्म, विवाह, मृत्यु आदि संस्कारों का भी साकेत में वर्णन हुआ है। महाराज दशरथ का अन्त्येष्टि संस्कार महाराज वशिष्ठ भरत द्वारा सविधि सम्पन्न कराते हैं।[5]

साकेत समाज की नारियां उन सम्पूर्ण विधि विधानों को सम्पन्न करती हुई दिखाई देती हैं जिनका भारतीय समाज और जीवन में मांगलिक महत्त्व है।

धार्मिकता

'साकेत' के अधिकांश पात्र धर्म और नीति के अनुयायी हैं 'साकेत' में धर्म का स्वरूप दो प्रकार से चित्रित दिखाई देता है—एक तो आध्यात्मिक किंवा दार्शनिक दृष्टि से। दूसरा सामाजिक जीवन में धर्माचरण के रूप में। धार्मिकता के प्रथम प्रकार का विवेचन हम आगे करेंगे। जहां तक धार्मिक आचरण का सम्बन्ध है राम की माता कौशल्या पूजा अर्चन करती हैं सीता स्वयं वन के देवी-देवताओं की

---

१ साकेत दशम सर्ग, पृ० ३७६
२ वही अष्टम सर्ग, पृ० २३४
३ वही प्रथम सर्ग पृ० २२
४ वही प्रथम सर्ग पृ० २३
५ वही, सप्तम सर्ग पृ० २१५

उपासना म निरत रहती है। भरत राम की चरण पादुकाओं की पूजा अचना करते है। अयोध्या के नागरिक भी उपासना आराधना, भक्ति पूवक धर्माचरण के कार्यों मे निरत चित्रित किए गए हैं। साकेत की धार्मिक भावना का आधार नतिक्ता है। इसीलिए साकेत परिवार के सभी पात्र नतिक शिष्टाचार एव लोक की मर्यादा के अनुसार अपना कत्त व्य पालन करते है। राम को हो लें—वे अपने गुरजनो के समक्ष सदव विनम्रता एव निष्टता से पूण व्यवहार करते हैं। माता–पिता की आज्ञा को पूण निष्ठा के साथ पालन करते हैं। भरत और लक्ष्मण आदि अनुज राम के प्रति और सीता, उर्मिला, माण्डवी आदि नारियाँ अपने पतियो के प्रति सवाभाव द्वारा पूण नतिक निष्ठा का परिचय देती हैं।

अन्य जीवन–आदर्श

साकेत' महाकाव्य म भारतीय सस्कृति के महान् आदर्शों की प्रतिष्ठा कवि ने की है।

राजनीतिक आदर्श

राजनीतिक दृष्टि से साकेत म राजतन्त्रीय–व्यवस्था है। भारतीय सस्कृति म राजा को महत्वपूण स्थान है। एक ओर वह उच्च कुलीन गुणगौरव के कारण पूज्यनीय है। तो दूसरी ओर वह प्रजा के प्रति पितृवत स्नेहपूण सद् व्यवहार करने के लिए उत्तरदायी भी है। साकेतकार ने राष्ट्र की एकता और कल्याण की दृष्टि से राजतन्त्रीय व्यवस्था को ही आदश कहा है —

> 'एक राज्य न हो बहुत स हो जहा।
> राष्ट्र का बल बिखर जाता है वहा॥'

किन्तु राजा का कत्त व्य यह है कि वह प्रजा का प्रतिनिधि बनकर सुख शान्ति की व्यवस्था रख। इसी का आदश साकेत की शासकीय व्यवस्था है। जहा —

> नहीं कहा गह कलह प्रजा म
> है सन्तुष्ट यथा सब शान्त
> उनके आग सदा उपस्थित
> दिव्य राज कुल का दृष्टान्त। [१]

साकेतकार न राज्य का उद्देश्य सुख और शान्ति का व्यवस्था ही माना है। राजा लोकसवक हा है निरकुश शासक नहीं —

> तात राज्य नहा किमी का वित्त
> वह उन्हा क लोक–शान्ति निमित्त

---

१ साकेत प्रथम सग पृ० २४

स्ववलि देते हैं उसे जो पात्र,
नियत शासक लोक सेवक मात्र ।"[1]

'साकेत' के लक्ष्मण तो यहां तक कहते हैं —

'शासन सब पर हैं, इसे न कोई भूले ,

शासक पर भी, वह भी न फूल कर भूले ।" [2]

"साकेत" के कवि ने राज्य एवं शासन के प्रति सहज, उदात्त एवं प्रजातन्त्रीय दृष्टिकोण को अपनाया है । राम जिस राज्य के शासक हैं ।, वह राज्य जनहित के आदर्श को लेकर ही प्रतिष्ठित हुआ है । साकेतकार ने काव्य म राजा और प्रजा के सम्बन्धों को आदर्श रूप म स्थापित किया है । प्रजा का राजा म पूर्ण विश्वास है इसीलिए साकेत के निवासी वन जाते हुए भी राम से कहते हैं कि —

'राजा हमने राम तुम्ही को है चुना,
करो न तुम यो हाय, लोकमत अनसुना ।"[3]

और राजा का प्रजा का सेवक और प्रतिनिधि मात्र चित्रित किया है । इस प्रकार साकेत की राज्य व्यवस्था का स्वरूप राजतन्त्र के और प्रजातन्त्र के आदर्शों से समन्वित है ।

नैतिकता और कर्मण्यता

साकेत" के सांस्कृतिक जीवन मे नीति और कर्मवाद दोनों का उल्लेखनीय स्थान है । साकेत के सभी प्रमुख पात्र नैतिकता, लोक- मर्यादा और कर्त्तव्य-परायणता के प्रति सजग और सचेष्ट हैं । नैतिक आदर्शों को सम्मुख रखकर ही साकेत के राम सीता और लक्ष्मण वनवासी बनते हैं । भरत राजसी वैभव का त्याग करते हैं । कर्म निष्ठा का सबसे सुन्दर प्रतीक सीता का चरित्र है, जो चित्रकूट की पर्णकुटी म राजमहिषी होते हुए भी प्रत्येक छोटा बड़ा काय करती हैं । वृक्षो को पानी देने में कातने-बुनने मे एवं अन्य गृह कार्यों के करने म उन्हें अमित आनन्द का अनुभव होता है । कुटिया मे उनके लिए राजभवन का सुख एकत्रित हो गया । साकेत" की माण्डवी अपने पति स यही कहती है -

'स्वामी निज कर्त्तव्य करो तुम निश्चित मन से । [4]

द्वादश सर्ग म उर्मिला के आह्वान पर सब म कर्त्तव्य की भावना जग जाती

---

१ साकेत सप्तम सर्ग, पृ० २०२, २०३
२ वही अष्टम सर्ग, पृ० २६०
३ साकेत पंचम सर्ग, पृ० १२९
४ वही द्वादश सर्ग पृ० ४५१

सम्प्रदायगत दार्शनिक विचार

(अ) भक्ति विषयक – साकेत म वष्णव भक्ति की विचारधारा का प्रतिपादन हुआ है। वष्णव भक्ति का सबध उस पद्धित से है जिसके अ तगत भगवान विष्णु को पूण ब्रह्म मान कर उनकी साक्षातकार प्राप्ति सानिध्य एव सायुज्य क लिये वष्णव भक्त विष्णु के अनेक अवतारा को पूजा, अचना चितन, वदनाआदि करत हैं पौराणिक वाङ मय म अवतारवाद की परिकल्पना के विकास के साथ साथ विष्णु के अवतारो की सख्या म भी वद्धि होती गई। महाभारत के नारायणीयोपाख्यान के अनुसार भगवान विष्णु (वासुदेव) के छ अवतार माने गये – वाराह, नृसिंह वामन भागवराम, दशरथ पुत्र राम और कृष्ण। इसके पश्चात महाभारत म ही इनके अतिरिक्त चार और अवतारो के नाम जोड कर इनकी सख्या दस मानी गई। वे चार है– हस, कूम, मत्स्य, कल्कि। वायुपुराण म इन अवतारो की सख्या बारह हो गई और उपयु क्त दस नामों के साथ दत्तात्रेय तथा वद०यास दो नाम और जोड दिये गये। श्रीमद् भागवत पुराण म इन अवतारो की सख्या प्रथम स्क ध के तीसरे अध्याय मे बाइस उल्लिखित है और द्वितीय स्कन्ध मे यह सख्या तेईस हो जाता है। विष्णु क अवतारो म सख्या का निरतर अभिवद्धि को देखते हुए एमा प्रतीत होता है कि विष्णु की भक्ति की महत्ता जसे जसे बढ़ती गई वसे वसे अवतारा की सख्या म भी वद्धि होता गई। राम विष्णु के ही अवतार हैं। सम्पूण अवतारा म राम और कृष्ण ही दो एस अवतार हैं जिनके आधार पर अवतारवाद की कल्पना आज तक जीवित है। वास्तव मे राम और कृष्ण ही आज विष्णु क अवतार के प्रतीक मात्र बन गये है। इन दोनो अवतारा म भी राम का चरित्र सम्पूण दवीय गुणा एव आदर्शों स परिपुष्ट होने के कारण युगा स मानव जाति की प्ररणा का अक्षय स्रोत रहा है। राम के चरित्र को लेकर आदिकवि के महाका य से आज तक विभि न का यो की अन त सलिला प्रवहमान रही है। वष्णव भक्त राम का चरित्र गायन आराध्य देव की उपासना एव गुण गाथा के रूप म भी करत रहे हैं। गुप्त जी का साकेत की का य-रचना म एक उद्देश्य निज प्रभु अर्थात राम का गुणगान भी रहा है। गुप्त जी नि सन्देह एक वष्णव भक्त एव कवि है। अस्तु साकेत म वष्णव भक्ति की विचारधारा और तत्सबधी सिद्धा ता की प्रतिपत्ति हो जाना स्वाभाविक ही है।

राम को गुप्त जी अपना इष्टदेव मानत हैं। 'साकेत के सम्पूण कलेवर मे राम के प्रति कवि का पूज्य भाव प्रधान रहा है। उन्हान राम का सव०यापक एव परब्रह्म के रूप मे माना है। साकेत के आरम्भ म कवि न स्पष्ट कर दिया है कि राम ने ही मानव के रूप म ससार को पथ-दिखान एव भू-भार दूर करने के लिये अवतार लिया है —

"हो गया निर्गुण सगुण साकार है, ले लिया अखिलेश ने अवतार है।

+ + +

किस लिये यह खेल प्रभु ने है किया मनुज बनकर मानवी का पय पिया।

+ + +

पथ दिखाने के लिये संसार को दूर करने के लिये भू भार को।" [१]

यही नहीं काव्य के मुख पृष्ठ पर छपी हुई पंक्तियों में भी कवि ने यह प्रश्न किया है कि —

राम तुम मानव हो ईश्वर नहीं हो क्या ?
विश्व में रमे हुए नहीं सभी कहीं हो क्या ?
तब मैं निरीश्वर हूँ। ईश्वर क्षमा करें,
तुम न रमो तो मन तुममें रमा करे।'

इन पंक्तियों में वैष्णव भक्ति-भावना स्पष्ट दिखाई देती है।

वैष्णव भक्तों ने भक्ति को ही जीवन का सर्वस्व माना है। यहाँ तक कि मुक्ति से अधिक भक्ति ही भक्त के लिये महत्वपूर्ण है। साकेत' में इस प्रकार की विचारधारा भी मिल जाती है। साकेतकार का दृष्टिकोण भक्ति और मुक्ति को ऊँचा या नीचा न बता कर उनका समन्वय करने की ओर रहा है। लक्ष्मण गुहराज निषाद को भक्ति और मुक्ति के समन्वय का उपदेश देते हैं —

सखे समन्वय करो भक्ति का मुक्ति से। [२]

वैष्णवों के लिये भक्ति भवसागर से पार होने का एक साधन है। साकेत के राम स्वयं यह बात कहते हैं कि —

पर जो मेरा गुण कर्म स्वभाव धरेंगे
वे औरों को भी तार पार उतरेंगे' [३]

वैष्णव भक्त अपने उपास्यदेव की लीलाओं और महान् कार्यों का गुणगान किया करते हैं। गुप्त जी ने भी काव्य के अष्टम सर्ग में अपने इष्टदेव राम के महत् गुणों का उल्लेख किया है। उनके राम आर्यों का आदर्श बताने वाले सुख-शांति हेतु क्रांति मचाने वाले विश्वासी का विश्वास बनाने वाले, तापित, शापित बलहीन-दीन का उद्धार करने वाले समाज में मर्यादा स्थापित करने वाले नर को ईश्वरत्व प्राप्त कराने वाले और भूतल को स्वर्ग बनाने वाले हैं। [४]। इसके अतिरिक्त वैष्णव

१ साकेत प्रथम सर्ग पृ० १८
२ वही सर्ग ५ पृ० १४२
३ वही, अष्टम सर्ग पृ० २३५
वही वही पृ० २३ २३५

भक्ति के अन्तर्गत भगवान के नाम स्मरण की महिमा और समर्पण-भाव की भावना को भी गुप्त जी ने साकेत में अभिव्यक्त किया है। भक्ति को युगीन बनाने के लिये गुप्त जी ने युगानुरूप उदार दृष्टि का भी परिचय दिया है। साकेत के राम गुहनिषाद वानरों आदि से भी बन्धु-भाव का व्यवहार करते हैं। वैष्णव भक्ति के लिये गुरु का जो महत्व है वह वशिष्ठजी के प्रति राम द्वारा व्यक्त की गई श्रद्धा भावना में स्पष्ट दिखाई देता है। इस प्रकार 'साकेत' में गुप्त जी की वैष्णव भक्ति भावना पूर्णतः अभिव्यक्त हुई है। भक्त में जो भावुकता पूज्यभाव आराध्यदेव के प्रति श्रद्धा और समर्पण होना चाहिये वह सब साकेत में उपलब्ध है।

दर्शन सम्बन्धी

(१) ब्रह्म का स्वरूप और राम–गुप्त जी ने साकेत के प्रथम सर्ग में प्रारम्भ में ही यह स्वीकार किया है कि ब्रह्म निर्गुण एवं सगुण दो रूपों में होता है। वही अखिलेश ब्रह्म भार दूर करने के लिये निर्गुण से सगुण होता है।[1] साकेत के अष्टम सर्ग में राम को ब्रह्म का सगुण स्वरूप कहा गया है। ईश्वर के सभी अनन्त गुण उनमें विद्यमान हैं। ब्रह्म की शक्ति के समान सीता को भी जगत की सृष्टिकारिणी माया के रूप में कवि ने चित्रित किया है –

> उन सीता को निज, मूर्त्त-मति माया को
> प्रणय प्राणों को और कातकाया को।[2]

साकेत के राम पूर्ण ब्रह्म-स्वरूप हैं। वे जड़ को भी चेतन करने की सामर्थ्य रखते हैं।[3] वे सत्यं शिवं सुन्दरम् की साकार प्रतिमा हैं।[4] वे सर्वज्ञ और अन्तर्यामी हैं।[5] उनकी इच्छापूर्ति में ही सम्पूर्ण जगत का श्रेय है।[6] इस प्रकार गुप्त जी के राम में ब्रह्म के सम्पूर्ण गुण हैं। जहाँ तक राम के सम्प्रदायगत दार्शनिक स्वरूप का प्रश्न है वे विशिष्टाद्वैतवाद के सन्निकट हैं। ब्रह्म की इस कल्पना के मूल में गुप्त जी के पारिवारिक संस्कार भी सहायक रहे हैं। डा० उमाकान्त गोयल ने लिखा है कि 'रामानुजाचार्य की परम्परा में रामानन्द द्वारा प्रचारित एवं संशोधित श्री सम्प्रदाय से इनके परिवार का सर्वाधिक सम्बन्ध रहा है।'[7] इसलिये गुप्त जी ब्रह्म के विषय में विशिष्टाद्वैतवाद की मान्यताओं के समर्थक दिखाई देते हैं।

---

१ साकेत प्रथम सर्ग पृ० १८
२ वही अष्टम सर्ग पृ० २२१
३ वही पंचम सर्ग १४६
४ वही सप्तम सर्ग २१८
५ वही अष्टम सर्ग पृ० २५२
६ वही नवम सर्ग पृ० ३४०
७ डा० उमाकान्त गोयल मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता पृ० ४१६

गांधी जी की भांति शान्ति और दारिद्र्य का दुःख दूर करने के लिए है। उनमें अपरिग्रह की भावना विद्यमान है। वे कहते भी हैं—"मैं यहां जोड़ने नहीं आया।"[1] इसी प्रकार साकेत में गांधीवाद की अन्य सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक विचारधारा भी मिलती है।

साम्यवादी विचारधारा

साकेत पर साम्यवादी विचारधारा के आधारभूत सिद्धान्तों का भी प्रभाव दिखाई देता है। साम्यवाद समाज में आर्थिक समता और वर्गहीनता का समर्थक है। साकेत में गुप्त जी ने उसका मूलाधिक रूप में समर्थन किया है। साकेत के सामाजिक जीवन में सभी वर्ग के लोगों का समान महत्व है। एकादश सर्ग में शत्रुघ्न भरत के समक्ष राज्य की व्यवस्था का वर्णन करते हुए सामाजिक आदर्श के सम विभाग की चर्चा करते हैं।[2] साकेत के राम पिछड़े वर्ग के लोगों को (वन में रहने वाले लोग जो रीछ और वानरों की तरह रहते हैं) सामाजिक समानता का अधिकार प्राप्त कराते हैं।[3] साकेत का कवि समाज के लिए व्यक्ति के बलिदान को महत्व देता है। साकेत' के राम कहते हैं– हम हों समष्टि के लिए व्यष्टि बलिदानी।[4] वास्तव में साकेतकार साम्यवाद की राजनैतिक विचारधारा या क्रान्ति साधना द्वारा लक्ष्य प्राप्ति का समर्थक नहीं है। साकेतकार ने साम्यवाद के उग्र नहीं वरन् सहज और स्वाभाविक सिद्धान्तों को ही स्वीकार किया है।

राष्ट्रवादी विचारधारा

गुप्त जी राष्ट्रीय कवि थे। राष्ट्रीयता की भावना उनके काव्य में सर्वत्र दिखाई देती है। विश्व बन्धुत्व की भावना से अनुप्रेरित होकर भी स्वदेशप्रेम और राष्ट्रीय गौरव को वे कभी भी नहीं भूले। किन्तु उनकी राष्ट्रीयता संकुचित मनोवृत्तियों का परिणाम न होकर व्यापक सांस्कृतिक विश्वासों से पूर्ण है। गुप्त जी की राष्ट्रीय भावना के जो सूत्र साकेत' में बिखरे हुये हैं वे निम्नांकित हैं –

१ भारतीय अतीत के गौरव का आख्यान।
२ मातृभूमि के प्रति सम्मान का भाव।
३ स्वतन्त्रता के लिये संघर्ष।

साकेत में भारत की गौरवपूर्ण परम्पराओं, राष्ट्रीय महत्व के प्रतीकों (जैसे हिमालय, सरयू आदि) के प्रति सम्मान की भावना सर्वत्र व्यक्त हुई है। साकेत की उर्मिला युद्ध के लिये आह्वान करती हुई यही कहती है कि हिमालय का भाल

---

१ साकेत, अष्टम सर्ग, पृष्ठ २३४
२ वही, एकादश सर्ग, पृ० ४०६-४०७
३ वही, अष्टम सर्ग पृ० २३५
४ वही, वही पृ० २३३

नहीं झुकना चाहिए, गंगा, जमुना, सिंधु और सरयू के पानी की मर्यादा कम नहीं होनी चाहिये—

"विन्ध्य-हिमालय भाल भला झुक जाय न वीरो
चन्द्र सूर्य कुल की रीत कला रुक जाय न वीरो।
चढ कर उतर न जाय, सुनो कुल मौक्तिक मानी,
गंगा यमुना सिन्धु और सरयू का पानी।"[1]

'साकेत' मे गुप्त जी ने राम और रावण के युद्ध को भी राष्ट्रीय युद्ध का रूप दिया है। सीता का हरण भारतीय कुललक्ष्मी का हरण कहा गया है—

राक्षसियों से घिरी हमारी देवी सीता,
बन्दीगृह में बाट जोहती खडी हुई है।
+ +
पर धरे इस भूमि पर पामर पापी,
कुल लक्ष्मी का हरण करे वे सहज सुरापी
भरलो उनका रुधिर कर लो उनका तर्पण।'[2]

भरत भी उसी प्रकार के उद्गार व्यक्त करते हैं—

भारत लक्ष्मी पडी राक्षसो के बन्धन में,
सिन्धु पार वह बिलख रही है व्याकुल मन मे।[3]

वस्तुतः साकेत' की रचना काल में भारतवर्ष परतन्त्र था, व्यंजना में उपर्युक्त पंक्तियों मे गुप्त जी ने सीता के रूप में भारत माता के बन्धन की ही बात कही है। जहा तक परतन्त्रता की भावना का सम्बन्ध है, साकेतकार ने राष्ट्रीय प्रेम के कारण भी आर्य संस्कृति को सर्वश्रेष्ठ कहा है। राम रावण युद्ध भी एक प्रकार से आर्य और कौणप संस्कृतियों का युद्ध था जिसमें आर्य संस्कृति ही विजयी हुई।

मानवतावादी विचारधारा

साकेत के जीवन दर्शन को प्रभावित करने वाली सबसे अधिक पूर्ण विचारधारा मानवतावाद की है। सम्पूर्ण काव्य में जिस जीवन दर्शन को कवि ने स्वीकार किया है वह मानव कल्याण और विश्व बन्धुत्व की भावनाओं से अनुप्राणित है। सर्वप्रथम गुप्त जी ने अपने इष्टदेव राम को ही मानव कहा है। साकेत के राम

---

१ साकेत पृ० ४९५
२ वही द्वादश सर्ग पृ० ४७१, ४७२
३ वही द्वादश सर्ग, पृ० ४५४

मानव की महत्ता को स्पष्ट शब्दों में स्वीकार करते हैं। ब्रह्म का अवतार भी मानवता की रक्षा के लिए ही हुआ है। साकेत में कवि का हृदय ईश्वर के गुणगान में इतना तल्लीन नहीं दिखाई देता जितना कि वह मानवता के प्रेम में निमग्न है, उसकी प्रशंसा में लीन है तथा उसकी उन्नति के लिए प्रयत्नशील है।[1] गुप्त जी ने राम के चरित्र में भी मानव में ईश्वरत्व का निरूपण किया है। राम का चरित्र मानवीय सद्गुणों के कारण महत्वपूर्ण है। 'साकेत' के राम अवतार होने के कारण हमारी श्रद्धा के पात्र नहीं वरन् उन गुणों के कारण हैं जिनसे वे नर का ईश्वरता प्राप्त कराकर भूतल को ही स्वर्ग बनाने के लिए तत्पर रहते हैं। श्री वाजपेयी जी के शब्दों में 'साकेत में प्रथम बार मानव को उसके अपनी चरम सीमा पर—ईश्वर के समकक्ष लाकर रखा गया है जो मध्य युग में किसी प्रकार सम्भव न था। साकेत इसी कारण हिन्दी की प्रथम मानवता प्रधानवादी या प्राय मानवतावादी रचना है।[2]

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि गुप्त जी का मानवतावाद एक विशिष्ट कोटि का है। उसमें मानव महिमा की स्वीकृति है, मानवतावादी मूल्यों की प्रतिष्ठा का आग्रह है और मानवता के मंगल विधान का प्रयास भी है किन्तु मानव को सर्वोपरिता के प्रति गुप्त जी आश्वस्त नहीं हैं। मानवतावाद की नवीन विचारधारा के अनुसार मानव ही सर्वोपरि है। वह सृष्टि की सर्वश्रेष्ठ कृति है। मनुष्य किसी कल्पित सत्ता या शक्ति के अधीन नहीं, वह स्वयं अपने भाग्य का विधाता और निर्माता है। प्रकृति की सम्पूर्ण उपलब्धियों पर उसका एकछत्र साम्राज्य है। किन्तु गुप्त जी इस प्रकार के मानवतावादी दृष्टिकोण को साकेत में स्वीकृत नहीं कर सके हैं। वे मानव में ईश्वरत्व की प्रतिष्ठा करके भी ईश्वर को नहीं भुला सके हैं। मनुष्य के पुरुषार्थ के प्रति आस्थावान होकर भी भाग्य और प्रारब्ध के विश्वास को नहीं छोड़ सके हैं। अस्तु गुप्त जी का मानवतावादी दृष्टिकोण नितान्त नवीन और युगीन नहीं कहा जा सकता। उसमें बौद्धिकता के स्थान पर भावुकता की प्रधानता है। वास्तव में गुप्तजी भागवतीय मानवता वाद के प्रतीक कवि हैं।'[3] पारिवारिक एवं संस्कारगत प्रभावों के कारण गुप्त जी से वस्तुतः मानवतावादी जीवन-दर्शन के इसी रूप को अपनाने की अपेक्षा की जा सकती थी।

इस प्रकार साकेत की दार्शनिक भित्ती के निर्माण में प्राचीन और नवीन विभिन्न विचारधाराओं का योगदान रहा है। 'साकेत' के जीवन दर्शन की सबसे

---

१ डा० द्वारिकाप्रसाद साकेत में काव्य संस्कृति और दर्शन पृ० ३८३
२ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—आधुनिक साहित्य पृ० ९७
३ डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का मत—भूमिका में—डा० उमाकान्त गोयल कृत शोध प्रबन्ध—मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृत के आख्याता—भूमिका पृष्ठ क

महत्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि उसमें कवि ने समन्वयवादी पद्धति को अपना कर वेदान्त से लेकर गांधीवाद तक प्रचलित महत्वपूर्ण दार्शनिक सिद्धान्तों का सफलता पूर्वक समाहार किया है।

कामायनी

सृजन-प्रेरणा और संदेश

कामायनी' वर्तमान युग की सर्वोत्कृष्ट काव्य-कृति है। प्रत्येक श्रेष्ठ कलाकृति का निर्माण किसी न किसी सद्प्रेरणा का परिणाम होता है। महाकाव्यों का निर्माण तो निश्चय ही महती सृजन प्रेरणा के परिणाम स्वरूप होता है। 'कामायनी' की काव्य-कला और जीवन-दर्शन के महत् रूप को देखकर यह स्पष्ट आभास होता है कि इस काव्य की रचना किसी बलवती सृजन प्रेरणा का ही परिणाम है। 'कामायनी' के 'आमुख' में कवि द्वारा किये गये संकेतों से यह प्रतीत होता है कि कामायनी की सृजन प्रेरणा के मूल में प्रसाद जी की प्राचीन भारतीय वाङमय के प्रति अनन्यनिष्ठा और प्राचीन इतिहास के प्रति प्रेम का भाव निहित है। यही नहीं कामायनी की रचना अन्य अनेक युगीन परिस्थितियों के परिणाम स्वरूप भी हुई है। 'कामायनी' का कवि एक व्यापक जीवन-दर्शन से प्रभावित था। भारतीय साहित्य संस्कृति इतिहास एवं दर्शन के अध्ययन द्वारा उसने जीवन के प्रति एक दृष्टिकोण स्थिर किया है वह था-आनन्दवाद।

आनन्दवाद की प्रतिष्ठा द्वारा मानव कल्याण की भावना भी 'कामायनी' की सृजन प्रेरणा कही जा सकती है। प्रसाद जी भारतीय संस्कृति के उदात्त स्वरूप को भी 'कामायनी' के माध्यम से अभिव्यक्ति देना चाहते थे। तत्कालीन जीवन-संघर्ष, भौतिकवादी जीवन मूल्यों का उत्कर्ष यथार्थवादी दृष्टिकोण के अतिशय प्रचार एवं विज्ञान के प्रतिवादी प्रभावों के कारण उत्पन्न जीवन की विषम-ताओं विद्रूपताओं, विडम्बनाओं को दूर करने के लिए कवि एक महत् सन्देश भी देना चाहता था। 'कामायनी' की सृजन प्रेरणा का सबसे महत्वपूर्ण कारण कवि का मानवतावादी जीवन दृष्टि और मानवीय जीवन मूल्यों के प्रति आस्था है। इसी आस्था से प्रेरित होकर कवि ने मानव-हिताय कृति के रूप में कामायनी का सृजन किया है। वास्तव में कामायनी की प्रेरणा शक्ति भारतीय संस्कृति की उदार, व्यापक एवं कल्याणाभिनिवेशी दृष्टि है जिसका केन्द्र बिन्दु समन्वय है। प्रसाद जी के समूचे साहित्य में जो जीवनदृष्टि दिखाई पड़ती है वह समन्वयात्मक है। उनकी प्रेरणा का स्रोत भारत का अतीत ज्ञान-गौरव और ऐश्वर्य-महिमा ही है। फिर भी वे अतीतोन्मुखी या पुनरुत्थानवादी नहीं है। इसके विपरीत उन पर राष्ट्रीयता आधुनिकता और लोकतन्त्रात्मक मानवतावाद का गहरा प्रभाव पड़ा है। इस तरह प्रसाद-साहित्य में प्राचीनता और नवीनता, आध्यात्मिकता और भौतिकता यथार्थवाद तथा आदर्शवाद का सुन्दर समन्वय हुआ है। किन्तु कामायनी

म प्रसाद के समन्वयात्मक दृष्टिकोण का और भी विकसित और पूर्ण रूप दिखाई पड़ता है उसमें प्रसाद जी ने भारतीय संस्कृति और विश्व मानव की संस्कृति म, राष्ट्रीयता को अन्तर्राष्ट्रीयता म, व्यष्टि चेतना का समष्टि चेतना म विलीन करके मानवतावाद का नवीन और प्राञ्जल रूप उपस्थित किया है । यही समन्वयवाद जो मानवतावाद का नवीनतम और प्राञ्जल रूप है 'कामायनी' की प्रेरणा शक्ति है । यही महती प्रेरणा भारतीय संस्कृति के चिरन्तन तत्त्वों से पोषित और लोकतन्त्रात्मक मानवतावादी विचार धाराओं से अनुप्राणित है ।[1]

कामायनी' की महत् प्रेरणा के समान उसका उद्देश्य भी महान है। क्योंकि– महान कवियों की भांति प्रसाद का काव्य जीवन से अनुप्राणित है और जीवन की अभिव्यक्ति ही उसका उद्देश्य है । [2] वस्तुत चिर प्रगतिशील मानसिक वृद्धि के साथ चिर स्थिर और चिर संयमित श्रद्धा से कल्याणकारी संयोग की प्रतिष्ठा ही कामायनी के कवि का चरम लक्ष्य है ।'[3] काव्याचार्यों ने काव्य रचना का उद्देश्य चतुर्वर्ग फल (धर्म, अर्थ काम और मोक्ष) प्राप्ति बताया है । काम का का उद्देश्य आनन्द की उपलब्धि है । कामायनी के नायक मनु आनन्दमय लोक म पहुंचकर ही जीवन के उद्देश्य की प्राप्ति करते हैं स्पष्ट है । कि कामायनीकार ने जीवन के महान ध्येय मोक्ष (आनन्द) की प्राप्ति को लक्ष्य बना कर ही प्रस्तुत काव्य की रचना की है । धर्म अर्थ और काम कामायनी म अपेक्षाकृत गौण रूप म वर्णित हुए हैं किन्तु उपेक्षित नहीं । धर्म और काम का तो विशिष्ट रूप'कामायनी म चित्रित हुआ है । दया माया ममता प्रेम और अहिंसा आदि उदात्त आदर्शों को ही कवि ने युग धर्म के व्यापक सिद्धान्तों के रूप म श्रद्धा के माध्यम से प्रतिष्ठित किया है । अर्थ नामक फल की स्थापना इडा स्वप्न और संघर्ष नामक सर्गों म दिखाई देती है । काम की प्रतिष्ठा मोक्ष के साधन रूप म ही हुई है । श्रद्धा काम, वासना लज्जा और स्वप्न नामक सर्गों म काम का मनोवैज्ञानिक रूप से अंकन हुआ है । अस्तु उद्देश्य की दृष्टि से कामायनी तुलसी कृत 'रामचरितमानस' की कोटि की रचना सिद्ध होती है क्योंकि उसका अन्तिम लक्ष्य लोकमंगल ही है ।

कामायनी महाकाव्य की सृजन प्ररणा के मूल म ही काव्य के सन्देश का ध्वनि भी परिव्याप्त है । 'कामायनी महाकाव्य का सबसे महत्त्वपूर्ण सन्देश वैज्ञानिकता और बौद्धिकता के प्रतिवादी प्रभावों से आक्रान्त मानवता को समरसता के विचार-दर्शन द्वारा आनन्द की उपलब्धि कराना है । समरसता का सिद्धान्त यद्यपि

---

१ डा० शम्भुनाथसिंह–हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ० ५९६
२ डा० प्रेमशंकर–प्रसाद का काव्य पृ० ५६१
३ गंगाप्रसाद पाण्डेय बीसवीं शती की श्रेष्ठतम काव्यकृति कामायनी, अपनी-बात पृ० १२

शव दर्शन की उपपत्ति है किन्तु प्रसाद जी ने कामायनी म व्यवहारवादी जीवनदर्शन से अनुप्राणित करके मानव जाति के प्रति एक शाश्वत सन्देश के रूप म प्रसारित किया है। 'कामायनी' म जिस सामरस्य की बात कही गयी है उसका सम्बन्ध वतमान जीवन की असमानताओ एव विषमताओ को दूर करने से है यह समरसता यदि मानव के अन्तजगत मे हृदय और बुद्धि की है तो व्यवहार जगत म आदर्शवादी एव व्यवहारवादी (यथार्थवादी) मूल्यो के समन्वय की है। समन्वय की यह प्रक्रिया मनुष्य की इच्छा ज्ञान और क्रिया के सन्दभ म भी प्रस्तुत की गई है। वतमान जीवन की विडम्बना ही तो यह है —

'ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न, इच्छा क्या पूरी हो मन की।
एक दूसरे से न मिल सकें, यह विडबना इस जीवन की॥ १

कामायनीकार ने यह सिद्ध कर दिया कि युद्ध के शासन म प्रचालित होकर मानव सघष क्राति, विप्लव और युद्ध को ही जन्म देता है। बौद्धिक अतिवाद मानसिक अशाति का जन्मदाता है। श्रद्धा (अर्थात हृदय) या भाव-जगत क सान्निध्य मे रहकर ही मनुष्य जीवन के चरम लक्ष्य आनद की प्राप्ति कर सकता है। समरसता क अतिरिक्त प्रसाद जी ने नारी जाति को भी उत्थानमूलक सदेश दिया है। श्रद्धा का चरित्र और कृतित्व नारी के लिये उच्चतम प्रेरक आदर्शो का प्रतीक है। कामायानी का सर्वाधिक महत्पूर्ण सन्देश 'मानवता की जय-विजय का है। मानवता की जय जीवन के शक्ति-कणो मे समन्वय स्थापित करन म ही निहित है —

शक्ति के विद्युत-कण जो व्यस्त, विकल बिखरे है हो निरूपाय।
समन्वय उनका करे समस्त, विजयिनी मानवता हो जाय।[२]

'कामायनी महाकाव्य की उपयुक्त पक्तियो म कवि ने जो सन्देश प्रसारित किया है वह सवकालीन और विश्व जनीन है। इस प्रकार महत् सजन प्रेरणा एव महान् सन्दश से अनुप्राणित होने के कारण 'कामायनी' अमर काव्या की श्रेणी म निबद्ध होकर एक साथ ही महाकाय और महान् काव्य, दोना हैं।

सास्कृतिक निरूपण

महाकाव्य म जातीय और राष्टीय सस्कृति के निरूपण का प्रयत्न तो होता ही है, विश्व महाकाव्या मे सम्पूण मानव सस्कृति के निर्माण की भी चेष्टा रहती ह। 'कामायनी' म निरूपित सस्कृति का स्वरूप केवल जातीय एव राष्टीय ही नही वरन् विश्वजनीन है। कामायनो म सास्कृतिक निरूपण की दृष्टि से दो उल्लेखनीय विशेषताए स्पष्ट दिखाई देती ह —

---

१ कामायनी, श्रद्धा सग, पृ० ५९
२ कामायनी, रहस्य सग, पृ० २७२

म प्रगाढ़ थ सम वयात्मक दृष्टिकोण का और भी विशालित और पूर्ण रूप दिखाई पडता है उसम प्रसाद जी न भारतीय संस्कृति और विश्व मानव की संस्कृति म राष्ट्रीयता को म तरराष्ट्रीयता म, व्यष्टि भावना को समष्टि भावना म, विलीन करके मानवतावाद का नवीन और प्राणवान रूप उपस्थित किया है। यही समन्वयवाद जो मानवतावाद का नवीनतम और प्राणवान रूप है 'कामायनी' की प्रेरणा शक्ति है। यही महती प्रेरणा भारतीय संस्कृति के चिरन्तन तत्वों से पोषित और लोकतन्त्रात्मक मानवतावादी विचार धाराओं स अनुप्राणित है।[1]

कामायनी' की महत प्रेरणा के समान उसका उद्देश्य भी महान है। क्योंकि– महान कवियों की भांति प्रसाद का काव्य जीवन स अनुप्राणित है और जीवन की अभिव्यक्ति ही उसका उद्देश्य है।[2] वस्तुत चिर प्रगति शील वैज्ञानिक बुद्धि के साथ चिर स्थिर और चिर सयमित श्रद्धा के समन्वयकारी सयोग की प्रतिष्ठा ही कामायनी के कवि का चरम लक्ष्य है।[3] काव्याचार्यों न काव्य रचना का उद्देश्य चतुर्वग फल (धर्म अर्थ काम और मोक्ष) प्राप्ति बताया है। काम मन का उद्देश्य आनन्द की उपलब्धि है। कामायनी के नायक मनु आनन्दमय लोक म पहुचकर ही जीवन के उद्देश्य की प्राप्ति करते हैं स्पष्ट है। कि कामायनीकार ने जीवन के महान ध्येय मोक्ष (आनन्द) की प्राप्ति को लक्ष्य बना कर ही प्रस्तुत काव्य की रचना की है। धर्म अर्थ और काम कामायनी म प्रसगानुकूल गौण रूप म वर्णित हुए हैं किन्तु उपेक्षित नहीं। धर्म और काम का तो विशिष्ट रूप'कामायनी म चित्रित हुआ है। दया माया ममता, प्रेम और अहिंसा आदि उदात्त आदर्शों का ही कवि ने युग धर्म के व्यापक सिद्धान्तों के रूप म श्रद्धा के माध्यम स प्रतिष्ठित किया है। अर्थ नामक फल की स्थापना इडा स्वप्न और सघर्ष नामक सर्गों म दिखाई देती है। काम की प्रतिष्ठा मोक्ष के साधन रूप म ही हुई है। श्रद्धा काम, वासना लज्जा और स्वप्न नामक सर्गों म काम का मनोवैज्ञानिक रूप से अकन हुआ है। अस्तु उद्देश्य की दृष्टि स कामायनी तुलसी कृत 'रामचरितमानस की कोटि की रचना सिद्ध होती है क्योंकि उसका अन्तिम लक्ष्य लोकमगल ही है।

कामायनी महाकाव्य की सृजन प्रेरणा के मूल म ही काव्य के सन्देश का ध्वनि भी परिव्याप्त है। 'कामायनी महाकाव्य का सबसे महत्त्वपूर्ण सन्देश वैज्ञानिकता और बौद्धिकता के प्रतिवादी प्रभावों से आक्रान्त मानवता को समरसता के विचार-दर्शन द्वारा आनन्द की उपलब्धि कराना है। समरसता का सिद्धान्त यद्यपि

---

१ डा० शम्भुनाथसिंह–हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास,पृ० ५९६

२ डा० प्रेमशंकर–प्रसाद का काव्य पृ० ५६१

३ गगाप्रसाद पाण्डेय बीसवी शती की श्रेष्ठतम काव्यकृति कामायनी, अपनी बात, पृ० १२

नव दशन की उपपत्ति है किन्तु प्रसाद जी ने कामायनी म व्यवहारवादी जीवनदशन म ग्रनुप्राणित करके मानव जाति के प्रति एक शाश्वत सन्देश के रूप म प्रसारित किया है। 'कामायनी' मे जिस सामरस्य की बात कही गयी है उसका सम्बन्ध वतमान जीवन की असमानताओं एव विषमताओं का दूर करने से है यह समरसता यदि मानव के अन्तजगत म हृदय और बुद्धि की है तो व्यवहार जगत म आदशवादी एव व्यवहारवादी (यथायवादी) मूल्यो के समन्वय की है। समन्वय की यह प्रक्रिया मनुष्य की इच्छा ज्ञान और क्रिया के सन्दभ म भी प्रस्तुत की गई है। वतमान जीवन की विडम्बना ही तो यह है —

'ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न, इच्छा क्या पूरी हो मन की।
एक दूसरे से न मिल सकें, वह विडबना इस जीवन की ॥ १

कामायनीकार न यह सिद्ध कर दिया कि बुद्ध के शासन म प्रचालित होकर मानव सघष, अशांति विप्लव और युद्ध का ही जन्म देता है। बौद्धिक अतिवाद मानसिक अशांति का जन्मदाता है। श्रद्धा (अर्थात हृदय) या भाव-जगत के सान्निध्य म रहकर ही मनुष्य जीवन के चरम लक्ष्य आनद की प्राप्ति कर सकता है। समरसता के अतिरिक्त प्रसाद जी न नारी जाति का भी उत्थानमूलक सदेश दिया है। श्रद्धा का चरित्र और कृतित्व नारी के लिये उच्चतम प्रेरक आदर्शों का प्रतीक है। कामायनी का सर्वाधिक महत्वपूण सन्देश 'मानवता की जय-विजय का है। मानवता की जय जीवन के शक्ति-कणो म समन्वय स्थापित करने म ही निहित है —

शक्ति के विद्युत-कण जो व्यस्त विकल बिखरे है हो निरुपाय।
समन्वय उनका करे समस्त, विजयिनी मानवता हो जाय।[2]

'कामायनी महाकाव्य की उपयुक्त पक्तियो म कवि ने जो सन्देश प्रसारित किया है वह सवकालीन और विश्व जनीन है। इस प्रकार महत् सजन प्रेरणा एव महान् सन्देश से अनुप्राणित होने के कारण कामायनी' *अमर काव्यो की श्रेणी मे* निबद्ध होकर एक साथ ही महाकाव्य और महान् काव्य, दोनो है।

सास्कृतिक निरूपण

महाकाव्य मे जातीय और राष्ट्रीय सस्कृति के निरूपण का प्रयत्न तो होना ही है विश्व महाकाव्यों म सम्पूण मानव सस्कृति के निर्माण की भी चेष्टा रहती है। कामायनी' म निरूपित सस्कृति का स्वरूप केवल जातीय एव राष्ट्रीय ही नहीं वरन् विश्वजनीन है। कामायनी म सास्कृतिक निरूपण की दृष्टि से दो उल्लेखनीय विशेषताए स्पष्ट दिखाई देती है —

———

१ कामायनी, श्रद्धा सग, पृ० ५९

२ कामायनी रहस्य सग पृ० २७२

१ प्रसाद जी ने भारतीय संस्कृति में दैवीय और मानवीय रूपों की प्रतिष्ठा करते हुए मानवीय संस्कृति को श्रेष्ठ बताया है।

२ भारतीय और पाश्चात्य संस्कृति के आधारभूत सिद्धान्तों तथा आदर्शों का सम्यक् निरूपण करके दोनों की तुलना में भारतीय संस्कृति को पूर्ण एवं महान् सिद्ध किया है।

देव संस्कृति

प्राचीन भारतीय वाङ्मय में देव संस्कृति का निरूपण किया गया है। देवताओं का वर्णन मुख्य रूप से वेदों–पुराणों में मिलता है। वेदों में उन देवताओं का वर्णन हुआ है जो मुख्यतः प्राकृतिक शक्तियों के प्रतीक हैं जैसे प्रकाश का सूर्य और अग्नि, जल का वरुण, वायु का मरुत आदि प्राकृतिक शक्तियों को प्राचीनकाल में ही मनुष्य देवों के रूप में पूजने लगा। इन शक्तियों की संख्या बढ़ती चली गई और वैदिक देव परिवार में इनकी संख्या ३३ तक मानी जाती है।[१] पुराण काल तक आते आते वैदिक–देव देवता बन गये। 'कामायनी" में जिस देव संस्कृति का निरूपण किया गया है वह अधिकांशतः वैदिक देव –परिवार की संस्कृति है। देव संस्कृति की प्रमुख विशेषताएं निम्नांकित बताई गई हैं —[२]

१ अलौकिक शक्ति सम्पन्नता।
२ अनन्त ऐश्वर्य की प्राप्ति।
३ भव्य एवं विशाल भवनों में निवास।
४ संगीत प्रियता।
५ अलंकार प्रियता।
६ सोमपान में रुचि।
७ यज्ञों में आस्था।
८ विलास प्रियता।
९ आत्मवाद की प्रबलता।
१० अमरता की भावना का प्रसार।

'कामायनी' में देव संस्कृति की उपर्युक्त विशेषताओं का निरूपण 'चिन्ता' सर्ग में मिल जाता है। देव संस्कृति के ध्वंसावशेष मनु चिन्तित होकर जब देव सृष्टि के विनाश के कारणों पर विचार करते हैं तभी देव संस्कृति की विशेषताएं हमारे सम्मुख आती हैं। प्रसाद जी ने बतलाया है कि देव जाति इतनी शक्ति सम्पन्न थी कि प्रकृति उनके पगतल में झुकी रहती थी और धरती देवताओं के

———

१ डा० सम्पूर्णानन्द–हिन्दू देव परिवार का विकास पृ० ९२
२ डा० द्वारिकाप्रसाद—कामायनी में काव्य, संस्कृति और, दर्शन पृ० ३०८

चरणों से आक्रांत होकर प्रति दिन कांपती रहती थी।[1] प्रसाद जी ने देवताओं को नित्य विलासी कहा है। उनके मुख सुरा से सुरभित एवं अरुण रहते थे, और नेत्र अनुराग के आलस्य से भरे रहते थे। वे अनंग की पीडाओं का अनुभव कर अंग भंगियों का नृत्य करते हुए नित्य ही अभिसार की क्रीडायें करते हुये मदन उत्सव मनाया करते थे। कवि के शब्दों में देवता 'विकल वासना के प्रतिनिधि थे।'[2] 'कामायनी' में मनु ने जिन यज्ञों का विधान किया है उनसे भी यही सिद्ध होता है कि यज्ञ में पशुओं की बलि दी जाती थी और सोमपान किया जाता था।'[3] इस प्रकार कामायनी में देव संस्कृति के जिस स्वरूप का निरूपण हुआ है वह भोग-प्रधान दिखाई देती है। प्रलय होने पर उस सृष्टि का अवसान ही ध्वस हो गया और उसके एकमात्र जीवित प्रतिनिधि के रूप में मनु शेष रहे –

'आज अमरता का जीवित हूँ मैं वह भीषण जर्जर दम्भ,
आह ! सर्ग के प्रथम अंक का अधम पात्र मय सा विष्कम्भ।'[4]

मानव संस्कृति

प्रलय के उपरान्त जिस नवीन संस्कृति का प्रादुर्भाव हुआ वही मानव संस्कृति के रूप में प्रसिद्ध है। भारतीय दृष्टि से इस संस्कृति को आर्य संस्कृति अथवा सीमित अर्थों में हिन्दू-संस्कृति कहा जाता है। भारतीय संस्कृति का निर्माण अनेक जातीय संस्कृतियों के मिश्रण से हुआ है जिनमें द्रविड, आर्य, शक, हूण पठान मुगल अंग्रेज आदि विभिन्न जातियों की सांस्कृतिक विशेषताओं का योगदान प्रमुख है। भारतीय—मानव-संस्कृति की प्रमुख विशेषतायें निम्नांकित हैं —

१ पंच महायज्ञों का विधान।
२ षोडश संस्कार।
३ वर्णाश्रम धर्म।
४ यम नियमों की व्यवस्था।
५ उपासना पद्धति का प्रचार।
६ समन्वयवाद।
७ नारी की महत्ता।
८ विश्वमैत्री एवं विश्व बन्धुत्व।
९ धर्म अर्थ काम, मोक्ष का महत्त्व।
१० स्वदेश प्रेम एवं राष्ट्रीयता की भावना।

---

१ कामायनी, चिन्ता सर्ग, पृ० ९
२ वही पृ० १० ११
३ वही, कर्म सर्ग पृ० ११६
४ वही, चिंता सर्ग, पृ० १८

भारतीय सस्कृति मे दो रूप दिखाई देते हैं एक प्राचीन और वैदिक जिसमे यज्ञ विधान कर्मकाण्ड उपासना वर्णाश्रम धर्म एव यम नियमो की व्यवस्था पर बल दिया गया है। दूसरा नवीन और आधुनिक है जिसके अन्तर्गत राष्ट्रीयता की भावना विश्वबन्धुत्व समन्वयवाद आदि को महत्व दिया गया है। कामायनी मे भारतीय सस्कृति के प्राचीन और नवीन दोनो रूपो का निरूपण हुआ है।

प्राचीन भारतीय सस्कृति का कर्मकाण्डी स्वरूप

कामायनी मे पच महायज्ञो के स्थान पर मनु के पाक यज्ञ आदि कर्मों का उल्लेख किया गया है। 'आशा सर्ग मे मनु पाक यज्ञ करते है। अग्नि होत्र से अवशिष्ट अन्न को भी किसी जीवित प्राणी की प्राप्ति के लिए दूर रख आते हैं।[१] जहा तक सस्कारो का प्रश्न है कामायनी मे श्रद्धा को ग्रहण करने मे पाणिग्रहण सस्कार एव गर्भाधान सस्कार का उल्लेख मिलता है। आनन्द की प्राप्ति मे कैलाश प्रयाण मे वानप्रस्थ और सन्यास आदि आश्रमो के सस्कारो का भी उल्लेख मिलता है। वर्णाश्रम धर्म व्यवस्था का भी कामायनी मे सकेत है सारस्वत प्रदेश के लोग अपने अपने वर्ग बनाकर परिश्रम करते हुये जीवन बिताते हैं।[२] जहा तक आश्रम व्यवस्था का सम्बन्ध है मनु के माध्यम से चारो आश्रमो की रूप रेखा मिल जाती है। काव्य के आरम्भ मे हिमालय पर यज्ञादि करते हुये मनु ब्रह्मचर्य आश्रम के धर्म का पालन करते हैं। श्रद्धा के मिलन के पश्चात एव सारस्वत प्रदेश मे उनकी जीवनचर्या का स्वरूप गृहस्थाश्रमी का है। निर्वेद और दर्शन सर्गों मे राज्य व्यवस्था छोडकर सरस्वती के तट पर मनु का तपस्या मे लीन होना वानप्रस्थ की ओर सकेत करता है।

भारतीय सस्कृति का नवीन रूप

भारतीय सस्कृति के आधुनिक स्वरूप के निर्माण मे प्राचीन सस्कृति के आदर्शों का भी महत्वपूर्ण योगदान है। किन्तु नवीन स्वरूप के निर्माण मे आधुनिक युग की विचारधाराओ का पर्याप्त प्रभाव पडा है। भारतीय सस्कृति की एक विशेषता समन्वयवादी प्रवृत्ति है। 'कामायनी' मे समन्वयवाद, समरसता' के सिद्धान्त के अन्तर्गत प्रतिपादित हुआ है। कामायनीकार ने केवल प्रवृत्तिमूलक समन्वय ही अकित नही किया है वरन् व्यक्ति और समाज अधिकृत और अधिकारी पुरुष और स्त्री एव व्यष्टि और समष्टि के समन्वय पर भी बल दिया है। 'कामायनी' मे नारी की महत्ता पर भी पर्याप्त बल दिया गया है। कामायनी की श्रद्धा का चरित्र नारी जाति के सम्पूर्ण विशेषताओ एव गुणो का केन्द्र है। प्रसाद जी ने कामायनी मे श्रद्धा के जीवन चरित्र को इतने दिव्य और महान् रूप मे अकित किया है कि वह सम्पूर्ण नारी जाति के ऊपर एक

१ कामायनी दर्शन सर्ग पृ० २५४

'परानक्ति' के रूप म दिखाई देती है। प्रस्तुत महाकाव्य म श्रद्धा का चरित्र इस प्रकार विकसित किया गया है कि वह सतत अपन 'स्व' का लय, परिवार, समाज राष्ट्र विश्व के लिये करती जाती है। उसके चरित्र के विकास मे जीवन के सभी प्रमुख मूल्यो की प्राप्ति का पथ दृष्टिगोचर होता है। इन विशेषताओं क कारण यदि हम श्रद्धा को राष्ट्र सस्कृति की 'आत्मा' कहें तो कोई अनियुक्ति नही। भारतीय सस्कृति के सिवाय विश्व की कोई अन्य सस्कृति श्रद्धा जसा चरित्र नही उत्पन्न कर सकती।[1]

विश्व बन्धुत्व की भावना कामायनी की सबस महत्वपूर्ण सास्कृतिक विशेषता है। कामायनीकार ने मानवतावादी जीवन मूल्यो के आधार पर कामायनी के सास्कृतिक भवन का निर्माण किया है। श्रद्धा मनु के प्रथम मिलन म ही मानवता की जय और विश्व के कल्याण की बात कहती है। वह किसी राष्ट्र या जातीय सस्कृति के अभ्युदय की बात न कह कर सम्पूर्ण विश्व के मगल की कामना करती है—श्रद्धा चेतना के भाव सत्यों के पूर्ण सुन्दर इतिहास को विश्व के हृदय पटल पर दिव्य अक्षरो से अकित होने और मानवता की कीर्ति को सवत्र फलाने की बात कहकर विश्व बधुत्व की भावना का परिचय देती है।[2] कामायनी मे कवि ने स्पष्ट शब्दों म मनु के द्वारा कहलाया है —

> हम अन्य न और कुटुम्बी हम केवल एक हमी हैं
> तुम सब मेरे अवयव हो जिसमे कुछ कमी नही हैं।
> शापित न यहा है कोई तापित पापी न यहा है,
> जीवन वसुधा समतल है समरस है जो कि जहा है।[3]

कवि ने विश्व बन्धुत्व एव 'वसुधव कुटुम्बकम्' के साथ साथ स्वदश प्रम एव राष्ट्रीयता की भावना को भी विस्मृत नही किया है। कामायनी' म स्थान स्थान पर पवतराज हिमालय, कलाश, मानसरोवर सारस्वत-प्रदेश आदि के वर्णन म देश प्रेम की भावना का व्यक्त किया है। 'इडा' सग म कल्याण भूमि यह लोग' शब्द कहकर स्वदेश प्रम एव राष्ट्रीय भावना का हा प्रसाद जी न अभिव्यक्त किया है।

कामायनी म हृदयवादी भारतीय सस्कृति और बुद्धिवादी पाश्चात्य सस्कृति का तुलनात्मक निरूपण करके भी प्रसाद जी न भारतीय सस्कृति की ही श्रेष्ठता को प्रतिपादित किया है। बस कामायनी म जिन सास्कृतिक-जीवन-मूल्यो का प्रतिष्ठा हुइ है व विश्व जनीन हैं। 'कामायनी मे पारिवारिक, सामाजिक

१ डा० रामलालसिंह—कामायनी अनुशीलन पृ० २७०
२ कामायनी—श्रद्धा सग पृ० ५८ ५९
३ वही —आनन्द सग पृ० ८७, ८८

राजनीतिक धार्मिक, नैतिक, आध्यात्मिक मूल्य भारतवर्ष के लिये जितने उपयोगी है उतने ही विश्व के अन्य राष्ट्रों के लिये भी कामायनी में मानवता की भावनात्मक सत्ता हिन्दू जाति के लिये ही नहीं, हिन्दुस्तान के लिये ही नहीं वरन् सारी मानवता की रक्षा के लिये मुखरित हो उठी है। इसलिए कामायनी भारतीय जीवन एवं भारतीय साहित्य की ही नहीं वरन् विश्व साहित्य तथा विश्व जीवन की एक अमूल्य सम्पत्ति बन गई है। प्रसाद जी विश्व-बन्धुत्व के उदात्त आदर्शों से प्रेरित होकर भी भारतीय आदर्शों से प्रभावित थे। भारतीयता की भावना उनकी सम्पूर्ण साहित्य-चेतना को अनुप्राणित किये हैं। इस दृष्टि से विचार करें तो सभ्यता के जिस विकास को 'कामायनी' में चित्रित किया है वह पाश्चात्य और पौर्वात्य सभ्यताओं का सम्मिलित रूप है किन्तु भारतीय सभ्यता और संस्कृति के त्यागमय आध्यात्मिक कर्मनिष्ठ स्वरूप के सम्मुख पाश्चात्य सभ्यता की यांत्रिक भौतिक, भोगप्रधान सभ्यता बहुत अधिक महत्वपूर्ण दिखाई नहीं देती है। किन्तु कामायनीकार ने दोनों संस्कृतियों के स्वरूप-समन्वय द्वारा जिन आदर्शों की स्थापना की है वे निश्चय ही महत्वपूर्ण हैं। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि 'कामायनी' में संस्कृति का स्वरूप समन्वयवादी होते हुये भी प्रसाद जी की निष्ठा और आस्था भारतीय (आर्य) संस्कृति के प्रति अडिग हैं।

दार्शनिक पृष्ठभूमि

कामायनी की दार्शनिक पृष्ठभूमि का निर्माण प्रमुख रूप से शैवागमों के प्रत्यभिज्ञा दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन की अनेक महत्वपूर्ण विचार धाराओं के आधार पर हुआ है। बौद्धों के दुःखवाद क्षणिकवाद, शून्यवाद न्याय-वैशेषिक के परमाणुवाद, विज्ञान के भौतिकवाद विकासवाद एवं उसके अंगभूत परिवर्तनवाद मध्ययुगीन नियतिवाद एवं आधुनिक गांधीवाद की भी विचारधाराओं का योगदान भी कामायनी' की दार्शनिक भित्ति के निर्माण में स्पष्ट दिखाई देता है। इन सम्पूर्ण दार्शनिक सिद्धान्तों और विचारधाराओं योग से प्रसाद जी ने कामायनी की जो दार्शनिक उपलब्धि की है वह है समरसता का सिद्धान्त और 'आनन्दवाद'। 'कामायनी की सम्पूर्ण दार्शनिक उपपत्तियों को इन्हीं दो शब्दों में आत्मसात किया जा सकता है।

'कामायनी में जिस समरसता जन्य आनन्दवाद की उपलब्धि हुयी है वह मूलतः शैवागमों में प्रतिपादित सामरस्य एवं आनन्दवाद से प्रभावित अवश्य है किन्तु उसकी पूर्ण अनुकृति-मात्र ही नहीं। 'कामायनी' का आनन्दवाद दार्शनिक सिद्धान्त या वाद की दृष्टि से प्रसाद जी की अपनी मौलिक सृष्टि है। जिसके निर्माण में उन्होंने मुख्य रूप से शैवदर्शन बौद्धदर्शन वेदान्त-दर्शन उपनिषद् तथा

---

१ डा० रामपालसिंह—कामायनी अनुशीलन, पृष्ठ ७८

वतमान युग की साम्यवा`दी प्रवत्तिया का आवश्यकतानुसार उपयोग किया है। कि`न्तु किसी एक मतवाद को पकड कर उसकी अ`ध उपासना प्रसाद जी को अ`भीष्ट न थी।'[1]

प्रत्यभिज्ञा दशन और कामायनी

भारत मे शवो के पाच सम्प्रदाय प्रसिद्ध हैं —

१ शव सम्प्रदाय
२ पाशुपत-सम्प्रदाय,
३ कालामुख सम्प्रदाय
४ कापालिक सम्प्रदाय, और
५ वीर शव सम्प्रदाय।

इन सम्प्रदायो का विकास देश म भिन्न स्थानो पर और शिवाराधना की भिन्न भिन्न पद्धतियो को अपनाकर हुआ। शव सम्प्रदाय मुख्यत तमिल प्रदेश म, पाशुपत गुजरात म वीर शव मत्र का प्रचार कर्नाटक प्रदेश मे हुआ। कालामुख और कापालिकों के विशेष विवरण उपलब्ध न होने से प्रतीत होता है कि इनकी क्रियाए एव सिद्धान्त इतने गुप्त थे कि आगे चलकर इनकी परम्पराए नष्ट प्राय हो गयी।[2]

'सर्व दशन सग्रह' नामक ग्रन्थ मे चार शव दशनो का उल्लेख किया गया है—नकुलीश, पशुपति, प्रत्यभिज्ञा, और रसेश्वर दशन।[3]

प्रत्यभिज्ञादशन का विकास काश्मीर मे हुआ था, इसलिए यह काश्मीर शव दशन नाम से प्रसिद्ध है। इसके मूल प्रवतक वसुगुप्त माने जाते हैं। वसुगुप्त के दो प्रधान शिष्य थे, कल्लट और सोमानन्द। कल्लट ने 'स्पन्दशास्त्र' का और सोमानन्द ने 'प्रत्यभिज्ञा शास्त्र' का प्रवतन किया। इस शास्त्र का मूल ग्रन्थ 'शिवदृष्टि' है। अभिनव गुप्ताचाय ने उन प्रत्यभिज्ञा सूत्रों पर 'ईश्वर प्रत्यभिज्ञा – विमर्शिनी' नामक टीका तथा 'तन्त्रालोक', तन्त्रसार' परमार्थसार आदि अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे।[4] इन्ही ग्रन्था मे प्रत्यभिज्ञा दशन की दार्शनिक विचारधाराओं का विवेचन है।

प्रत्यभिज्ञादशन पूर्णत अद्वतवादी है जिसके अनुसार 'शिवोऽहम्' की स्थिति को प्राप्त करना जीव का अन्तिम लक्ष्य है। इस दृष्टि से प्रत्यभिज्ञा दशन और शङ्कर क वदान्त दशन का प्रतिपाद्य समान है। वदान्त मे 'अहम् ब्रह्मास्मि' की

---

१ डा० विजयेन्द्र स्नातक कामायनी दशन, प० १०२
२ डा० वलदेव उपाध्याय–आय सस्कृति के मूलाधार, पृ० ३२९
३ वही –सव दशन सग्रह, पृ० ७०-७८
४ डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना—कामायनी म काव्य, सस्कृति और दर्शन, पृ० ४११

स्थिति को जीव का परम लक्ष्य माना गया है। वस्तुतः 'ब्रह्म की प्रत्यभिज्ञा या पहचान हो जाने के कारण ही इसे प्रत्यभिज्ञा दर्शन कहते हैं।'[1]

१ आत्मा

प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुसार आत्मा को अनन्य स्वरूप कहा गया है। वहाँ आत्मा को चिति के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है और उसे परम शिव से अभिन्न माना जाता है। कामायनी में प्रसाद जी ने प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुसार आत्मा को 'महाचिति' कहा है जो लीलामय आनन्द करने वाली है —

कर रही लीलामय आनन्द, महाचिति सजग हुयी सी व्यक्त।
विश्व का उन्मीलन अभिराम, इसी में सब होते अनुरक्त ॥[2]

प्रसाद जी ने आत्मा के लिए चेतना शब्द का भी प्रयोग किया है –

चेतना एक विलसती आनन्द अखण्ड घना था।[3]

यह आत्मा ही परम शिव है। इसी शिवरूप आत्मतत्त्व से अर्थात् शिव (आत्मा की 'इच्छा' से) विश्व का निर्माण होता है –

काम मंगल से मंडित श्रेय सर्ग इच्छा का है परिणाम।[4]

२ जीव

प्रत्यभिज्ञा दर्शन में त्रिपाश्य आबद्ध जीव 'पशु' के नाम से सम्बोधित किया गया है।[5]

इस जीव की चार संज्ञाएं मानी गयी है—सकल, प्रलयाकल, विज्ञानाकल और शुद्ध।[6]

जीव को शुद्धस्वरूप की प्राप्ति 'शिवोऽहम्' के ज्ञान द्वारा होती है। 'कामायनी' में मनु जीव के प्रतीक हैं। उनका जीवन चिन्ताग्रस्त है, भोग–विलास की प्रवृत्ति भेद–बुद्धि, ईर्ष्या स्वार्थ भावना आदि के कारण वे प्रथम सर्ग से लेकर निर्वेद सर्ग तक तीन प्रकार के मलों एवं काल, कला, नियति, राग, विद्यादि छः कंचुकों से घिरे हुए व बंधन ग्रस्त रहते है। रहस्यसर्ग मे श्रद्धा के सयोग से इच्छा क्रिया ज्ञान के त्रिकोण मिलन में शाम्भव स्थिति उत्पन्न हो जाती है। उसी के परिणाम स्वरूप वे शिवरूप होकर अनन्त अखण्ड शिव की प्राप्ति करते है –

---

१ डा० विशम्भरनाथ उपाध्याय–हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० २५५
२ कामायनी, श्रद्धा सर्ग पृ० ५३
३ वही आनन्द सर्ग, पृ० २९४
४ वही, श्रद्धा सर्ग, पृ० ५३
५ ईश्वर प्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी भाग २, पृ० २२०
६ तन्त्रालोक भाग १ पृ० २१६

"स्वप्न स्वाप जागरण भस्म हो, इच्छा, क्रिया, ज्ञान मिल लय थे।
दिव्य अनाहत पर निनाद में श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे।'[1]

३ जगत

प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुसार सृष्टि या जगत चिति का स्वरूप माना गया है, जो अपनी इच्छा के अनुसार विश्व का उदय या उन्मेष करती है। 'कामायनी' में प्रसाद जी ने विश्व को 'चिति' की इच्छा का परिणाम ही कहा है यह संसार महाचिति की लीलामय अभिव्यक्ति होने के कारण आनन्दमय है और आत्मा का संसार के प्रति अनुराग होना भी स्वाभाविक ही है। प्रसाद जी ने जगत मिथ्या का दृष्टिकोण नहीं अपनाया—

अपने दुख सुख से पुलकित, यह मूर्त विश्व सचराचर।
चिति का विराट वपु मंगल, यह सत्य, सतत चिर सुन्दर।"[2]

इस प्रकार प्रसाद जी ने 'कामायनी' में आत्मा जीव और जगत की कल्पना प्रत्यभिज्ञा दर्शन के सैद्धान्तिक आधार पर साकार की है।

तीन पदार्थ

पशु पति और पाश को सभी शैव दर्शनों की भांति प्रत्यभिज्ञा दर्शन मे इन तीन पदार्थों को स्वीकार किया है। जीव ही पशु है, जो जगत रूपी पाश मे बन्धा हुआ है। पशुपति (शिवत्व) को प्राप्त नहीं कर पाता। पशुपति की प्राप्ति उसे शिवत्व बोध (शिवोऽहम्) अर्थात प्रत्यभिज्ञान होने पर होती है। 'कामायनी' मे मनु की स्थिति जीव की है। वे इडा के भौतिक आकर्षण में बंधकर भटकते हैं। किन्तु श्रद्धा के सम्पर्क से अन्ततः उन्हें शिवत्व बोध, पशुपति (नटराज) के दर्शनों से होता है। उस स्थिति में उन्हें सम्पूर्ण संसार एक दिखाई देता है। वे अपने पराये का भेद भूल कर आनन्दमय समरसता-जन्य आनन्द की स्थिति को प्राप्त करते हैं।

आनन्दवाद

'कामायनी' का मूल प्रतिपाद्य आनन्दवाद ही है। यह आनन्दवाद मानव की उस अवस्था का प्रतीक है, जिसमें वह सम्पूर्ण भेदभाव भूल कर विश्व-बन्धुत्व के उदात्त भाव से युक्त होता है। "कामायनी' में आनन्द के जिस रूप की प्रतिष्ठा है वह स्पष्टतः आत्मस्थ है—बाह्य गोचर विश्व रूप में प्रसारित आनन्द नहीं—यह आनन्द स्पष्टतः औपनिषदिक परम्परा से प्रभावित शैवाद्वैत-प्रतिपादित

---

१ कामायनी, रहस्य सर्ग, पृ २७३
२ वही आनन्द सर्ग, पृ० २८८

अभेद मय आत्मसत्वाद है, जिसमें आत्म और परमात्मा में ही नहीं, वरन् आत्म और जगत में भी पूर्ण 'एक्य' की भावना निहित है।''[1]

कामायनी में आनंद का स्वरूप जगत् के भौतिक आनन्द से भिन्न है। संसार में जो माधुर्य एवं शारीरिक सुखात्मक अनुभूति का भाव है वह तो वस्तुतः आनन्द की छाया मात्र है। इस आनन्द के प्राप्त होने पर वासना का प्रावल्य और प्रवृत्ति समाप्त हो जाती है। उसका स्वरूप सात्विक है। वह प्रसाद है। इस आनन्द की उपलब्धि होने पर मानव अभेद की स्थिति का अनुभव करता है। विश्व के बाह्य द्वन्द्व जैसे सुख दुख और जड़ चेतन स्थितियां समरसता के कारण समाप्त हो जाती है —

सब भेद भाव भुलवाकर दुख सुख को दृश्य बनाता,
मानव कह रे! यह मैं हूं यह विश्व नीड बन जाता।'[2]

जगत् के सम्पूर्ण दुखों का आत्यंतिक निवृत्ति भी हो जाती है। प्रसाद जी ने आनन्दवाद की स्थापना सृष्टि के भौतिक संघर्ष से मुक्ति प्राप्ति करने के लिए की है क्योंकि जगत की विडम्बनाओं में फंसा हुआ मनुष्य जीवन के वास्तविक सुख को तब तक प्राप्त नहीं कर सकता जब तक वह आनन्द के आध्यात्मिक स्वरूप को पहचान न ले किन्तु इसका यह अर्थ कभी नहीं कि व्यक्ति पलायनवादी और निवृत्तिमार्गी हो जाए। प्रसाद का आनन्दवाद सर्ववाद के सिद्धान्त पर स्थित है— सर्ववाद का लक्ष्य निवृत्ति द्वारा उतना सिद्ध नहीं होता जितना विश्व को कर्मस्थल मानने से सिद्ध होता है यह कोरा कर्म नहीं सम क्यात्मक कर्म है।[3]

कामायनी में इस ओर संकेत भी किया गया है —

यह नीड मनोहर कृतियों का यह विश्व कर्म रंगस्थल है।
है परम्परा लग रही यहां, ठहरा जिसमें जितना बल है।''[4]

उपर्युक्त पंक्तियों में काम ने मनु को विश्व की कर्म रंगस्थली में ठहरने की शिक्षा दी है। श्रद्धा ने भी चिंताग्रस्त मुख से यही कहा है —

दुख के डर से तुम अज्ञात, जटिलताओं का कर अनुमान
काम से झिझक रहे हो आज, भविष्यत से बन कर अनजान।'[5]

---

१ डा० नगेन्द्र—कामायनी के अध्ययन की समस्याएं, पृ० ५८–५९
२ कामायनी –आनन्द सर्ग पृ० २८९
३ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—आधुनिक साहित्य पृ० ११८
४ कामायनी–काम सर्ग पृ० ७५
५ वही –श्रद्धा सर्ग पृ० ५२

ससार (सग) मगल और श्रेय मडित है। उसे तिरस्कृत करना उचित नही जिस तुम जगत् की ज्वालाओं का मूल और अभिशाप समझत हो वह ईश्वर के वरदान का रहस्य भी है। विश्व भूमा का मधुमय दान है —

"काम मगल से मडित श्रेय, सग इच्छा का है परिणाम।

+ + ×

विषमता की पीडा से व्यस्त, हो रहा स्पदित विश्व महान्
यही दुख सुख विकास का सत्य, यही भूमा का मधुमय दान।"[१]

इस प्रकार प्रसाद जी का आनन्दवाद' आध्यात्मिक होते हुए भी पूर्णत अभौतिक नही। आत्मिक होते हुए भी उसकी अनुभूति अशरीरी नहो। उसम कम की प्रेरणा और सात्त्विक सुख की प्राप्ति एक साथ होती है।

समरसता

समरसता शब्द और सिद्धान्त दोनो को ही प्रसाद जी ने शवदर्शनों स ग्रहण किया है। शव दर्शनो मे शिव और शक्ति तत्त्व वे समन्वय का प्रतिपादन किया गया है। 'कामायनी' म इस समरसता के सिद्धान्त को कवि ने इच्छा, कम और ज्ञान नामक त्रिपुर के समन्वय द्वारा प्रतिपादित किया है कामायनीकार ने यह प्रतिष्ठित किया है कि मानव की इन तीना प्रवत्तियो का समन्वय होने पर ही वास्तविक आनन्द की उपलब्धि सभव है। ज्ञान, क्रिया और इच्छा नामक ताना शक्तिया क्रमश पुरुष की बुद्धि, अहकार और मन को क्रमश सतोगुणी तमोगुणी एव रजोगुणी प्रवत्तिया है। मनोवज्ञानिक दृष्टि से मानव मन की इन त्रिवत्तिया म सामरस्य स्थापित होने पर वह पूणत की स्थिति को पहुँच कर अखण्ड आनन्द की प्राप्ति उसी प्रकार करता है जिस प्रकार योगी समाधि की अवस्था मे ब्रह्म की अनुभूति। कामायनी कार ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि इच्छा ज्ञान और क्रिया का भिन्नत्व जीवन की विडम्बना है —

'ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है, इच्छा क्यो पूरी हो मन की।
एक दूसरे से न मिल सकें, यह विडम्बना है जीवन की।[२]

इन तीनो के मिलन पर मनु को दिव्यानन्द की प्राप्ति होता है। मनु दिव्य अनाहत निनाद का शब्द सुनकर योगियो की भाति परमानन्द की दशा को प्राप्त होते है। कामायनी की दार्शनिक उपलब्धिया म समरसता का सिद्धान्त सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। प्रसाद जी ने इस सिद्धान्त को जीवन के व्यवहार जगत म भी प्रतिष्ठित किया है। उदाहरण के लिए उन्होंने पुरुष और स्त्री के सबध को

---

१ कामायनी श्रद्धा सग पृ० ५३-५४
२ वही, रहस्य सग, पृ० २७२

समाप्त करने के लिए समरसता पूर्ण सम्बन्धों की आवश्यकता पर भी बल दिया है। काम ने मनु से कहा भी है —

'तुम भूल गए पुरुषत्व मोह में, कुछ सत्ता है नारी की।
समरसता है सम्बन्ध बनी, अधिकार और अधिकारी की।'[1]

इसी समरसता को उन्होंने जड़ और चेतन का कारण भी माना है यथा —

समरस थे जड़ या चेतन सुन्दर साकार बना था।'

इसी समरसता का उपदेश सारस्वत प्रदेश में जाती हुयी श्रद्धा अपने पुत्र को भी देती है —

सबकी समरसता का प्रचार, मेरे सुत सुन माँ की पुकार।[2]

कामायनी के अंतिम सर्ग में तो इस समरसता का बड़ा विनोद प्रभाव चित्रित किया गया है —

शापित न यहाँ है कोई तापित पापी न यहाँ है।
जीवन वसुधा समतल है, समरस है जो कि यहाँ है।[3]

इस प्रकार कामायनी में समरसता के तीन रूप मिलते हैं —व्यक्ति की समरसता समाज की समरसता, प्रकृति तथा पुरुष की समरसता। व्यक्ति की समरसता श्रद्धा के द्वारा व्यक्त हुयी है। समाज की समरसता के अभाव में सारस्वत प्रदेश में विप्लव तथा संघर्ष होता है। प्रकृति तथा पुरुष की समरसता आनन्द सर्ग में दिखाई गयी है।[4]

समरसता परम शान्ति एवं आनन्दमय अवस्था की जननी है। उस अवस्था को प्राप्त कर लेने पर मानव के लिए कुछ भी प्राप्त करना अशेष हो जाता है। यही जीव की जीवन यात्रा समाप्त होती है। अब जन्म मरण में कुछ भी नहीं रहता। और अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति हो जाने से कर्म की गति भी यहीं शान्त हो जाती है। यही सत, चित और आनन्द का सामंजस्य तथा समरस्य है यही भारतीय जीवन दर्शन, धर्म और कर्म चरम लक्ष्य है।[5]

इस प्रकार समरसता का सिद्धान्त 'कामायनी' की अनुपम देन है जिसे कवि ने वर्तमान् असंतुलित जीवन के समाधान के रूप में चित्रित किया है। शैवागमों एवं तन्त्रों से प्रभावित होते हुए भी यह सिद्धान्त नितान्त युगीन और नवीन है।

---

१ कामायनी, इडा सर्ग पृ० १६२
२ वही पृ० २४४
३ वही आनन्द सर्ग पृ० २८८
४ डा० रामलालसिंह—कामायनी अनुशीलन पृ० १७८
५ डा० उमेश मिश्र —भारतीय दर्शन पृ० २५

नियतिवाद

शवागमा म नियति को विश्व के क्रिया व्यापारा की सयोजिका शक्ति के रूप म वर्णित किया गया है । वह कमफल देने वाली शिव शक्ति है । शवदशन म नियति, कला विद्या राग, काल आदि कचुको म एक है, जो जीव को आवृत्त करते हैं । तत्रालोक म नियति को नियमन करने वाली कहा गया है —

'नियति नियो वना धत्त विशिष्टे कायमण्डले' [1]

प्रसाद जी ने 'कामायनी म इसे (नियति) उस चेतन शक्ति के रूप म ग्रहण किया है जिसके सम्मुख मानव विवश हो जाता है । ससार का समस्त क्रिया व्यापार नियति के द्वारा ही चलता है । वह व्यक्तिगत नही, समष्टिगत है । नियति केवल मनु का जीवन ही परिचालित नही करती, वरन् समग्र ससार उसी से नियन्त्रित है । '[2]

'कामायनी म सवत्र ही नियतिवाद का स्वर सुनाई देता है क्योकि सृष्टि के कम चक्र का सचालन वही करती है —

'कमचक्र सा घूम रहा है यह गालक बन नियति प्रेरणा,
सब के पीछे लगी हुई है, कोई व्याकुल नयी ऐषणा ।
+ + +
नियती चलाती कम चक्र यह तृष्णा जनित ममत्व वासना ।[3]

काव्यारम्भ म प्रलय काल की समाप्ति के बाद नियति के शासन को कवि ने सूचित किया है —

'उस एकात नियति शासन म चले विवश धीरे धीरे ।
एक शात स्पदन लहरा का, होता ज्यो सागर धीरे ।' [4]

इडा सग म कवि ने नियति को एक नटी कहा है जिसका रूप भीषण भी होता है —

इस नियति नटी के अति भीषण, अभिनय की छाया नाच रही ।
खोखली शून्यता म प्रतिपद, असफलता अधिक कुलाच रही ॥ [5]

वासना सग म नियति के कौतुक को देखकर मनु चमत्कृत होते हुए चित्रित किय गये हैं —

---

१ तत्रालोक ६/१६०
२ डा० प्रभाकर प्रसाद का काव्य, पृ० ३६८
३ कामायनी, रहस्य सग प० २६६ ६७
४ वही आशा सग पृ० ३४
५ वही इडा सग पृ० १५८

देखते थे अग्नि ज्वाला से कुतूहल युक्त,
मनु चमत्कृत निज नियति का खेल बंधन युक्त।[1]

संघर्ष सर्ग में इसी नियति को विकरालमयी के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिसे देखकर सभी व्याकुल हो जाते हैं —

ताडव में थी तीव्र प्रगति,
परमाणु विकल थे, नियति विकर्षण मयी
त्रास से सब व्याकुल थे।'[2]

'कामायनी' में इस प्रकार नियति को एक नियता शक्ति के रूप में चित्रित किया गया है किन्तु कामायनी का नियतिवाद मनुष्य को अकर्मण्य और निराश नहीं बनाता वरन् अकर्म से कर्म की ओर प्रवृत्त करता है। कामायनी" का नियतिवाद भाग्यवाद की उस विचारधारा से भी भिन्न है, जिसमें पूर्व जन्मों के कर्म का फल मानकर व्यक्ति निष्क्रिय भाव से परिस्थितियों की विडम्बना को सहता रहता है। 'नियति को प्रसाद जी अचेतन प्रकृति का कार्य कलाप मानते हैं। सचेतन प्रकृति नियति के रूप में ही सक्रिय होती है प्रसाद जी की दृष्टि में प्रकृति का नियमन और विश्व का सन्तुलन करने वाली शक्ति नियति है जो मानव अतिवादों को रोकथाम करती है और विश्व का सन्तुलित विकास करने में सहायक होती है। प्रसाद का यह नियति सिद्धान्त साधारण भाग्यवाद या प्रारब्धवाद से भिन्न है। नियति एक अज्ञेय शक्ति है, किन्तु वह जड और अज्ञान मूलक नहीं है।"[3]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि—'प्रसाद जी ने नियति को भारतीय दर्शन की ठोस चिन्तन भूमि पर प्रतिष्ठित किया है। वह विश्व नियता की इच्छा शक्ति है प्रसाद जी ने उसको पूर्णतः स्वतन्त्र तथा स्वच्छाचारिणी माना है। ईश्वर की इच्छा शक्ति होने के कारण अन्य सत्ता नहीं है। उसके कर्म चक्र के प्रवर्तन का उद्देश्य सदैव जीव के लिए कल्याणमय है क्योंकि वह अन्त में उसे शिव तत्त्व की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देती है, जिसे प्राप्त करके वह आनन्द लोक का जीव बन जाता है।'[4]

---

१ कामायनी, वासना सर्ग पृ० ८३
२ वहीं संघर्ष सर्ग पृ० २००
३ प्रसाद का जीवन दर्शन कला और कृतित्व सुसम्पादक महावीर अधिकारी में आचार्य वाजपेयी का कामायनी का दार्शनिक निरूपण नामक निबंध पृ० ९३
४ डा० रामगोपाल त्रिवेदी—हिन्दी काव्य में नियतिवाद, पृ० ३०८, ३०९

अन्य दार्शनिक विचारधाराओं का प्रभाव

२० वीं शताब्दी म गांधी जी का प्राविर्भाव, राजनीति के क्षेत्र म ही नही वरन् तत्कालीन भारतीय जीवन के सभी क्षेत्रों के लिए अत्यन्त महत्त्व पूण था। गाधी जी के विचार (जीवनदशन) से हिन्दी काव्य की प्रतिनिधि काव्य धाराए यथेष्ट रूप म प्रभावित हुई। युग जीवन की चेतना के आकलन का विराट प्रयास होने के कारण महाकाव्य म अपने युग की उन्नत विचारधाराओं की प्रतिच्छायाओं का समावेश होना स्वाभाविक ही है। कामायनी व्यापक अर्थों मे एक युगीन महाकाव्य होने के कारण गाधीवाद के मूल सिद्धान्तो से प्रभावित है। काव्य के प्रारंभिक सर्गों मे अहिंसा की जिस विचारणा का समथन कवि ने श्रद्धा के माध्यम से कराया है, वह गाधीवादी प्रभाव की व्यंजक है। 'कामायनी' की श्रद्धा मनु के हिंसात्मक कार्यों का दृढता से विरोध करती है। अपने पालित पशु की यज्ञ म बलि दिय जाने पर वह कहता भी है कि किसी देवता के नाते बलि देना कितना धोखा है।[1]

इसके अतिरिक्त जिस प्रकार साकेत की सीता चित्रकूट म कोलभिल्ल बालाओं को कातना बुनना सिखाती हैं, उसी प्रकार 'कामायनी' की श्रद्धा भी हाथो मे तकली लेकर बुनती हैं। गाधीवाद के अतिरिक्त डा० नगेन्द्र ने 'कामायनी' पर बौद्धदर्शन के शून्यवाद, क्षणवाद, परमाणुवाद, दुखवाद, तथा विकासवाद और उसके अगभूत परिवतनवाद, शक्ति स्पधावाद आदि का प्रभाव भी बतलाया है।[2]

शून्यवाद

मौन नाश विध्वंस अँधेरा, शून्य बना जो प्रकट अभाव,
वही सत्य है, अरी अमरते, तुझको यहा कहा अब ठाव।[3]

क्षणवाद

'जीवन तेरा क्षुद्र अंश है, व्यक्त नील घन माला म,
सौदामिनी सधि सा सुन्दर, क्षण भर रहा उजाला म।''[4]

परिवतनवाद

''विश्व एक बधन विहीन परिवतन तो है,
इसकी गति म रवि—शशि तारे य सब जो हैं,
रूप बदलते रहते वसुधा जल निधि बनती
उदधि बना मरुभूमि जलधि म ज्वाला जलती।''[5]

---

१ कामायनी, कर्म सग, पृ० १२९

२ डा० नगेन्द्र–कामायनी के अध्ययन की समस्यायें, पृ० ६६–६८

३ कामायनी–चिंता सग पृ० १८

४ वही चिंता सग पृ० १९

५ वही संघष सग पृ० १९०

परमाणु वाद

"वह मूल शक्ति उठ खड़ी हुई, अपने आलस का त्याग किये,
परमाणु बाल सब दौड़ पड़े, जिसका सुन्दर अनुराग लिये ।"[१]

इनके अतिरिक्त द्वन्द्वात्मक भौतिक वाद, गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त गतिशीलता, प्रकाश और वायुमण्डल आदि विभिन्न सिद्धान्तों की और भी प्रसाद जी की 'कामायनी' मे सकेत मिलते हैं ।[२]

मानवतावाद

कामायनी की सपूर्ण दार्शनिक उपलब्धियों का अन्तिम लक्ष्य मानवोत्थान की भावना है । कामायनी के कथानायक और काव्य-फल (आनन्दवाद) के उपभोक्ता भी मानवता के जनक मनु ही हैं । प्रसाद जी ने दार्शनिक प्रवृत्तियो के द्वारा भी यही प्रतिपादित किया है कि मानव अपने जीवन के भौतिक सघर्ष से निवृत्ति तभी पा सकता है जब वह आस्थामूलक सतुलित जीवनदृष्टि का विकास करे । मात्र बुद्धि के द्वारा अनुशासित न होकर हृदय की भी बात सुने । जीवन की भौतिक साधना ही मानव का अन्तिम लक्ष्य नही है उसका लक्ष्य श्रेयस की प्राप्ति है । इस दृष्टि से विचार करने पर कामायनीकार का जीवनदर्शन मानव-जीवन का ही दर्शन दिखाई देता है । 'सचमुच प्रसाद जी ने दर्शन से जीवन को देखा है और जीवन से दर्शन को । इसीलिए कामायनी की दार्शनिक पीठिका पर वे मानव जीवन का आनन्दपूर्ण भवन निर्माण करने मे सफल हुये हैं ।'[३]

कामायनी का मानवतावादी जीवन दर्शन मानव की जय ध्वनि करने वाली पक्तियो के शाश्वत सन्देश मे निहित है, जिनमे कहा गया है ।—

शक्ति शाली हो विजयी बनो,
विश्व मे गूज रहा जयगान ।[४]

निष्कर्ष रूप मे यह कहा जा सकता है कि कामायनी की दार्शनिक पृष्ठभूमि प्राचीन और नवीन विचार-दर्शनो के उन्नत भावो को आत्मसात करके निर्मित हुई है । उसमे एक ओर प्रत्यभिज्ञा जैसे शैवागमी गूढ दार्शनिक सिद्धान्तो की विवेचना है तो दूसरी ओर विज्ञान मनोविज्ञान और द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद जैसे नवीन विचार दर्शनो का भी समावेश है । कामायनी की दार्शनिकता का चरम निदर्शन आनन्दवाद और समरसता के सिद्धान्त है ये दोनो सिद्धान्त यद्यपि

---

१ कामायनी, काम सर्ग पृ० ७२
२ डा० द्वारिकाप्रसाद—कामायनी मे काव्य सस्कृति और दर्शन, पृ० ४६३
३ डा० रामलालसिंह—कामायनी अनुशीलन, पृ० १८०
४ कामायनी श्रद्धा सर्ग पृ० ५७

शैवागमो से गहीत किये गये हैं किन्तु प्रसादजी ने अपनी काव्य प्रतिमा और कला क्षमता के द्वारा उनका जिस सुन्दर ढग से काव्य म समाहार किया है, उसके कारण वे उनकी मौलिक दार्शनिक–उद्भावनाए बन गय हैं।

कुरुक्षेत्र

श्री रामधारीसिह दिनकर कृत 'कुरुक्षेत्र' काव्य के सभी समीक्षकों ने एकमत से जिस तथ्य का लक्ष्यगत करके इस कृति की महत्ता को स्वीकार किया है वह है–जीवन दर्शन। और यह सत्य भी है कि 'कुरुक्षेत्र' काव्यगत उपादानो और कलात्मक प्रतिमानो की दृष्टि स इतनी भव्य रचना नही जितनी जीवन दर्शन के आलोक से दीप्तिमान विराट काव्यकृति। कुरुक्षेत्र म प्रतिपादित जीवन दर्शन को समालोचकों ने प्रगतिवादी साम्यवादी समाजवादी, मानवतावादी प्रवृत्ति मूलक व्यवहारवादि आदि विभिन्न अभिधानो द्वारा सम्बोधित किया है। किन्तु वास्तविकता यह है कि 'कुरुक्षेत्र' के माध्यम म दिनकर जी ने मानवतावादी जीवन-दर्शन की मान्यताओं को ही युद्धवादी विचार दर्शन की पृष्ठभूमि पर प्रस्थापित करने का सफल प्रयास किया है। इस प्रस्थापना के मूल मे कवि की उदात्त जीवनदृष्टि आशावादी कर्ममय जीवन की आस्था निरतर विद्यमान रही है। 'कुरुक्षेत्र के 'निवदन' म कवि ने स्पष्ट रूप से कहा है कि– 'पहले मुझे अशोक के निर्वेद ने आकर्षित किया और कलिंग विजय' नामक कविता लिखते लिखते मुझे ऐसा लगा मानो, युद्ध की समस्या मनुष्य की सारी समस्याओं को जड हो। युद्ध निंदित और क्रूर कर्म है किन्तु इसका दायित्व किस पर होना चाहिए ? उस पर जो अनीतियों के जाल बिछाकर प्रतिकार को आमत्रण देता है ? या उस पर जो जाल को छिन्न-भिन्न कर देने के लिए आतुर है ?' वस्तुत इन्ही प्रश्न–चिन्हों के सन्दर्भ म कुरुक्षेत्र की जीवन दर्शन विषयक विचारधाराओं और मान्यताओं का विकास हुआ है।

युद्धवादी विचार-दर्शन

कुरुक्षेत्र' का प्रकाशन सन् १९४६ म हुआ। स्पष्ट है कि 'कुरुक्षेत्र' की रचना द्वितीय विश्व युद्ध की पृष्ठभूमि पर हुई। द्वितीय विश्व युद्ध में जन धन का भयकर विनाश महाभारत युद्ध की विभीषिका की अनुभूति पाठक को सहज ही करा देता है। अस्तु काव्यारम्भ म कवि चिरकाल स होने वाले युद्ध के मूल कारणों का सधान करता है। वह मानव की स्वार्थ लोलुप वृत्ति द्रोहाग्नि की प्रज्ज्वलता एव प्रतिशोध की भावनाओं को युद्ध का प्रमुख कारण मानता है। व्यक्तिगत स्वार्थ भाव से प्रेरित होकर ही मनुष्य म ईर्ष्या द्वेष और प्रतिशोध की वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं जो अतत युद्ध की जननी बन जाती हैं। यद्यपि समुदाय लडना नही चाहता किन्तु व्यक्ति–व्यक्ति का स्वार्थ टकरा कर सघर्ष की परिस्थिति उत्पन्न कर देता है। युद्ध–

से पूव व्यक्ति इस तथ्य पर विचार भी करता है कि क्या युद्ध ही एक मात्र उपचार है ? किन्तु विवश होकर वह लडता है और युद्ध की परिसमाप्ति पर विनाश की विभीषिका देखकर पश्चाताप करता है। 'कुरुक्षेत्र' म महाभारत युद्ध की परिसमाति पर धमराज युधिष्ठिर को इसी प्रकार के मानसिक सताप मे ग्रस्त चित्रित किया गया है। वे भीष्म पितामह के समक्ष जाकर कहते हैं कि महाभारत का भयकर परिणाम मैं जानता तो भाइयो के साथ भीख माग कर मर जाता किन्तु रक्तपात नही करता।[1] युद्ध की विभीषिका स आक्रात नीतिज्ञ धमराज यह निणय करने मे असमथ हैं कि ध्वसजन्य सुख और शाति जन्य दु ख म कौन नीति विरुद्ध है। वे कहते हैं कि —

'जानता नही मैं कुरुक्षेत्र मे खिला है पुष्प,
या महान पाप यहा फूटा बन युद्ध है।"[2]

प्रत्युत्तर मे भीष्म पितामह कहते हैं कि युद्ध का ज्वालामुखी व्यक्तियो के के लोभ दाहक घृणा एव ईर्ष्या द्वेष के गरल फूटता है। कभी कभी राजनीतिक उलझनें और देश प्रेम भी युद्ध के कारण बन जात हैं।[3] भीष्म युद्ध को एक अनिवायता मानते हैं—

"युद्ध को तुम निन्द्य कहत हो, मगर, जब तलक है उठ रही चिनगारिया।
भिन्न स्वार्थों के कुलिश सघष भी युद्ध तब तक विश्व मे अनिवाय है।[4]

कवि युद्ध को पाप पुण्य से परे अस्तित्व रक्षण के लिए जीवन धम मानता है। तभी तो भीष्म पितामह कहते हैं कि —

"है मृषा तेरे हृदय की जल्पना युद्ध करना पुण्य या दुष्पाप है,
क्योकि कोई कम है एसा नही जो स्वय ही पुण्य हो या पाप हो।
+ + +
जानता हूँ किन्तु जाने के लिये चाहिये अगार जसी वीरता,
पाप हो सकता नही वह युद्ध है जो खडा होता ज्वलित प्रतिशोध पर।[5]

इसी सदभ मे प्रश्न उठता है कि युद्ध के लिये उत्तरदायी कौन है ? —
युद्ध को बुलाता है अनीति ध्वजधारी या कि

---

१ कुरुक्षेत्र द्वितीय सग, पृ० १७ १८ (सस्करण सम्वत २००३)
२ वही द्वितीय सग पृ० १९
३ वहा वही , पृ० २२
४ वही , सग २/२५
५ वही , सग २/२४/२५

वह जो ग्रनीति भाल प दे पाव चलता ?

+ + +

कौन है बुलाता युद्ध ? जाल जो बनाता

या जो जाल तोडने को क्रुद्ध काल सा निकलता ?[1]

कवि का उत्तर ह—

"चुराता न्याय जो, रण को बुलाता भी वही।"[2]

युद्ध की समस्या का निदान कैसे हो ? अन्तत यह प्रश्न शेष रहता है। इस सम्बन्ध मे काव्य का ग्रन्तिम सग द्रष्टव्य हैं जिसमे मानव समाज की सम्पूर्ण समस्याग्रो (जिसमे युद्ध की समस्या भी सम्मिलित है) का कारण जीवन का वषम्य कहा गया है। जब तक मनुष्य को न्यायोचित सुख सुलभ नही तब तक सघष समाप्त नही हो सकता, ऐसी कवि की मान्यता है।[3] ग्रस्तु, जन समाज मे युद्ध का निषेध शान्ति की स्थापना से हो सकता है ग्रौर शाति स्थापित करने के लिये उपलब्ध साधनो ग्रौर सुख सुविधाग्रो का समान विभाजन ग्रावश्यक ह किन्तु स्वाथ लोलुप वग इन साधनो के सम विभाजन का बाधक ह। समाज म शोषक ग्रौर शोषित दो वग हैं। इनम शोषित वग जब तक शक्ति शाली बनकर शोषक से सघषरत नही होता तब तक स्थायी शांति समाज म स्थापित नही हो सकती ग्रौर युद्ध होते रहते हैं। कवि का मत है —

'रण रोकना है तो उखाड विषदन्त फको

वृक–व्याघ्र–भीति से मही को मुक्त करदो,

ग्रथवा ग्रजा के छागलो को भी बनाग्रो व्याघ्र

दातो स कराल काल कूट विष भर दो।'[4]

दिनकर जी का यह दृष्टिकोण निश्चय ही साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित है किन्तु उपयु क्त उल्लिखित पक्तिया से पूव के पद ही मे वे मानवतावादी जीवन दृष्टि को ग्रपनाते हुये जो कुछ भीष्म के मुख से धमराज को कहलाते हैं, वही विचार वस्तुत मूल्यवान निदान प्रतीत होता है —

दलित मनुष्य मे मनुष्यता के भाव भरो,

दप की दुरग्नि करो दूर बलवान से

हिम–शीत भावना मे ग्राग ग्रनुभूति की दो,

छीन लो हलाहल उदग्र ग्रभिमान से।[5]

---

१ कुरुक्षेत्र, तृतीय सग पृ० ४०

२ वही चतुथ सग पृ० ४७

३ वही सप्तम सग पृ० १११

४ वही, सग ७/११०

५ वही, सग, ७/१०९

मानवतावादी जीवनदर्शन

युद्धवाणी विचार दान की प्रस्थापना ही काव्य का परम लक्ष्य नहीं यह तो आधार भूमि है जिस पर कुरुक्षेत्र के कवि का मूल का रताग आधृत है। षष्ठम सर्ग के अंत में स्पष्ट कहा है कि 'कुरुक्षेत्र की धूलि नहीं इति पंथ का मानव ऊपर और चलना अर्थात् कुरुक्षेत्र का युद्ध मानवता का अंत नहीं। मनुष्यता के विकास का मार्ग युद्ध के बाद भी अक्षुण्ण रह गया है कुरुक्षेत्र में मनुष्य मरे हैं मनुष्यता नहीं मरी। उसी मनुष्यता का नव विकास मानव समाज में करना होगा।[1] "मानवता के नव विकास के लिए कवि ने जो दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है उसका निम्नांकित शीर्षकों के अंतर्गत अध्ययन किया जा सकता है —

१ नवीन सामाजिक संरचना का संकल्प।
२ आध्यात्मिक निष्ठाओं में परिष्कार।
३ मानवतावादी जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा।

नवीन सामाजिक संरचना का संकल्प

कुरुक्षेत्र' में स्थान स्थान पर मानवतावादी जीवन मूल्यों पर आधारित नवीन समाज रचना के संकल्प का आग्रह कवि ने व्यक्त किया है। सप्तम सर्ग में आस्था संयुत दृष्टि से मानवता के पुनर्निर्माण और सामाजिक जीवन के समृद्ध विकास की विचार सरणी को प्रस्तुत किया है। इस सर्ग में भीष्म पितामह युधिष्ठिर को वैराग्य-भाव त्याग कर जीवन संग्राम में प्रवृत्त होने का संदेश देते हैं। मानव समाज के विकास क्रम की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए कवि कहता है कि प्रारम्भ में सब मनुष्य समान और सुखी थे। वे परस्पर विश्वासी और कर्मलीन संन्यासी थे। जनसमाज कुटुम्ब के समान था। सभी धर्म बंधन से बंधे थे। जन जन के मन पर धर्म नीति का अनुशासन था, राजा का शासन नहीं था। व्यक्ति का सुख समाज के सुख से भिन्न नहीं था। मानव-समाज का जीवन सरल और विकासोन्मुख था।[2] कालांतर में लोभ वृत्ति उत्पन्न हुई जिसने मनुष्य के मन में वैयक्तिक संग्रह के भाव को जन्म दिया। फलस्वरूप चोरी लूटमार शोषण प्रहार, छीना-झपटी शुरू हुई। समाज की शांति भंग हो गई। तभी दण्ड-नीति-धारी विक्रमी शासक आया जिसने खड्ग के बल पर समाज में शांति और व्यवस्था तो स्थापित की किन्तु राजतंत्रीय शासन प्रणाली द्वारा जन गण प्रजा के सम्पूर्ण अधिकारों का भी अपहरण कर लिया। मनुष्य का शरीर ही नहीं बुद्धि भी राजकीय नियमों के अधीनस्थ हो गई। कवि के मतानुसार राजतंत्र संस्कृति का कलंक है —

---

१ श्री नन्ददुलारे वाजपेयी—आधुनिक साहित्य पृ० १४६
२ कुरुक्षेत्र—सप्तम सर्ग पृ० ११८–१२०

"राजतंत्र द्योतक है नर की, मलिन निहीन, प्रकृति का,
मानवता की ग्लानि और कुत्सित कलंक संस्कृति का।"[१]

अस्तु, आवश्यकता इस बात की है कि इस हेय शासन व्यवस्था के बंधन से समाज को मुक्त किया जाय। नवीन समाज संरचना का संकल्प समानता और स्वतन्त्रता के आधार पर होना चाहिये। समाज में साम्य और स्वातन्त्र्य के मूल्यों की प्रतिष्ठा प्रवृत्ति-मार्गी कर्मवाद द्वारा हो सकती है। इसलिए भीष्म पितामह युधिष्ठिर को समझाते हैं कि संन्यास कायरता है, सच्चा मनुजत्व मानव जीवन की ग्रंथियों को सुलझा कर मनुजों को सुखी बनाने में है। 'कुरुक्षेत्र' के कवि ने कोरे चिंतन, वैयक्तिक साधना एवं संन्यास आदि को निरर्थक कहा है। उसका मत है –

"केवल ज्ञानमयी निवृत्ति से, द्विधा न मिट सकती है।
जगत छोड़ देने से मन की तृषा न घट सकती है।"[२]

इसलिये धर्मराज युधिष्ठिर को कहा गया है कि कर्मठ संन्यासी बनकर मिट्टी का भार संभालो क्योंकि –

'ऊपर सब कुछ शून्य-शून्य है, कुछ भी नहीं गगन में,
धर्मराज! जो कुछ है वह है मिट्टी में जीवन में।"[३]

इस प्रकार लोभ द्रोह, प्रतिशोध आदि के रहते हुये भी तप त्याग और समानता विधायक ज्ञान के आधार पर आशावादी और कर्ममय जीवन से पूर्ण नवीन समाज रचना के संकल्प में प्रवृत्त होने को कहा गया है।

आध्यात्मिक निष्ठाएं और नवीन जीवनादर्श

कुरुक्षेत्र का कवि आस्तिक और आशावादी है। कुरुक्षेत्र में ईश्वर, भगवान, ईश आदि शब्दों का प्रयोग कवि ने चराचर जगत की संचालिका अदृश्य और अज्ञात शक्ति के लिये ही किया है। कृष्ण को एकाधिक स्थल पर भीष्मपितामह, युधिष्ठिर और स्वयं कवि ने भगवान कह कर संबोधित किया है किन्तु यह पूज्य भाव के कारण हो। अन्यथा कवि ने संसार के अन्य महापुरुषों की ही भांति श्री कृष्ण को भी श्रद्धेय माना है क्योंकि अवतारवाद में उसे विश्वास नहीं है —

भीष्म हो अथवा युधिष्ठिर या कि हो भगवान,
बुद्ध हो कि अशोक, गांधी हो कि ईसु महान।[४]

---

१ कुरुक्षेत्र, सर्ग ७/१२५

२ वही, सप्तम सर्ग पृ० १४५

३ वही सर्ग ७ पृ०१५०

४ वही, षष्ठ सर्ग, पृ० ७५

संसार की गतिविधियों का संचालन करने वाली शक्तियों में कवि ने प्रकृति, नियति और काल को महत्वपूर्ण माना है। ये सभी शक्तियां ईश्वर नामी परम सत्ता के ही अधीन हैं। इनमें नियति और काल नामक शक्तियां मानव-जीवन के लिये अकल्याणकारी और ध्वंसात्मक हैं यथा—

नियति "इच्छा नर की और फल देती उसे नियति है।
फलता विष पीयूष वृक्ष में अकथ प्रकृति की गति है।"[1]

काल 'होगा ध्वंस कराल, काल विप्लव का खेल रचेगा,
प्रलय प्रगट होगा धरनी पर हा हा कार मचेगा।[2]

प्रकृति को कवि ने मानव की कल्याण विधायिका शक्ति के रूप में अंकित किया है — प्रकृति धन, सम्पति और वैभव का अनंत भंडार है। उसका उपभोग सम्पूर्ण मानव जाति को सुखी समृद्ध बना सकता है —

इतना कुछ है भरा विभव का कोष प्रकृति के भीतर,
निज इच्छित सुख भोग सहज ही पा सकते नारी नर।'[3]

प्रकृति के कण कण में निहित धन सम्पत्ति के उपभोग का अधिकारी मनुष्य मात्र है —

जो कुछ न्यस्त प्रकृति में है, वह मनुज मात्र का धन है।
धर्मराज उसके कण कण का अधिकारी जन जन है।'[4]

किन्तु प्रकृति में न्यस्त और उपलब्ध उपादानों का उपभोग भाग्यवाद का आवरण चढ़ा कर समाज का एक वर्ग स्वयं करता है और दूसरे को वंचित रखता है। इसलिये 'कुरुक्षेत्र' में भाग्यवाद और जन्मान्तरवाद को शोषण का अस्त्र और अकर्मण्य बनाने वाला विचार कहकर तिरस्कार किया गया है —

"भाग्यवाद आवरण पाप का और शस्त्र शोषण का,
जिससे रखता दबा एक जन भाग दूसरे जन का।।'[5]

अथवा

ब्रह्मा का अभिलेख पढ़ा करते निरुद्यमी प्राणी।
धोते वीर कुलंक भाल का बहा भ्रुवों से पानी।।[6]

---

१ कुरुक्षेत्र चतुर्थ सर्ग ५०
२ वही सर्ग प० ४/५४
३ वही सप्तम सर्ग पृ० ११३
४ वही सर्ग ७/११७
५ वही सर्ग ७/११५
६ वही सर्ग ७/११४

भाग्यवाद की भांति ही कवि ने मोक्षवादी विचारणा का भी उपहास किया है। मोक्षवादी चिंतक जगत को अनित्य और जीवन को नश्वर कह कर मनुष्य को सामाजिक दायित्व के प्रति उदासीन बनाते हैं। कुरुक्षेत्र के रचयिता ने संसार में वैराग्य और निवृत्ति अर्थात् संन्यास की भावना की घोर भर्त्सना की है —

"धर्मराज संन्यास खोजना, कायरता है मन की।"[1]

+ +

"जनाकीर्ण जग से व्याकुल हो निकल भागना वन में,
धर्मराज है घोर पराजय नर की जीवन रण में।
यह निवृत्ति है ग्लानि पलायन का कुत्सित श्रम है,
निःश्रेयस यह श्रमित पराजित, विजित बुद्धि का भ्रम है।"[2]

इसके स्थान पर कवि ने प्रवृत्ति मार्गी — कर्मवाद की स्थापना की है। निवृत्ति-मार्गी भावना व्यक्ति की निज की मुक्ति और सुख का उपाय है। संसार से पलायन करने वाला व्यक्ति समष्टि हित नहीं कर सकता। जीवन एक समुद्र है। इसकी सतह पर खड़ा जलाभिलाषी खारा जल पाता है किन्तु गोता लगाकर मथन करने वाला अमृत तत्व का पान और रत्नों की प्राप्ति करता है। जीवन सागर के जल को खारा कहकर छोड़ने वाले पलायनवादी हैं वे वृक्ष पर बिना चढ़े ही सुधा फल पाना चाहते हैं। अस्तु संसार का त्याग वे करते हैं जो अकर्मण्य और आत्मभीरू हैं। सच्चा आत्मजयी, पुरुषार्थी और कर्मयोगी तो संसार में रहकर दूसरों के दुःख दूर करके ही आत्मलाभ और कल्याण करता है। इस दृष्टि से विचार करने पर स्पष्ट दिखाई देता है कि कवि गीता के निष्काम कर्मयोग की विचारधारा से प्रभावित है। लोकमान्य बालगंगाधर तिलक के 'गीतारहस्य' में प्रतिपादित विचारों का 'कुरुक्षेत्र' के रचयिता पर प्रभूत प्रभाव पड़ा है। कर्मवाद का स्वर 'गीता' और 'कुरुक्षेत्र' में कितना समान है यह निम्नांकित उद्धरणों से द्रष्टव्य है —

गीता — न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥
(गीता — अ० ३/५)

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मणः॥
(गीता — अ० ३/८)

---

१ कुरुक्षेत्र सर्ग ७/१२७

२ वही, सप्तम सर्ग १३२

कुरुक्षेत्र – कर्मभूमि है निखिल महीतल, जब तक नर की काया,
जब तक है जीवन के अणु अणु में कर्त्तव्य समाया।
क्रिया धर्म को छोड़ मनुज कैसे निज सुख पायेगा ?
कर्म रहेगा साथ, भाग वह जहां कहां जायेगा। [1]

इस प्रकार कवि आध्यात्मिक निष्ठाओं का जहां तक प्रश्न है वे भौतिकवादी जीवन मूल्यों से सम्पृक्त हैं। वह सांसारिक जीवन से परे किसी अलौकिक आध्यात्मिक जगत की कल्पना और मोक्ष साधना को महत्वपूर्ण और श्रेयस्कर नहीं मानता है। किन्तु यहां यह स्मरणीय है कि वह जड़वादी भौतिकतापूर्ण जीवनपद्धति (मटीरियलिस्टिक फिलासफी) का भी अंधानुकरणकर्त्ता नहीं है। जिसके अनुसार 'खाओ पीओ और मौज करो ही जीवन का सर्वस्व है।' वह देह पर मन का आधिपत्य भी चाहता है। लोक कल्याण के लिये वैयक्तिक स्वार्थ के परित्याग और पुरुषार्थ पूर्ण संयमित जीवन की महत्ता को भी उसने स्वीकारा है। धर्मराज युधिष्ठिर को संयम और त्यागमय जीवन-भोग का ही उपदेश पितामह ने निम्नांकित शब्दों में दिया है —

'भोगो तुम इस भांति मलिनता दाग न लगने पाये,
मिट्टी में तुम नहीं, वही तुम में विलीन हो जाये।
और सिखाओ भोगवाद को यही रीति जन जन को,
करें विलीन देह को मन में नहीं देह में मन को।
मन का होगा आधिपत्य जिस दिन मनुष्य के तन पर,
होगा त्याग अधिष्ठित जिस दिन भोगनिरत जीवन पर,
\+ \+ \+
उस दिन होगा सुप्रभात नर के सौभाग्य उदय का
उस दिन होगा शंख ध्वनित मानव की महाविजय का।' [2]

मानवतावादी जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा

यह प्रारम्भ में ही कहा जा चुका है कि कुरुक्षेत्र में विभिन्न प्राचीन और नवीन विचारधाराओं का प्रतिपादन होते हुए भी उसका जीवन दर्शन मूलतः मानव

"मनु का पुत्र बने पशु भोजन। मानव का यह अन्त।
भरत भूमि के नरवीरों की यह दुर्गति, हा हन्त।"[1]

क्योंकि सम्पूर्ण कलाओं, ज्ञान, विज्ञान और धर्म का वरेण्य कर्ता वह मानव को ही मानता है –

"नर वरेण्य निर्भीक, शूरता के ज्वलन्त आगार।
कला, ज्ञान, विज्ञान, धर्म के मूर्तिमान आधार।"[2]

किन्तु कुरुक्षेत्र युद्ध के भयंकर विनाश पर कवि मानवता की इति नहीं मानवता। वह मानवता के अभ्युदय का ही आकांक्षी है–

कुरुक्षेत्र की धूलि नहीं इति पन्थ की
मानव ऊपर और चलेगा,
मनु का यह पुत्र निराश नहीं,
नव धर्म प्रदीप अवश्य जलेगा।'[3]

'कुरुक्षेत्र' के षष्ठ सर्ग में विज्ञान की सम्पूर्ण उपलब्धियों का अनुसंधाता, भोक्ता और नियंता मानव को ही कहा गया है –

"यह प्रगति निस्सीम। नर का यह अपूर्व विकास
चरण-तल भूगोल। मुट्ठी में निखिल आकाश।"[4]

\+ \+

"यह मनुज जिसका गगन में जा रहा है यान,
कांपते जिसके करों को देख कर परमाणु।"[5]

सृष्टि की सम्पूर्ण शक्तियों का नियंता और रचना की सर्वश्रेष्ठ कृति मानव ही है –

'यह मनुज, ब्रह्माण्ड का सबसे सुरम्य प्रकाश,
कुछ छिपा सकते न जिससे भूमि या आकाश।

\+ \+

यह मनुज, जो सृष्टि का शृंगार।
ज्ञान का, विज्ञान का, आलोक का आगार।,[6]

---

१ कुरुक्षेत्र, पंचम सर्ग, पृ० ८२
२ वही पृ० ८३
३ वही, पृ० ९९
४ वही, षष्ठ सर्ग, पृ० ९७
५ वही, सर्ग ६। ९९
६ वही, सर्ग ६। १००

जहा तक विज्ञान और मानव के सम्बन्ध का प्रश्न है कवि बर्टेंड रसल की उस चिन्तन धारा से प्रभावित प्रतीत होता है जिसके अनुसार विज्ञान निर्पेक्ष है, मानव ही उसका निर्माण एव सद् असद् प्रयोग करता है। इसीलिय मनुष्य को अचेत किया गया है कि –

'सावधान, मनुष्य ? यदि विज्ञान है तलवार,
तो इसे दे फेंक, तजकर मोह स्मृति के पार।"[1]

विज्ञान मानवता का वरदान और श्रेय तभी बन सकता है जब उसके आविष्कार शिव स्वरूप अर्थात् लोक कल्याणमय हो। इसी प्रकार समता विधायक ज्ञान मानवता के विकास मे सहायक सिद्ध हो सकता है –

"श्रेय वह विज्ञान का वरदान
हो सुलभ सबको सहज जिसका रुचिर अवदान।
+ +
श्रेय होगा मनुज का समता विधायक ज्ञान,
स्नेह सिंचित न्याय पर नव विश्व का निर्माण।'[2]

मानव की अपरिमित शक्ति और सामर्थ्य का बखान करके कवि ने अतत मनुष्य की महत्ता को ही स्वाकृति प्रदान की है। किन्तु दूसरी ओर क्रूर कर्मा मनुष्यो को श्रृगालो और कुक्कुरो से हीन भी कहा है। सहार सेवी मनुष्य को उसने वासना का भृत्य और मनुष्यता का अपमान भी कहा है –

"यह मनुज ज्ञानी श्रृगालो कुक्कुरो से हीन
हो किया करता अनेको क्रूर कर्म मलीन।
+ +
नाम सुन भूलो नही सोचो विचारो कृत्य,
यह मनुज सहारसेवी, वासना का भृत्य।
छद्म इसकी कल्पना, पाखण्ड इसका ज्ञान,
यह मनुष्य, मनुष्यता का घोरतम अपमान।'[3]

सच्चे मानव की परिभाषा कवि ने निम्नाकित शब्दो मे दी है –

श्रेय उसका, बुद्धि पर चैतन्य उर की जीत
श्रेय मानव की असीमित मानवा से प्रीत,
एक नर से दूसरे के बीच का व्यवधान,

---

१ कुरुक्षेत्र, सर्ग ६। १०२
२ वही, षष्ठ सर्ग पृ० १०३
३ वही, पृ० १०१

तोड दे जो, बस वही ज्ञानी, वही विद्वान,
और मानव भी वही ।"[1]

मानव की उपयुक्त व्याख्या का यह अर्थ नहीं कि कवि पद-दलित और पतित मनुज को हेय मानता हो। वह तो मानव की जय का ही अभिलाषी है —

'जय हो,, अघ के गहन गर्त में गिरे हुये मानव की,
मनु के सरल अबोध पुत्र की, पुरुष ज्योति-सम्भव की।"[2]

मनुष्य में लोभ, द्रोह प्रतिशोध की वृत्तियां यदि मानवता में विघ्न हैं तो करुणा, त्याग, तपश्चर्या इत्यादि मानव जाति की रक्षा के सबल भी हैं। इसलिये मानवता की महिमा कभी घट नहीं सकती। आशा, विश्वास, स्नेह त्याग आदि जीवन मूल्यों के प्रति मानवीय निष्ठा के बल पर ही 'कुरुक्षेत्र' के अन्तिम छन्द में कवि मानवता के उज्ज्वल भविष्य की आकांक्षा से युक्त सन्देश प्रसारित करता है —

"आशा के प्रदीप को जलाये चलो धमराज,
एक दिन होगी मुक्त भूमिरण-भीति से,
भावना मनुष्य की न राग में रहेगी लिप्त,
सेवित रहेगा नहीं जीवन अनीति से,
हार से मनुष्य की न महिमा घटेगी और
तेज न बढेगा किसी मानव का जीत से,
स्नेह-बलिदान होंगे माप नरता के एक,
धरती मनुष्य की बनेगी स्वर्ग प्रीति से।"[3]

इस प्रकार 'कुरुक्षेत्र' महाकाव्य में प्रतिपादित जीवन दर्शन सम्बन्धी मान्यताओं का समीक्षण करने के उपरान्त इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यह एक मानवतावादी जीवनदर्शन से अनुस्यूत कृति है। कुरुक्षेत्र में जहां एक ओर भाग्य, भगवान, मोक्ष निवृत्ति संन्यास आदि परम्परागत रूढ विचारों एवं अध्यात्मिक निष्ठाओं का खण्डन किया गया है वहीं सांसारिक जीवन में आसक्ति तथा मानवीय जीवन मूल्यों (जैसे-त्याग तप, स्नेह, बलिदान विश्वास आदि) के प्रति अनन्य आस्था मंडित की गयी है। नियति प्रकृति एवं ज्ञान-विज्ञान के लोकमंगलकारी रूप को ही वरेण्य कहा गया है। युद्ध की अनिवार्यता को स्वीकार करके भी उनके सम्भव निदान की ओर संकेत किया गया है। कुरुक्षेत्र की सबसे महत्वपूर्ण दार्शनिक उपलब्धि गीता के कर्मयोग की सतर्क पुष्टि तथा मानवता के उज्ज्वल भविष्य के प्रति आस्थावादी दृष्टिकोण की प्रस्थापना है।

---

१ कुरुक्षेत्र सर्ग ६ पृ० १०१
२ वही सप्तम सर्ग, पृ० १०५
३ वही, सप्तम सर्ग, पृ० १५४

साकेत सन्त

सृजन-प्रेरणा

'साकेत सन्त' के रचयिता ने अन्य कवियों की भाँति काव्य की भूमिका या प्रस्तावना के रूप मे कुछ नही लिखा है, जिसमे काव्य-रचना के उद्देश्य या प्रेरणा के सम्बन्ध मे कुछ सकेत हो। फिर भी स्पष्ट है कि भरत के चरित्र की महत्ता को प्रदर्शित करने के लिये ही 'साकेत सन्त' की रचना हुई है। यहा यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि 'साकेत सन्त' की रचना पर श्री मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' का पर्याप्त प्रभाव है,[1] किन्तु दोनो की सृजनात्मक प्रेरणा के स्रोत मूलत भिन्न हैं। 'साकेत' महाकाव्य की रचना 'काव्य की उपेक्षिता' उर्मिला के चरित्रोद्धार की दृष्टि से हुई है जब कि 'साकेत सन्त' के चरित नायक भरत का चरित्र राम-काव्यो की परम्परा मे उपेक्षित नही रहा है। वस्तुत भरत का चरित्र तो इतना गरिमापूर्ण और महान् था कि उसके विशद् चित्रण के लिये एक स्वतन्त्र काव्य की रचना अपेक्षित थी। सभवत इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये डा० बल्देव प्रसाद मिश्र ने 'साकेत सन्त' महाकाव्य की रचना की। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण काव्य के अध्ययन से एक तथ्य यह सामने आता है कि काव्य मे एक निश्चित विचारदर्शन की प्रतिष्ठा के लिये कवि आद्यात प्रयत्नशील रहा है। इस विचार दर्शन का आधार भारतीय संस्कृति के मूलभूत सिद्धान्त हैं। भरत का चरित्र भारतीय संस्कृति के पुनीत आदर्शों का सात्विक प्रतीक है जिन्हे कवि वर्तमान युग जीवन के अशान्त और अधकारपूर्ण वातावरण से त्राण के लिये आवश्यक मानता है। 'साकेत सन्त' के कवि ने कहा भी है कि —

> "शांति तज क्रांति का बटोही बना विश्व जब
> तामसी तमिस्रा मे विकल बिललाता है।
> तब भावना मे भारतीयता का भव्य रूप,
> भर कर भारत भरत गुण गाता है।"[2]

भारतीय संस्कृति के आदर्शों की प्रतिष्ठा

'साकेत सन्त' के जीवन दर्शन का आधार भारतीय संस्कृति के चिरंतन आदर्श हैं। इन आदर्शों की प्रतिष्ठा कवि ने दो प्रकार से की है—

१ प्राचीन भारतीय जीवन मूल्यो की श्रेष्ठता का प्रतिपादन द्वारा।

२ पाश्चात्य भौतिकतावादी जीवनादर्शों के निषेध द्वारा।

---

१ (अ) डा० प्रतिपालसिंह—बीसवी शताब्दी के महाकाव्य, पृ० २६१
(आ) डा० गोविन्दराम शर्मा—हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य, पृ० ३७९

२ साकेत-सन्त प्रथम सस्करण—'उपक्रम', पृ० १७

काव्य के प्रारम्भ म हा भरत जब अपनो ननिहाल म मामा युधाजित के साथ आखेट के लिय जाते हैं तो उनके बाण से एक मृग आहत हो जाता है। मृग की कातर दशा का देखकर भरत का भावुक हृदय द्रवित हो जाता है। यहीं कवि न युधाजित और भरत के सवाद की योजना की है जिसम पाश्चात्य और पौरात्य आदर्शो और मूल्यो को विवेचना हुई है। युधाजित कहता है कि क्षत्रियो का पशु पर करुणा करना उचित नहा। क्षमा तो तापस का धम है। प्रशासक को तो कठोर होना चाहिये।[1] भूप को तो ऐसा होना चाहिये कि त्रिभुवन उसके भय से प्रकम्पित रहे। शासक तो सघर्षपूर्ण होना है। क्योकि—

सघर्ष जगत का श्रय है सघर्ष जगत की इति है।
सघर्ष केन्द्र पर निभर, अपनो उन्नति की स्थिति है।'[2]

यदि ससार म जीना और बढना है तो सघर्षरत होना हा पडेगा। ससार म मत्स्य न्याय प्रसिद्ध है जिसके अनुसार बडा छोटे को खा लेता है। यह अवनी वीरभोग्या है। जो मनाचारी है ससार उसी का साथ देता हैं। अथ और काम की सिद्धि म हा जीवन की सफलता निहित है। इसलिये दया और करुणा को बात छोड कर स्वय अपने भाग्य विधाता बनो।[3] युधाजित न भरत स यह भी कहा कि सफल प्रशासक बनने के लिए तुम्हे शासन का नीति सीखनी होगी। जीवन रण म सौभाग्यचक्र बढाने के लिये औरो को कुचलना भी पडेगा।[4] क्योकि—

'क्षुद्रा की बलि वेदी पर,
पनपी है सदा महत्ता।
निर्धन कुटियो को ढाकर,
विकसी महलो की सत्ता।'[5]

युधाजित के कथन का प्रतिवाद करत हुय भरत ने कहा कि करुणा ही सबसे बडा बल है। शासक एक तपस्वा है जगरक्षा उनका तप है। ससार म दास या स्वामी होना कर्मो का क्रम है। प्रभुता तो एक भ्रम है।[6] सासारिक जीवन का सार सघर्ष नहा वरन् परार्थाति की प्राप्ति करना है—

'सघर्ष न सार जगत का भ्रम सीढो मात्र भवन की।
है परार्थाति परमोन्नति जिसम रहती स्थिति मन की।[7]

१ साकेत सत सग - छन्द १६ से २५
२ वही वही छ २६
३ वही वही, छन्द ३१ से ३७
४ वही वही छन्द २८ ३०
५ वही, वही छन्द २९
६ वही वही छन्द ४२ से ४६
७ वही वही, छन्द ४९

भरत ने कहा कि शोषण ही करना है तो जीवों का नहीं अपितु पापों का करना चाहिये। भरत ने मत्स्य याय, दमन पर आधारित सत्ता और ऊँच नीच को जन्म देने वाले वैषम्य भाव का भी सतर्क खंडन किया। उन्होंने लोक-व्यवस्था की सुस्थिरता के लिये धर्मार्थ काम की साधना को महत्व देते हुये कहा —

'कब शांति किसे मिल पाई, कामार्थ धर्म के भ्रम में।
सुस्थिर है लोक व्यवस्था, धर्मार्थ काम के क्रम में।।" [1]

इस प्रकार स्पष्टतः भरत और युधाजित के विचार परस्पर विरोधी हैं। एक ने जीवन में संघर्ष (स्ट्रगल इज लाइफ), मत्स्य याय (सरवाइवल दी फिटेस्ट) शक्तिमत्ता (माइट इज राइट), सत्ता, निष्ठुरता दमन, शोषण और अर्थ-काम की सिद्धि को महत्व दिया है तो दूसरे ने दया, करुणा, शांति, समता और धर्मार्थ काम की प्राप्ति को जीवन की उपलब्धि माना है। वस्तुतः इन दोनों की मान्यताएं क्रमशः पाश्चात्य और पौर्वात्य जीवनादर्शों का प्रतिनिधित्व करती हैं। यहां साकेत संत' के रचयिता की विचारधारा के उद्घोषक भरत हैं। कवि के विचारदर्शन की सभी विशेषताएं भरत के चरित्र में चरितार्थ भी हुई हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह तो स्पष्ट प्रगट है कि साकेत-संत' के कवि के जीवनदर्शन संबंधी मान्यताओं का मूल आधार भारतीय जीवनादर्श हैं। अस्तु, भारतीय संस्कृति धर्म और दर्शनशास्त्र मिश्र जी के जीवन-दर्शन संबंधी मन्तव्यों की पृष्ठभूमि कहे जा सकते हैं। किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं की पाश्चात्य जीवन-दर्शन की उपलब्धियों (जिनका वर्तमान जीवन पर पर्याप्त प्रभाव है) को साकेत संत के प्रणेता ने स्वीकारा नहीं है। वह भारतीयता का पुजारी होते हुए भी समसामयिक चिंतनधारा और जीवनबोध के प्रति जागरूक रहा है। इसका प्रमाण काव्य के सम्पूर्ण चिंतनक्रम में उपलब्ध है। उदाहरणार्थ कवि ने भारतीय धर्मशास्त्र की परम्परा के अनुसार राजा को ईश्वर का रूप मानते हुये भी उसके जीवन का साफल्य लोकहित माना है—

भूप इससे ही प्रभु का रूप, कि उसके सिर है इतना भार।
न अपने किन्तु लोक के लिये, सदा उसका जीवन संचार॥

\+ \+ \+

राजसिक शासन का यों खिले, जगन्मंगलमय सात्विक रूप।
कि शासक सेवक होकर मिले स्वकर्मों में भर प्रेम अनूप॥ [2]

स्पष्टतः यहां प्रशासन के प्रजातांत्रिक स्वरूप को मान्यता प्रदान की गई है, किन्तु राजतंत्र का निषेध नहीं। इसी प्रकार कवि ने यदि भारतीय मान्यता के

१ साकेत संत सर्ग ४ पृ० ५८
२ वही पृ० १५० १५४

अनुसार नियति और भाग्य के अस्तित्व को स्वीकार किया है तो पुरुषार्थ की महत्ता का भी प्रतिपादन किया है। यथा –

भाग्यवाद

'पुरुष कुछ नही समय बलवान,
समय के हाथ फलाफल दान।

+ +

भाग्य लिपि का पहले निर्माण,
देह को तब मिलते हैं प्राण।'[1]

नियति

'नियति परतन्त्र मनुज व्यापार
नियति ही सार नियति ही सार।
नियति है जगदात्मा का कर्म
कौन समझेगा पूरा मर्म ॥
विषम यह विधि का रचा विधान
विधाता समझे या भगवान'[2]

पुरुषार्थ

'यत्न ही हो जीवन का ध्येय कर्म की गीता सबकी गेय।
भाग्य की बात भाग्य के हाथ, पुरुष का है पौरुष से साथ।

+ + +

पुरुष है भाग्य विधाता आप अलस ही पाता है अभिशाप।[3]

इसी सन्दर्भ मे कवि की ईश-विषयक धारणा भी द्रष्टव्य है। श्री मैथिलीशरण गुप्त की भांति रामकाव्यों (कौशल-किशोर, साकेत सन्त रामराज्य) के प्रणेता डा० बलदेवप्रसाद मिश्र वैष्णव भावना के कवि है। उनके शब्दो मे –

'स्वामी एक राम हैं उन्ही का धाम विश्व यह।'[4]

मिश्र जी ने 'साकेत सन्त मे ब्रह्म के लिये ईश, ईश्वर प्रभु विभु विश्वम्भर, परम पुरुष आदि, पौराणिक अभिधानो का प्रयोग किया है। किन्तु वैष्णव भावना

---

१ साकेत सन्त, सर्ग ४ पृ० ६०, ६१,
२ वही, सर्ग ४, पृ० ६१
३ वही, सर्ग १४ पृ० ६२, ६३
४ वही उपक्रम पृ० १७

के अनुवर्ती होने हुये भी उन्होंन 'जनता म जनार्दन' को देखने की बात कहकर धर्म और धम की मानवतावादी व्याख्या प्रस्तुत की है –

मनुज म दलित मनुज म भक्ति
जनार्दन था जो जन अवतार।[1]

अथवा

न देखा जिसने भू पर स्वग नरो म विश्म्भर भगवान।
वया है प्रम, वया है धम वया है उसका सारा ज्ञान।
जनार्दन को जनता म लखो यही सब धर्मों का सार।[2]

इसी प्रकार देशभक्ति राष्ट्रीय एकता और भारत की महिमा का बखान काव्य म अनेक स्थलो पर हुआ है किन्तु राष्ट्रीयता की भावना का चरम परिणति विश्वप्रम म निर्दशित की गई है। कवि के शब्दो म–

'हो उठें उत्तर दक्षिण एक तुम्हारा भारत बने अभग।
बृहत्तर आर्यावत ललाम, भरत का भारत हो विख्यात।
समन्वित सस्कृति इसकी करे विश्वभर को उज्ज्वल अवदात।
पूज्य हो इसकी कण कण भूमि बढे या महिमा अमिट अपार।
रहें इच्छुक निजर भी सदा यहा पर लेने को अवतार।'[3]

अथवा–

भारत जब तक जग मे होगा
भारतीयता तब तक होगी।
भारतीयता होगी जब तक
जग होगा तब तक नीरोगी।[4]

उपयु क्त उद्धरणो स स्पष्ट है कि कवि राष्ट्रोत्थान का आकाक्षी है किन्तु राष्ट्रोत्थान की कामना वह निबल राष्ट्रो को हडपने क लिय नही वरन् विश्व-शान्ति और मानवता के उत्कप के लिये करता है –

सभी निज सस्कृति के अनुकूल
एक हो रच राष्ट्र उत्थान।
इसलिए नही कि करें सशक्त
निबलो को अपने मे लीन–

---

१ साकेत सत सग १२ पृ० १४६
२ वही सग १२ पृ० १५१
३ वही सग १२ पृ० १४७
४ वही सग १३ पृ० १८२

इसलिये कि हो विश्व-हित-हेतु
समुन्नति पथ पर सब स्वाधीन।
विश्व में फल जाय सुख शांति,
यहीं हो जीवन का आदर्श
इसी में मानवता की कांति
इसी मे मानव का उत्कर्ष।[1]

जिसे हम आज 'सह‌अस्तित्व' का सिद्धांत कहते हैं उसका प्रतिपादन भारतीय मनीषी ने 'सर्वे भवन्तु सुखिन' कहकर बहुत पहले किया था। मिश्र जी ने विश्वमंगल की कामना करते हुये उसी सिद्धांत की पुनर्प्रतिष्ठा साकेत संत में की है। कवि के शब्दों में—

'सब स्वतंत्र सब समृद्ध।
निज उन्नति में सब ही रहें वृद्धि से अविद्ध।

+ +

एक ध्वजा एक छत्र एक स्वीय राज्य ऋद्ध।
विश्व की मनुष्य जाति एक हो प्रभाव इद्ध।
सिद्ध करें जग-विमुक्ति भारतीयता प्रसिद्ध।।'[2]

युगीन समस्याओं का निरूपण और निदान

साकेत संत में समसामयिक जीवन की अनेक महत्वपूर्ण समस्याओं का निरूपण और निदान प्रस्तुत किया गया है। काव्य के द्वादश सर्ग में भरत राम से "जीवन का मर्म जानने हेतु प्रश्न करते हैं। उत्तर में राम सृष्टि के रचनाकाल से लेकर वर्तमान युग तक मानवता के विकासक्रम का परिचय देते हुये विश्व जीवन की अनेक उल्लेखनीय समस्याओं पर मूल्यवान विचार प्रस्तुत करते हैं। मिश्र जी के अनुसार चेतना के स्फोट से सृष्टि रचना हुई। विकासक्रम में वसुंधरा पर मानव अवतरित हुआ। अपने विशाल अस्तित्व के कारण सृष्टि और प्रलय के अनेक चक्र लांघ कर भी मानव आतंक अचल अटल है। मानव की अपार समृद्धि देखकर देवता भी सहम गये। कालांतर में द्रव्य संघात की लिप्सा के वशीभूत होकर मनुष्यों में परस्पर षड्यंत्र होने लगे। प्रेम और सत्कर्म दब गये। ईर्ष्या और वैमनस्य का प्रसार होने लगा। अर्थसंग्रह की प्रवृत्ति ने पूंजीवाद को जन्म दिया। वही पूंजीवाद जो समाज का अभिशाप बनकर शोषण की नींव पर पनप रहा है—

---

१ साकेत सन्त सर्ग १२ पृ० १५३
२ वही सर्ग १४ पृ० १९७

'द्रव्य सघात, द्रव्य सघात।
छा गया सिक्को का वह जाल।
कौडियो पर घुटने ही लगे,
करोडो मनुजो के कवाल।
कई निधन कुटिया कर चूर,
धनी का उठा एक प्रासाद।
अनेकों को दे दढ दासत्व,
एक ने पाया प्रभुता स्वाद ॥'[1]

पू जीवादी मनोवत्ति के कारण जो सघप बढा वह व्यक्तियो तक ही सीमित न रहा वरन् वग समाज और राष्टो में भी फल गया। हमारे ही देश म ब्राह्मण और क्षत्रिय मे आय और अनाय म दक्षिण और उत्तर म विरोध और सघप दिखाई देता है। आर्यावत्त और आय सस्कृति का पुरातन स्वरूप आज छिन भिन हो गया है। पू जीवाद और साम्राज्यवाद के कारण आज सम्पूण मानव जाति विकल होकर कराह रही है—

मनुजता रही कराह कराह आह, है कौन पूछता हाल।
राक्षसी चक्की म पिस रहे। मनुजता के जजर ककाल।
अकेला रावण पयो इस काल, अनेको खर दूपण के व द।
कुचलते जाते बन मातग मनुजता के कोमल अरविंद।
अनेको देख रहे ऋषि वृ द, न कोई चलता कि तु उपाय।
महा भीषण यह अत्याचार, मनुज मनुजो ही को खा जाय ॥'[2]

इस विडम्बनापूण स्थिति का समाधान सुझाते हुये कवि ने कहा है कि विश्व जीवन मे सगठन हो,[3] आय और अनाय सस्कृतियो मे मेल हो,[4] श्रम धन की महत्ता हो,[5] भौतिक सुख सुविधा के साधन सभी को उपलब्ध हो किन्तु मनुष्य विज्ञान प्रदत्त भौतिक सुख सुविधाओ के अधीन न हो। मनुष्य विज्ञान से नही, भारतीय योग विज्ञान की शक्ति से ऐसा विधान करे मानव मे जो भगवान छिपा है, वह प्रकट हो —

' हमरे योगो के विज्ञान
रच ऐसा विज्ञान नवीन।
+ +
व्यवस्था एक नई चुपचाप,
विश्व म ऐसा रचे विधान

---

१ वही, सग, १२, पृ० १४३
२ वही, सग १२ पृ० १४५
३ वही वही, छद ४५
४ वही, छद ४६
५ वही, छद ४७

कि हर नर के अन्तस् से स्वत:,
प्रकट हो छिप हुये भगवान ॥''[1]

यहाँ भगवान के प्रकट होने म अभिप्राय मनुष्य मे सद्वृत्तियो की उद्भावना से है। जहा तक नई व्यवस्था' का प्रश्न है, कवि ने स्वय कहा है कि –'विश्व बन्धुत्व व्यवस्था बन।[2] प्रेम और कर्त्तव्य इस व्यवस्था के आधार हो।[3] कवि की धारणा है कि—

'हृदय से होगा जब तक नही,
प्रेम का क्रियाशील शुचि योग।
जगत के कर्म क्षेत्र मे कभी,
न आगे बढ पावेंगे लोग॥'[4]

निष्कर्ष

इस प्रकार 'साकेत सन्त मे प्रतिपादित कवि के जीवन दर्शन सबधी मन्तव्यो पर विचार करने के अनतर हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि मिश्रजी ने परम्परा-प्रिय होते हुये भी प्रगतिशील जीवन-दृष्टि को अपना कर अपनी चिंतनधारा का निर्माण किया है। उन्होने भारतीय सस्कृति की जिन आधारभूत मान्यताओ का काव्य म प्रतिपादन किया है उनका महत्व भारत या भारतीयो के लिये ही नहीं अपितु विश्वजनीन है। पौराणिक इतिवृत्त पर आधारित होते हुये भी साकेत सन्त' वर्त्तमान युग की मूलभूत चेतना से अनुप्राणित काव्य है। साकेत सन्त के माध्यम से त्रेता युग के आदर्श, आर्य सस्कृति की विशेषताए या भारतीय दर्शन शास्त्र की मान्यताए ही व्यजित नही हुई वरन् विश्व-जीवन को प्रेरित और प्रभावित करने वाला महान मानवतावादी सदेश प्रसारित हुआ है जो समग्र मानव जाति की थाती है वह सन्देश है —

'मनुज जीवन का यह हो मर्म,
थाह की गहराई ले जान।
मनुजता की रक्षा के हेतु
निछावर करदे अपने प्राण।
जगायेगा जन जन म भरी
मनुजता को जो मनुज महान।

---

१ साकेत सन्त, सर्ग १२ पृ० १५३ १५४
२ वही वही, छद ४६
३ वही, छद ७२
४ वही पृ० १४८

विश्व रक्षा हित उत्तम शक्ति,
भरगे विश्म्भर भगवान ॥"[1]

इसीलिए 'साकेत सन्त' सामान्य काव्य नही महाकाव्य है, और महाकाव्य अपन स न्देश और उद्देश्य की दृष्टि से किसी भाषा साहित्य समाज या राष्ट्र की सम्पत्ति ही नही होत वरन् सम्पूर्ण मानवता की धरोहर कहे जाते हैं।

दैत्यवंश

सृजन प्रेरणा

दत्यवश' की सृजन प्रेरणा के मूल स्रोत हैं—महाकवि कालिदास कृत रघुवंश और माईकेल मधुसूदन दत्त कृत मेघनाथवध नामक महाकाव्य। दत्यवश की प्रस्तावना मे श्री हरदयालुसिंह जी ने बताया है कि वाल्मीकि-रामायण' श्रीमद्भागवत और हरिवंशपुराण का अध्ययन करने पर उन्हे 'दत्यवश' के लिए काव्योचित्त सामग्री प्राप्त हुई।[2] काव्य के समष्टि-अनुशीलन से ज्ञात होता है कि दत्यवश की रचना म कवि की मानवतावादी जीवन-दृष्टि मूलत कार्यरत रही है। वस्तुत 'दत्यवश के रचयिता ने दत्य और राक्षस कहे जाने वाले पात्रो का चारित्रिक औदात्त और सांस्कृतिक निष्ठाओ स पूर्ण आचार-व्यवहार प्रस्तुत करके काव्य-लेखन को एक न ितका री परम्परा को ज म दिया है।

जहा तक प्रस्तुत महाकाव्य म प्रतिपादित जीवन- दशन का सबध है उसका स्वरूप दो सन्दर्भों म विकसित हुआ है। वे सन्दभ हैं—परम्परागत और प्रगतिशील-प्रथम के अन्तगत कवि ने अवतारवाद भाग्यवाद शकुन, नीति यज्ञविधान कर्मकाण्ड, तपस्या दान आदि की महत्ता का प्रतिपादन किया है। प्रगतिशील दृष्टिकोण अपनाकर उसने दत्या के प्रशासनिक कौशल आदश राज्य व्यवस्था और जनहित सवद्धन क कार्यों का मूल्यांकन किया है।

परम्परित-सन्दभ

दत्यवश म अनेक परम्परित विश्वासो, मान्यताओं एव आदर्शों का प्रतिपादन हुआ है। काव्य का समारम्भ मगलचरण स हुआ है। काव्य का समारम्भ 'मगलाचरण' स हुआ है जिसम कवि न सरस्वती मत और पुराण-पुरुष' (ब्रह्म) की वन्दना की है।[3]

---

१ साकेत सन्त सग १२ छन्द २८ पृ० १४६
२ दत्यवश प्रस्तावना पृ० १
३ वही प्रथम सग पृ० २ ३

अवतारवाद

अवतारवाद की पौराणिक-कल्पना को कवि ने ज्यों का त्यों स्वीकार किया है। ब्रह्म का अवतार दैत्यों के हनन-हेतु होता है। यथा–

'जासु के निधन करिबे के हित आपु जग
पुरुष—पुरातन धरत अवतार है।'[1]

कवि के मतानुसार हेमलोचन के निपात हेतु बराह,[2] हरनाकुस के वध हेतु नृसिंह[3] और बलि का मर्दित करने के लिये भगवान ने वामन अवतार लिये।[4] 'दैत्यवंश' के रचयिता ने अवतारवाद की धारणा को किसी नये परिसन्दर्भ में प्रस्तुत नहीं किया है।

भाग्यवाद

भाग्यवाद की विचारणा का काव्य में स्थान स्थान पर स्वीकृति प्रदान की गई है। राजहंस द्वारा शची को भेजे गये सन्देश मे इन्द्र ने कहा है कि—

' भाग म लोगनि के पहिले, लिखि राख्यौ हुतो चतुरानन जोई।
सो मिटिहै नही मेटे सची, विधि रेख मृषा न करौ कहू कोई।।'[5]

इसी प्रकार माता अदिति को प्रबोधन करते हुये वामन ने कहा कि दैत्यों से देवों की जो हार हुई है वह विधाता का विधान था जिसे नही टाला जा सकता।[6] कवि का मत है कि भाग्य की रेखाएं कालचक्र की गति के समान हैं—

'भ्रम काल की ले जग त्यौं नर की,
फिरिबो कर भाग की रेखा नित।।'[7]

शकुन-विचार

पौराणिक विश्वासो मे शकुन का बडा महत्व है। दैत्यवंश के नरेश यद्यपि अतुल पराक्रमी और पुरुषार्थी थे तथापि वे शकुन विचार के ही काय करते थे। वे विवाह और राज्य शासनभार शुभ मुहूर्त में ग्रहण करते थे।[8] युद्ध प्रयाण के अवसर

---

१ दैत्यवंश प्रथम सर्ग, पृ० ३
२ वही, वही पृ० ११
३ वही वही, पृ० १७
४ वही दशम् सर्ग पृ० १४४
५ वही सप्तम सर्ग पृ० ११९
६ वही दशम सर्ग छन्द, ५१
७ वही वही पृ० १६१
८ वही प्रथम सर्ग पृ० ९

पर मांगलिक शकुन विजय के प्रतीक थे।[1] दक्षिण भुजा या नेत्र का फड़कना अथवा छींक अपशकुन थे।[2]

तपश्चर्या, दान और यज्ञ-विधान

तपश्चर्या दान और यज्ञादि अनुष्ठान सभी दैत्यवंशी नरेशों ने सम्पन्न किए। कृच्छ तप-साधना करके दितिनन्दन हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष ने ब्रह्मा से अमरता का वर प्राप्त किया।[3] दैत्यों ने तपसाधना केवल स्वार्थसिद्धि के लिए ही नहीं की। उदाहरणार्थ बाणासुर ने वृद्धावस्था आते ही अनंत ऐश्वर्य और सुख भोग को त्याग कर शिवाराधन किया। एक पैर पर खड़े होकर अपने शरीर को तप करते हुए सुखा दिया और अन्ततः योग की अग्नि में अपने शरीर को जलाकर शिवलोक गमन किया।[4] दान की महिमा का अनुपम आदर्श राजा बलि ने प्रस्तुत किया। गुरु शुक्राचार्य के समझाने पर भी कि वामन वटु के वेष में भगवान ही उसे छलने आये हैं बलि ने अपना सर्वस्व समर्पण कर दिया।[5] बलि को इस लोक छोड़कर पाताल जाना पड़ा। इन्द्रादि देवों को जीतकर सम्पूर्ण वैभव सम्पन्न होते हुये भी दैत्य नरेशों ने अनेक यज्ञ किये। वस्तुतः ये सभी कृत्य दैत्यवंशी नरेशों की आध्यात्मिक निष्ठाओं के ज्वलंत प्रतीक हैं।

प्रगतिशील सन्दर्भ

पौराणिक संस्कारवशात अद्यावधि दैत्यों में केवल दोष दर्शन ही किया जाता रहा है। 'दैत्यवंश' के रचयिता ने प्रथम बार व्यापक प्रगतिशील दृष्टिकोण अपना कर दैत्यों के प्रशासनिक कौशल एवं जनहित संवर्द्धक कार्यों का दिग्दर्शन कराया है।

बलि ने राज्यपदासीन होते ही सर्वप्रथम प्रजानुरंजन के कार्यों की ओर ध्यान दिया। उसने प्रशासन-विषयों में अनेक महत्वपूर्ण सुधार किये। उसने शिक्षा, स्वास्थ्य एवं कृषि की व्यवस्था पर विशेष ध्यान दिया। सीमाओं की रक्षा के लिए सुदृढ़ सैन्य संगठन किया। सभी दैत्य राजकुमारों को उनके आरम्भिक

---

१ वही, पंचम सर्ग, पृ० ६९

२ वही, प्रथम सर्ग, पृ० ६७

३ वही, सप्तदश सर्ग, पृ० २५१

४ वही, सप्तदश सर्ग, पृ० २५१

५ वही, द्वादश सर्ग, पृ० १८६

जीवन म रा-नीति अस्त्र-शस्त्र प्रयोग एव स-य सचालन विधियाका ज्ञान कराया जाता था, जिसमे वे भावी जीवन मे कुशल प्रशासक बनते थे। बाए जब बडा हुआ तो उसे ा-नीति पढाई गई, शस्त्र और शास्त्र का ज्ञान कराया गया, व्यूह रचना एव शा-नविधि मे पारगत किया गया। तदनतर वह शम्भु शल पर शिवाराधना हेतु गया जहा कठोर तप करके शिव को प्रस-न कर उसने मनोवाछित वर एव दिव्यास्त्र प्राप्त कि-े।[1] -स प्रकार सस्कार-सम्पन्न होकर एव प्रशासनिक योग्यता प्राप्त करके ही -त्यकुमार राज्याधिकारी होते थे।

प्रजानुरजन की भावना सभी दत्यो म थी। देवा से वर विरोध होने पर भी प्रजा स उनका कोई द्वेष न था। हमकस्यप ने अपने अग्रज हेमलोचन के वध का देवो म प्रतिशोध लेन के लिय दैत्यों को आज्ञा दी कि आज से दवव-द हमारे शत्रु हैं। हरिभक्तो को जला दो, भक्तिमाग को उखाड दो और वाम माग का प्रचार करो। किन्तु यह स्मरण रह कि प्रजा को किसी प्रकार का कष्ट न हो—

देख रहो हो न कष्ट पाव प प्रजा को नाहि।'[2]

दत्यवशी नरेशो म अस्कद कुमार न तो प्रजाहित के लिये सम्पूरण राज्य का भ्रमण किया। उसने ग्राम ग्राम जाकर यज्ञशालाओ, पुस्तकालायो, औषधालयो, राजमार्गों, वनवीथियो का पयवेक्षण किया। जनता के सुख-दुख की बातें सुनी। कृपक वग से व्यक्तिगत सम्पक स्थपित किया—

खेती सारे ग्राम की सब निरख्यौ नरनाह।
कृपिकन को दुख सुख सुन्यो, मन मह अमित उछाह॥'[3]

इस प्रकार दत्यो म जनतत्रीय प्रशासका के सम्पूरण गुण दिखाई देते हैं। इन प्रशासकीय गुणो का चित्रण "दत्यवश" मे मानवतावादी दृष्टि स प्ररित होकर किया गया है।

मानवतावादी जीवन-दृष्टि

शताब्दियो स भारतीय जनजीवन मे एक अ-ध विश्वास आधत दृष्टिकोण विकसित होता रहा है जिसक अनुसार देवो म गुण दशन और दत्यो म दोषारोपण की प्रवृत्ति प्रधान रही है। इस दृष्टिकोण को विकसित करन म पौराणिकता का प्रभाव उल्लेखनीय है। पौराणिकता कथाधारित काव्या म भी यही दृष्टिकोण सामा-यत विकसित होता रहा है। इधर विशति शता-दी स जिस मानवतावादी जीवन-दृष्टि का विकास हुआ उससे प्रेरित होकर हमार कविया न नये सिर से देव-दानव सघ की व्याख्या प्रारम्भ का है। दाशनिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टि

---

१ दत्यवशी द्वितीय सग, पृ० २७
२ वही प्रथम सग, पृ० १५
३ वही, दश-म सग, पृ० २५५

से देवत्व और दानवत्व मानव स्वभाव के ही दो रूप हैं। 'मानव का अविकसित या अपविकसित रूप दैत्य और सुविकसित रूप देव हैं। फलत दैत्य प्रकृति का आदि मानव रूप कहा जा सकता है, जिसमें शारीरिक बल प्रचुर मात्रा में मौजूद है, क्योंकि वह प्रकृति की सीधी देन है। परन्तु मस्तिष्क बल अधिक नहीं है। शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ प्राय एक से अनुपात में किसी वर्ग में नहीं पाई जाती। विकासक्रम में यह भी देखा गया है कि किसी वर्ग में जैसे जैसे मस्तिष्कीय शक्तियों का विकास होता है शारीरिक बल का ह्रास भी होता जाता है। छल प्रपंच, धूर्तता, विश्वासघात आदि मस्तिष्क विकास के आवश्यक परिणाम हैं। दैत्य शारीरिक बल में बढ़े चढ़े हैं तो उनमें सरल विश्वास, सत्य निष्ठा और सिधाई विद्यमान है। देवगण शरीर में निर्बल हैं, पर चतुर अधिक हैं, वे बात बात में दैत्यों को धोखा देते हैं और उनकी सरल प्रकृति से लाभ उठाकर उन्हें छल लेते हैं।

देव और दैत्य अर्थात मस्तिष्कीय और शरीरी प्रवृत्तियों के संघर्ष में मनुष्य की सहानुभूति देवों के प्रति होना स्वाभाविक है क्योंकि वह भी मस्तिष्क के बल से ही सब सृष्टि पर शासन करता है और अपने लाभ के लिये सृष्टि के इतर प्राणियों पर किये गये अत्याचारों को अत्याचार नहीं मानता।'[1] अस्तु—

आवश्यकता इस बात की है कि पूर्वाग्रह मुक्त होकर युगीन संदर्भों में मानवतावादी दृष्टिकोण से देव—दानव संघर्ष की पुनर्व्याख्या की जाय। दैत्यवंश के रचयिता ने इसी दृष्टिकोण से देवों और दानवों के कृत्यों का मूल्यांकन किया है। इस मूल्यांकन में कवि तटस्थ रहा है। उसकी तटस्थता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि उसने अपने नायकों (दैत्यवंशी राजाओं) का उत्कर्ष दिखाने के लिये प्रतिनायकों (देवताओं) का अपकर्ष नहीं दिखाया है।

इस प्रकार दैत्यवंश' में यद्यपि गंभीर दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन नहीं हुआ है तथापि उसमें जिस सहज मानवतावादी दृष्टिकोण का विकास रूपायित हुआ है वह इस काव्य की इतनी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है कि जीवनदर्शन की दृष्टि से इस कृति को महाकाव्य की गरिमा प्रदान करती है।

रश्मिरथी

उद्देश्य और सन्देश

'रश्मिरथी' की रचना का उद्देश्य जैसा कि काव्य के रचयिता ने 'भूमिका' में स्वीकार किया है—'कर्ण चरित्र का उद्धार है। कवि के शब्दों में— 'कर्ण चरित्र का उद्धार एक तरह से नयी मानवता की स्थापना का ही

---

१ श्री उमेशचन्द्र मिश्र—दैत्यवंश की भूमिका, पृ० ६-७

प्रयास है।"[1] इस सकेत के आलोक मे यदि 'रश्मिरथी' काव्य के जीवन-दर्शन सबधी मन्तव्यो पर विचार किया जाय तो हम पायगे कि इस काव्य का जीवन दर्शन मानवतावादी है। मानवतावादी जीवन-मूल्यो का प्रतिष्ठा का प्रयास यो तो दिनकर जी ने 'कुरुक्षेत्र' काव्य मे भी किया है, किन्तु उसके एतद् विषयक चिन्तन की चरम परिणति और विचार-दर्शन का प्रौढतम स्वरूप 'रश्मिरथी' मे ही प्राप्त होता है। डा० सत्यकाम वर्मा के शब्दो मे—

"कुरुक्षेत्र' के बाद आने वाला यह महाकाव्य सच्चे अर्थों मे केवल महाकाव्य ही नही, बल्कि कवि की दार्शनिक, सास्कृतिक कवित्वमय, धर्म सम्बन्धी और रचनात्मक चेतना का सबल और सतर्क प्रमाण भी है। यह अकेला काव्य ही कवि की सम्पूर्ण चेतना और शक्ति का प्रतीक कहा जा सकता है। कवि का जो जीवनदर्शन 'हुकार' से जागा और जिसकी पूर्णता 'परशुराम की प्रतीक्षा' मे हुई उसी का केन्द्र-बिन्दु यह 'रश्मिरथी' है। इसमे मानवतावाद का एक ऐसा ज्वलन्त सत्य केन्द्र-बिन्दु के रूप मे प्रमुख होकर चला है, जिसने उसे विचारक कवि और दार्शनिक से ऊपर उठा कर महानतम मानवतावादी सिद्ध किया है।"[2] सच तो यह है कि 'रश्मिरथी' के कवि ने अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिये एक ओर परम्परा-पोषित एव जर्जरित रूढिवादी मान्यताओ का खडन किया है तो दूसरी ओर युग-सापेक्ष, प्रगतिशील जीवन मूल्यो की प्रस्थापना पर बल दिया है। उसने सामाजिक अन्याय के कारण उच्च कुल की झूठी मान मर्यादा और जातिवाद के दभ की भर्त्सना की है, किन्तु श्रम, पुरुषार्थ, तपस्या दान मैत्री, सत्य, शील आदि मानवीय गुणो (जीवन मूल्यो) की महत्ता को सराहा और स्वीकारा है। काव्यारम्भ मे ही कृपाचार्य के जाति विषयक प्रश्न पूछने पर कर्ण ने जो उत्तर दिया है, उसमे तथाकथित उच्च कुलीन मान मर्यादा एव जातिवाद का विखडन किया गया है —

> जाति, जाति रटते, जिनकी पूंजी केवल पाषड,
> मैं क्या जानू जाति ? जाति हैं ये मेरे भुजदड।
> + +
> पाते हैं सम्मान तपोबल से भूतल पर शूर
> जाति जाति का शोर मचाते केवल कायर क्रूर।
> + +
> बडे वश से क्या होता, खोटे हो यदि काम ?
> नर का गुण उज्जवल चरित्र है नही वश धन धाम।'[3]

---

१ रश्मिरथी, भूमिका, पृ० घ

२ डा० सत्यकाम वर्मा जनकवि दिनकर, पृ० ९३

३ रश्मिरथी, प्रथम सर्ग, पृ० ४, ५, ७

काव्य के चतुर्थ सर्ग में देवराज इन्द्र से वार्तालाप करते हुए कर्ण ने कहा है कि — एक नया सन्देश विश्व के हित का आया है।[1] और वह सन्देश है— सत्कर्मपरायण एवं पुरुषार्थी बनकर मनुष्य पथ पर बढ़ा रहता। जीवन का जय इसी सत्कर्म-पालन में निहित है। पुरुषार्थ के बल पर पुरुष नियति के भाल पर पाँव रखकर चल सकता है। चाहे विश्वरिपु हो जाय धर्म दगा दे और पुष्प अंगारा बरसाये किन्तु मनुष्य को सत्पथ से विचलित नहीं होना चाहिए। कर्मण्य परायणता की यह शक्ति किसी वंश या कुल की धरोहर नहीं वरन् वह वीर पुरुषों के पृथुल वक्षस्थल में रहती है।[2] जन्मगत उच्चता और कुलीनता के नाम पर मनुष्यता का मानवता का जो तिरस्कार किया जाता रहा है 'रश्मिरथी' के कवि ने उसका जोरदार शब्दों में प्रतिकार किया है। इसीलिए काव्य का नायक कर्ण उनका आदर्श बनकर अवतरित हुआ है जिन्हें कुल-गौरव से प्रताड़ना मिली है नीचवंश जन्मा कहकर जग ने जिन्हें धिक्कृत किया है और समाज की विषमता के वह्नि में से जो विदग्ध हैं। कर्ण के शब्दों में —

'मैं उनका आदर्श, जिन्हें कुल का गौरव ताड़ेगा,
नीचवंश जन्मा कहकर जिनको जग धिक्कारेगा।

+ +

मैं उनका आदर्श कहीं जो व्यथा न खोल सकेंगे
पूछेगा जग किन्तु पिता का नाम न बोल सकेंगे।

+ +

मैं उनका आदर्श किन्तु, जो तनिक न घबरायेंगे
निज चरित्र बल से समाज में पद विशिष्ट पायेंगे।
सिंहासन ही नहीं, स्वर्ग भी जिन्हें देख नत होगा,
धर्म हेतु धन, धाम लुटा देना जिनका व्रत होगा।[3]

अस्तु, प्रकट है कि रश्मिरथी काव्य का उद्देश्य और सन्देश मानवतावादी दृष्टिकोण से प्रेरित है।

रश्मिरथी' काव्य के जीवन-दर्शन की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उसका युगीन स्वरूप है। काव्य में जिन व्यापक मानवीय विश्वासों और आदर्शों आध्यात्मिक निष्ठाओं और मान्यताओं तथा चिन्तनीय समस्याओं और धारणाओं का प्रतिपादन किया गया है उन सबका आधार हमारे युग का उन्नत विचार दर्शन है। इस विचार दर्शन को एक शब्द में मानवतावाद अभिधान दिया जा सकता है।

---

१ रश्मिरथी चतुर्थ सर्ग पृ० ७२
२ वही वही पृ० ७३
३ वही चतुर्थ सर्ग पृ० ७३ ७४

आध्यात्मिक मान्यताएं

आध्यात्मिक मान्यताओं के प्रतिपादन में कवि का दृष्टिकोण नितांत युगीन और प्रगतिशील रहा है। नियति, भाग्य, धर्म आदि आध्यात्मिक विषयों की विवेचना कवि ने युग जीवन के संदर्भ में की है। केवल श्री कृष्ण के सम्बन्ध (उन्हें ईश्वर मानने में) में उसके विचारमूल चिन्तनधारा का अपवाद कहे जा सकते हैं।

ईश विषयक धारणा और श्रीकृष्ण

दिनकर का कवि आस्तिक है। संसार की संचालिका अनंत शक्ति में उसे पूर्ण विश्वास है। इस अनंत शक्ति को ईश, जगदीश, भगवान, विधाता आदि कहकर उसने संबोधित किया है तथा अदृश्य और सर्वज्ञ माना है

> पर हंसते कहीं अदृश्य जगत के स्वामी
> देखते सभी कुछ को तब भी अन्तर्यामी।[1]

श्रीकृष्ण को 'रश्मिरथी' में ईश्वरत्व से सम्पन्न चित्रित किया गया है। वे ईश्वरीय शक्ति से सम्पन्न होने के कारण विलक्षण एवं गरिमापूर्ण व्यक्तित्व वाले हैं। कौरवों और पाडवों में सद्भाव स्थापित कराने के उद्देश्य से वे हस्तिनापुर से पाडवों का मैत्री सन्देश लेकर दुर्योधन के पास आते हैं। दुर्योधन उनके सद्‌परामर्श को न मानकर उल्टा उन्हें बांधने का उपक्रम करता है। तभी कृष्ण कुपित होकर भीषण हुंकार करते हुये अपना विराट रूप दिग्दर्शित करते हैं। श्री कृष्ण का वह रूप ब्रह्मांड व्यापी था। उस स्वरूप में उदयाचल भाल भूमंडल वक्षस्थल और मैनाक मेरु चरण थे। सम्पूर्ण चराचर सृष्टि कोटि-कोटि सूर्य चन्द्र ब्रह्मा, विष्णु, महेश, दिनेश, रुद्र लोकपाल आदि उसमें व्याप्त थे। उनकी जिह्वा से भयंकर ज्वालाएं निकल रही थीं। त्रिकाल को मुट्ठी में बांधे सृष्टि के आदि और अन्त का कारण वह विकराल रूप था —

> "उदयाचल मेरा दीप्त भाल, भूमंडल वक्षस्थल विशाल।
> \+ \+
> शतकोटि रुद्र, शतकोटि काल, शतकोटि दंडधर लोकपाल।
> भूलोक अतल पाताल देख, गत और अनागत काल देख।
> अम्बर में कुंतल जाल देख पद के नीचे पाताल देख।
> मुट्ठी मे तीनों काल देख मेरा स्वरूप विकराल देख।"[2]

श्री कृष्ण के इस स्वरूप को देखकर सभा सन्न थी, लोग डर के मारे चुप थे या बेहोश पड़े थे। 'रश्मिरथी' के कृष्ण का यह रूप गीता के श्रीकृष्ण के उस विराट

---

१ रश्मिरथी, पंचम सर्ग, पृ० ९४

२ रश्मिरथी, तृतीय सर्ग, पृ० ३२ ३३,

रूप से तुलनीय है, जो उन्होंने अर्जुन को दिखाया था।[1] यहा यह उल्लेखनीय है कि श्रीकृष्ण को कवि ने ईश्वरीय रूप मे अंकित किया है। कृष्ण के इस पौराणिक रूप का चित्रण बिंशति शताब्दी के बुद्धिजीवी पाठक को कितना ग्राह्य और वरेण्य होगा यह चिंतनीय है। प्रस्तुत काव्य से ७ वर्ष पूर्व लिखित 'कुरुक्षेत्र' काव्य मे दिनकर जी ने कृष्ण को महापुरुष के रूप मे ही अंकित किया है। 'कुरुक्षेत्र' मे अनेक स्थलो पर भीष्म पितामह, युधिष्ठिर और स्वयं कवि ने कृष्ण को भगवान् कहकर सम्बोधित किया है। किन्तु — कृष्ण को भगवान् कहने में उसकी सगुणोपासना नहीं झलकती अपितु वह उन्हें महापुरुष (अतिमानव) मात्र मानकर उनके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करता है। कवि अवतारवाद मे विश्वास नही रखता अपितु ईश्वर संबंधी उसकी कल्पना अधिक व्यापक एवं आध्यात्मिक है आधिदैविक नही।[2] कुरुक्षेत्र के कवि दिनकर के लिए अन्य महापुरुषो की भांति श्रीकृष्ण भी श्रद्धेय हैं, ईश्वर नहीं —

> भीष्म हो अथवा युधिष्ठिर या कि हो भगवान
> बुद्ध हो कि अशोक, गांधी हो कि ईसु महान
> सिर झुका सबको सभी को श्रेष्ठ निज से मान,
> मात्र वाचिक ही उन्हें देता हुआ सम्मान।'[3]

इस प्रकार कृष्ण के सम्बन्ध मे एक दशाब्दी मे लिखे गये दो काव्यो मे दिनकर जी का दृष्टिकोण भिन्न है। 'रश्मिरथी' मे कृष्ण के विकराल रूप-दर्शन द्वारा ही नहीं वरन् अन्य अलौकिक घटनाओं के आयोजन द्वारा भी कृष्ण के ईश्वरीय रूप की प्रतिष्ठा की गई है। उदाहरणार्थ अर्जुन की प्रतिज्ञापूर्ति अर्थात् जयद्रथ-वध के लिए —

> माया की सन्ध्या श्याम हुई
> भ्रममय दिनेश हो गये अस्त।"[4]

इसी प्रकार दानव घटोत्कच की सृष्टि तथा कर्ण के रथचक्र के रक्त-कीच मे धंस जाने और सम्पूर्ण शक्ति लगाने पर भी न निकलने में ईश्वरीय शक्ति का चमत्कार-दर्शन ही है।

दिनकर जी के विचार-दर्शन का उपर्युक्त विवेचन के आलोक में विश्लेषण किया जाय तो प्रतीत होगा कि कवि की ब्रह्म विषयक धारणा का मूल स्वरूप तो वही है जो 'कुरुक्षेत्र' में प्रतिपादित है, किन्तु 'रश्मिरथी' में पौराणिक इतिहासिक कथानक में आमूल चूल परिवर्तन को अवांछनीय मानकर कवि ने

---

१ गीता अध्याय ११ श्लोक १० से ३० तक
२ कुरुक्षेत्र मीमांसा पृ० ११८
३ कुरुक्षेत्र षष्ठ सर्ग पृ० ९
४ रश्मिरथी षष्ठ सर्ग पृ० १३६

इस काव्य के घटनाक्रम को ज्यों-का-त्यों प्रस्तुत किया है जिसके कारण कृष्ण, इस काव्य में ईशावतारी हो गये हैं। रश्मिरथी' है भी कथाकाव्य जब कि 'कुरुक्षेत्र' विचार-प्रधान काव्य है। कथाकाव्य में कथानक और विचार-प्रधान काव्य में वचारिकता (चिंतन) का महत्व विशेष होता है। कथाकाव्य की महत्ता के सम्बन्ध में कवि के विचार 'रश्मिरथी' की भूमिका में द्रष्टव्य हैं। फिर भी इतना तो कहा ही जायेगा कि अपने मूल चिंतनक्रम (जिसके अनुसार ब्रह्म अपौरुषेय है और कृष्ण महापुरुष हैं, ईशावतार नहीं) की रक्षा के लिए अलौकिक घटनाओं को किंचित् परिवर्तन द्वारा बुद्धि-ग्राह्य बनाया जा सकता था। उदाहरणाय कुरुजन-सभा में कृष्ण के विराट रूप-दर्शन के स्थान पर उनके तेजस्वितापूर्ण रूप की झांकी भी अभिव्यक्ति की जा सकती थी जिसे देखकर दुर्योधन चकित रह जाता लोग बेहोश तो न होते, आदि।

नियति

नियति को क्रूर अदृश्य शक्ति के रूप में चित्रित किया गया है। नियति ही बार बार पुरुषार्थी कर्ण से छल करके उसे जीवन संग्राम में पराजित और निराश करती है। इस संदर्भ में कर्ण के कुछ कथन द्रष्टव्य हैं —

'सब को मिली स्नेह की छाया नई नई सुविधाएं
नियति भेजती रही सदा पर मेरे हित विपदाएं।[1]

+ +

प्रवंचित हूं नियति की दृष्टि में दोषी बड़ा हूं।[2]

+ +

विलक्षण बात मेरे ही लिये हो,
नियति का घात मेरे ही लिये है।[3]

स्वयं कवि ने कहा है —

'किया नियति ने वार कर्ण पर,
छिपकर पुण्य विवर से।[4]

कवि ने महाभारत युद्ध की आयोजिका भी नियति को ही माना है —

'हो चुकी पूर्ण योजना नियति की सारी
कल ही होगा आरम्भ समर अति भारी।'[5]

---

१ रश्मिरथी चतुर्थ सर्ग पृ० ७२
२ वही सप्तम सर्ग, पृ० १५६
३ वही सप्तम सर्ग पृ० १८८
४ वही चतुर्थ सर्ग पृ० ६३
५ वही पंचम सर्ग पृ० ८१

इतना होने पर भी 'रश्मिरथी' के नायक कर्ण ने नियति की क्रूरता को नतमस्तक होकर स्वीकार नहीं किया है, वरन् पुरुषार्थ के बल पर उसका पूर्ण प्रतिरोध किया है। कर्ण कहता है —

चरण का भार लो, सिर पर सभालो,
नियति की दूतियो ! मस्तक झुकालो।
चलो जिस भांति चलने को कहूं मैं।
ढलो जिस भांति ढलने को कहूं मैं।
न कर छल छद्म से आघात फूलो,
पुरुष हूं मैं नहीं यह बात भूलो।
कुचल दूंगा निशानी मेट दूंगा
चढ़ा दुर्दम भुजा की भेंट दूंगा।'[1]

कर्ण के उपर्युक्त कथन में उस का पौरुष ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण मानवता के पुरुषार्थ का महान् उद्घोष है। इसी कथन के परिप्रेक्ष्य में कवि दिनकर के दृष्टिकोण की प्रगतिशीलता भी द्रष्टव्य है जिस के अनुसार वह मानव की शक्ति और सामर्थ्य को ही सर्वोपरि मानता है। मानव नियति की क्रूरता के प्रतिरोध में अन्त तक संग्राम करने को कृतिसंकल्प है। कर्ण के शब्दों में —

चले संघर्ष आठो याम तुम से
करूंगा अन्त तक संग्राम तुम से।[2]

कवि ने तो यहां तक कह दिया है कि कर्ण की गौरवपूर्ण जीवनगाथा के समक्ष नियति और भाग्य के संकेत व्यर्थ हैं —

मगर यह कर्ण की जीवन कथा है
नियति का भाग्य का इंगित वृथा है।[3]

यही नहीं, पुरुषार्थ के बल पर पुरुष नियति के भाल पर भी पैर रख सकता है —

नियति भाल पर पुरुष पांव निज बल से धर सकता है।[4]

भाग्य

भाग्यवाद की धारणा का खंडन कवि ने 'कुरुक्षेत्र' काव्य में इसे पाप का आवरण और शोषण का शस्त्र कह कर किया था। इसी मान्यता की पुष्टि 'रश्मिरथी' में कर्ण के निम्नांकित कथन द्वारा हुई है —

---

१ रश्मिरथी सप्तम सर्ग पृ० १५६
२ वही सर्ग पृ० १६७
३ वही षष्ठ सर्ग पृ० १५१
४ वही चतुर्थ सर्ग पृ० ७३

"कहा कर्ण ने, वृथा भाग्य से आप डरे जाते हैं,
जो है सम्मुख खड़ा उसे पहचान नही पाते हैं ।
विधि ने था क्या लिखा भाग्य मे खूब जानता हू मैं,
बांहो को पर बली भाग्य से कही मानता हूं मैं ।
महाराज उद्यम से विधि का मक पलट जाता है,
किस्मत का पासा पौरुष से हार पलट जाता है ।"[1]

धर्म

पौराणिको ने 'कुरुक्षेत्र' को 'धम क्षेत्र' और 'महाभारत' को धमयुद्ध कहा है ।[2] किन्तु कवि ने इस मान्यता का विरोध किया है । उसके मतानुसार धम का, विग्रह, हिंसा, युद्ध या सहार से सम्बध स्थापित नही किया जा सकता । धम तो करुणा से उद्भूत होता है —

'करुणा से कढता धम विमल ।"[3]

धम का वास्तविक स्वरूप कममय साधना एव जीवन-पथ को त्याग की ज्योति से आलोकित करने मे है । धम ध्येय म नही, साधना मे ही निहित है —

' है धम पहुचना नही, धम तो जीवन भर चलने मे,
फला कर पथ पर स्निग्ध ज्योति, दीपक समान जलने म ।

+ + +

इसालिये ध्येय मे नही, धम तो सदा निहित साधन म ।'[4]

अर्जु न द्वारा जयद्रथ के लोमहषक एव अन्यायपूर्ण वध को कवि ने धममय काय नही माना ह । मरना और मारना कभी भी धममय काय नहा हो सकत—

'हो जिसे धम से प्रेम कभी, वह कुत्सित कम करेगा क्या ?
बर्बर, कराल, दष्ट्री बनकर, मारेगा और मरेगा क्या?[5]

चिरतन जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा

आध्यात्मिक निष्ठाओ के प्रति युगीन किंवा प्रगतिशील दृष्टिकोण अपनाते हुए भी चिरतन जीवन-मूल्यो की स्थापना के लिए 'रश्मिरथी का कवि प्रयत्नशील

---

[1] रश्मिरथी, चतुथ सग पृ० ६६
[2] धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सव' —गीता, अ० १, श्लोक १
[3] रश्मिरथी षष्ठ सग, पृ० १२७
[4] वही वही, सग, पृ० १३७-३८
[5] वही पृ० १३८

रहा है। दानशीलता, सत्य, मैत्री, समानता, उदारता आदि मूल्यों को प्राचीन कहकर उपेक्षित नहीं किया गया, वरन् उनकी महत्ता का प्रतिपादन काव्य में आद्यात दिखाई देता है।

दान की महिमा

भारतीय संस्कृति में दान की महिमा अनादि काल से स्वीकृत रही है। दान कर्म को पुराणपंथी कहकर तिरस्कृत नहीं किया जा सकता। दिनकर जी ने दान की महिमा का तर्कपूर्ण आख्यान करते हुए इस कार्य को जीवन-धर्म कहा है —

"जीवन का अभियान दान बल से अजस्र चलता है।

+ + + •

दान जगत का प्रकृत धर्म है, मनुज व्यर्थ डरता है।"[1]

दान स्वत्व का त्याग भी नहीं है, क्योंकि जो जितना देता है, उतना ही पा भी लेता है। उदाहरण के लिए, वृक्ष फल इसलिए देते हैं कि उनके रेशों में कीड़े न समायें, डालियाँ स्वस्थ रहें और नये फल आयें। इसी प्रकार नदियाँ जल देती हैं कि बादल भरपूर होकर बरसें और फिर जलपूरित होकर नया जीवन पायें। इसी सन्दर्भ में कवि ने राम, दधीचि, शिवि, हरिश्चन्द्र, ईसा, गाँधी जैसे आत्मदानियों का यशोगान किया है। दानवीरों में 'रश्मिरथी' के नायक कर्ण का चरित्र अनुपमेय है। उसने दानव्रत के पालन हेतु अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया। जन्मजात कवच और कुंडल तक देवराज इन्द्र को दे दिये। तभी तो कवि ने कहा कहा है कि—

'कर्ण नाम पड़ गया दान की अतुलनीय महिमा का।'[2]

दान मनुष्य का वह आभूषण है जो उसके चरित्र को अलंकृत नहीं करता, वरन् सम्पूर्ण मानव जाति की गौरव-वृद्धि करता है। कर्ण से इन्द्र की याचना स्वर्ग की पृथ्वी से याचना है —

'स्वर्ग भीख माँगने आज, सच ही, मिट्टी पर आया।'[3]

दान की भाँति ही अन्य जीवन मूल्यों के आदर्श का प्रतिपादन काव्य में यत्र तत्र हुआ है। जैसे—

तपस्या

'नरता का आदर्श तपस्या के भीतर पलता है,
देता वही प्रकाश, आग में जो अभीत जलता है।'[4]

---

१ वही, वही चतुर्थ सर्ग—६०-६१
२ रश्मिरथी चतुर्थ सर्ग पृ० ६९
३ वही वही, पृ० ६३
४ वही, पृ० ५६

सत्य

'हार जीत क्या चीज ? वीरता की पहचान समर है,
सच्चाई पर कभी हार कर भी न हारता नर है ।"[1]

अथवा

'नही राधेय सत्पथ छोडकर अघ ओक लेगा,
विजय पाये न पाये, रश्मियो का लोक लेगा ।"[2]

मैत्री

तृतीय सर्ग मे कृष्ण जब कर्ण को युधिष्ठिर से मिल जाने का परामर्श देते हैं तो प्रत्युत्तर मे कर्ण ने जो कहा है उससे मैत्री की महत्ता स्पष्ट झलकती है —

'मैत्री की बडी सुखद छाया, शीतल हो जाती है काया ।

+ + +

मित्रता बडा अनमोल रतन, कब इसे तोल सकता है धन ।
धरती की तो है क्या बिसात, आ जाय अगर बकुंठ हाथ ।
उसको भी न्यौछावर कर दू कुरुपति के चरणो पर धर दू ।[3]

श्रम

परिश्रम की महत्ता को कवि ने मुक्त कठ से स्वीकार किया है। काव्य के तृतीय सर्ग म कहा गया है कि वसुधा का नेता, भूखड विजेता, अतुलित यशर्केता तथा नवधर्म प्रणेता वही व्यक्ति हुआ है जिसने विघ्नो को सहकर भी श्रम-साधना की है।'[4]

युगीन समस्याए

'रश्मिरथी मे जातिवाद, उच्चकुलीनता, सामाजिक असमानता आदि अनेक समस्याओ की यथाप्रसग विवेचना हुई है। युद्ध की समस्या पर विश्लेषणात्मक ढग से कवि ने विचार किया है। उसने समस्याए ही नही, वरन् उनका समाधान भी प्रस्तुत किया है।

युद्ध की समस्या और समाधान

युद्धवादी विचार दर्शन की विस्तृत भूमिका यद्यपि दिनकर जी के 'कुरुक्षेत्र नामक काव्य म मिलती है क्योकि उस काव्य की रचना ही द्वितीय विश्वयुद्ध की

---

१ रश्मिरथी वही, प० ७०
२ वही सप्तम सग, प० १६१
३ वही, तृतीय सग, प० ५१
४ वही, तृतीय सग, पृ० २८

पृष्ठभूमि पर हुई थी। तथापि युद्ध की समस्या पर 'रश्मिरथी' में कोटि प्रकाश डाला गया है।

काव्यारम्भ में ही कुलीनों एवं वर्ण-व्यवस्था-प्राधान्य समाज की आलोचना करते हुए कवि ने कहा है कि युद्धों का आयोजन समाज में दुर्गुण प्रधान या पर दोषपथभ्रांत लोगों को सन्मार्ग पर लाने के लिए नहीं होता है। युद्ध तो इसलिए होते हैं कि राजे महाराजे विजय का कल्पित सम्मान पाकर मानी हों अथवा राज्यों का सीमा विस्तार करें और सम्राट हों। युद्धों को विजय राजाओं की यह वृद्धि करती है। राजा स्वच्छाचारी होकर समाज को दण्डित करते हैं।'[1] अस्तु, कवि ने इस समस्या का निदान शोषण में प्रस्तुत किया है। प्रथमतः समाज का नेतृत्व भोगी विलासी भूपों के हाथों में रहे। समाज में श्रेष्ठता का पद कवि कोविद, कलाकार, ज्ञान विज्ञान विचारकों को प्राप्त हो। क्योंकि समाज का शुभचिन्तक वर्ग यही है। यह वर्ग अशनवसन विहीन एवं दीन रहकर भी मानवाभ्युदय की ही बात करता है। इस वर्ग के लोगों का कनक नहीं ज्ञान कल्पना और चरित्र की उज्ज्वलता पर अभिमान है। अस्तु—

> "इन विभूतियों को जब तक संसार नहीं पहचानेगा,
> राजाओं से अधिक पूज्य जब तक न इन्हें मानेगा,
> तब तक पड़ी आग में धरती इसी तरह अकुलायेगी,
> चाहे जो भी करे दुखों से छूट नहीं पायेगी।'[2]

युद्ध के निवारण का दूसरा समाधान क्रांतिकारी है। कवि का अभिमत है कि राजाओं को समझा बुझाकर ज्ञानी और कवि थक गये किन्तु प्रशासक वर्ग खड्ग के अतिरिक्त किसी भी भाषा को नहीं समझता। अस्तु ज्ञानियों को भी खड्ग धारण करके अविचारी एवं मदान्ध नृप के आतंक से भू को मुक्त करना चाहिए —

> 'रोक टोक से नहीं सुनेगा, नृप समाज अविचारी है,
> ग्रीवाहर निष्ठुर कुठार का यह मदान्ध अधिकारी है।
> इसीलिये मैं कहता हूँ अरे ज्ञानियो! खड्ग धरो
> हर न सका जिसको कोई भी भू का वह तुम त्रास हरो।'[3]

दूसरे शब्दों में, जन क्रांति द्वारा राजतन्त्र से मुक्ति के उपाय की ओर संकेत किया है। वैसे 'कुरुक्षेत्र' काव्य की भांति युद्ध को एक चिरंतन और अनिवार्य समस्या के

---

१ रश्मिरथी द्वितीय सर्ग पृ० १४
२ वही वही पृ० १५
३ वही, वही, पृ० १६

रूप मे इस काव्य मे भी कवि ने स्वीकार किया है। महाभारत युद्ध की समाप्ति के बाद मनुष्य यद्यपि विभ्राट ज्ञानी और महत्ता हो गया है, किन्तु मनु-मनुज में युद्ध आज भी चल रहा है —

> "महाभारत मही पर चल रहा है
> भुवन का भाग्य रण में जल रहा है।
> मनुज ललकारता फिरता मनुज को
> मनुज ही मारता फिरता मनुज को।"[1]

इस विडम्बना पूर्ण स्थिति का मूल कारण अतिशय भौतिकवादी मूल्यो की मानव-जीवन में स्वीकृति है। सुख-समृद्धि के अधीन एव सत्ता लोलुप होने के कारण मनुष्य पतनशील हो रहा है —

> "होकर समृद्धि-सुख के अधीन,
> मानव होता नित तप क्षीण,
> सत्ता, किरीट, मणिमय आसन,
> करते मनुष्य का तेज हरण
> नर विभव हेतु ललचाता है,
> पर वही मनुज को खाता है।"[2]

इस प्रकार 'रश्मिरथी' काव्य म जीवन दर्शन-सम्बन्धी विचारणा का स्वरूप महाकाव्योचित गरिमा से पूर्ण है। उसमें एक ओर पुरातन आदर्शों की नवीन और युगीन व्याख्या प्रस्तुत की गई है तो दूसरी ओर चिरतन मानवीय मूल्यो की पुनर्प्रतिष्ठा का प्रबल आग्रह है। जिस 'कर्णधर्म' के प्रसार का सन्देश प्रस्तुत काव्य के माध्यम से प्रसारित किया गया है, वह हमारे युग जीवन एव समाज की वर्तमान परिस्थितियों में सर्वथा वाछनीय है। वह कर्णधर्म' है —

> "श्रम से नही विमुख होगे, जो दुख से नही डरेंगे
> सुख के लिये पाप से जो नर सधि न कभी करेगे।
> कर्ण धर्म होगा धरती पर बलि से नही मुकरना
> जीना जिस अप्रतिम तेज से उसी शान से मरना।।"[3]

१ रश्मिरथी सप्तम सर्ग, पृ० १५३
२ वही , तृतीय सर्ग पृ० ५४
३ वही, चतुर्थ सर्ग पृ० ७४

ऊर्म्मिला

सृजन प्रेरणा और उद्देश्य

'ऊर्म्मिला' महाकाव्य की सृजन प्रेरणा का मूल स्रोत जनकनन्दिनी ऊर्म्मिला का चरित्र है। कवि के शब्दों में— उर्म्मिला स्तवन की लालसा और उस स्तवा को प्रकाश में लाने की इच्छा चाहे वह बाँझ हो गया न हो—मेरी जीवन संगिन रही है।''[1] भारतीय राम काव्य परम्परा म वाल्मीकि रामायण से लेकर 'साकेत' पूव तक के ग्रन्थों म उर्मिला का चरित्र उपेक्षित प्राय रहा है। कविवर रवीन्द्रनाथ टगोर[2] और आचाय महावीर प्रसाद द्विवेदी[3] ने जो महत्त्वपूर्ण लेख लिखकर साहित्यकारों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। इन्हीं लेखों से प्रेरित होकर श्री मैथिली शरण गुप्त ने 'साकेत नामक महाकाव्य की रचना कर प्रथम बार उर्मिला के चरित्रोद्धार का विशेष प्रयत्न किया। यद्यपि साकेत' की रचनात्मक प्ररणा का मूल स्रोत और प्रतिपाद्य उर्मिला का ही चरित्र था तथापि कथाकथन के व्यामोह, आराध्य देव श्री राम की यशोगाथा के वणन का प्रलोभन आदि ऐसे तत्त्व थे जिनके कारण 'साकेत' म उर्मिला का चरित्र अपेक्षित रूप म न उभर पाया। इस दृष्टि से श्री बालकृष्ण नवीन कृत उर्मिला' महाकाव्य म उल्लेखनीय प्रयास हुआ है। 'साकेत म उर्मिला का आविर्भाव नवपरिणीता वधू के रूप म होता है जब कि ऊर्म्मिला महाकाव्य के प्रथम सग के २४० छंदों म उर्मिला की बाल्य एव किशोराव स्था का सविस्तार विवेचन है। यह सम्पूर्ण वणन कवि–कल्पना प्रसूत है। अन्य' सर्गों मे भी मुख्य उर्मिला का चरित्र गान हुआ हो सच तो यह है कि ऊर्म्मिल' महाकाव्य मे ही उर्मिला के चरित्र का पूर्ण प्रतिफलन हुआ है। इस काव्य म कवि का उद्देश्य रामायणी कथा की घटनाओं का वणन करना नहा जसा कि काव्य की भूमिका में[4] कवि ने स्वय स्वीकार किया है। नवीन जी ने रामकथा के उन्हीं प्रसगों और घटनाओं की सयोजना की है जिनका उर्मिला की चरित्रयोजना से सीधा सबध है। अस्तु, स्पष्ट है कि उर्मिला का चरित्र गान काव्य की सृजन–प्रेरणा का मूल स्रोत है।

'उर्मिला' महाकाव्य की रचना का दूसरा प्रमुख प्रयोजन आर्य (भारतीय) संस्कृति के समुन्नत जीवनादर्शों को प्रतिष्ठित करना है। इस उद्देश्य की सिद्धि के

---

१ ऊर्म्मिला—श्री लक्ष्मणचरणार्पणमस्तु प्रथम पृष्ठ

२ प्राचीन साहित्य—काव्यर उपेक्षिता प० ६६

३ कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता—सरस्वती जुलाई १९०८, भाग ९, संख्या–७, प० ३१२ से ३१४

४ उर्मिला श्रीलक्ष्मणचरणार्पणमस्तु, प० च

न्यि नवीन जी ने एक ओर आर्य संस्कृति के आधारभूत सिद्धान्तों की काव्य में प्रस्थापना की है तो दूसरी ओर रामकथा के घटना–प्रसंगों को सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य मे अंकित किया है उदाहरणार्थ राम के वनगमन का कवि ने महान् अर्थपूर्ण आर्य संस्कृति प्रसार यात्रा कहा है।[1] वनगमन के लिये विदा मांगते हुये लक्ष्मण उर्मिला से कहते भी हैं कि कैकेयी का वरदान मांगना और राम का पिताज्ञा पालन तो औपचारिकता मात्र है वास्तव में विपिनगमन तो जन दुख भंजन एवं सांस्कृतिक विजय के उद्देश्य से हो रहा है।[2] कवि के मतानुसार वनवासी लोगों का जीवन अज्ञान की तमिस्रा, विलास और भौतिकता से पूर्ण है। राम का वनगमन भौतिकता को विजित करने के ही निमित्त है —

> आज विजित करने उस भौतिक, दैहिक, शारीरिक बल को,
> राम लखन वन गमन कर रहे संग ले आत्म ज्ञान दल को।[3]

वन गमन के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुये लक्ष्मण उर्मिला से कहते हैं —

> हम सन्यासी विपिन प्रवासी
> नवसंदेश प्रचारक हम
> मन भय हारी मंगल कारी
> सब जन गण उद्धारक हम।[4]

इसी प्रकार राम रावण के संघर्ष में राम की विजय को कवि ने आर्य संस्कृति की विजय कहा है —

> हुई सांस्कृतिक विजय पूर्ण श्री
> आर्य राम की मति धृति की
> नहीं शास्त्र विजिता यह लंका
> यहां विजय है शास्त्रों की
> यहां जय है तापस आर्यों के
> शुद्ध शान्द ब्रह्मास्त्रों की।[5]

इसी सन्दर्भ में नवीन–साहित्य के अनुसंधाता डा० लक्ष्मीनारायण दुबे का मत है कि 'आर्य धर्म, सभ्यता तथा संस्कृति की महत उपलब्धियों तथा गरिमा की इसमें (ऊर्म्मिला महाकाव्य में) ऋचाएं लिखी गई हैं इस कृति में भारत समग्र वसुधरा को अपने अंक समेट रहा है। भौतिकता, यान्त्रिक सभ्यता, विज्ञान आदि

---

१ उर्मिला श्री लक्ष्मणचरणार्पणमस्तु पृ० ६
२ वही, सर्ग ३ पृ० २६३
३ वही, पृ० १९६
४ वही, पृ० १२३
५ वही, सर्ग ६, पृ० ५३

के असद् पक्ष का उद्घाटन कर कवि ने कामायनी में समाज श्रद्धा भक्ति और विश्वास के तीन विर तत्व प्रेरणामय गान किया हमारे युग को प्रदान किये हैं।[1] वस्तुत 'ऊर्म्मिला' जिस युग की रचना है उसके अनुरूप ही भारतीय संस्कृति का महान उद्घोष उसमें सुनाई देता है। 'ऊर्म्मिला महाकाव्य' का प्रणयन राष्ट्रीय-स्वातन्त्र्य संग्राम की वेला में सतत्‌ाऊ काल में हुआ था। उस समय देशभर में शान्ति-सत्याग्रह और आन्दोलन हो रहे थे। ऊर्म्मिला महाकाव्य का रचयिता समर के अमर सेनानी की भांति अपनी ओजमयी वाणी से भारतीयता की भावना का जन जन में प्रसार कर रहा था। कहा जाता है कि महाकाव्यों में जातीय जीवन संस्कृति और चेतना का महान् उद्घोष होता है। ऊर्म्मिला महाकाव्य में वह स्पष्ट सुनाई देता है। एक आलोचक के शब्दों में —

'हिन्दी साहित्य में आज जितने भी महाकाव्य हिन्दी प्रेमियों के हाथ में सुशोभित हैं, उन महाकाव्यों के कवियों में राष्ट्रीयता की आग, देश भक्ति का मादक यौवन विप्लव का गान उन्माद, विद्रोह का सबल स्वर और जिजीविषा की उछलती कूदती वेगवती धारा नवीन जैसी नहीं थी और न आज ही है।

जिन पवित्र भावनाओं के मादक वातावरण में इस महाकाव्य का प्रणयन हुआ वैसा सौभाग्य किसी भी महाकाव्य को नहीं प्राप्त है। ऊर्म्मिला महाकाव्य के लिये यह गौरव और गर्व का विषय है।[2]

इस प्रकार स्पष्ट है कि उर्मिला के चरित्र की विशद योजना आर्य संस्कृति के जीवनादर्शों की प्रतिष्ठा, युग चेतना की विराट व्यंजना के महत् उद्देश्य से प्रेरित होकर 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य की रचना हुई है।

आर्य संस्कृति के आदर्शों की प्रतिष्ठा

'आर्य संस्कृति' शब्द तत्त्वत 'भारतीय संस्कृति' का ही द्योतक है। 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य में दोनों का प्रयोग एक दूसरे के पर्याय के रूप में ही हुआ है सत्य तप त्याग यज्ञ, विश्वबन्धुत्व आत्मवाद नारी की महत्ता आदि 'आर्य संस्कृति' के आधारभूत सिद्धान्त हैं। इन सब की 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य में प्रतिष्ठा हुई है।

---

१ गवेषणा, अर्द्ध वार्षिक पत्रिका—जुलाई १९६३, पृ० ८७ पर 'ऊर्म्मिला का महाकाव्यत्व' शीर्षक लेख

२ वीणा—मई १९६४ पृ० ३०६।

सत्य

काव्य के अंतिम सर्ग में लंका विजय के अनंतर विभीषण के लंकाधिपति बनने पर राम एक लम्बी वक्तृता द्वारा सत्य की महिमा का बखान करते हैं। वे कहते हैं कि सत्य ही आचरणीय धर्म है। उनका विश्वास है कि सत्य का पक्षधर होने के कारण ही विभीषण राम के समर्थक बने। सत्य की ही जय होती है—

सत्यमेव जयते। संसार में सत्य ही पूज्य है —

'सत्य एक ही वस्तु पूज्य है
वह है सत्य, असत्य नहीं।'[1]

राम की आकांक्षा है कि —

'असद्विचार पराजित कुंठित भू लुंठित उन्मूलित हो,
सत्यमेव विजयी हो राजन् धर्मविटप फलफूलित हो,
आगे आगे ध्वजा सत्य की, पीछे पीछे जन सेना
त्रेता का यह धर्म सनातन, जग को विमल ज्ञान देना।'[2]

तप

तप की महिमा का आख्यान करते हुये कवि ने कहा है कि तपोबल से ही ब्रह्माण्ड गतिमय है। तप के अभाव से सृष्टि का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है -

'यह ब्रह्माण्ड तपस्या के बल गतिमय स्थितिमय चलित हुआ,
अणु अणु में कण कण में सतत, प्रथम तपोबल ज्वलित हुआ।

+ + +

क्षण क्षण आठों याम न हो यदि तप तो यह जग कहाँ रहे,
निमिष मात्र में महाप्रलय हो, सृष्टि कथा फिर कौन कहे।'[3]

यज्ञ

'यज्ञ' शब्द को कवि ने व्यापक अर्थों में व्याख्यायित किया है। कवि का मत है कि यज्ञाहुति की पुण्य भस्म से ही ईश्वर ने सृष्टि रचना की है। यज्ञ से ही जग में जनगण हिताय वृष्टि होती है। उसका मत है कि तिल घृत की ईंधन में आहुतियाँ देना तो प्रवंचनापूर्ण परिपाटी है, यज्ञ नहीं।[4] यज्ञ तो सगाग [illegible] कर्म सृष्टि के अणु अणु और कण कण में प्रत्येक क्षण घटित हो रहा है। सृष्टि के

---

१ ऊर्म्मिला, सर्ग ६ पृ० ५५६
२ वही वही , पृ० ५६५
३ वही वही , पृ० ५४९, ५५०
४ वही, सर्ग ३, पृ० २९९

महायज्ञ म सूय रश्मियो द्वारा और मघ धाराए बरसा कर आहुतिया दे रहे हैं। वस्तुत सवभूतहित अपना तन मन दे देना ही यज्ञ है। कवि के शब्दो मे यज्ञ की परिभाषा इस प्रकार है —

> शुद्ध यज्ञ है सव-भूत-हित-रत हो कर जीवन देना,
> शुद्ध यज्ञ है जग—हिताय सब अपना तन मन धन देना।[1]

उर्मिला तो यहा तक मानती है कि लक्ष्मण का वन गमन मानवता के कल्याण-यज्ञ का प्रथम आहुति है।[2]

नारी की महत्ता

भाय सस्कृति म नारी को देवी कह कर पूज्यनीय माना है। 'ऊर्म्मिला' के कवि ने इस दृष्टिकोण का विशदता से सम्पादन किया है। काव्य के अतिम सग म सीता और लक्ष्मण म इस विषय पर एक सुन्दर सवाद की योजना नवीन जी ने की है। कवि का मत है कि नर और नारी म केवल बाह्य रूप भेद ही हैं, अव्यक्त रूप में दोनो का अस्तित्व एक ही हैं। जीवन की सुगति इसमें है कि नर नारी हो, विकसित पूण पुरुष म नारी का प्रतिबिम्ब अनिवायत होता है। नारी के सदय और नारी हृदय से ही पुरुष जगतहित म लगता है —

> देवि, नरोत्तम है वह जिसमें हो नर नारी का मिश्रण
> ऐसे ही नर वर भरते है, जग का सवित वेदना व्रण।
> \+ \+
> प्रति विकसित नर म रहती है, कुछ नारीपन की भाई
> उसी तरह ज्यो विभु म विम्बित, प्रकृति नटी की परछाई।[3]

कवि ने स्पष्ट शब्दो में कहा है कि जिस नर में नारीपन का अश नही, वह नर नही वानर है।[4] नारीत्व की गरिमा का प्रतीक ऊर्म्मिला है जिसे लक्ष्मण चिरप्रेरिका प्रकृति रूपिणी देवी और भक्ति की प्रतिमा मानत हैं —

> तुम हो प्रकृति रूपणी देवी—तुम हो आदि शक्ति प्रतिमा
> स्वमगि मदिया चिर प्रेरणा—स्वमहि मदीय भक्ति प्रतिमा
> तुम मेरा माहम बल वभव तुम मम हास विलास प्रिय
> तुम मम नेह सरलि, तुम मेरा, नव-स देशोल्लास प्रिय।[5]

---

१ उर्म्मिला, सग ६ पृ० ३००
२ वही सग ३ पृ० ३०१
३ वही सग ६, पृ० ६१३ ६१४
४ वही, सग ६ पृ० ६१४
५ वही, सग ३, पृ० २२५

लक्ष्मण के उपयु क्त कथन में आर्य संस्कृति में नारी को प्रदत्त गौरव की भावना स्पष्ट दिखाई देती है।

विश्वबन्धुत्व

'सर्वेवसुध वकुटम्बकम' के आदर्श को भी काव्य म चरितार्थ किया गया है। इस आदर्श की प्रतिष्ठा के लिये कवि ने उत्कट राष्ट्रवाद का भी खंडन किया है। नवीन जी का मत है कि कभी कभी साम्राज्यवादी मनोवृत्ति एव अर्थ लिप्सा के वशीभूत होकर समूचा राष्ट्र भी दुष्टतामय हो सकता है। ऐसी परिस्थिति म हमे राष्ट्र विमुख भी चलना पड सकता है। अन्यथा शताब्दियो से सचित सत्य ज्ञान और संस्कृति का वैभव भस्मसात हो जायगा।[1] जनसमूह के हृदय म आसुरी भाव जगने लगे तो हम सामूहिकता के भी प्रतिकूल हो जाना चाहिए। क्योंकि मनीषिया के लिए तो सारा ससार ही अपना है —

> 'देश विदेश सकुचित जन का है अनुचित सकुचित विचार,
> है मनीषियो का स्वदेश वह जहा सत्य, शिव का विस्तार,
> हैं जग के नागरिक सभी हम सब जग भर यह अपना है,
> सीमित देश विदेश कल्पना, मिथ्या भ्रम का सपना है।'[2]

सस्कारों का महत्व

काव्य मे स्थान स्थान पर भारतीय सस्कारो का वर्णन करते हुये उनका महत्व प्रतिपादित किया गया है। ये संस्कृति के बाह्य आधार हैं। उदाहरणार्थ 'विवाह' नामक संस्कार को ही लें। विवाह को कवि ने धर्ममय बंधन, दो आत्माओ का मिलन और अभिन्नत्व की जय कहकर अपनी संस्कारगत आस्था प्रकट की है —

> 'आर्य धर्म म यह ववाहिक बधन परम धर्ममय है
> दो आत्माओ का मिश्रण है अभिन्नत्व की जय है।'[3]

वर्णाश्रम व्यवस्था

वर्णाश्रम व्यवस्था भारतीय (आर्य) संस्कृति की अभूतपूर्व विशेषता रही है। काव्यारम्भ मे ही नवीन जी ने इस व्यवस्था के आदर्श रूप का चित्रण किया है। जनकपुरी का ब्राह्मण वर्ग दृढव्रती, धर्मधारी, तपस्वी, योगाभ्यासी, तत्त्वदर्शी एव मनस्वी हैं।[4] देश की स्वतत्रता के रक्षक क्षत्री वलिष्ठ भुजाओ वाले तथा पराक्रमी हैं।[5] वैश्य लक्ष्मी सेवी और व्यवसायी है।[6] शूद्र सेवाभावी हैं और वे इस सिद्धान्त के पोषक हैं कि—

---

१ ऊर्मिला, सर्ग ६ पृ० ५५६–५५७
२ वही वही पृ० ५५८
३ वही, सर्ग २, पृ० ८०
४ वही सर्ग १ छंद २८, पृ० १८
५ वही, पृ० १८
६ वही, छंद ३१, पृ० १८

किया है। कवि का मत है कि किस पदार्थ या अर्धचालित से चेतन भाव जगा ? इस प्रश्न का उत्तर भौतिकतावादी दार्शनिकों के पास नहीं है।[1] भौतिकतावादी विवेचन शुष्क तर्कों पर आधारित है। इसीलिए–

> "भौतिक वाद चेतना विरहित,
> है वह निपट निराशा वाद,
> राजस, तामस गुणमय वह है
> मानव मन का मत्त प्रमाद।"[2]

जबकि आत्मवाद मे अनन्तता है। उसमे रुचिर ज्ञान का वैभव है। उसमे संचय वृत्ति का अभाव है।

इस प्रकार आर्य संस्कृति के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक दोनो ही रूपो का विवेचन कवि ने प्रस्तुत किया है। 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य में आर्य संस्कृति का महान् और समृद्ध स्वरूप अंकित हुआ है। जहाँ तक सांस्कृतिक चेतना के निरूपण का प्रश्न है यह कहा जा सकता है कि–साकेत' की अपेक्षा ऊर्मिला' में आर्य संस्कृति और धर्म की शंखध्वनि अधिक प्रखर और प्रभविष्णु प्रतीत होती है।"[3]

युग चेतना के स्वर

आर्य संस्कृति के महत आदर्शों की प्रतिष्ठा के साथ साथ 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य में युग–चेतना के स्वर भी मुखरित हुये हैं। समसामयिक जीवन की चेतना को आत्मसात करके कवि नवीन ने अपनी जीवन–दृष्टि का निर्माण किया है। भारत के अतीत गौरव का गायक कवि नवयुग के स्वागतार्थ भी सन्नद्ध है –

> 'आओ! नवयुग उन्नत मस्तक
> हो हम स्वागत करते हैं,
> तेरे नव आदर्शों को हम,
> सिर आँखों पर धरते हैं।'[4]

नवयुग की नवचेतना से प्रेरित होकर ही कवि जागरूकता को जीवन का धन, सत्याचरण को आत्मचिंतन और जनसेवा को ईश्वरभक्ति कहता है –

---

१ ऊर्म्मिला सर्ग ६, पृ० ५४७
२ वही , वही , पृ० ५४८
३ डा० लक्ष्मीनारायण दुबे–बालकृष्ण नवीन व्यक्ति एवं काव्य, पृ० ३७१
४ ऊर्मिला, सर्ग, पृ० ५८६

'जागरूकता जीवन धन है,
सत्याचरण आत्मचिंतन है,
निश्छल होकर जगज्जना की,
सेवा ही प्रभु का वन्दन है।'[१]

कवि ने मानव और जीवन की व्याख्या भी इसी प्रगतिशील जीवन-दृष्टि से प्रेरित होकर की है। उसके मतानुसार मनुष्य अग्नि पुंज विभु का मन की आग्नेय कल्पना है। मानव की मानवता इसमें है कि वह आग सा सुलगे अर्थात् संघर्षरत रहे।[२] जीवन सचेतन शक्ति का प्रचण्ड गति संभ्रमण है जिसका उद्देश्य जड़ता का भेदन कर समता संस्थापित करना है।[३] जीवन धीर गंभीर नीर का प्रवाह है जिसका काम जगत की प्यास बुझाना है। जीवन सतत युद्ध है जिसमें गति है, संघर्ष है।[४] नवीन जी ने जीवन की तुलना उस विप्लव-गान से की है जिसके स्वरों में क्रांति और परिवर्तन का सन्देश है —

जीवन है चिर विप्लव गायन
स्वर जिसके हैं सतत क्रांति,
गीत भार है नित परिवर्तन
गायन लय है चिर अश्रांति।'[५]

कवि की कामना है कि हमें विप्लव गान गाते जीवन पथ पर बढ़ना चाहिये। विप्लव के तत्वों का जगत में अथक प्रसार होना चाहिए जिससे रूढ़ियों का उच्छेदन हो। तिमिर-कालिमा प्रकाश में परिवर्तित हो।[६]

वादात्मक प्रभाव

ऊर्म्मिला महाकाव्य की रचना पर अनेक वादात्मक विचारधाराओं का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। इनमें उल्लेखनीय हैं-गाँधीवाद, स्वच्छंदतावाद, रोमांसवाद हालावाद, मानवतावाद आदि।

'ऊर्म्मिला' महाकाव्य की रचना जिस युग में हुई थी, उस युग का जीवन गांधी जी से प्रभावित था। सामाजिक, राजनीतिक आर्थिक, सांस्कृतिक आदि सभी जीवन क्षेत्रों में गांधीवादी विचारों और सिद्धांतों को स्वीकृत किया जा चुका था। 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य में अहिंसा सत्याग्रह, साम्राज्यवाद का विरोध आदि गांधीवादी विचारधारा के मूलभूत सिद्धांतों को स्वीकृत किया गया है। गांधीजी अंग्रेजी

---

१ ऊर्म्मिला, द्वितीय सर्ग ६ पृ० ६७
२ वही सर्ग ६, पृ० ५६७
३ वही, वही पृ० ५६८
४ वही, सर्ग ६, पृ० ५६९
५ वही , वही पृ० ५७०
६ वही , वही पृ० ५७१

साम्राज्यवाद के विरोधी थे। 'ऊर्म्मिला के नायक राम भी इसी मनोवृत्ति के समर्थक है –

'हैं साम्राज्यवाद का नाशक
दशरथ नंदन राम सदा
है भौतिकतावाद विनाशक
जनमन रंजन राम सदा।'[1]

नवीन जी ने राम और रावण को क्रमश आत्मवाद और साम्राज्यवाद का प्रतीक माना है। राम और रावण का संघर्ष वस्तुत आत्मवादी और साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों का ही संघर्ष कहा गया है। एक स्थल पर राम कहते हैं –

"महामहिम रावण का मेरा नहीं व्यक्तिगत था झगडा,
आत्मवाद साम्राज्यवाद का वह था अनमिल भेद बडा।'[2]

'ऊर्म्मिला' की रचना पर रोमांसवाद, स्वच्छंदतावाद हालावाद आदि का भी प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। पाश्चात्य शिक्षा सभ्यता और संस्कृति का तब तक भारतीय जन–जीवन पर प्रभूत प्रभाव पड चुका था। कवि हरिवंशराय बच्चन की हालावाद संबंधी कविताएं तत्कालीन साहित्यजगत में बहुचर्चित थी। उमरखय्याम की रुबाइयों का अनुवाद लोग बडे चाव से पढते थे। स्वयं नवीन जी हिंदी साहित्य म हालावाद के उन्नायको म हैं और स्वयं एसी कुछ कविताएं लिख चुके थ। 'ऊर्म्मिला उस प्रभाव से अछूती न रह सकी। कवि ने ऊर्म्मिला और लक्ष्मण के प्रेम का निरूपण करते समय लक्ष्मण स कहलाया है –

'तुम रसदात्री, मैं मधुपायी,
तुम प्याली, मैं मतवाला,
मै मदिरा, तुम पात्र मनोहर,
मैं गाहक तुम मधुशाला
\+ + +
गरल मयी तुम सुधामयी तुम,
तुम मेरी मदिरा — बाला
अभयदान देती मदमाती,
मुझको कर दो मतवाला।'[4]

लक्ष्मण ऊर्म्मिला के प्रेमालाप वर्णन म कवि ने रोमांसवादी मनोवृत्तियो का परिचय दिया है। लक्ष्मण का निम्नांकित कथन द्रष्टव्य है –

---

१ ऊर्म्मिला, सर्ग ६, पृ० ५५५
२ ऊर्म्मिला, वही, पृ० ५४१
३ जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव –नवीन और उनका काव्य, पृ १४०
४ ऊर्म्मिला–सर्ग ३ पृ० २१९, २२०

'अरी रानी क्यो ललचा रही ?
लाज से क्यो ठानी है रार ?
तनिक मुख तो कुछ ऊचा करो,
रच कर लू नैनो से प्यार।
+ +
अये, गड जाओ हिय म इसी
भाति लज्जा नौ की पतवार, ।''[1]

दोनो के प्रेममिलन का चित्र भी इसी सन्दभ मे दृष्टव्य है —

''ऊर्म्मिला के उरोज पर झुके, सुलक्ष्मण को निद्रा आ गई,
एक की मृदु गोदी मे एक, गुथे से वे ऐसे सो रहे,
द्विवेणी का मानो आवेश, उदधि म मिलते ही सो रहे
+ +
ऊर्म्मिला की चादर पर आज चढ़ा लक्ष्मण का चोखा रग,
बिध गये वे अनग नाराच, तडप उठठा मन का सुकुरग।''[2]

दाम्पत्य जीवन के मधुर-विनोद एव प्रेम क्रीडाओ के अतिरिक्त देवर भाबी (लक्ष्मण सीता) के मुक्त परिहास का चित्रण भी कवि ने किया है जिसमे स्वच्छ द तावादी प्रवृत्तियां दिखाई देती हैं। लका से लौटते हुये विमान म देवर भाभी के एक लम्बे परिहासपूर्ण सवाद की आयोजना की है, जिसके दो अ श दृष्टव्य हैं —

सीता का कथन—

'धन्य भाग ऊर्म्मिला बहन के,
ऐसा ढागी पति पाया,
भीतर भीतर रस, ऊपर से
फलाई यह यति माया,
सच बोलो क्या करते हो तुम,
सदा ऊर्म्मिला का ही ध्यान।'[3]

लक्ष्मण का प्रतिउत्तर —

भाबी तनिक राम से पूछो
क्या हो जाता है मन म,

---

१ ऊर्म्मिला—सर्ग २ पृ० १४४ १४५
२ वही सर्ग २, पृ० १४६, १४७
३ वही, सर्ग २, पृ० ५६५

कसे सीते सीते करते,
विचरे थे वे वन वन में,
मैं तो फिर भी छोटा हूं
मेरी कौन बिसात, अहो !' [१]

मानवतावाद हमारे युग का सबसे उन्नत विचारदर्शन है। कवि नवीन ने ऊर्म्मिला में इस विचारधारा के मूलभूत सिद्धान्तों की प्रस्थापना आद्यांत की है। यथा—

'हैं जग के नागरिक सभी हम,
सब जग भर यह अपना है,
सीमित देश विदेश कल्पना,
मिथ्या भ्रम का सपना है।' [२]

'ऊर्म्मिला' महाकाव्य की रचना पर विभिन्न युगीन विचारधाराओं (वादों) का प्रभाव काव्य के रचना फलक को व्यापक परिवेश प्रदान करता है। काव्य में समकालीन चिन्तन प्रवृत्तियों का समाहार कवि की युग जीवन के प्रति सजग आस्था का परिचायक है। सत्य तो यह है कि— 'नवीन का कवि सदा से मानवता के प्रति ईमानदार रहा है तथा उसकी कुशल अन्तर्दृष्टि ने सदा सही युग के सत्य को परखा है।' [3] प्रस्तुत काव्य के जीवनदर्शन की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि जिस सांस्कृतिक चेतना के समाहार की चेष्टा की गई है वह पौर्वात्य और पाश्चात्य, प्राचीन और अर्वाचीन, आध्यात्मिक और भौतिक जीवनादर्शों से एक साथ प्रभावित है। उसका आधार विश्वमंगल की कामना है —

'आत्म समर्पण की अनहद् ध्वनि,
उठे विश्व के अम्बर में
परम मुक्ति की जगे लालसा
जग में, सकल चराचर में।' [४]

एकलव्य

सृजन प्रेरणा और महत् उद्देश्य

'एकलव्य' महाकाव्य की रचना मानवतावादी जीवनदृष्टि से प्रेरित होकर हुई है। काव्याचार्यों द्वारा निर्देशित लक्षणों के अनुसार महाकाव्य का नायक सुर, सद्वंशीय व्यक्ति या क्षत्रिय ही हो सकता है। डा० रामकुमार वर्मा ने निषादपुत्र एकलव्य को महाकाव्य के नायकत्व पद पर आसीन करके व्यापक मानवतावादी

१ ऊर्म्मिला सर्ग ६, पृ० ५९६।
२ वही वही , पृ० ५५८।
३ केशवदेव उपाध्याय—नवीन दर्शन—अपनी बात
४ ऊर्म्मिला षष्ठ सर्ग पृ० ५८७

जीवन-दृष्टि का ही परिचय दिया है। इस सम्बन्ध में डा० वर्मा ने कहा है कि—एकलव्य ने जिस आचरण का परिचय दिया है वह किसी उच्च कुल के व्यक्ति के आचरण के लिए भी आदर्श है। वह प्राचीन नहीं 'आज' है क्योंकि उसमें 'शील' का प्राधान्य है। यही उसके महाकाव्य का नायक बनने की क्षमता है और यही वह गुरु अथवा 'ग[illegible]' में उन्नत क्षत्रिय' रहा है।[1] डा० वर्मा की एतद्-विषयक जीवनदृष्टि के निर्माण में बापू के 'अछूतोद्धार' की भावना का प्रभाव और महाभारत के सूत्रवाक्य 'नहि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्' की धारणा उल्लेखनीय है।[2] जहाँ तक प्रस्तुत महाकाव्य की रचना के उद्देश्य का सम्बन्ध है—एकलव्य की गुरुभक्ति के उच्चादर्श एवं पुरुषार्थ की महत्ता का प्रतिपादन ही इसका मुख्य प्रयोजन है।

गुरुभक्ति का आदर्श

एकलव्य का मूल प्रतिपाद्य गुरुभक्ति के उच्चादर्श की प्रतिष्ठा ही है। एकलव्य का चरित्र इस आदर्श की साकार प्रतिमा है। एकलव्य की गुरुभक्ति विषयक निष्ठा के तीन सोपान हैं। प्रथम है—कामना या संकल्प जो उसे धनुर्विद्या के ज्ञानोपार्जन के लिए प्रेरित करती है, इसे हम 'इच्छाशक्ति' कह सकते हैं। द्वितीय है दीक्षा-प्राप्ति—जो एकलव्य को मानस जगत में ही प्राप्त होती है क्योंकि निषादपुत्र होने के कारण गुरु द्रोण ने एकलव्य को शिष्य रूप में स्वीकार नहीं किया। किन्तु एकलव्य ने मानस जगत में ही द्रोणाचार्य को गुरु रूप में वरण कर धनुर्विद्या के ज्ञानोपार्जन का अनुष्ठान प्रारम्भ कर दिया। इसे हम ज्ञानशक्ति की संज्ञा दे सकते हैं। तृतीय है साधना, इसी साधना के बल पर एकलव्य अद्वितीय धनुर्धर बनता है। एकलव्य की अमोघ साधना पार्थ को पराजित कर देती है। इस सोपान को क्रियाशक्ति अभिधान दिया जा सकता है। तीनों सोपानों की परम परिणति गुरुदक्षिणा में होती है। गुरुदक्षिणा की तुलना मोक्ष दशा से की जा सकती है। क्योंकि गुरु दक्षिणा में अंगुष्ठ देकर एकलव्य ने अपने सम्पूर्ण संकल्पों और साधनाओं का समाहार कर दिया। एकलव्य ने महत् त्याग के द्वारा गुरुभक्ति का ऐसा उच्चतम आदर्श प्रस्तुत किया कि गुरु द्रोण को भी यह कहना पड़ा कि एकलव्य शूद्र नहीं विप्र है। उसकी गुरुता में गुरु भी लघु है। उसके दक्षिणांगुष्ठ की रक्तधार ने सारा वर्णभेद धो दिया है। उसकी गुरुभक्ति भविष्य के भाल पर तिलक करने वाली है —

> तुम विप्र हो हे शिष्य ! गुरु द्रोण शूद्र है।
> हा ! तुम्हारी गुरुता में गुरु हुआ लघु है।

---

१ एकलव्य-आमुख पृ० ६
२ वही पृष्ठ २

सारा वर्ण भेद धुल गया रक्त धार से,
+ +
ऐसी गुरु भक्ति जो भविष्य के भाल पर,
तिलक बनेगी रवि रश्मि को समेट के।
पाथ देखो रक्त, इस एकलव्य वीर का,
जो कि राजवंशों से भी धोया नही जायगा।'[1]

पुरुषार्थ–सिद्धि

जीवन की सिद्धियो मे कवि ने पुरुषार्थ को सर्वोपरि माना है। एकलव्य की धनुर्वेद साधना का चरम निदर्शन पुरुषार्थ मे ही है। धनुर्वेद दीक्षा प्राप्ति हेतु एकलव्य के निवेदन करने पर द्रोणाचार्य ने कहा कि धनुर्वेद की साधना तीक्ष्ण बाण की धार जसी दिन रात की तपश्चर्या है। अग्निशिखा के समान अशान्त जीवन गति मे आचरण मार्ग कृपाण का, धार के समान है जिसका लक्ष्य भाग्य के समान अदृष्ट है। प्रत्युत्तर मे एकलव्य ने अनन्य निष्ठा भाव प्रदर्शित करते हुये निश्चयपूर्वक कहा कि मेरा लक्ष्य रात्रि और दिन बाण होगा। जीवन के यज्ञ पर अग्नि का मुकुट धारण कर प्राण के कृपाण पर आचरण करता हुआ मे धनुर्वेद को स्वेद का अर्घ्य दूंगा। उसने कहा कि यदि मैं लक्ष्यभेद मे सफल न हुआ तो दक्षिणागुष्ठ समर्पित कर दूंगा —

'देव! धनुर्वेद को मैं दूंगा अर्घ्य स्वेद का,
दृष्टि एकमात्र लक्ष्य को ही पहचानेगी।
+ + +
सेवा मे समिधा लाया हू निज अस्थि की,
ब्रह्मचर्य–साधना को स्तभ बना लूंगा मैं।
+ + +
यदि लक्ष्य भेद मे न सफल बनू मैं तो
काट के समर्पित करूंगा करांगुष्ठ मैं।[2]

स्पष्ट है कि पुरुषार्थ की सिद्धि साधना मे है और साधना आत्मविश्वास तथा दृढ निश्चय से होती है। एकलव्य ने इस तत्व को भलो भाति हृदयगम कर लिया था तभी तो पुरुषार्थ बल से अमोघ साधना करके वह पार्थ से भी अधिक पराक्रमी धनुर्धर बन सका।

मानवतावादी जीवन–दृष्टि

'एकलव्य' के जीवनदर्शन का मूल स्वर मानवतावादी है। काव्य की आधारभूत मानवताओं की प्रस्थापना से आद्यान्त कवि की मानवतावादी जीवन–

---

१ एकलव्य—दक्षिणा सर्ग पृ० २९७
२, वही–आत्मनिवेदन सर्ग, पृ० १२०

दृष्टि का परिचय मिलता है। उदाहरणार्थ निषादपुत्र होने के कारण एकलव्य को द्रोणाचार्य द्वारा दीक्षित न किया जाना असमानतापूर्ण दृष्टिकोण है, जिसका कवि ने तिरस्कार किया है। मानव मानव में भेद दृष्टि की सृष्टि जातिवाद की विडम्बना है। 'एकलव्य' का रचयिता इस परम्परावादी दृष्टिकोण का समर्थक नहीं कि धनुर्वेद की दीक्षा के अधिकारी ब्राह्मण और क्षत्रिय ही हैं।[1] द्रोणाचार्य का यह कथन कि –

'किन्तु मेरे शिक्षण के वे ही अधिकारी हैं,
जो कि भूमि पुत्र नहीं, किन्तु भूमि पति हैं।'[2]

राजतन्त्र की विडम्बना है। जिसमें व्यक्ति की योग्यता को असम्मानित करके धनुर्वेद की दीक्षा का अधिकारी राजपुत्रों को ही माना जाता है। कवि के शब्दों में ऐसी शिक्षा-नीति राजनीति की अनुचरी है –

'शिक्षानीति राजनीति के पीछे है चलती।
शारदा की वाणी यहाँ बोलती है स्वर्ण में।'[3]

ऐसे शिक्षा संस्थान जहाँ की दीक्षा के अधिकारी भूमिपति ही हैं, भूमिपुत्र नहीं, वे गुरुकुल नहीं राजकुल हैं और राजनीति के अखाड़े हैं जिनके प्रति कवि का आक्रोश इस प्रकार व्यक्त हुआ है –

गुरुकुल है कहाँ, यहाँ तो राजकुल है।
\+ \+
ऐसी राजधानी का विनाश होगा शीघ्र ही,
जो महर्षियों को राजनीति से चलाती है।
जिसने किया है भेद मानव के पुत्रों में,
भूमिपति, भूमिपुत्र वर्ग हो गये हैं दो।'[4]

एकलव्य भूमिपति नहीं, भूमिपुत्र है किन्तु भूमिपुत्र होना वह अपने भाग्य का सुयोग मानता है। अपने आत्मबल की सामर्थ्य पर वह भूमिपतियों के पशुबल को चुनौती देते हुये कहता है कि –

'भूमिपुत्र होना, मेरे भाग्य का सुयोग है,
भूमिपति में तो मुक्त मानव विकृत है।
\+ \+

---

१ एकलव्य – आत्मनिवेदन सर्ग, पृ० १२१ से १२३
२ वही, वही, पृ० १२६।
३ वही, वही, पृ० १२६
४ वही, मकरन्द सर्ग, पृ० १७७

सावधान, भूमिपति ! हम म भी है शक्ति,
भूमिपुत्र सवदा है भूमिबल जानते।
पशुबल कौशल तो सीमित तुम्हारा है,
आत्मबल की हमारे पास सीमा है नही।'[1]

अस्तु, कवि की मान्यता है कि भूमिपति भूमि के प्रशासक हो सकते है, सरस्वती के उपासक नही। राज्यदड राज्य का विधान कर्ता है, सरस्वती का नही। सरस्वती हृदय निवासनी है जिसकी प्राप्ति शुद्ध साधना से ही हो सकती है। अ तत द्रोणाचाय स्वय स्वीकार करते हैं कि शिक्षा सरस्वती की प्रशात धारा है जिसे कोई नही रोक सकता। उसकी प्राप्ति के माग म वग और वग का भेद अस्वीकाय है। शिक्षा की निर्बाध प्राप्ति का सबको सहज अधिकार है —

"शिक्षा तो सरस्वती की धारा है, प्रशा त है,
है अन त जो बही सृष्टि के आरभ स।
कौन इसे रोक सका और किस मन को,
इसने पवित्र किया नहो स्पश मात्र स,
जाति भेद नही, वग-वश-भेद भी नही,
शिक्षा प्राप्त करने के सभी अधिकारी हैं।
+ + +
शिक्षा की त्रिवेणी का पवित्र तीथराज तो
सृष्टि मे समस्त मानवो को कमभूमि हैं।"[2]

'एकल य' का रचयिता शिक्षण के क्षेत्र की समानता ही नहो वरन् जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे मानव मात्र की समानता का पक्षधर है। उसने वगवाद (भूमिपति और भूमिपुत्र) के साथ साथ शूद्रा की समस्या पर विचार करते हुये जातिवाद पर भी प्रहार किया है। 'साधना' सग म एकलव्य द्रोणाचाय से स्पष्ट कहता है कि जि हे शूद्र कह कर तिरस्कृत किया जाता है व शूद्र भारत के आदिमवासी हैं। उन पर व य वेशधारी और श्यामवर्ण होने के कारण ही अत्याचार किये जाते है। अपने को आय कहन वाल लोग उन्ह सदव परा तले मर्दित करते रहे है।[3] एकलव्य पूछता है कि आर्यो ने किस अधिकार स शूद्रो का सेवक बनाया है? बस इसीलिए कि आय गौरवर्ण हैं और उन्ह शक्ति का यश प्राप्त है। कवि के शब्दो म आर्यों का गौरव इस बात म है कि दानवा को भी मानव बनाय और सभी मे साम्य भाव स्थापित हो। शूद्र और ब्राह्मण का भेद निरथक है क्योकि सभी मानवो के अग समान है —

———

१ एकल य—सकल्प सग, पृ० १७७
२ वही, —स्वप्न सग पृ० २२२, २२३
३ वही—साधना सग, पृ० १६७

"किन्तु शक्ति मानव की, देव! दानवी नहीं,
मानव की शक्ति तो महान तब होती है
जब यह दानव को मानव बना सके,
और सब मानवों में साम्य की हो स्थापना।
+ + +
किन्तु शूद्र और ब्राह्मणों में भेद क्या?
जबकि सम्पूर्ण अंग मानवों के सब में?"[१]

इस प्रकार डा० वर्मा ने हमारे समाज में वर्गवाद और जातिवाद के कारण उत्पन्न विषमताओं और समस्याओं पर मानवतावादी दृष्टिकोण से विचार किया है। सम्पूर्ण काव्य में संकल्प, शक्ति, साधना, त्याग, समानता, आत्मविश्वास, पुरुषार्थ जैसे चिरंतन मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा पर बल दिया गया है। पौराणिक इतिवृत्त का काव्य होते हुए भी 'एकलव्य' युगीन सन्दर्भों को स्थापित करने में सक्षम कृति है। एकलव्य के जीवन दर्शन की एक उल्लेखनीय उपलब्धि उसका जीवन के प्रति स्वस्थ आशावादी दृष्टिकोण है। काव्य के अन्तिम सर्ग में कवि कहता भी है कि —

'जीवन नैराश्य की है भूमि नहीं, मानवो।
सुख दुख बादलों की भांति उड़े जाते हैं।
शक्ति मिटती नहीं, अवतार लेती है,
तुममें सदैव, तुम योग्य तो बनो सही।'[२]

१ एकलव्य—संकल्प सर्ग, पृ० १७७
२ वही—साधना सर्ग, पृ० १९८

षष्ठ अध्याय

महाकाव्य-तत्त्व का विकास

भूमिका

पूर्वोक्त अध्यायो म आलोच्य महाकाव्यो म स प्रत्येक के कथातत्त्व, चरित्र तत्त्व, रसयोजना तथा शिल्प तत्त्व और जीवनदर्शन का स्वतन्त्र रूप स अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । इस अध्याय म प्रत्येक महाकाव्य-तत्त्व की जो विशेषताए परम्परा से भिन्न रूप म आलोच्य महाकाव्यो मे समन्वित रूप स उभरी है, उनका अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। वस्तुत इस अध्याय म जहा एक और महाकाव्य के रूप विधायक तत्त्वो के विकासक्रम का उद्घाटन हुआ है वहा आलोच्य महाकाव्यो की तत्त्वगत विशेषताओ की समष्टिपरक व्यजना भी हुई है।

कथातत्त्व

पौराणिक विषयो के आधुनिक हिन्दी महाकाव्यो मे इतिवृत्त-विधान का मुख्य स्रोत वाल्मीकि रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत एव पौराणिक आख्यान हैं। किन्तु प्राचीन पौराणिक आख्यानो को आधुनिक महाकाव्यो म ज्यों का त्यों ग्रहण नही किया गया है। हिन्दी के आधुनिक महाकाव्यकारो ने पौराणिक आख्यानो उपाख्यानों को युग जीवन की प्रवृत्तियो के अनुरूप सयोजित किया है। इस नवीन सयोजन क्रम म कथातत्त्व सबधी निम्नाकित विशेषताए उल्लेखनीय है -

१ आख्यान तत्त्व का ह्रास

आख्यान तत्त्व (नरेटिव एलीमट) महाकाव्य रचना का मेरुदण्ड है। इस तत्त्व की महत्ता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि पाश्चात्य साहित्यालोचको ने कथाकाव्य (नरेटिव पोइट्री) को महाकाव्य (एपिक पोइट्री) का पर्याय कहा है। इस सबध म हों म; डिक्सन, एबरक्राम्बी टिलीयार्ड प्रभृति मत भूमिका (प्रथम अध्याय) मे द्रष्टव्य हैं। सस्कृत काव्यशास्त्र

तत्त्व की सभी विवेचना में रागवद्धता और इतिवृत्तात्मकता का उल्लेख सर्व प्रथम किया गया है। साथ ही कथानक की व्यापकता और जीवन की सर्वांगीणता के चित्रण पर बल दिया गया है। महाकाव्य सृजन में आख्यान तत्त्व की अनिवार्यता आज भी असन्दिग्ध है। किन्तु पौराणिक विषयों के आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों में कथा विधान का अध्ययन करने के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उनमें आख्यान तत्त्व का उत्तरोत्तर ह्रास हुआ है। आलोच्य महाकाव्यों में प्रिय प्रवास साकेत, कामायनी कुरुक्षेत्र ऊर्म्मिला और पारसभ्य में वृहदाकार आख्यानों के स्थान पर विरल कथासूत्र है जिन्हें महाकाव्यकारों ने काल्पनिक विस्तार दिया है। उदाहरणार्थ प्रियप्रवास में कृष्ण का मथुरागमन, व्रजवासियों का करुण क्रन्दन, यशोदा के मातृ हृदय की वेदना कृष्ण का सन्देश लेकर उद्धव का गोकुल आगमन गोकुल में गोप गोपिकाओं यशोदा और राधा से कृष्ण की बात सालापों का श्रवण कर मथुरा आगमन तथा कृष्ण का जरासंध से त्रस्त जाना का रक्षा के लिए द्वारिका चले जाना मूल घटना प्रसंग हैं जिन्हें १७ सर्गों में विस्तार दिया गया है। आठवें से पन्द्रहवें सर्गों तक कृष्ण की जीवन लीलाएं उद्धव के समक्ष गोकुलवासियों द्वारा वर्णित की गई हैं, घटित में रूप चित्रित नहीं। इसी प्रकार साकेत' की मुख्य कथा राम के राज्याभिषेक से लेकर भरत के राम की चरण पादुकाएं लेकर चित्रकूट से अयोध्या लौटने तक की है। जो घटित रूप में वर्णित की गई है। राज्याभिषेक से पूर्व की घटनाओं का वर्णन उर्मिला की स्मृति के रूप में और उसके पश्चात सीताहरण से लक्ष्मण के मूच्छित होने तक की कथा हनुमान जी ने भरत से कही है और वशिष्ट जी ने दिव्यशक्ति से साकेतवासियों को दिखाई है। 'कामायनी में मनु की चिंता, श्रद्धा से भेंट, पशु यज्ञ और श्रद्धा का त्याग, सारस्वत प्रदेश में इडा से मिलन और संघर्ष, सारस्वत प्रदेश में श्रद्धा से मनु का मिलन और वहां से पलायन, श्रद्धा मनु का पुनर्मिलन नटराज का ताण्डव नृत्य दर्शन कैलाश यात्रा, त्रिपुरदाह इडा और कुमारादि की कैलाश यात्रा और मनु का सभी को समरसता का उपदेश आदि मुख्य घटना प्रसंग हैं। इन घटनाओं की कालावधि के बारे में यद्यपि कामायनी में कोई संकेत नहीं है। किन्तु डा० शम्भूनाथसिंह के अनुसार ये सभी घटनाएं बीस पच्चीस या इससे भी कम समय में घटित हुई हैं।[1] कामायनी' में मनु के जीवन के मध्य भाग की ही कथा निरूपित है। प्रलयकाल के पूर्व देवता मनु और कैलाश प्रयाण के पश्चात मनु के जीवन का कामायनी में कोई विवरण नहीं है। कुरुक्षेत्र' में महाभारत युद्ध की समाप्ति पर युधिष्ठिर और भीष्म पितामह का एक संवाद मात्र है जो वर्षों तो क्या दिनों की भी कथा नहीं है। 'ऊर्म्मिला'महाकाव्य में उर्मिला के बाल्यकाल और वैवाहिक जीवन की कथा है। किन्तु रामायणी कथा के घटनात्मक विस्तार से वह भी सर्वथा शून्य है। प्रथम

१ डा० शम्भूनाथसिंह—हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप पृ० ६१९

और अ तिम दो सर्गों को छोडकर बीच के चार सर्गों मे लक्ष्मण वनगमन के अति रिक्त कोई प्रमुख घटना नही है। एकलव्य' मे महाभारत के तीन श्लोको की कथा का ही काल्पनिक विस्तार है। 'साकेत सत' 'रश्मिरथी' और दत्य वश म अपेक्षा कृत घटना विस्तार है किंतु इन महाकाव्यो मे भी नायका के जीवन की सम्पूर्ण कथा सकलित नही है। वस्तुत आधुनिक महाकाव्य इतिवृत्तात्मक या घटना-प्रधान नहा हैं। और न स्थूल घटनाओ की योजना द्वारा कथा कहना ही आधुनिक महाका य कारो का लक्ष्य है। आलोच्य महाकाव्या मे केवल ऐसी ही घटनाओ का सयोजन किया गया है जो मूल विषय से सबधित हैं और उद्देश्य की प्राप्ति म सहायक है।

जहा तक जीवन की समग्रता के चित्रण का प्रश्न है वह केवल बाह्य वस्तु व्यापारो और घटनाओ की आयोजना द्वारा ही सभव नही हाता। 'जीवन की समग्रता का अथ यह भी है कि कवि पात्रा को जीवन की प्रत्यक परिस्थिति म रखकर उनकी बाह्य और आतरिक क्रिया-प्रतिक्रिया की भी अभिव्यक्ति करे और मानवीय सबधा के जितने रूप हो सकते हैं सबको ममस्पर्शी ढग स उद्घाटित करे। 'अस्तु महत्वपूर्ण यह है कि-महाकाव्य मे जीवन का एकाकी या अपूर्ण चित्रण नहा हाना चाहिये। पूर्णत, सापेक्ष्य शब्द है। प्रत्येक युग म जीवन की पूर्णता का स्वरूप परिस्थितिया के अनुरूप भिन्न हो सकता है।'[1] इस कथन के आलोक म आलोच्य महाका या के कथा विधान को दख तो ज्ञात हाता है कि इनम पात्रा का जीवन के विभिन्न परिस्थिति-द्व न्द्वा मे रखकर जीवन की समग्रता का चित्रण किया गया है। आख्यान तत्व का ह्रास इस युग की विशेषता है। जा केवल महाकाव्य म ही नही वरन् सम्पूर्ण आधुनिक कथा साहित्य म परिलक्षित हाती है। आज के उप यासा, कहानिया नाटको और एकाकिया तक मे स्थूल घटना विस्तार नहा है। आधुनिक कथा-साहित्य की कृतिया म कथानक का सूत्र इतना क्षीण हो गया है कि एक क्षणिक मार्मिक प्रसग पर कहानी की रचना हो रही है और एक मनुष्य के मन का विश्लेषण करते करते उपयास पूरा हो जाता है। दूसरे आज का बुद्धिजीवी पाठक घटनात्मक विवरणा म रुचि लता भी नही चाह वे कथा साहित्य के हो या कथा का य क। इसलिये युग की इस प्रवृत्ति के अनुरूप आधु निक महाकाव्या म कथाचयन हुआ है। विस्तृत घटनात्मक वर्णनो के अभाव से इन महाकाव्या की कथा गतिशील और सरल बनी है। आख्यान तत्व के ह्रास स आलोच्य ग्रथों की महाकाव्योचित गरिमा में कोई अतर नही आया है। आधु निक महाकाव्या की इतिवृत्तात्मक उपलब्धियो का स्वरूप कथानक की व्यापकता में नही वरन् प्रस्तुतीकरण कथाप्रसगा को नवीन सयोजन विधि मौलिक प्रसगो द्भावनाओ मार्मिक प्रसगों की सृष्टि और जीर्ण शीर्ण प्राचीन कथानको की युगानुरूप व्यजना म द्रष्टव्य है।

---

१ डा० शम्भूनाथसिंह-हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ० ६२०

२ कथा के प्रस्तुतीकरण एवं संयोजन विधि की नवीनता

बिंशति शताब्दी पूर्व के महाकाव्यों में कथाविधान का मुख्य आधार इति वृत्तात्मक पद्धति थी। जिसके अन्तर्गत नायक के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त घटनाओं का वर्णन किया जाता था। आलोच्य महाकाव्यों में कथानक के प्रस्तुतीकरण एवं संयोजन विधि में सर्वथा नवीन पद्धति को अपनाया गया है। इस पद्धति के अनुसार महाकाव्य का कथानक मूलकथा के मध्य, अन्त या किसी बिन्दु से प्रारम्भ होता है जिसका काव्य के प्रतिपाद्य से सीधा सम्बन्ध है। इस बिन्दु से पूर्व या पश्चात् के प्रसंग या तो स्मृति रूप में प्रस्तुत किये गये हैं या दो पात्रों के वार्त्तालाप द्वारा वर्णित किये जाते हैं। इस प्रविधि से दो लाभ प्रत्यक्ष हुए हैं—प्रथम पाठक अनपेक्षित प्रसंगों की इतिवृत्तात्मक विरसता से बच जाता है। और दूसरे कथानक के प्रस्तुतीकरण में नाटकीयता आ जाती है।

उपर्युक्त पद्धति का प्रयोग सर्वप्रथम 'प्रियप्रवास' में मिलता है। 'प्रियप्रवास' की कथा का आरम्भ कृष्ण के जन्म या बाल लीलाओं से नहीं होता वरन् कृष्ण कथा के उस बिन्दु से होता है जो ग्रन्थ के मूल विषय से संबंधित है। कथानक का मुख्य बिन्दु है प्रिय (कृष्ण) का प्रवास (मथुरा गमन)। प्रिय के प्रवास से ब्रजवासी व्यथित होते हैं। प्रथम से लेकर सप्तम सर्ग तक नन्द के मथुरा से लौटकर आने तक एक प्रकार का वर्णन क्रम है जिसमें ब्रजजनों के कृष्ण के प्रति अनुराग यशोदा के मातृत्व भाव राधा की वियोगजन्य मर्मवेदना का वर्णन है। आठवें सर्ग में गोपियाँ कृष्ण की बाल–लीलाओं का वर्णन करती हैं नवम से षोडश सर्ग तक उद्धव के गोकुल आगमन पर उनसे गोप, गोपियाँ यशोदा, राधा कृष्ण की बाललीलाओं का वर्णन करते हैं। अन्तिम सर्ग में कृष्ण जरासंध से पीड़ित जनता की रक्षा के लिए मथुरा से द्वारिका चले जाते हैं। इस प्रकार 'प्रियप्रवास' में यद्यपि कृष्ण कथा की बाल्यकाल से लेकर द्वारिकागमन तक की घटनाएं प्रकारान्तर से आ जाती हैं तथापि उनका इतिवृत्तात्मक निरूपण नहीं हुआ है वरन् नाटकीय विधि से संयोजन किया गया है। इसी प्रकार 'साकेत' में यद्यपि सम्पूर्ण रामकथा का प्रसार है किन्तु उसकी योजना भी सर्वथा नूतन विधि से हुई है। 'साकेत' के प्रथम सर्ग का समारम्भ रघुकुल की परम्परा या रामजन्म के वर्णन से नहीं होता वरन् लक्ष्मण–उर्मिला के दाम्पत्य जीवन एवं राम के राज्याभिषेक की तैयारियों से होता है। राम के राज्याभिषेक से पूर्व की घटनाओं का वर्णन दशम सर्ग में उर्मिला की स्मृति के रूप में और चित्रकूट में भरत–मिलाप के अनन्तर घटनाएं अर्थात् हनुमान जी के मुख से और शेष वशिष्ठ जी के योग नियंत्रित द्वारा व्यक्त हुई हैं। कथा संयोजन में साकेतकार का मुख्य ध्येय उर्मिला की चारित्रिक गरिमा को प्रतिपादित करने वाली घटनाओं का चयन करना है। 'कामायनी' की कथा का मुख्य सूत्र मनु और श्रद्धा के संयोग से मानवता के विकास का रूपक प्रस्तुत करना है। इस मन्तव्य की सिद्धि के लिए

कामायनीकार ने वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, पुराण आदि ग्रथो मे बिखरे असख्य आख्यानो–उपाख्यानो मे कतिपय को चुना है। मनु के जीवन के प्रारम्भिक और अतिम अशो की कथा कामायनी म नहा है। किन्तु विरल कथासूत्रो वाले "कामायनी" के कथानक मे रूपक तत्त्व की प्रतिष्ठा, कल्पनाशक्ति के सुदर समाहार और सयोजन विधि की विशेषताओ के कारण महाकाव्योचित गरिमा का अभाव दिखाई नहीं दता है। 'कुरुक्षेत्र' की सम्पूर्ण कथा का विकास भीष्म और युधिष्ठिर क सवादो मे नाटकीय शैली मे हुआ है। 'कुरुक्षेत्र' म घटनात्मक विनियोजन का एकदम अभाव है। 'कुरुक्षेत्र' की कथायोजना महाभारत क एक नितात महत्वहीन प्रसग पर आधृत है। वह प्रसग है महाभारत के युद्ध की समाप्ति पर धर्मराज युधिष्ठिर का व्यामोह और पश्चाताप। किन्तु महाकवि दिनकर के कौशल ने उस महत्वहीन प्रसग को युगीन सन्दर्भों में सुनियोजित करके महत्वपूर्ण बना दिया हैं। 'एकलव्य' मे महाभारत के तीस श्लोको की कथा का महाकाव्योचित विस्तार है। किन्तु यह विस्तार भी वर्णनात्मक नहीं है। 'एकलव्य' की सभी घटनाओ का आरम्भ द्रोणाचार्य द्वारा सीक से गेंद निकालने वाली घटना पर दो मित्रो के सवाद से होता है। अन्य घटनात्मक प्रसगो का सायोजन भी नाटकीय विधि से हुआ है। 'साकेत सन्त' की रचना पर गुप्त जी के साकेत का प्रभूत प्रभाव है। 'साकेत' के उर्मिला-लक्ष्मण सवाद की भांति 'साकेत सत की कथा का आरम्भ भरत माण्डवी क संवाद से होता है और भरत दोनो के मिलन से। किन्तु उल्लेखनीय यह है कि 'साकेत सन्त' म भी कथाविधान को परम्परित पद्धति को स्वीकार नहीं किया गया है। भरत के चरित्र का उत्कर्ष करने वाले प्रसगो को ही मुख्य काव्य के कथाविधान म स्थान दिया गया हैं। 'दत्यवश' की कथा के प्रस्तुतीकरण और घटनात्मक विनियोजन म कोई नवीनता नहीं है। उसका विकास परम्परित ढग से ही हुआ है। 'रश्मिरथी' का कथाविधान निश्चय ही मौलिकतापूर्ण है। महाभारत मे असख्य आख्यानो मे से कर्ण चरित्र के उत्कर्ष विधायक प्रसगो का ही रश्मिरथी मे समाहार हुआ है। नवीनकृत ऊर्मिला' महाकाव्य की कथायोजना मे काल्पनिकता का सर्वाधिक समाहार हुआ है। आलोच्य महाकाव्यो मे 'कुरुक्षेत्र' के अनन्तर सबसे क्षीण कथासूत्र 'ऊर्मिला' का ही है। काव्य का आरम्भ ऊर्मिला की बाल्यावस्था की मनोरजक और आकर्षक झाकियो से होता है। जो कवि कल्पना प्रसूत है। ग्रन्थ की भूमिका म 'ऊर्मिला के रचयिता ने कहा है कि —

"मेरी इस 'उर्मिला' मे पाठको को रामायणी कथा नहीं मिलेगी। रामायणी कथा से मेरा अर्थ है क्रम से राम लक्ष्मण जन्म से लगाकर रावण विजय और फिर अयोध्या गमन तक की घटनाओ का वर्णन। ये घटनाए भारतवर्ष मे इतनी सुपरिचिता हैं कि इनका वर्णन करना मैंने उचित नहीं समझा। इस ग्रन्थ को मैंने विशेषकर मनस्तर पर होने वाली क्रियाओ और प्रतिक्रियाओ का दर्पण बनाने का

प्रयास किया है। इसमें जो कुछ कथाभाग है वह गृहीत है—वर्णनात्मक प्रधान् घटना विवरणात्मक नहीं।"[1]

नवीन जी का यह दृष्टिकोण वर्तमान युग के अन्य महाकाव्यकारों के मतव्यों से भी समर्थित है। 'कुरुक्षेत्र' के 'निवेदन' में दिनकर जी ने भी कहा है कि—

'कुरुक्षेत्र की रचना भगवान व्यास के अनुकरण पर नहीं हुई और न महाभारत को दुहराना मेरा उद्देश्य था। मुझे जो कुछ कहना था वह युधिष्ठिर और भीष्म का प्रसंग उठाये बिना भी कहा जा सकता था, किन्तु तब यह रचना, शायद, प्रबंध के रूप मे नहीं उतर कर मुक्तक बनकर रह गई होती।"[2] महाकाव्यकारों के इन मतों से स्पष्ट है कि आज के महाकाव्यों में कथातत्व का महत्व केवल प्रबंधात्मकता की दृष्टि में ही है, वर्णनात्मकता की दृष्टि से नहीं।

३ मौलिक प्रसंगोद्भावनाए

आलोच्य महाकाव्यों के कथानकों में कौन-कौन सी प्रसंगोद्भावनाएं हुई हैं, इसका विस्तृत विवेचन द्वितीय अध्याय में किया जा चुका है। उस विवेचन की पुनरावृत्ति यहां अभीप्सित नहीं है। यहां समन्वित दृष्टि से विचारणीय यह है कि महाकाव्यकारों ने जो मौलिक प्रसंगोद्भावनाएं की हैं उनसे प्रख्यात वृत्त की पौराणिकता और ऐतिहासिकता तो खंडित नहीं हुई है? और पौराणिक वृत्त के पुनराख्यान में महाकाव्यकारों ने कल्पनाशक्ति का प्रयोग किस प्रकार किया है?

'प्रियप्रवास', 'साकेत' 'दयवन' और 'रश्मिरथी' में जो नवीन प्रसंगोद्भावनाएं महाकाव्यकारों ने की है उनका स्वरूप इतिवृत्तात्मक है। अर्थात इन कवियों ने प्रख्यात वृत्त में बिना कोई आमूलचूल परिवर्तन किये या तो नवीन प्रसंगों की सृष्टि की है अथवा पुराख्यानों को नवीन विधि क्रम से प्रस्तुत किया है। ऊर्मिला' और 'एकलव्य' के रचयिताओं ने पौराणिक वृत्तों का आधारमात्र ग्रहण कर काव्य का सम्पूर्ण कलेवर कल्पना शक्ति से निर्मित किया है। 'कुरुक्षेत्र' की इतिवृत्त-योजना में घटनात्मकता का अभाव होने के कारण नवीन प्रसंगोद्भावना का अवकाश ही नहीं है। मौलिक प्रसंगोद्भावनाओं की दृष्टि से प्रसाद कृत 'कामयनी में श्लाघनीय प्रयास हुआ है। प्रसाद जी ने काव्य की सभी घटनाओं और प्रसंगों को मौलिक विधि से आयोजित किया है। कामायनीकार ने कथासूत्रों की ऐतिहासिकता और पौराणिकता की रक्षा करते हुये उनमें परिवर्तन किये हैं। 'कमयनी' के कथानक मे रूपक तत्व का सफल समाहार दूसरी महत्वपूर्ण उपलब्धि

---

१ ऊर्मिला—श्री लक्ष्मणचरणपणमस्तु, पृ० च, छ
२ कुरुक्षेत्र—निवेदन, पृ० ३

है। 'कामायनी' के कथानक म इतिहास और कल्पना तथा पौराणिकता और रुपक तत्त्व का अ्द्भुत समन्वय हुआ है।

४ कथाप्रसगो मे अलौकिकता का परिष्कार

आलोच्य महाकाव्या म पौराणिक कथाप्रसगो की अलौकिकता का परिष्कार कर उन्ह युगीन रुप मे प्रस्तुत किया गया है। प्रियप्रवास' के कालियनागदमन, गोवद्ध नधारण, केशी, अघासुर, व्योमासुर आदि के वध से सबधित कथाओं म पर्याप्त सशोधन करके उन्हें बुद्धिग्राह्य रूप मे प्रस्तुत किया गया है। 'साकेत' म राम और सीता राजकीय एव कौलिन्य गव को त्याग कर सहज मानवीय आचरण करत हुये अ कित किये गये हैं। कामायनी के सभी कथाप्रसग सहज समान्य हैं। 'कुरुक्षेत्र' 'उर्मिला और 'एकलव्य' म भी यही प्रवत्ति परिलक्षित होती है। 'रश्मिरथी' और दत्यवश के अलौकिकतापूर्ण कथाप्रसगा (यथा कर्ण के जन्मजात कवच, कु डल और कृष्ण का विराट रूप प्रदर्शन तथा समुद्रमथ और विष्णु का वराह नसिंह आदि के रूप मे अवतार लेना आदि) म कोई सशोधन-परिवतन नही किया गया है। किन्तु इन काव्यों म भी अनक प्राचीन मान्यताओं म परिष्कार अवश्य किया गया है। सूतपुत्र कर्ण और दत्यवशी नरेशा को महाकाव्य के नायक का पद प्रदान करना युगीन जीवन दृष्टि का ही प्रमाण है।

५ महाकाव्योचित गरिमा का प्रश्न

उपयु क्त विवेचन से स्पष्ट हो गया है कि आलोच्य महाकाव्या मे कथानकों की महाकाव्योचितगरिमा का परीक्षण उनकी व्यापकता या विस्तृति के आधार पर ही नही किया जा सकता, क्योंकि प्राय सभी महाकाव्या की रचना विरल कथासूत्रो से हुई है। अस्तु आधुनिक महाकाव्यों के कथानकों की महाकाव्योचित गरिमा का मुख्य आधार आज यह है कि उनमें युग जीवन की आकाक्षाओं और सभावनाओ को साकार करने की क्षमता कितनी है। जहा तक कथानकों म सधियों और कार्यावस्थाओ आदि के सफल निवाह का प्रश्न है उनका यथाप्रसग विवचन किया जा चुका है।

इस प्रकार पौराणिक विषयों के आधुनिक महाकाव्या मे आख्यान तत्त्व का क्रम से क्रम प्रयोग होते हुए भी कथातत्त्व का निश्चित रूप से विकास हुआ है। इस विकास का क्रम पौराणिक उपाख्यानों के जीर्णोद्धार से लेकर मौलिक प्रसगो-, दभावनाओ तक व्याप्त है।

चरित्र तत्त्व

महाकाव्य के रुप विधायक तत्त्वों म कथानक क अनन्तर चरित्र तत्त्व का स्थान है। महाकाव्य का मुख्य विषय मानव जीवन के विविधोन्मुखी विकास को

ही स्थापित करता है। इस ध्येय की सिद्धि के लिये प्रत्येक महाकाव्य में चरित्र-सृष्टि की जाती है। वास्तविकता तो यह है कि प्रत्येक महाकाव्य की रचना के मूल में कोई न कोई महत् चरित्र निहित रहता है। श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर ने एक बार कहा था कि कवि के कल्पना राज्य पर जब किसी महिमामय व्यक्तित्व का अधिकार हो जाता है, तभी महाकाव्य की सृष्टि होती है।[1] आलोच्य महाकाव्य इस कथन की सत्यता के ज्वलत प्रमाण हैं। इनमें से प्रत्येक महाकाव्य की सृजन प्रेरणा का मूल स्रोत कोई न कोई महिमामय व्यक्तित्व है। आलोच्य महाकाव्यों के चरित्र विधान में जो विशेषताए उभरी हैं वे निम्नांकित प्रकार हैं —

१ नायक सबधी दृष्टिकोण मे क्रातिकारी परिवतन

महाकाव्य की चरित्र योजना में नायक का सर्वप्रमुख स्थान है। वह घटनाक्रम का विधायक, फल का भोक्ता और काव्य की सम्पूर्ण गति का नियामक होता है। काव्यशास्त्र में नायकत्व को महाकाव्य का महत् तत्व तक कहा गया है।[2] महाकाव्य के नायकत्व के सबध में संस्कृत साहित्य शास्त्र में विस्तृत उल्लेख है। वहाँ नायकत्व पद का अधिकारी सद्वशीय, धीरोदात्त एव सर्वगुण सम्पन्न पुरुष माना गया है। काव्याचार्यों ने नायक के लिए अपेक्षित गुणों की बड़ी लम्बी लम्बी सूचियाँ प्रस्तुत की हैं।[3] और विंशति शताब्दी पूर्व तक के महाकाव्यों में काव्य निर्देशित व्यक्तित्व ही नायकत्व की धारणा के सबध में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ है। इस परिवर्तन की तीन मुख्य दिशाए हैं —

(१) आवश्यक नही कि महाकाव्य का नायक सद्वशीय हो।

(२) आवश्यक नही कि महाकाव्य का नायक धीरोदात्त एव सर्वगुण सम्पन्न हो।

(३) आवश्यक नही कि महाकाव्य के नायकत्व पद पर पुरुष ही प्रतिष्ठित हो।

---

१ मेघनाथ वध की भूमिका, हिंदी अनुवाद, पृ० १५७

२ डा० गोविन्द त्रिगुणायत–शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, भाग २, पृ० ४९

३ भामह–काव्यालकार–१।२०, २१
दण्डी–काव्यादर्श–प्रथम परिच्छेद । १५
रुद्रट–काव्यालकार–१६। ८, ९, १६, १७
विश्वनाथ–साहित्य दर्पण–षष्ठ परिच्छेद । ३१५–१६
धनजय–दशरूपक–२।१२
वाग्भट्ट–काव्यानुशासन–नायक प्रकरण, अध्याय ५

१ आलोच्य महाकाव्यों में सद्वंशीय नायक की परम्परा का एकदम अस्वीकार कर दिया गया है। 'रश्मिरथी' में सूतपुत्र कर्ण (शूद्रवंशी) और 'एकलव्य' में निषादपुत्र एकलव्य (किरातवंशी) नायक हैं। यही नहीं दैत्यवंश में हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, विरोचन, बलि, बाण और स्कन्द नामक छ दैत्यवंशी नायक हैं। इस प्रकार असद्वंशीय पात्रों को आधुनिक महाकाव्यों में नायक के पद पर प्रतिष्ठित किया गया है। इस परिवर्तित दृष्टिकोण के मूल में महाकाव्यकारों की मानवतावादी जीवन दृष्टि क्रियमाण रही है। यह परिवर्तन, युग जीवन की भावना के अनुरूप भी है। इस संबंध में महाकाव्यों की भूमिकाओं में कवियों ने सतर्क वक्तव्य प्रस्तुत किये हैं। 'रश्मिरथी' के रचयिता दिनकर जी ने कहा है कि–"यह युग दलितों और उपेक्षितों के उद्धार का युग है। अतएव यह बहुत स्वाभाविक है–राष्ट्रभारती के जागरूक कवियों का ध्यान उस चरित्र की ओर जाय जो हजारों वर्षों से हमारे सामने उपेक्षित एवं कलंकित मानवता का मूक प्रतीक बन कर खड़ा है। कुल और जाति का अहंकार विदा हो रहा है। आगे मनुष्य केवल उसी पद का अधिकारी होगा जो उसके सामर्थ्य से सूचित होता है, उस पद का नहीं जो उसके माता-पिता या वंश की देन है।" [१] 'एकलव्य' के रचयिता डा० रामकुमार वर्मा ने कहा है कि–'एकलव्य ने जिस आचरण का परिचय दिया है वह किसी उच्च कुल के व्यक्ति के आचरण के लिये भी आदर्श है। वह अनार्य नहीं आर्य है, क्योंकि उसमें शील का प्राधान्य है। यही उसमें महाकाव्य के नायक बनने की क्षमता है भले ही वह सुर अथवा सद्वंश में उत्पन्न क्षत्रिय नहीं है।' [२] 'दैत्यवंश' के रचयिता श्री हरदयालुसिंह ने भी इसी प्रकार के विचार काव्य की प्रस्तावना में व्यक्त किये हैं। [३] महाकाव्यकारों के उद्धृत मंतव्यों से स्पष्टतः निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि महाकाव्य की रचना में कुलीन नायक की धारणा युगीन संदर्भों में व्यर्थ सिद्ध हो चुकी है। इन महाकाव्यों के अतिरिक्त 'प्रियप्रवास', 'साकेत' 'कामायनी', 'कुरुक्षेत्र' 'साकेत संत' में कृष्ण राम मनु युधिष्ठिर और भरत यद्यपि सद्वंशीय हैं किन्तु वे भी कौलिन्य गर्व को त्याग कर सहज मानवीय रूप में प्रतिष्ठित हुये हैं। इन चरित्रों की महत्ता का आधार उनका सद्वंशीय होना नहीं वरन् गुणात्मक आधार है। 'रश्मिरथी' में कहा गया है —

> 'बड़े वंश से क्या होता है, खोटे हों यदि काम ?
> नर का गुण उज्ज्वल चरित्र है नहीं वंश धन धाम।' [४]

---

१ रामधारीसिंह दिनकर–रश्मिरथी (भूमिका), पृ० ग, घ
२ एकलव्य, आमुख पृ० ६
३ दैत्यवंश प्रस्तावना पृ० १
४ रश्मिरथी प्रथम सर्ग पृ० ७

७ महाकाव्य के नायक की काव्यशास्त्रीय योग्यताओं में उसका धीरोदात्त और सद्गुण सम्पन्न होना भी उल्लिखित है। आधुनिक महाकाव्यों में यह मान्यता भी उपेक्षित हो गई है। प्राचीन काव्यों में नायक को सम्पूर्ण श्रेष्ठ गुणों का आगार बनाकर प्रतिष्ठित किया जाता था। इस प्रकार से ये नायक नैतिक और धार्मिक आदर्शों के प्रतीक होते थे। किन्तु इस प्रकार के नायक आज महत्त्वपूर्ण नहीं हैं क्योंकि व्यावहारिक जीवन में ऐसे नायकों का मिलना कठिन है। मानवीय चरित्र में दुर्बलताओं और असंगतियों का होना अस्वाभाविक नहीं। महाकाव्य के नायक को जीवन के संग्राम में प्रविष्ट होकर संघर्ष करते हुए महत् उद्देश्य की प्राप्ति के लिए बढ़ना पड़ता है। अतः परिस्थितियों के कारण से यदि वह विपरीत आचरण करे तो यह चरित्र की विसंगति नहीं कही जा सकती। आधुनिक महाकाव्यों में मनोवैज्ञानिक एवं यथार्थवादी पद्धतियों पर चरित्रों का मूल्यांकन किया जाता है, मात्र आदर्शवादी पद्धतियों पर नहीं।

आलोच्य महाकाव्यों के नायकों का चरित्र निरूपण इसी परिप्रेक्ष्य में हुआ है। प्रियप्रवास की नायिका राधा ने अपनी चरित्रगत दुर्बलताओं को स्वीकार करते हुए उद्धव से कहा है कि —

"मैं नारी हूँ तरल उर हूँ प्यार से वंचिता हूँ
जो होता हूँ विकल विमना व्यस्त वैचित्र्य क्या है?"[1]

'साकेत' के लक्ष्मण में हम उनके उग्र स्वभाव, भावावेग और क्रोध का परिचय स्थान स्थान पर मिलता है। उर्मिला के चरित्र में भी बहुत उथल पुथल है। प्रथम सर्ग की प्रेमिका और नवम सर्ग की वियोगिनी उर्मिला द्वादश सर्ग में सिंहनी के समान वीर क्षत्राणी दिखाई देती है। कामायनी के नायक मनु पुराणादि ग्रंथों में मानवता के जनक और मानव सभ्यता के संस्थापक होने के नाते विराट पौरुष और महिमामय व्यक्तित्व से सम्पन्न दिखाई देते हैं। किन्तु कामायनी में मनु के चरित्र में गरिमामय व्यक्तित्व के साथ साथ स्खलन और पतन के बिन्दु भी दिखाई देते हैं। उनके चरित्र में चिन्ता, निराशा, वासना, ईर्ष्या, कुण्ठा, अहम्वादिता, पराजयवादी और पलायनवादी वृत्तियाँ भी दिखाई देती हैं। वस्तुतः इन्हीं वृत्तियों के कारण वे यथार्थ मानव प्रतीत होते हैं। उनका जीवन मानवीय चेतना के संघर्ष की एक व्यापक भूमिका पर प्रतिष्ठित है। जीवन की पराजय और पश्चात्ताप ही मनु को अन्ततः सर्वोच्च लक्ष्य की प्राप्ति की ओर उन्मुख करते हैं। 'कुरुक्षेत्र' के युधिष्ठिर के मानसिक द्वन्द्व का तो बड़ा भव्य चित्र काव्य में बिम्बित हुआ है।

---

१ प्रियप्रवास, सर्ग १६ छं० ५०

पुराणों के धमराज युधिष्ठिर 'कुरुक्षेत्र' म अपने अघममय कृत्या की स्पष्ट स्वीकारोक्ति भीष्म पितामह के समक्ष करते हैं। महाभारत युद्ध के महानाश की मानवीय मस्तिष्क पर जो स्वाभाविक प्रतिक्रिया होनी चाहिए, वह युधिष्ठिर पर भी हुई है –

"जिस दिन समर की अग्नि बुझ गात हुई,
 एक आग तब से ही जलती है मन म,
हाय, पितामह, किसी भाति नही देखता हू
 मुह दिखलाने योग्य निज को भुवन मे,
एसा लगता है, लोग देखते घृणा से मुझे
 धिक् सुनता हू अपन प कण कण म,
मानव को दख आखें आप झुक जाती, मन
 चाहता अकेला कही भाग जाऊँ वन म।"[1]

यही युधिष्ठिर पाचवें सग के अन्त तक पहुँचते पहुँचते मानवता के दिव्य आदर्शों के प्रतीक बन जाते हैं। इसी प्रकार के चारित्रिक उत्कर्षापकष की रेखाए साकेत सत के भरत रश्मिरथी' के कण और एकलव्य' के द्रोणाचाय के चरित्रो म भी उभरी हैं। इसके विपरीत दत्यवश' के नायकों के चरित्रा म उन दिव्य मानवीय गुणो और विभूतियो की प्रस्थापना हुई है जिनके कारण उनके चरित्र भी अनुकरणीय आदर्शों स अनुपूरित दिखाई देत हैं। बलि की दानशीलता, बाण की नि स्वाथ तपसाधना और अस्वकुमार की जनहित-साधना कम महत्वपूण चारित्रिक आदश नहीं हैं। अस्तु, स्पष्ट है कि आलोच्य महाकाव्यो म नायको की धीरोदात्तता और सवगुण सम्पनता इतनी महत्त्वपूण नही जितनी चरित्रगत दुबलताओ और सबलताओ को सावहन करत हुये जीवन सघष म ध्यय की सिद्धि और सफलता।

३ आलोच्य महाकाव्यो के अनुशीलन से यह तथ्य भी सामन आता है कि नायकत्व पद के अधिकारी केवल पुरुष ही नहा वरन् स्त्रियां भी हो सकती हैं। आलोच्य महाकाव्या म प्रियप्रवास साकेत 'कामायनी और उर्मिला नायिका प्रधान है। 'प्रियप्रवास' म राधा साकेत म उर्म्मिला कामायनी म श्रद्धा और उर्म्मिला मे उर्मिला के चरित्र काव्य नायको की अपक्षा अधिक प्रमुख और महत्वपूण हैं। इस परिवतन क मूल म हमारे युग की नारी-चेतना के स्वर मुखरित हैं। कुरुक्षेत्र म कोई नारी पात्र नही है। रश्मिरथी' और एकलव्य में नायिकाए नहीं हैं नारी पात्र हैं। यही बात दत्यवश पर भी चरिताथ होनी है।

---

1 कुरुक्षेत्र, द्वितीय सग पृ० २०

२ चरित्र विश्लेषण पद्धति के परिवर्तित आधारमान

नायकत्व संबंधी दृष्टिकोण म क्रांतिकारी परिवतन के साथ साथ आलोच्य महाकाव्या क चरित्र विश्लेषण पद्धति म भी परिवर्तित क्रम दिखाई देता है जिसकी विशेषताए इस प्रकार है —

(१) पौराणिक पात्रो का युगानुरूप चित्रण।

(२) चित्रण पद्धति म यथार्थवादी मनोवैज्ञानिक एव मानवतावादी दृष्टि कोण का विकास।

(३) महत जीवनादर्शों से सम्पन्न चरित्रो की प्रतिष्ठा।

(४) उपेक्षित पात्रो का चरित्रोद्धार।

१ आलोच्य महाकाव्यो के सभी पात्र पौराणिक हैं। पुराणकारो ने जिस रूप म उनके चरित्र की प्रतिष्ठा की थी, उसी रूप मे शताब्दियो से उनका व्यक्तित्व और कृतित्व लोक के मानस पटल पर अंकित है। पुराणोत्तर काल से आधुनिक युगपूर्व तक के काव्यो म भी इन पात्रो की सामान्यत पौराणिक छवि ही अंकित की जाती रही हैं। दूसरे शब्दो मे इस पूर्व के महाकाव्यकार बद्धमूल धारणाओ और पूर्वाग्रहो के आधार पर पौराणिक पात्रो को दैवीय दानवीय और मानवीय वर्गों में वर्गीकृत करके चित्रित करते रहे हैं। आलोच्य महाकाव्यो म पौराणिक पात्रो को सर्वप्रथम युगीन स दर्भो मे चित्रित किया गया है। 'प्रियप्रवास' म कृष्ण और राधा ब्रह्म या शक्ति के अवतार नही वरन् सच्चे लोकसेवी एव समाजसेविका के रूप मे प्रतिष्ठित किये गये हैं। साकेत के राम और सीता भी अवतारी नहीं है। वे मानव हैं, हा मानवो म आदर्श मानव अवश्य हैं। इस आदर्श का कारण उनके चरित्र मे गुणात्मक उत्कर्ष है। साकेत' के राम प्राय सभ्यता के प्रचारक और भारतीय संस्कृति के उद्धारक हैं। वे विवश विकल बलहीन दीन शापित और तापित मानव समूह को गले लगाकर इस भूतल को स्वर्ग बनाने के संकल्प म रत है। साकेत' की सीता श्रमसाध्य जीवनयापन करके गौरव का अनुभव करने वाली नारी है। इसी प्रकार कामायनी' के 'मनु के चरित्र म युगसभूत विशेषताए हैं। वे मानव के जनक होते हुये भी मानवीय दुर्बलताओ से ग्रस्त हैं। वस्तुत उनमे आदि मानव की आदिम प्रवृत्तियो का ही स्वाभाविक विकास रूपायित हुआ है। श्रद्धा और इडा नारी के दो युगीन रूपो का प्रतिनिधित्व करती हैं। दया माया, ममता सेवा और समर्पण भाव से पूरित नारी का प्रतीक श्रद्धा का चरित्र है। बौद्धिकता की प्रति स आग्रह, अहम्वादिता, रूपगुणगर्विता आधुनिका नारी का प्रतिनिधित्व इडा की चरित्र योजना द्वारा सम्भव हुआ है। 'कुरुक्षेत्र' के युधिष्ठिर महाभारत क धमराज नही वरन सामाजिक दायित्व बोध के प्रति सजग व्यक्ति क

रूप मे प्रतिष्ठित हुये है। 'साकेत सन्त' मे भरत और माण्डवी के चरित्र कर्त्तव्य परायण दम्पत्ति के रूप मे प्रतिष्ठित हुये हैं। 'रश्मिरथी' मे कर्ण और एकलव्य' में एकलव्य के चरित्र पुरुषार्थी, कर्त्तव्यपरायण एव अनन्य निष्ठावान युवकों के चरित्र है जो सामाजिक जीवन की जर्जरित परम्पराओ और रूढियो से सघर्ष करते हुए समाज म प्रतिष्ठित होते है। ऊर्म्मिला' महाकाव्य मे लक्ष्मण ऊर्मिला आधुनिक पारिवारिक जीवन की विडम्बनाओ से सघर्षरत अकित किये गये हैं। नवीन जी की उर्मिला केवल कोमल हृदया भावुक बाला या मूक पतिपरायणा नारी नही है जो वनगमन की राजाज्ञा अपने पति को अन्धभाव से स्वीकार करने दे। वह तो एसी अन्यायपूर्ण राजाज्ञा का घोर प्रतिरोध करने के लिये लक्ष्मण को प्रेरित करने वाली सजग नारी है। 'दैत्यवश' के दानवीय पात्रो के चरित्र मे सहज मानवोचित गुणो का विकास युगीन प्रेरणाओ का ही परिणाम है। इस प्रकार आलोच्य महाकाव्यो के सभी प्रमुख पात्रो को युगानुरूप व्यक्तित्व प्रदान करके प्रतिष्ठित किया गया है। इस परिवर्तन के कारण आलोच्य महाकाव्यो के पात्र मात्र आदर्श की प्रतिमूर्तिया न रहकर हमारे ही जीवन के सुपरिचित व्यक्तित्व बन गये हैं।

२ पौराणिक पात्रो को युगानुरूपता प्रदान करने के लिए आधुनिक महाकाव्यकारो न चरित्र चित्रण पद्धति म यथार्थवादी, मनोवैज्ञानिक एव मानवतावादी दृष्टिकोण को अपनाया है। प्राचीन महाकाव्यो म जिस आदर्शवादी चरित्र चित्रण पद्धति को अपनाया जाता था उसके अनुसार पात्रो की गुणात्मक विभूतियों का ही दिग्दर्शन कराया जाता था, उनके चरित्रगत अभावो के उद्घाटन का प्रश्न ही न उठता था। आलोच्य महाकाव्यो मे एसा नही हुआ है। आधुनिक महाकाव्यकारो ने यथार्थवादी मनोवैज्ञानिक पद्धति अपनाकर चरित्र विश्लेषण किया है। इसके फलस्वरूप पौराणिक पात्रो के प्रति अन्धश्रद्धा या सहानुभूतिपूर्ण अथवा घृणा या उपेक्षापूर्ण बद्धमूल धारणाओ की शृखलाए टूट गयी हैं। इस पद्धति से अकित चरित्रो मे साकेत' की ककेयी' 'कामायनी' के मनु 'कुरुक्षेत्र' के युधिष्ठिर, 'रश्मिरथी' की कुन्ती 'एकलव्य' के द्रोणाचार्य और अर्जुन तथा दैत्यवश' के देवो और दानवो के चरित्र द्रष्टव्य हैं। इनमें से प्रत्येक पात्र के पुराण या प्राचीन काव्य प्रतिपादित एव आलोच्य महाकाव्यो मे विश्लेषित चरित्रो की तुलना करें तो हमे अन्तर की रेखाए स्पष्ट दिखाई देगी। रामकथा की चिर कलकिता ककेयी के प्रति युगयुगान्तर का घनीभूत मालिन्य साकेत' मे निशेष हो जाता है। जिस स्वाभाविक मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर ककेयी का साकेत म चरित्राकन हुआ है उसके कारण ककेयी के प्रति हमारी घृणा सहानुभूति म बदल जाती है। 'साकेत' म राम सहित सम्पूर्ण चित्रकूट की सभा उसे धन्य धन्य कहती हैं। 'कामायनी' के मनु के चरित्र मे जिस मानसिक सघर्ष और सकल्प विकल्प पूर्ण द्वन्द्व का यथार्थवादी चित्रण किया है वह उन्हे सहज मानव सिद्ध करता है। युद्ध की विभीषिका और राजतन्त्र की विडम्बना

के कारण 'कुरुक्षेत्र' के युधिष्ठिर और 'रश्मिरथी' के द्रोण क चरित्र म जिस गत्यात्मकता की अवतारणा हुई है उसका आधार भी मनोवैज्ञानिक एव यथार्थवादी है। 'दत्यवश' म दवा के छद्मपूर्ण व्यवहार और दानवा की उदार वृत्तियो का उद्घाटन किया गया हैं। देवा और दानवा क चरित्र चित्रण म 'दत्यवश' का कवि भावुक या पूर्वाग्रही नही है। चरित्र विश्लेषण म उसकी दृष्टि बौद्धिक, यथार्थवादी, मनोवैज्ञानिक और मानवतावादी है। 'साकेत सन्त' और 'ऊर्म्मिला' में चरित्र विश्लेषण की आदर्शोन्मुख यथार्थवादी पद्धति अपनायी गई है।

३ आलोच्य महाकाव्यो की चरित्र विश्लेषण पद्धति म यथार्थवादी दृष्टिकोण का प्रसार होते हुये भी महत जीवनादर्शों की प्रस्थापना प्रत्येक महाकाव्य के कुछ पात्रा म हुई है। महत जीवनादर्शों से अभिप्राय उन चिरतन मानवीय जीवन मूल्यो से है जिनकी स्वीकृति प्रत्येक युग म अनिवार्यत होती रही है। हमारे पारिवारिक सामाजिक और जातीय जीवन के उन्नत आदर्शों की व्यजना आलोच्य महाकाव्या के जिन चरित्रो म हुई हैं व हैं—'प्रियप्रवास' का राधा और कृष्ण, 'साकेत' की उर्मिला राम और सीता, कामायनी' की श्रद्धा कुरुक्षेत्र' क भीष्म पितामह 'साकेत सन्त' के भरत और माण्डवी 'दत्यवश' क राजा बलि, 'रश्मिरथी' के कर्ण, 'ऊर्म्मिला' म लक्ष्मण और उर्मिला तथा एकलव्य' म गुरुद्रोण और शिष्य एकलव्य। इन पात्रो को हम पारिवारिक सम्बन्धो सामाजिक दायित्वो और जातीय जीवन की विशेषताओ के उज्ज्वल प्रतीक के रूप म पाते हैं। इन चरित्रो का वैभव मानवता की अक्षय विभूति है।

४ आलोच्य महाकाव्यो के चरित्र विश्लेषण की एक विशेषता उपेक्षित पात्रो का चरित्रोद्धार है। उत्सर्ग की प्रतिमूर्ति उर्मिला, पुरुषार्थी एव दानवीर कर्ण अनन्य साधक एव गुरुभक्त एकलव्य के चरित्र आज ग्रन्थो म उपेक्षित प्राय रहे हैं। किन्तु उनकी चारित्रिक विभूति असीम प्रेरणाप्रद है। अस्तु, आलोच्य महाकाव्यो म उन्हे सामान्य पात्र ही नही वरन् नायक बना कर प्रतिष्ठित किया गया है। क्योकि महाकाव्यो के नायक जातीय जीवन की चेतना का प्रतिनिधित्व करते हैं।

५ आलोच्य महाकाव्या के चरित्र तत्त्व की अन्तिम विशेषता नारी निरूपण की विशेष प्रवृत्ति है। प्रियप्रवास' मे राधा और यशोधरा, 'साकेत' म उर्मिला सीता और कैकयी 'कामायनी म श्रद्धा और इडा 'साकेत सन्त' म माण्डवी 'दत्यवश' मे ऊषा, 'रश्मिरथी' म कुन्ती, 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य म सीता, सुनयना और उर्मिला तथा 'एकलव्य' म एकलव्य जननी के चरित्र द्रष्टव्य हैं। नारी के नाना रूपो म उसके पत्नी और जननी दो रूप सर्वाधिक महत्वपूर्ण होते हैं। आलोच्य महाकाव्यो म सीता, उर्मिला श्रद्धा और माण्डवी के चरित्र पत्नीत्व

तथा यशोदा, कुन्ती, सुनयना और एकलव्य जननी के चरित्र मातृत्व के अप्रतिम उदाहरण हैं। प्रियप्रवास' की राधा कुमारी है पर उसके चरित्र की गरिमा पत्नीत्व म नहा लोक सेविका बनने म है। नारी निरूपण सबधी विशेषताओं की दृष्टि स निकर कृत कुरुक्षेत्र' अपवाद है।

इस प्रकार आलोच्य महाकाव्यो के चरित्र-तत्त्व का समन्वित मूल्याकन करन के अनन्तर हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि उनम पौराणिक पात्रा के युगानुरूप चित्रण उपेक्षित एव तिरस्कृत पात्रा के पुनमूल्याकन चरित्र निरूपण म यथार्थवादी मनोवैज्ञानिक एव मानवतावादी पद्धतिया की स्वीकृति तथा नायकत्व सबधी दृष्टिकोण म परिवर्तन ऐसी प्रवृत्तिया है जो निश्चय ही पौराणिक विषया के आधुनिक महाकाव्यो म चरित्र तत्व के विकास का व्यजित करती हैं।

रसयोजना तथा शिल्प-तत्त्व

काव्य की सम्पूर्ण विधाओ म महाकाव्य की सर्वोपरिता का आधार उसके महत् सन्देश एव उद्देश्य के अतिरिक्त शिल्पगत वैशिष्ट्य भी है। महाकाव्य की योजना म शिल्पगत वैशिष्ट्य उत्पन्न करने के लिय महाकाव्यकार रूप विधायक तत्वों का सयोजन विशेष विधि स करता है। सभी काव्य कृतिया की भाति महाकाव्य की रचना-विधि के भी दो पक्ष हैं—अन्तरग अर्थात भावपक्ष और बहिरग अर्थात कलापक्ष। महाकाव्य के अन्तरग पक्ष की समृद्धि रस योजना और भावचित्रण कौशल तथा बहिरग की शिल्प विधायक उपकरणो पर निर्भर करती है। शिल्प विधायक उपकरणो की सस्कृत काव्य शास्त्र म विस्तृत सूचिया दी गई हैं जो यथाविधि आज मान्य नही रही हैं। आलोच्य महाकाव्यो म जिन शिल्प विधायक उपकरणा की स्थिति अनिवार्यत स्वीकार की गई है वे हैं—प्रकृति चित्रण, नामकरण सगबद्धता भाषाशैली अलकार योजना और छद विधान।

अन्तरगपक्ष की समृद्धि रसात्मकता

रस योजना के सम्बन्ध म काव्यशास्त्रीय निर्देश यह है कि महाकाव्य मे शृगार वीर या शान्त नामक रसा म स किसी एक की प्रधानता एव अन्य रसो का सम्यक योजना होनी चाहिये। आलोच्य महाकाव्या म प्रियप्रवास और साकेत' म विप्रलम्भ शृगार कामायनी मे शृगार और शात कुरुक्षेत्र' म वीर और शात, साकेत सन्त म शात दत्यवश म शृगार और वीर रश्मिरथी मे वीर 'उर्मिला' म शृगार और एकलव्य म भक्तिरस (गुरु विषयक रति) की प्रधानता है। आलोच्य महाकाव्यो म प्रधान रसा की योजना देखने स प्रतीत होता है कि माना महाकाव्यकारो न शृगार वीर और शान्त म से किसी एक रस की प्रधानता सबधी काव्यशास्त्रीय-रूढि का पालन किया है। किन्तु वास्तविकता यह है कि आधुनिक महाकाव्यकारों ने रसविषयक काव्यशास्त्रीय निर्देश का प्रयत्न

पूर्वक पालन नहीं किया है। वस्तुतः रस विशेष की प्रधानता वाला नियम विषय वस्तु की अनुरूपता के कारण चरितार्थ हो गया है। दूसरे आलोच्य महाकाव्यों में शास्त्रीय ढंग की रसात्मकता की अपेक्षा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के प्राधान्य के कारण भावाभिव्यंजना अधिक सशक्त हुई है। यद्यपि एक दो रसों की अन्तः सलिला, प्रच्छन्न रूप से सम्पूर्ण काव्य में प्रवाहित होती रही है किन्तु जीवन में नाना संघर्षों में रत पात्रों के क्षण क्षण परिवर्तित मनोभावों की व्यंजना के कारण गंभीर रसवत्ता की अपेक्षा सफल भावाभिव्यक्ति ही आलोच्य महाकाव्यों की विशेषता है। इसके अतिरिक्त आलोच्य महाकाव्यों की कथावस्तु में घटनात्मकता की सघन योजना के अभाव में पूर्ण एवं सावयव रसनिष्पत्ति की आशा भी नहीं की जा सकती है। अस्तु,

आलोच्य महाकाव्यों में शास्त्रोक्त पद्धति की रसयोजना न होने हुये भी भावनाओं, अनुभूतियों एवं मनोवृत्तियों के चित्रण पर विशेष बल दिया गया है। इस दृष्टि से 'कामायनी' और 'कुरुक्षेत्र' द्रष्टव्य है जिनमें पाश्चात्य ढंग की प्रभावान्विति (यूनिटी आव इफेक्ट) रसात्मकता से भी महत्वपूर्ण बन पड़ी है। अंगी रस के अतिरिक्त अन्य रसों की योजना भी आलोच्य महाकाव्यों में प्रसंगानुकूल हुई है। जिसका सोदाहरण विवेचन चतुर्थ अध्याय में किया जा चुका है।

बहिरंग पक्ष प्रकृतिचित्रण

प्रकृति मानव की आदि सहचरी है। मनुष्य का उससे अनादि संबंध है। यह सम्बन्ध इतना स्वाभाविक और पुरातन है कि मानव का प्रत्येक कार्य-व्यापार किसी न किसी रूप में प्रकृति की चेतना और प्रेरणा से प्रभावित रहता है। मनुष्य स्वभाव से ही सौन्दर्य प्रेमी है, और प्रकृति का सौन्दर्य शाश्वत है। सूर्य, चन्द्र पृथ्वी, आकाश, नक्षत्र, पर्वत, समुद्र, वन उपवन, पादप, पुष्प पशु, पक्षी, कीट, पतंग, ऋतुएं आदि प्रकृति-सुषमा के शाश्वत उपादान हैं जो सृष्टि के आरम्भ से आज तक मानव की सौन्दर्य वृत्ति के पोषक रहे हैं। मानव सभ्यता, संस्कृति, ज्ञान, विज्ञान, कला, साहित्य और काव्य सभी की रचना और विकास में प्रकृति की भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण रही है। मानवीय ज्ञान एवं चेतना के अन्य रूपों की अपेक्षा काव्य का प्रकृति से घनिष्ठ संबंध रहा है। कवियों ने अपने कल्पना-विलास के उपकरण, भावाभिव्यंजन के प्रसाधन, अलंकरण वृत्ति के उद्घोषक प्रतीक, सौन्दर्य चेतना के प्रतिमान प्रकृति से ही सजोये हैं। यद्यपि साहित्य की सभी विधाओं में प्रकृति चित्रण किसी न किसी रूप में होता ही है तथापि महाकाव्य में प्रकृति-चित्रण का अधिक अवकाश होता है। क्योंकि उसमें प्रकृति का प्रयोग उस पृष्ठभूमि के रूप में होता है जिस पर कथा प्रसंगों की निर्मिति, घटनाक्रम का विकास, चरित्र विश्लेषण की प्रक्रिया और रसात्मकता की स्थितियां निर्भर करती

है। काव्य म प्रकृति चित्रण की अनेक प्रणलिया प्रचलित हैं। उनम से आलो महाकाव्या म प्रकृति चित्रण मुख्यत निम्नांवित रूपो मे हुआ है —

१ उद्दीपन रूप म, २ आलम्बन रूप म, ३ आलकारिक रूप मे, ४ वातावरण के रूप म, ५ मानवीयकरण रूप म, ६ सवेदनात्मक रूप म, ७ उपदेशात्मक रूप म, ८ दूत-दूती रूप म, ९ प्रतीकात्मक रूप में १० रहस्यात्मक रूप में।

आलोच्य महाकाव्यों के सम्पूण प्रकृति चित्रण की दो उल्लेखनीय विशेषतायें यह हैं कि प्रथम उसके द्वारा कथानक की क्षीणता को दूर किया गया है और दूसरे मानवीय स्वभाव-चित्रण मे प्राकृतिक उपादानो का अधिकाधिक प्रयाग किया गया है। इसके साथ ही परम्परित शली का प्रकृति-चित्रण जस बारहमासा षडऋतुवणन, दूतीत्व कम आदि का भी निरूपण कतिपय आलोच्य महाकाव्यो म हुआ हैं। प्रियप्रवास और 'कामायनी' का आरम्भ और अवसान प्रकृति-चित्रण स ही होता हैं। किन्तु दोनो के निरूपण में अन्तर यह है कि छायावादी काव्यधारा की प्रतिनिधि रचना होने के कारण 'कामायनी मे जहा प्रकृति चित्रण कौशल का चरम निदशन है वहाँ प्रिय-प्रवास' म सर्गो की कलवर वृद्धि और स्थानापूर्ति के लिय किया गया प्रकृति-चित्रण कही कही जी उबाने वाला भी हैं। 'साकेत' मे जहा-जहा प्रकृति मानवीय सवेदनाओ की पृष्ठ-भूमि के रूप म उतरी है वहा हृदय ग्राह्य है। कुरुक्षत्र म प्रकृति के रौद्र रूप के सश्लिष्ट-चित्र प्रभावकारी हैं। 'साकेत-सन्त' और 'दैत्यवश' का प्रकृति चित्रण परम्परित है। 'रश्मिरथी' मे प्रकृति-चित्रण को कवि ने कोई विशेष महत्व नहीं दिया है किन्तु जो भी प्रकृति चित्र अकित किय गये हैं व प्रभावपूण हैं। 'ऊर्मिला' महाकाव्य मे उद्दीपन रूप म प्रकृति का अधिक चित्रण हुआ है। कामायनी' के अन तर सवश्रेष्ठ प्रकृति चित्रण 'एकलव्य' महाकाव्य म हुआ है। एकलव्य म यद्यपि प्रकृति-चित्रण की सभी पद्धतिया अपनाई गई हैं किन्तु मानवीय सवेदनाओं की सवाहिका बन कर प्रकृति इस काव्य मे सर्वोत्कृष्ट रूप म चित्रित हुई है।

समष्टि रूप मे आलोच्य महाकाव्यो का प्रकृति-चित्रण महाकाव्यकारों के चित्रण-कौशल का परिचायक होन के साथ साथ महाकाव्य की शिल्प विधि का विशिष्ट अग बन कर भी प्रस्तुत हुआ है। यद्यपि आधुनिक महाकाव्य प्रकृति-काव्य नही हैं तो भी उनमें प्रकृति, मानव-प्रकृति का अभिन्न अग बन कर अधिष्ठित हुई है। प्रसन्नता का विषय यह है कि सभी आलोच्य महाकाव्या में अन्य प्रणालियो के साथ-साथ मानवीयकरण पद्धति द्वारा भी प्रकृति-चित्रण हुआ है। आज के कवियों की आस्था प्रकृति के स्थूल रूप-चित्रण म नही है। इसीलिये स्वतन्त्र प्रकृति चित्रण काव्या म बहुत कम हुआ है। प्रसाद, निराला और

डा० रामकुमार वर्मा के महाकाव्यों में मानव और प्रकृति के रागात्मक सम्बन्ध के अविस्मरणीय मनोरम दृश्य हैं।

नामकरण

संस्कृत के आचार्यों में विश्वनाथ ने नामकरण के सम्बन्ध में कहा है कि महाकाव्य का नामकरण कवि, कथावस्तु, नायक या अन्य किसी पात्र के नाम के आधार पर होना चाहिये। किन्तु प्रत्येक सर्ग का नामकरण उसके वर्ण्य विषय पर आधृत होना चाहिए। आलोच्य महाकाव्यों में प्रियप्रवास, साकेत और कुरुक्षेत्र का नामकरण कथानक के आधार पर हुआ है। इनमें भी 'प्रिय-प्रवास' का आधार घटनात्मक और 'साकेत' तथा कुरुक्षेत्र का स्थानगत है। कामायनी, साकेत-सन्त, दैत्यवंश, रश्मिरथी, ऊर्मिला और एकलव्य के नामकरण का आधार पात्रगत है। इनमें भी 'साकेत सन्त' और रश्मिरथी' नाम पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं पर आधारित हैं। आलोच्य महाकाव्यों में कामायनी' और 'रश्मिरथी' का नामकरण पर्याप्त व्यंजनापूर्ण है।

सर्ग-संयोजन

महाकाव्य की शिल्प योजना में सर्गबद्धता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि संस्कृत काव्य के महाकाव्य सम्बन्धी प्रत्येक विवेचन में महाकाव्य की व्याख्या सर्गबद्ध-काव्य के रूप में की गई है। वास्तव में महाकाव्य प्रबन्धात्मक कथाकाव्य है। सर्ग-योजना का महत्व प्रबंधत्व के सफल निर्वाह एवं कथावस्तु के सम्यक संयोजन और विभाजन दोनों दृष्टियों से हैं। महाकाव्य के सर्गों की संख्या एवं नामकरण आदि के सम्बन्ध में भी काव्यशास्त्र में निर्देश किया गया है।

आलोच्य महाकाव्यों की सर्ग योजना कथाक्रम के अनुरूप हुई है। संख्या की दृष्टि से प्रियप्रवास में १७ साकेत में १२, कामायनी मे १५ कुरुक्षेत्र में ७, साकेत सन्त में १४ दैत्यवंश मे १८ रश्मिरथी मे ७, ऊर्मिला मे ६, और एकलव्य में १४ सर्ग हैं। जहा तक सर्गों के नामकरण का प्रश्न है—कामायनी और एकलव्य के प्रत्येक सर्ग का नामकरण किया गया है किन्तु प्रियप्रवास, साकेत, साकेत सन्त दैत्यवंश और रश्मिरथी में केवल सर्गों का संख्याक्रम ही दिया गया है। 'ऊर्मिला' में संख्याक्रम के साथ साथ चौथे व छठे सर्गों का नामकरण भी किया गया है। 'कुरुक्षेत्र', रश्मिरथी' और ऊर्मिला में आठ सर्गों वाली रूढ़ि का भी अनुपालन नहीं किया गया है।

भाषा-शैली

महाकाव्य की भाषा-शैली का स्वरूप अन्य काव्य रूपों की तुलना में विशिष्ट और गरिमापूर्ण होता है। गुण, रीतियां, शब्द-शक्तियां, अलंकार वक्रोक्ति-कथन आदि शैली विधान के प्रमुख उपकरण हैं। किन्तु इन सबका संबंध शैली के बाह्य रूप से है। महाकाव्यों की शैली में एक गाम्भीर्य निहित रहता है। शैली में गाम्भीर्य भाषागत अलंकृति या क्लिष्ट शब्द योजना से नहीं वरन् कवि के चिन्तन की परिपक्वता और सुदीर्घकालीन साहित्य साधना से आता है। महाकाव्य की शैली के तीन प्रमुख गुण हैं-सम्प्रेषणीयता, प्रसंगगर्भत्व और व्यंजना शक्ति।

आलोच्य महाकाव्यों की भाषा शैली में ये गुण उपलब्ध हैं। भाषा की दृष्टि से 'दत्यवध' को छोड़कर शेष सभी आलोच्य महाकाव्यों की भाषा खड़ीबोली हिन्दी है। दत्यवध ब्रजभाषा में लिखा गया है। 'ऊर्मिला' महाकाव्य का पूरा पंचम सर्ग ब्रजभाषा में है, शेष सर्ग खड़ी बोली में रचे गये हैं। खड़ी बोली की अभिव्यंजना शक्ति का स्वरूप आलोच्य महाकाव्यों के लाक्षणिक प्रयोगों चित्रात्मकता मूर्त्त अमूर्त्त विधान, नये नये प्रतीकों और बिम्बों की योजना में दृष्टव्य है। 'प्रियप्रवास' में खड़ी बोली का संस्कृतनिष्ठ स्वरूप है। साकेत', 'साकेत संत' और 'रश्मिरथी' की भाषा अपेक्षाकृत सरल होते हुए भी साहित्यिकता से पूर्ण है। ऊर्मिला' की भाषा भी संस्कृत गर्भित है। 'कामायनी' में खड़ी बोली की रचनात्मक सामर्थ्य का समृद्ध स्वरूप है। राष्ट्रभाषा के रूप में खड़ी बोली के जिस रूप को प्रतिष्ठित किया जाना है, उसका आदर्श उदाहरण 'कुरुक्षेत्र' की भाषा में दृष्टव्य है। भाषा एवं शैलीगत अन्य विशेषताओं की विस्तृत विवेचना 'शिल्प तत्त्व' के अन्तर्गत की जा चुकी है। यहां तो उल्लेखनीय यह है कि आलोच्य महाकाव्यों में खड़ी बोली के जिस स्वरूप का विकास हुआ है वह उसकी रचना-सामर्थ्य का परिचायक है।

अलंकार-योजना

महाकाव्य में भाषा की प्राणवत्ता शैली के रूप प्रसाधन, मानवीय एवं प्राकृतिक सौन्दर्य चित्रण, कलात्मक व्यंजना एवं भावात्मक प्रभावोत्पादन के लिए अलंकारों का विशेष महत्व है। आलोच्य महाकाव्यों में अलंकारों की सवथा सार्थक योजना हुई है। भारतीय अलंकारशास्त्र के प्रमुख शब्दार्थालंकारों के साथ साथ विशेषण विपर्यय मानवीकरण, ध्वन्यर्थ व्यंजना जैसे पाश्चात्य काव्यशास्त्रालिखित अलंकारों का भी आधुनिक महाकाव्यों में ... है। अलंकार योजना की दृष्टि से 'कामायनी' अग्रगण्य हैं। ...वेतसन्त'

परम्परा प्रसिद्ध अलकारो (जस अनुप्रास, यमक, श्लेष रूपक उपमा अन्योक्ति, समासोक्ति आदि) का प्रयोग अधिक हुआ है। शेष महाकाव्यो म उत्प्रेक्षा और रूपक की प्रमुखता के साथ प्रसगानुकूल सभी प्रकार के अलकारो का प्रयोग हुआ है।

छन्द विधान

छन्द काव्य का सगीत हैं। वे काव्य की शली के रूप निर्माण के साथ साथ महाकाव्य के रचयिता की अनुभूतिपूर्ण मनोदशा की सफल अभिव्यक्ति के साधन भी हैं। महाकाव्य के विशाल कलेवर म विविध छन्दो की योजना पाठक की मनोवृत्ति के रमण कराने तथा कवि कम का परिचय देन के लिये अपेक्षित है। महाकाव्य की छन्द-योजना के सम्बन्ध मे सस्कृत काव्यशास्त्र मे सर्गांत छन्द परिवतन के नियम का विधान भी किया गया है। किन्तु आलोच्य महाकाव्यो म इस नियम का साग्रह अनुपालन नही हुआ है। प्रियप्रवास' म प्रथम दो सर्गों को छोडकर तथा साकेत, साकेतसन्त और दत्यवश म सर्गांत छन्द परिवतन के नियम का विधिवत पालन हुआ है। कामायनी, रश्मिरथी और 'ऊर्मिला' म इस नियम का पालन नही हुआ है। कुरुक्षेत्र और एकलव्य' म तुकात और अतुकात छन्दो का मिश्रित प्रयोग हुआ है। आलोच्य महाकाव्यो म भाव, भाषा प्रसग और शली के अनुरूप सामान्यत छन्द योजना हुई है। 'प्रियप्रवास' सस्कृत के वर्णिकवृत्तो म लिखा गया है। अन्य महाकाव्यो मे वर्णिक और मात्रिक दोनो प्रकार के छन्दो का प्रयोग हुआ है। प्रसाद जी ने 'कामायनी' तथा डा० रामकुमार वर्मा ने 'एकलव्य मे कतिपय नये छन्दो की भी उद्भावना की है। 'कुरुक्षेत्र' तथा 'एकलव्य' के अतुकात छन्द प्रयोगो भी म यति और लय का स्वरूप सवथा रक्षित रहा हैं।

इस प्रकार आलोच्य महाकाव्यो की शिल्पविधि का समन्वित मूल्याकन करने के उपरात इस निष्कष पर सहज म पहुचा जा सकता है कि इन महाकाव्यो के अन्तरग और बहिरग दोनों पक्ष समृद्ध हैं। शिल्प विधान से सम्बन्धित अगणित नवीन एव मौलिक प्रयोग आलोच्य महाकाव्यो के प्रकृति चित्रण की प्रणालियो, नामकरण सगयोजना, भाषा-शली की रूप रचना, अलकृति एव छन्द योजना म दिखाई दते हैं जो शिल्प तत्त्व के विकास का व्यजित करते हैं।

जीवन-दशन

जीवन दशन महाकाव्य की महाधता का आधार तत्त्व है। वस्तुत जीवन दशन ही वह कसौटी है जिसक आधार पर काव्य और महाकाव्य के तात्त्विक अन्तर को स्पष्ट किया जा सकता है। जीवनदशन से अभिप्राय उस सजीवनी शक्ति से है जो युगों युगो तक जीवित रहने के लिए महाकाव्य को अमरता प्रदान करती है।

यह उल्लेखनीय है कि 'जीवनदर्शन' शब्द 'दर्शन' की तुलना में व्यापक अर्थवाची है। जीवनदर्शन के अन्तर्गत महाकाव्यों में प्रतिपादित दार्शनिक ही नहीं अपितु सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विचारणाओं का भी समाहार किया जाता है। आलोच्य महाकाव्यों में जीवनदर्शन से सम्बन्धित उपलब्धियों का मूल्यांकन तीन सन्दर्भों में किया जा सकता है —

१ दार्शनिक और आध्यात्मिक मान्यताओं का निरूपण।
२ सांस्कृतिक आदर्शों की प्रतिष्ठा।
३ सृजन प्रेरणा, उद्देश्य और सन्देश की महत्ता।

१ आलोच्य महाकाव्यों में 'प्रियप्रवास', 'साकेत', 'कामायनी' और 'साकेत सन्त' में दार्शनिक मान्यताओं का परम्परित स्वरूप भी रक्षित है। जैसे प्रियप्रवास और 'साकेत' में ब्रह्म, जीव, जगत, माया और मोक्ष सम्बन्धी विचार सुगमता से मिल जाते हैं। 'कामायनी' में प्रत्यभिज्ञा दर्शन की मूल दार्शनिक उपपत्तियों का निरूपण है। 'साकेतसन्त' में ईश्वर, माया और जगत के सम्बन्ध में दार्शनिक मान्यताओं का पर्याप्त विवेचन है। किन्तु कुरुक्षेत्र, 'रश्मिरथी' और 'एकलव्य' में दार्शनिकता के स्थान पर आध्यात्मिक मान्यताओं का निरूपण है। वस्तुत इन महाकाव्यों में परम्परित ढंग से निरूपित मान्यताओं का स्थान सांस्कृतिक और आध्यात्मिक आदर्शों ने ले लिया है।

२ इस शोधप्रबन्ध की भूमिका में कहा जा चुका है कि महाकाव्य जातीय जीवन और सांस्कृतिक चेतना के आकलन का सांस्कृतिक प्रयास होते हैं। इस कथन की पुष्टि में आलोच्य महाकाव्यों में निरूपित सांस्कृतिक धारणाओं का व्यापक परिवेश द्रष्टव्य है। प्रियप्रवास में भारतीय संस्कृति के पारिलौकिक और पार्थिव तत्त्वों की प्रतिष्ठा के साथ नवीन मानवतावादी संस्कृति के आदर्शों की भी प्रतिष्ठा हुई है। 'साकेत' में समन्वयवादिता, धार्मिकता, पारिवारिक जीवन सामाजिक व्यवस्था, नैतिकता कर्मण्यवादिता, नारी की महत्ता, विश्वबन्धुत्व जैसे भारतीय सांस्कृतिक आदर्शों का निरूपण है। 'कामायनी' में देव संस्कृति की मूलभूत विशेषताओं के सांकेतिक चित्रण के साथ-साथ मानव संस्कृति के प्राचीन (कर्मकाण्डी) और नवीन (मानवतावादी) दोनों रूपों का निरूपण है। 'कुरुक्षेत्र' में इस प्रकार का सांस्कृतिक विवेचन तो नहीं किन्तु नवीन सामाजिक संरचना के संकल्पों एवं आध्यात्मिक निष्ठाओं के विवेचन में भारतीय संस्कृति की मूलभूत विशेषताओं का समाहार अवश्य है। 'साकेतसन्त' में प्राचीन भारतीय संस्कृति के उदात्त आदर्शों की प्रतिष्ठा का प्रयत्न है। इस प्रयत्न में कवि ने भारतीय जीवन के सांस्कृतिक आदर्शों और पश्चिम के भौतिकतावादी सांस्कृतिक मूल्यों का तुलनात्मक निरूपण करते हुये भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है।

'त्यवन' में तत्कालीन नरेशों के द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले सांस्कृतिक अनुष्ठानों की प्रासंगिक चर्चा है। 'रश्मिरथी' में उदार मानवतावादी सांस्कृतिक आदर्शों की प्रस्थापना का श्लाघनीय प्रयास है। 'ऊर्मिला' में भारतीय संस्कृति के मूलभूत आदर्शों (यथा गार्हस्थ्य, त्याग तप, समर्पण, नारी का सम्मान, वर्णाश्रम-व्यवस्था-पालन, विश्वबन्धुत्व, सदाचारपूर्ण जीवनयापन आदि) की प्रदान और भौतिकतावादिता का खंडन करते हुये प्रतिष्ठा की गई है। 'जननायक' में पाश्चात्य संस्कृति की जड़ मान्यताओं का खंडन करते हुये भारतीय संस्कृति के परिवेश में उदात्त मानवतावादी संस्कृति की वरेण्य विचारधारा की महिमा का बखान किया गया है। इस प्रकार सांस्कृतिक निरूपण सम्बन्धी महाकाव्यों में आदान-प्रदान का क्रमिक क्रम दिखाई देता है। किन्तु विशेषता यह है कि सांस्कृतिक निरूपण में सभी महाकाव्यकारों ने मानवतावादी संस्कृति के उदात्त आदर्शों को सहर्ष स्वीकृत करते हुये काव्यों में प्रतिष्ठित किया है।

२. महाकाव्यों की रचना महती सृजन प्रेरणा का परिणाम होती है। इसलिये उनका लक्ष्य भी महान होता है। 'प्रियप्रवास' की सृजन प्रेरणा के अनेक स्रोतों में खड़ी बोली के गौरव की प्रतिष्ठा, राष्ट्रभाषा प्रेम, पौराणिकता के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण, कृष्णचरित्र को महापुरुष के रूप में प्रस्तुत करने की लालसा मुख्य हैं। 'साकेत' की रचना का मुख्य प्रयोजन उपेक्षिता ऊर्मिला का चरित्रोद्धार होते हुये भी इष्टदेव का गुणगान, भारतीय संस्कृति की महान् परम्पराओं, युगीन समस्याओं एवं मानवतावादी जीवनादर्शों की प्रतिष्ठा 'साकेत' की सर्जना के महत्वपूर्ण मन्तव्य रहे हैं। 'कामायनी' की सृजन प्रेरणा के मूल में प्राचीन भारतीय वाङ्मय के प्रति अनन्य आस्था, मनु और श्रद्धा के माध्यम से मानवता के विकास का रूपांकन करने की आकांक्षा और समरसता जन्य आनन्दवाद की प्रतिष्ठा रही है। 'कुरुक्षेत्र' की रचना का मूल प्रयोजन युद्धवादी विचारदर्शन की भूमिका पर आज के संत्रस्त मानव मन में व्यापक मानवीय विश्वास, मानवतावादी जीवन मूल्यों के प्रति अनन्य निष्ठा और आशावादी कर्ममय जीवन की आस्था उत्पन्न करना है। 'साकेत सन्त' का सृजन भरत के चरित्र गायन के लिए ही नहीं अपितु भारतीय संस्कृति के पुनीत आदर्शों के प्रसारण हेतु भी हुआ है। 'दैत्यवंश' स्पष्टतः मानवतावादी जीवन मूल्यों की पुनप्रतिष्ठा के आग्रह की सम्पूर्ति में लिपिबद्ध हुआ है। 'रश्मिरथी' में कर्ण चरित्र के उद्धार का प्रयास ही नहीं, वरन् परम्परा पोषित जर्जरित रूढ़िवादी मान्यताओं को खंडित कर प्रगतिशील मूल्यों की प्रतिष्ठा का काव्यमय संकल्प है। 'साकेत' की रचना वर्षों पश्चात नवीन कृत 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य की सृष्टि ऊर्मिला के चरित्रोद्धार की दृष्टि लेकर ही नहीं हुई अपितु आर्य संस्कृति के समुन्नत आदर्शों को नवीन जीवनदर्शन के आलोक में संस्थापित करने के प्रयोजन की सिद्धि हेतु हुई है। 'एकलव्य' जातिवाद, वर्गवाद, कुलीनतावाद आदि प्रवादों का खंडन करके

सामाजिक जीवन की समानता और पुरुषार्थ की महत्ता को सिद्ध करने के लिये रचा गया है। गुरुभक्ति के जीवन्त प्रतीक एकलव्य के उपेक्षित चरित्र की महिमा का आख्यान भी एकलव्यकार के मूल मन्तव्य की सिद्धि का माध्यम रहा है।

इस प्रकार आलोच्य महाकाव्यों में से प्रत्येक की रचना महती सृजनप्रेरणा के फलस्वरूप हुई है। दूसरा प्रश्न है—इन महाकाव्यों के उद्देश्य और सन्देश की महत्ता का। महाकाव्यकारों की सृजन-प्रेरणा से सम्बन्धित जिन मन्तव्यों की ऊपर चर्चा की गई है उनमें चर्चित अनेक दृष्टि-बिन्दुओं को छोड़कर यदि विचार करें तो एक शब्द में इन सभी महाकाव्यों का महत् उद्देश्य और सन्देश है—मानवतावाद की प्रतिष्ठा। आलोच्य महाकाव्यों में क्या कथा-चयन क्या चरित्र योजना क्या सांस्कृतिक निरूपण और क्या दार्शनिक उपपत्तियां-सभी का मिलन बिन्दु मानवतावाद है। मानवतावाद कोई सामान्य विचार नहीं वह हमारे युग जीवन के उन्नत बोध से प्रतिफलित विचार स्नात है जिसका मूल आधार सांस्कृतिक निष्ठाएं हैं। मानवतावाद केवल साहित्य या काव्य जगत में निरूपित विचारदर्शन नहीं वरन् चिन्तन के सभी क्षेत्रों में स्वकृति प्राप्त युगीन महत्व का विचार है। आज स्वदेश और विदेश के साहित्य में सर्वत्र मानवतावाद का स्वर एक उद्घोष के रूप में सुनाई देता है। मानवीय मूल्यों की महिमा का प्रतिपादन मानव जीवन के अन्तर्बाह्य संघर्ष की निर्भीक व्यंजना, मानव की मर्यादा और शक्ति की सर्वोपरिता की स्वीकृति आदि कतिपय प्रवृत्तियां हैं जो आधुनिक महाकाव्यों में मानवतावादी चिन्तनधारा का प्रतिनिधित्व करती है।

आलोच्य महाकाव्यों में से प्रत्येक के रचयिता ने प्रयत्नपूर्वक मानवतावादी जीवनदर्शन की प्रतिष्ठा की है। प्रियप्रवासकार के मानवतावादी दृष्टिकोण के कारण ही पुराणों के राधा-कृष्ण मानवता की महनीय विभूति' बन सके हैं। उनका चरित्र, व्यवहार और जीवनादर्श सभी मानव हितार्थ है। यहां तक कि कृष्ण की ईशावतारवादी परिकल्पना और नवधा भक्ति जैसी आध्यात्मिक मान्यताओं में भी प्रियप्रवास के कवि ने युगानुरूप परिष्कार किया है। 'साकेत' के राम तो मानो मानवतावाद की उद्घोषणा ही करते हैं जब वे कहते हैं कि—

> भव में नव वैभव प्राप्त कराने आया।
> नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया ॥ ——
> सन्देश यहां मैं नहीं स्वर्ग का लाया।
> इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया ॥[1]

---

१ साकेत, अष्टम सर्ग, पृ० २३५

'कामायनी' में समरसता जन्य आनन्दवाद की प्रतिष्ठा द्वारा मानवता की विजय का ही संदेश कवि प्रसाद ने दिया है —

> 'शक्ति के विद्युत्कण, जो व्यस्त
> विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय,
> समन्वय उसका करे समस्त
> विजयिनी मानवता हो जाय।' [1]

'कुरुक्षेत्र' में सृष्टि की सम्पूर्ण शक्तियों का नियन्ता और रचना की सर्वोत्तम कृति मानव को ही कहा गया है —

> 'यह मनुज, ब्रह्माण्ड का सबसे सुरम्य प्रकाश,
> कुछ छिपा सकते न जिससे भूमि या आकाश।
> \+ + +
> यह मनुज जो सृष्टि का शृंगार।
> ज्ञान का, विज्ञान का, आलोक का आगार।' [2]

युद्ध की अनिवार्यता को स्वीकार करते हुये भी 'कुरुक्षेत्र' के कवि ने मानवता की जय का ही आख्यान किया है —

> 'कुरुक्षेत्र की धूलि नहीं इति पन्थ की,
> मानव ऊपर और चलेगा,
> मनु का यह पुत्र निराश नहीं,
> नवधर्म प्रदीप अवश्य जलेगा।' [3]

'साकेत सन्त' के रचयिता मिश्र जी परम्पराप्रिय होने हुये मानवतावादी जीवन-दृष्टि से पूर्णतः प्रभावित हैं। सम्पूर्ण काव्य में आद्यान्त वर्तमान युग की मूलभूत चेतना अनुप्राणित है। पूंजीवादी और साम्राज्यवादी अनाचारों से जर्जरित मानवता के सम्बन्ध में मिश्र जी ने कहा है कि —

> 'मनुजता रही कराह कराह, आह ! है कौन पूछता हाल।
> राक्षसी चक्की में पिस रहे, मनुजता के जर्जर कंकाल ॥' [4]

ऐसे जर्जरित मानव-समाज की रक्षा के लिये 'साकेत सन्त' के कवि की आकांक्षा है कि —

---

१ कामायनी, श्रद्धा सर्ग, पृ० ५९
२ कुरुक्षेत्र, षष्ठ सर्ग, पृ० १००
३ वही, पंचम सर्ग, पृ० ६४
४ साकेत सन्त, द्वादश सर्ग, पृ० १४५

'मनुजता के जीवन का मम,
मोह की गहराई ले जान।
मनुजता की रक्षा के हेतु,
निछावर करदे अपने प्राण।'[1]

'दत्यवश' की सम्पूण रचना का आधार ही मानवतावादी है। 'दत्यवश' का मूल प्रयोजन दत्य और दानव कहे जाने वाले पात्रों मे मानवीय गुणो का सधान करके उनके मानवोत्थानकारी आदान को स्वीकृति प्रदान करना है। 'रश्मिरथी' में मानवता के मूक प्रतिनिधि कण का चरित्राकन कवि दिनकर के मानवतावादी दष्टिकोण का ही परिचायक हैं। 'रश्मिरथी' में उदात्त मानवीय आदर्शों की समाहृति के कारण कण का चरित्र 'कण धम' का प्रतीक बन गया है। ऐसा 'कण धम' जो मानवता की प्रतिरोधी प्रवत्तियो (जसे जातिवाद, कुलीनवाद, सामाजिक असमानता आदि) का निषेध करके मानव की महत्ता के आदश प्रस्थापित करता है। नवीन कृत ऊर्म्मिला' महाकाव्य म आय सस्कृति के चिरतन आदर्शों की प्रतिष्ठा होत हुये भी उसके जीवनदशन का मूल स्वर मानवतावादी है। 'ऊर्म्मिला' का कवि नवयुग क नव आदर्शों का स्वागत करता हुआ कहता है कि —

'जागरूकता जीवन धन है,
सत्याचरण आत्मचितन है,
निश्छन होकर जगज्जनो की,
सेवा हा प्रभु का वदन है।'[2]

'ऊर्म्मिला' महाकाय मे जीवन के प्रति कवि का दष्टिकोण म युगीन है?

'जीवन है चिर विप्लव गायन,
स्वर जिसके हैं सतत क्राति,
गीत भार है नित परिवतन
गायन लय है चिर अशाति।'[3]

'एकलव्य' मे 'भूमिपुत्र और 'भूमिपति' के सघष म 'भूमिपुत्र' की विजय मानवतावादी दृष्टिकोण का ही प्रतिफलन है। एकलव्यकार ऐसी मानवीय शक्ति के उदय मे आस्था प्रकट करता है जो जीवन के नराश्य को समाप्त करने वाली है —

---

१ साकेत सन्त द्वादश सर्ग, पृ० १४६
२ ऊर्म्मिला—द्वितीय सग पृ० ७९
३ वही—षष्ट सग, पृ० ५७०

उपसहार

इस प्रकार पौराणिक विषयों मे आधुनिक हिन्दी महाकाव्यो का समालोच नात्मक अध्ययन करने के पश्चात हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि रामायण और महाभारत के रचनाकाल से महाकाव्य सजन की जो धारा प्रवाहित हुई थी, उसका मूल स्रोत अव्याहत रूप से आलोच्य महाकाव्यो के रूप मे आज भी सतत प्रवह मान है। प्रस्तुत अध्ययन क्रम म दो महत्वपूर्ण प्रश्न मेरे सामने आये हैं जिन पर 'उपसहार' में ही विचार किया जा सकता है। प्रथम यह कि क्या पौराणिक विषया के आधुनिक हिन्दी महाकाव्य 'रामायण', महाभारत और 'मानस' की भाति अक्षय कीर्ति के स्तम्भ बन सकेंगे ? और क्या आधुनिक महाकाव्यो के रचयिता वाल्मीकि व्यास और तुलसीदास के समान प्रतिभा सम्पन्न महाकवि हैं ? दूसरा प्रश्न है कि विज्ञान युग के बौद्धिक परिवेश और हिन्दी उपन्यास की अभूत पूर्व प्रगति के सन्दर्भ मे महाकाव्यो की उपयोगिता यथावत बनी हुई है ? दूसरे शब्दों मे कहा जा सकता है कि वर्त्तमान युग म महाकाव्य सजन की सभावनाए क्या हैं ?

किस काव्यकृति को महाकाव्य कहा जाय और किस को नही ? इस सम्बन्ध मे प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की 'भूमिका' मे महाकाव्य के रूप विधायक तत्वों का विवेचन करते समय विस्तार से विचार किया जा चुका है। उन्ही आधारो पर पौराणिक विषया के अगणित प्रबन्ध काव्यो मे से प्रियप्रवास साकेत कामा यनी, कुरुक्षेत्र साकेत सन्त, दत्यवश रश्मिरथी ऊर्मिला और एकलव्य को महा काव्य के रूप मे स्वीकृति प्रदान की गई है। और इस दृष्टि से इन महाकाव्यो के रचयिता महाकवि कहलाने के सर्वथा अधिकारी है। वस्तुत युग जीवन की चेतना को आत्मसात करने के कारण महाकाव्य युग की देन कहे जाते हैं। प्रत्येक युग के निर्माण में भिन्न भिन्न प्रकार की परिस्थितियो का योगदान रहता है। अस्तु, युगीन परिस्थितियो की प्रेरणा का परिणाम होने के कारण महाकाव्य के स्वरूप में भी परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। अपने युगीन सन्दर्भों म आधुनिक महाकाव्य भी किसी प्रकार से अतीत के आर्ष महाकाव्यो से कम महत्वपूर्ण नही हैं। यह बात दूसरी है कि आधुनिक महाकाव्यो का रचना फलक रामायण, महाभारत और रामचरितमानस जसे युगप्रवर्त्तक महाकाव्यो की भाति व्यापक नही है और न

"जीवन मरादय की है, भूमि नही मानवो।
सुख दुख बादलो की भांति उडे आते हैं।
शक्ति मिटती नही है अवतार लेती है।
तुम म सदव, तुम योग्य तो बनो सही।" [१]

इस प्रकार आलोच्य महाकाव्यो के माध्यम से विश्व जीवन को प्रेरित करने वाला महान् मानवतावादी स देश प्रसारित हुआ है। ऐसा स देश जो समग्र मानव जाति की थाती है। इसीलिये आलोच्य ग्रथ सामान्य कोटि की काव्य कृतिया नही वरन् सच्चे अर्थों म महाकाव्य हैं। पौराणिक विषयो के ये आधुनिक हिन्दी महाकाव्य अपने महत् सन्देश और व्यापक उद्देश्य की दृष्टि से हिन्दी भाषा हिन्दी साहित्य हिन्दी समाज या हिन्द की ही सम्पत्ति नही वरन् सम्पूर्ण मानव जाति के धरोहर कहे जा सकते हैं। आलोच्य महाकाव्यो के जीवन दर्शन म ऐसी सास्कृतिक, दार्शनिक और आध्यात्मिक मानवीय निष्ठाए प्रतिफलित हुई हैं जो अनन्तकाल तक मानव जाति की प्ररणा का अजस्र स्रोत बन कर उसे आप्यायित करता रहेगी। साहित्यिक महत्व का दृष्टि से आलोच्य महाकाव्या की रूप रचना मे महाकाव्य तत्व का जो विकास हुआ है वह हि दी महाकाव्य परम्परा की महत्त्वपूर्ण सृजनात्मक एव काव्य-शास्त्रीय उपलब्धि कही जायगी।

उपसहार

इस प्रकार पौराणिक विषयों के आधुनिक हि न्दी महाकाव्यो का समालोचनात्मक अध्ययन करने के पश्चात हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि रामायण और महाभारत के रचनाकाल से महाकाव्य सजन की जो धारा प्रवाहित हुई थी उसका मूल स्रोत अव्याहत रूप से आलोच्य महाकाव्या के रूप मे आज भी सतत प्रवह मान है। प्रस्तुत अध्ययन क्रम म दो महत्त्वपूर्ण प्रश्न मेरे सामने आये हैं जिन पर 'उपसहार' में ही विचार किया जा सकता है। प्रथम यह कि क्या पौराणिक विषयों के आधुनिक हिन्दी महाकाव्य 'रामायण', महाभारत और 'मानस की भाति अक्षय कीर्ति के स्तम्भ बन सकेंगे ? और क्या आधुनिक महाकाव्या के रचयिता वाल्मीकि व्यास और तुलसीदास के समान प्रतिभा सम्पन्न महाकवि हैं ? दूसरा प्रश्न है कि विज्ञान युग के बौद्धिक परिवेश और हि न्दी-उपन्यास की अभूतपूर्व प्रगति के सन्दभ मे महाकाव्यो की उपयोगिता यथावत बनी हुई है ? दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि वर्त्तमान युग मे महाकाव्य सजन की सभावनाए क्या हैं ?

किस काव्यकृति को महाकाव्य कहा जाय और किस को नही ? इस सम्बन्ध में प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की 'भूमिका' मे महाकाव्य के रूप विधायक तत्त्वों का विवेचन करते समय विस्तार स विचार किया जा चुका है। उन्ही आधारो पर पौराणिक विषयो के अगणित प्रबन्ध काव्यों म से प्रियप्रवास साकेत कामायनी, कुरुक्षेत्र साकेत सन्त दत्यवश रश्मिरथी, ऊर्म्मिला और एकलव्य को महाकाव्य के रूप में स्वीकृति प्रदान की गई है। और इस दृष्टि से इन महाकाव्यो के रचयिता महाकवि कहलाने के सवथा अधिकारी हैं। वस्तुत युग जीवन की चेतना को आत्मसात करने के कारण महाकाव्य युग की देन कहे जाते हैं। प्रत्येक युग के निर्माण मे भिन्न भिन्न प्रकार की परिस्थितियो का योगदान रहता है। अस्तु, युगीन परिस्थितियो की प्रेरणा का परिणाम होने के कारण महाकाव्य के स्वरूप में भी परिवतन दृष्टिगोचर होता है। अपने युगीन सन्दर्भों मे आधुनिक महाकाव्य भी किसी प्रकार से अतीत के आर्ष महाकाव्या से कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। यह बात दूसरी है कि आधुनिक महाकाव्यो का रचना फलक रामायण, महाभारत और रामचरितमानस जसे युगप्रवर्त्तक महाकाव्या की भांति व्यापक नही है, और न

ही वाल्मीकि, व्यास या तुलसीदास की भांति आलोच्य महाकाव्यों के रचयिता सत और साधक हैं। किन्तु युग चेतना (नवजागरण) का महाउद्घोष, जातीय जीवन का प्रतिनिधित्व नवीन सामाजिक संरचना के उन्नत स्तम्भ, आध्यात्मिक निष्ठाओं के परिष्कार महत् सांस्कृतिक आदर्शों की प्रतिष्ठा और कलात्मक औदात्त के कारण आलोच्य महाकाव्य हिन्दी के गौरव ग्रन्थ हैं।

दूसरा प्रश्न है—वर्त्तमान युग में महाकाव्य की सृजन सम्भावनाओं का। प्रायः कहा जाता है कि गद्य युग का महाकाव्य उपन्यास है। टिलीयाड ने तो महाकाव्य के भविष्य पर विचार करते हुए कहा था कि 'उन्नीसवीं शताब्दी तक आते आते महाकाव्य की धारा का लोप उपन्यास के प्रवाह में हो गया है।'[१] स्वर्गीय श्री नन्ददुलारे जी वाजपेयी ने भी कहा था कि 'आधुनिक युग में महाकाव्य-स्थानापन्न के रूप में उपन्यास को स्वीकार किया गया है।'[२] इसी प्रकार के मत कतिपय अन्य विद्वानों द्वारा भी प्रकट किये गये हैं। किन्तु इस प्रकार के अभिमत अधिकांशतः उपन्यास और महाकाव्यों के तुलनात्मक सन्दर्भों में उपन्यास की महत्ता को व्यंजित करने के लिये प्रकट किये गये हैं। वस्तुतः महाकाव्य की रचना उपन्यास की रचना से तत्त्वतः भिन्न उद्देश्य एवं संकल्पना की पूर्ति हेतु होती है। महाकाव्यों की रचना मानवीय चेतना के प्रगतिशील सोपानों को रूपायित करने के लिए होती है। उपन्यासों के काल्पनिक वृत्तों में जहाँ जीवन का प्रस्तुत यथार्थ व्यंजित होता है वहाँ महाकाव्यों के इतिवृत्त विधान में अतीत की प्रेरणाएं, वर्त्तमान की संवेदनाएं और अनागत की सम्भावनाएं साकार होती हैं। इसी प्रकार महाकाव्यों की चरित्र सृष्टि मानवीय आदर्शों की चिरंतन प्रतीक बनकर अनन्तकाल तक मानव-जीवन की प्रेरणा का अक्षय स्रोत बनी रहती है। महाकाव्य का वशिष्ट्यपूर्ण रचना-शिल्प भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं होता। मानव की कलात्मक अभिरुचि को सन्तुष्ट करने में महाकाव्य के विशिष्ट रचना शिल्प का उल्लेखनीय अनुदान है। फॉक्स के शब्दों में—'हमारी कलात्मक अभिरुचि की पूर्ति महाकाव्य के रूप में ही हो सकती है महाकाव्य द्वारा समाज की जैसी पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है, वैसी उपन्यास द्वारा न तो कभी हुई और न हो ही सकती है।'[३] महाकाव्यों में प्रतिपादित जीवन-दर्शन तो ऐसी संजीवनी शक्ति है जो युगों युगों तक उन्हें अमरत्व प्रदान करती है। अस्तु,

---

१ ई० एम० डब्लू० टिलीयाड—दी इंगलिश एपिक एंड इट्स बैकग्राउंड, पृ० ५३०–३१

२ हिन्दी अनुशीलन—धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक—१९६०, पृ० ५२५ पर वाजपेयी जी का लेख, शीर्षक—'राष्ट्रीय-साहित्य'

३ रल्फ फाक्स—उपन्यास और लोकजीवन, पृ० २७ (अनुवाद—नरोत्तम नागर)

स्पष्ट है कि महाकाव्य-सृजन की संभावनाओं का प्रश्न मानवीय संवेदना और चेतना के विकासशील स्तरों से सम्बद्ध है। जब तक मानवीय-संवेदना और चेतना के विकास की संभावनाएं बनी रहेंगी, तब तक महाकाव्य सृजन की संभावनाएं भी अशेष नहीं होंगी। महाकाव्य सृजन की संभावनाएं ही नहीं अपितु उनका महत्व, सार्थकता और आवश्यकता भी प्रत्येक युग में बनी रहेगी। पौराणिक विषयों के आधुनिक महाकाव्यों का समृद्ध स्वरूप देखकर विश्वास किया जा सकता है कि हिन्दी महाकाव्य-रचना का भविष्य बड़ा उज्ज्वल है।

सन्दर्भ ग्रंथ-सूची

संस्कृत के मूल व अनूदित ग्रंथ

१ काव्यालंकार – भामह
२ काव्यादर्श – दण्डी
३ काव्यालंकार – रुद्रट
४ काव्यानुशासन – हेमचन्द्र
५ दशरूपक – धनंजय
६ साहित्यदर्पण – विश्वनाथ
७ रामायण (गीताप्रेस संस्करण)
८ महाभारत ,,
९ गीता ,,
१० श्रीमद्भागवत
११ पुराण ग्रंथ—विष्णुपुराण पद्मपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, शिवपुराण, मार्कण्डेय पुराण, देवीभागवत-पुराण नारदपुराण, हरिवंश-पुराण—गीताप्रेस-गोरखपुर के
१२ वायुपुराण (हिन्दी) अनुवादक रामप्रसाद त्रिपाठी—हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

हिन्दी के ग्रन्थ

१ अर्धनारीश्वर – रामधारीसिंह दिनकर
२ अंगराज – आनंद कुमार
३ आधुनिक साहित्य—नन्ददुलारे वाजपेयी
४ आर्य संस्कृति के मूलाधार – पं० बलदेव उपाध्याय
५ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय – डा० दीनदयाल गुप्त
६ आधुनिक हिन्दी काव्य में निराशावाद – डा० शम्भूनाथ पाण्डे
७ आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्प विधान – डा० श्यामनंदन किशोर

८ उवशी – रामधारीसिंह दिनकर
९ ऊर्म्मिला – बालकृष्ण शमा नवीन
१० उपयास और लोक जीवन – मू० रल्फ फाक्स (अनु० नरोत्तम नागर)
११ एकलव्य – डा० रामकुमार वर्मा
१२ कामायनी – जयशकर प्रसाद
१३ कुरक्षेत्र – रामधारी सिंह दिनकर
१४ कैकयी – केदारनाथ मिश्र
१५ कृष्णायन – द्वारिकाप्रसाद मिश्र
१६ कृष्ण चरितमानस – पदुम्न टुगा
१७ काव्य के रूप – बाबू गुलाबराय
१८ काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास – डा० शकुतला दुबे
१९ कामायनी में काव्य-सस्कृति और दशन – डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सना
२० कामायनी के अध्ययन की समस्याए – डा० नगेन्द्र
२१ कामायनी दशन – डा० कन्हैयालाल सहल और डा० विजयेन्द्र स्नातक
२२ कामायनी सौन्दय – डा० फतेहसिंह
२३ कामायनी अनुशीलन – डा० रामलाल सिंह
२४ कामायनी दशन – डा० केदारनाथ दुबे यतीन्द्र
२५, कामायनी और प्रसाद की कविता गगा – प्रो० शिवकुमार मिश्र
२६ कुरक्षेत्र मीमासा – कातिमोहन शर्मा
२७ खडी बोली के गौरव ग्रथ – विश्म्भर मानव
२८ गुप्त जी की कला – डा० सत्येन्द्र
२९ जयभारत – मैथिलीशरण गुप्त
३० जयशकर प्रसाद चितन और कला—स० डा० इन्द्रनाथ मदान
३१ जनकवि दिनकर – डा० सत्यकाम वर्मा
३२ डा० नगेन्द्र के सवश्रेष्ठ निबध – भारतभूषण अग्रवाल
३३ तारकवध – गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश
३४ तुलसीदास – डा० माताप्रसाद गुप्त
३५ दत्यवश– हरदयालु सिंह
३६ दमयन्ती – ताराचन्द हारीत
३७ दिनकर – शिवबालक
३८ नल नरेश – पुरोहित प्रतापनारायण
३९ नवीन दशन – बनारदेव उपाध्याय
४० नवीन और उनका काव्य – जगन्नाथ प्रसाद श्रीवास्तव
४१ प्रियप्रवास – अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध

४३ पार्वती – डा० रामानन्द तिवारी
४४ प्रियप्रवास मे काव्य संस्कृति और दर्शन – डा० द्वारिकाप्रसाद
४५ प्राचीन साहित्य (हिंदी अनुवाद) लेखक – रवीन्द्रनाथ टगोर
४६ प्रसाद का काव्य – डा० प्रेमशंकर
४७ प्रसाद के नारीपात्र – डा० देवेश ठाकुर
४८ बालकृष्ण शर्मा नवीन व्यक्ति और काव्य – डा० लक्ष्मीनारायण दुबे
४९ बीसवीं शताब्दी की सर्वश्रेष्ठ कृति कामायनी – गंगाप्रसाद पांडे
५० बीसवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध के महाकाव्य – डा० प्रतिपाल सिंह
५१ भारतीय दर्शन – डा० उमेश मिश्र
५२ भागवत सम्प्रदाय–पं० बल्देव उपाध्याय
५३ मध्यकालीन धर्म साधना – डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
५४ मेघनाथ वध – अनु० मैथिलीशरण गुप्त
५५ महाकवि हरिऔध – गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश
५६ महाकवि हरिऔध और प्रियप्रवास – डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी
५७ मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य – डा० कमलाकान्त पाठक
५८ मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता – डा० उमाकांत
५९ रश्मिरथी – रामधारीसिंह दिनकर
६० रावण – हरदयालुसिंह
६१ रामराज्य – बल्देवप्रसाद मिश्र
६२ रामकथा उत्पत्ति और विकास – डा० कामिल बुल्के
६३ रामचंद्रिका का विशिष्ट अध्ययन – डा० गार्गी गुप्त
६४ वदेही वनवास – अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध
६५ वचारिकी – शचीरानी गुर्टू
६६ विचार और निष्कर्ष – वासुदेव
३७ विदेशों के महाकाव्य – अनु० गोपीकृष्ण गोपेश
६८ वदिक संस्कृति का विकास – अनु० डा० मोरेश्वर दिनकर पराडकर
६९ साकेत – मैथिलीशरण गुप्त
७० साकेत संत – बल्देवप्रसाद मिश्र
७१ सारथी – डा० रामगोपाल दिनेश
७२ सेनापति कर्ण –लक्ष्मीनारायण मिश्र
७३ सूर और उनका साहित्य – डा० हरवंशलाल शर्मा
७४ साहित्यालोचन – डा० श्यामसुंदरदास
७५ साहित्यिक निबंध – राजनाथ शर्मा
७६ संस्कृति के चार अध्याय – रामधारीसिंह दिनकर

७७ सर्वदर्शन संग्रह-पं० बल्देव उपाध्याय
७८ साकेत एक अध्ययन -डा० नगेन्द्र
७९ साकेत दर्शन-त्रिलोचन पाण्डेय
८० साकेत में काव्य संस्कृति और दर्शन-डा० द्वारिका प्रसाद
८१ साकेत के नवम सर्ग का काव्य वैभव-डा० कन्हैया लाल सहल
८२ श्री रामचन्द्रोदय-रामनाथ ज्योतसी
८३ श्री राधा का क्रम विकास-डा० शशिभूषणदास
८४ शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त भाग १ व २-डा० गोविन्द त्रिगुणायत
८५ हरिऔध और उनका साहित्य-डा० मुकुददेव शर्मा
८६ हिन्दी के अस्सी वर्ष-शिवदानसिंह चौहान
८७ हिन्दी काव्य मंथन-दुर्गाशंकर मिश्र
८८ हिन्दी काव्य में नियतिवाद-डा० रामगोपाल शर्मा दिनेश
८९ हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य-डा० गोविन्दराम शर्मा
९० हिन्दी महाकाव्यों में नारी चित्रण-श्यामसुन्दर व्यास
९१ हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास-डा० शम्भूनाथसिंह
९२ हिन्दी साहित्य का इतिहास-रामचन्द्र शुक्ल
९३ हिन्दी साहित्य की भूमिका-डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
९४ हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी-आचार्य नददुलारे वाजपेयी
९५ हिन्दी साहित्य पर मंगल प्रभाव-डा० रवीन्द्र सहाय वर्मा
९६ हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि-डा० विश्म्भरनाथ उपाध्याय
९७ हिन्दू देव परिवार का विकास-डा० सम्पूर्णानन्द
९८ हिन्दी साहित्य कोश-सं० डा० धीरेन्द्र वर्मा

पत्रिकाएं

१ गवेषणा, अंक १९६३
२ जनभारती अंक सं० २०२१
३ वीणा अंक फरवरी १९६१
४ सरस्वती १९५८
५ सरस्वती संवाद (महाकाव्य विशेषांक) १९५९
६ साहित्य सन्देश अप्रैल १९६२
७ हिन्दी अनुशीलन-धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक, १९६०

अंग्रेजी के ग्रन्थ

१ ए हिस्ट्री आव इंडियन लिटरेचर-एम० विंटरनित्ज
२ ए हिस्ट्री आव एन्शियेंट संस्कृत लिटरेचर-मैक्स मूलर

३ ए बिरीफ हिस्ट्री आव संस्कृत लिटरेचर-कौशिलेश्वर शास्त्री
४, एन आउट लाइन आव दी रिलीजस लिटरेचर आव इंडिया-डा० जे० एन० फर्कुहर
५ इंग्लिश एपिक एंड हीरोइक पोइट्री-एम० डिक्सन
६ एनसाइक्लोपीडिया आव लिटरचर, भाग १-कसल्स
७ एपिक एंड रोमांस डब्लू० पी० केर
८ एपिक स्ट्रेन इन इंगलिस नोवेल-इ० एम० डब्लू टिलीयार्ड
९ फराम वरजिल टू मिल्टन-सी० एम० बावरा
१० हिंदू रिलीजन्स-एच० एच० विलसन
११ पोइटिक्स अरिस्टाटिल, सम्पादित टी० ए० मोक्सन
१२ दी एपिक-एबरक्राम्बी।
१३ दी इंगलिस एपिक एण्ड इटस बक ग्राउंड-इ० एम० डब्लू टिलीयार्ड
१४ वैष्णवइज्म, शैवइज्म एण्ड माइनर रिलीजस सिस्टम्ज-डा० भंडारकर